A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका

2014

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका

2014

प्रधान संपादक

गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ़्ट लेन 74427, फ़ॉरेस्ट साइड
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane 74427, Forest Side
Mauritus

info@vishwahindi.com
Website: www.vishwahindi.com
Phone: 00-230-6761196, Fax: 00-230-6761224

ISSN 1694-2477

विश्व हिंदी पत्रिका संपादकीय टीम

सुश्री श्रद्धांजलि हजगैबी, श्रीमती विजया सरजु, श्रीमती उषा राम,
सुश्री खुश्बू चूड़ामन, सुश्री करिश्मा रामझीतन, श्री कैलाश दावराज़

संपादन सहयोग

श्री वशिष्ठ कुमार झमन, सुश्री अनुक्षा रतिया, श्री अरविंद नेकितसिंह,
श्री सहलिल तोपासी, सुश्री शिक्षा धनपत, श्री भेराम जयश्री

***

-निवेदन-

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं।
विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना
आवश्यक नहीं है।

अनुक्रम

हिंदी के पथप्रदर्शक अमर दीपों को श्रद्धांजलि

1.	हिंदी के अनन्य साधक फ़ादर कामिल बुल्के	श्री राजेंद्र उपाध्याय	3
2.	गांधी जी की नज़र में हिंदी	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी	5
3.	पूजानंद : मॉरीशस का एक अनूठा हिंदी साहित्यकार	श्री राज हीरामन	9
4.	2014 में हिंदी जगत को अलविदा करने वाले विशेष हिंदी सेवक	संपादक मंडल	14

वैश्विक हिंदी : क्षेत्र व आयाम

5.	बुल्गेरिया में हिंदी भाषा	पी.के. जयलक्ष्मी	17
6.	ऑस्ट्रेलिया में हिंदी	डॉ. दिनेश श्रीवास्तव	19
7.	चीन में हिंदी : 'चीन की डायरी'	डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'	24
8.	नेपाली हिंदी : भाषिक संबंध	डॉ. मृदुला शर्मा	28
9.	कोरिया में हिंदी अध्यापन : कुछ अनुभव	विजया सती	35
10.	आधुनिक सिंगापुर में हिंदी शिक्षण के पच्चीस वर्ष	संध्या सिंह	38
11.	मॉरीशस में बैठका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और हिंदी के उन्नयन में उसकी भूमिका	श्री राजेश कुमार उदय	44
12.	मॉरीशसीय आर्य समाज द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ	श्रीमती शांति मोहाबीर	49
13.	स्वाधीनता संग्राम के युग में दक्षिण-भारत में हिंदी का प्रचार-प्रसार	प्रोफ़ेसर महावीर सरन जैन	56

विश्व हिंदी साहित्य : विचार और विस्तार

14.	प्रवासी साहित्य कितना प्रवासी ?	प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण	67
15.	हिंदी का प्रवासी साहित्य : दशा और दिशा	डॉ. कमल किशोर गोयनका	74
16.	हिंद से बाहर हिंदी	श्री राकेश पांडेय	82
17.	प्रवासी साहित्य और चुनौतियाँ	मधु अरोड़ा	88
18.	साहित्य—प्रवासी हिंदी साहित्य : एक विहंगम दृष्टि	स्नेह ठाकुर	93

19.	मॉरीशस में हिंदी सर्वोत्कृष्ट साहित्य सृजन	श्री इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ	100
20.	हिंदी देश से परदेश तक	श्री गोवर्धन यादव	106
21.	हिंदी का वैश्विक साहित्य	डॉ. श्याम नारायण कुंदन	112
22.	हिंदी और यूरोपीय साहित्य में अंतरसंबंध	डॉ. मृदुल जोशी	115
23.	दक्षिण पूर्व एशिया में हिंदी के विकास का परिप्रेक्ष्य और तत्रजनित रामकाव्य का तुलनात्मक परिदृश्य	डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी	118
24.	मॉरीशस में हिंदी बाल साहित्य द्वारा हिंदी भाषा का विकास	श्री धनराज शंभु	125
25.	देश में हिंदी, विदेश में हिंदी	कुमार परिमलेंदु सिन्हा	129

वैश्विक हिंदी के विविध आयाम व कुछ विचार बिंदु

26.	बहुभाषिकता : संदर्भ सिमटती दूरियाँ सूचना क्रांति में	डॉ. ओम विकास	141
27.	पुर्तगाली भाषा का परिचय	श्री शिव कुमार सिंह	155
28.	हिंदी में विज्ञान की पढ़ाई	प्रो. जयंत विष्णु नार्लीकर	163
29.	भारतवंशियों की सांस्कृतिक भाषा—हिंदी भाषा परिवार है	प्रो. पुष्पिता अवस्थी	168
30.	हिंदी पत्रकारिता का हिंदी से क्या रिश्ता है ?	श्री प्रमोद जोशी	173
31.	विदेश में आनन-फानन में हिंदी सीखें	नीलू गुप्ता	176
32.	शब्द संकोचन का शिकार बनती हिंदी	श्री उमेश चतुर्वेदी	180
33.	भाषा प्रकार्यों के अधुनातन संदर्भ और हिंदी	डॉ. कविता वाचक्नवी	185
34.	पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन	अनीता गांगुली	189

विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में अतिथि विद्वान का वक्तव्य

35.	जापान में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन : इतिहास, उपलब्धियाँ व स्मृतियाँ	प्रो. ताकेशी फुजिई	195

2014 में हिंदी जगत की चयनित खबरें

36.	विश्व हिंदी समाचार में प्रकाशित वर्ष 2014 की चयनित खबरें	संपादक मंडल	201

REPUBLIC OF MAURITIUS

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES, TERTIARY EDUCATION AND SCIENTIFIC RESEARCH

(Office of the Minister)

संदेश

मॉरीशस गणराज्य के नए शिक्षा मंत्री के रूप में पद ग्रहण करने के तुरंत बाद विश्व हिंदी सचिवालय की वार्षिक पत्रिका के माध्यम से विश्व हिंदी पाठकों तक अपनी शुभकामनाएँ पहुँचाते हुए मुझे अत्यंत गर्व हो रहा है।

हिंदी का वैश्विक स्तर पर प्रचार-प्रसार तथा संयुक्त राष्ट्र संघ तक इस भाषा को पहुँचाने की संकल्पना को साकार करने के उद्देश्य से भारत व मॉरीशस सरकार द्वारा स्थापित यह द्विपक्षीय संस्था, न केवल दोनों सरकारों के लिए बल्कि विश्व भर के हिंदी प्रचारकों के लिए महत्वपूर्ण सहयोगी के रूप में उभर रही है। मेरा विश्वास है कि आने वाले वर्षों में सचिवालय अपनी योजनाओं और गतिविधियों के माध्यम से अपने उद्देश्यों में और अधिक सफलता प्राप्त करेगा।

सचिवालय की इन गतिविधियों में विश्व हिंदी दिवस का आयोजन और इसी उपलक्ष्य पर 'विश्व हिंदी पत्रिका' का प्रकाशन महत्वपूर्ण रहे हैं। सचिवालय के अधिकारियों व संपादन टीम की मेहनत के बल पर यह पत्रिका विश्व स्तर पर हिंदी संबंधी शोध का एक ऐसा संकलन बन गया है जिसमें पाठकों, छात्रों और शोधार्थियों के लिए सूचना और विचार की दृष्टि से साल-दर-साल वृद्धि हो रही है। मैं इस सुंदर प्रकाशन के लिए सचिवालय को तथा लेखकों को बधाई देती हूँ।

हिंदी के प्रति मॉरीशस का समर्पण अनूठा है। इस राष्ट्र के लिए हिंदी न केवल ऐसी भाषा है जो हमारे इतिहास और संस्कृति से गहरा रिश्ता रखती है बल्कि एक ऐसी भाषा भी है जिसकी देश और विश्व के उज्ज्वल भविष्य में विशेष भूमिका का दृढ़ विश्वास है। इसलिए जहाँ रामायण के प्रति हमारी निष्ठा सर्वज्ञात है, वहीं संयुक्त राष्ट्र संघ से लेकर मैडिसन स्क्वेर गार्डन तक जब हिंदी के शब्दों की गूँज सुनाई देती है तब मॉरीशस के जनमानस को वैसा ही गर्व होता है जैसा कि भारत के जनमानस को होता है।

'अपनी' इस भाषा की प्रगति और प्रचार के लिए मॉरीशस की सरकार और जनता का सहयोग हमेशा रहेगा; इसी प्रतिज्ञा को दोहराते हुए मैं मंत्रालय और अपनी ओर से विश्व हिंदी समुदाय को नए वर्ष और विश्व हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ प्रस्तुत करती हूँ।

(श्रीमती लीला देवी दुखन-लछुमन)

29 दिसंबर, 2014

MITD House, Phoenix
Tel. No.: (230) 6862402/03 • Fax: (230) 6983601/ (230) 6861478
E-mail: moeministeroffice@govmu.org

भारतीय उच्चायोग
पोर्ट लुई, मॉरीशस

सत्यमेव जयते

HIGH COMMISSION OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि विश्व हिंदी सचिवालय 10 जनवरी, 2015 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर अपनी वार्षिक पत्रिका ''विश्व हिंदी पत्रिका'' के छठे अंक का प्रकाशन करने जा रहा है। इस प्रकाशन के माध्यम से सचिवालय हिंदी से संबंधित गतिविधियों की झाँकी प्रस्तुत करता है तथा वैश्विक परिपेक्ष्य में हिंदी की स्थिति, हिंदी का उद्‌भव और विकास, हिंदी के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधान, हिंदी शिक्षण और संबंधित मार्गदर्शक शोध भी उजागर करता है।

हिंदी विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। आज के भारत की परिस्थिति में जिसमें भारत आर्थिक विकास के एक नए दौर में कदम रखने की ओर अग्रसर है, हिंदी का महत्व और भी बढ़ गया है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में हिंदी को आज तक नई पहचान मिली है तथा वैश्विक समुदाय हिंदी को नई दृष्टि से देख रहा है।

मातृ भाषा होने के साथ-साथ हिंदी अत्यन्त जीवंत भाषा भी है। इस कारण से तथा भारत सरकार के प्रयासों के चलते हिंदी के प्रचार-प्रसार को भी काफी बल मिला है। हाल ही में भारत और मॉरीशस के सहयोग से मॉरीशस में 31 अक्तूबर 2014 से 1 नवम्बर 2014 के दौरान एक चार दिवसीय अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया जो कि अत्यन्त सफल रहा। इस सम्मेलन से भी हिंदी से संबंधित गतिविधियों को नया बल मिला है।

हिंदी भारत तथा अन्य देशों में बसे हुए भारतीय मूल के लोगों को जोड़ने वाली एक मज़बूत कड़ी है। भारतीय मूल के लोगों ने अपनी रचनाओं, कविताओं, गद्य, साहित्य तथा अन्य रूपों में हिंदी को समृद्ध करने में अनुपम योगदान दिया है। परम्परागत तौर पर भारतीय दर्शन, विज्ञान, कला आदि को जानने की उत्सुकता से विदेशी लोग हिंदी तथा संस्कृत के पठन-पाठन में रुचि रखते रहे हैं। फिलहाल में भारतीय बाज़ार के आकार तथा महत्ता के मद्‌दे नज़र भी विदेशियों के मन में हिंदी को सीखने-समझने की उत्सुकता जागृत हो रही है। मुझे विश्वास है कि भारत तथा मॉरीशस के सहयोग से तथा विश्व हिंदी सचिवालय के अथक प्रयासों से हिंदी साहित्य और समृद्ध होगा तथा हिंदी की खुशबु दुनिया के सुदूर कोनों में फैल सकेगी।

मुझे भरोसा है कि विश्व हिंदी पत्रिका का यह प्रकाशन हिंदी के सौन्दर्य में गुणात्मक वृद्धि करेगा तथा विश्व चेतना में हिंदी के लिए नए उत्साह का संचार करेगा।

10 जनवरी 2014 को विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में विश्व हिंदी पत्रिका के इस छठे अंक के लोकापर्ण के अवसर पर मैं विश्व हिंदी सचिवालय एवं समस्त हिंदी प्रेमियों को हार्दिक शुभकामानाएँ देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि विश्व में हिंदी के प्रसार के लिए जो संकल्प उन्होंने किया है, नव वर्ष उस उद्‌देश्य की पूर्ति में मार्ग प्रशस्त करेगा।

(अनूप मुद्‌गल)

10 दिसम्बर, 2014

6th Floor, L.I.C. Building, President John Kennedy Street, P.O. Box 162, Port Louis
Tel.: (230)208 3775/6 Fax: (230) 208 6859
Email: coined@intnet.mu hciadm@intnet.mu
Website: www.indiahighcom-mauritius.org

संपादकीय

ज्ञान-युग में सिंहपर्णी हिंदी...

मानव समाज आज ज्ञान-युग की चौखट पर खड़ा है। एक ऐसा युग, जिसमें पूर्व के सभी युगों के मूल्यवान तत्वों (धरती, प्रौद्योगिकी, उद्योग, पूँजी और सूचना) की तुलना में किसी भी देश, समाज, समुदाय की प्रगति का साधन और मापदंड होगा ज्ञान। इस युग को विशेष रूप से वर्तमान 'सूचना' युग का अगला चरण माना जाता है, जिसमें 'सूचना' की तुलना में उसके विवेचन से प्राप्त 'ज्ञान' का सामाजिक विकास में अधिक महत्व होगा। यह समझने के लिए अधिक कल्पनाशील होने की आवश्यकता नहीं है कि यह मापदंड भाषा पर भी न केवल लागू होगा बल्कि उसकी जीवनरेखा का निर्धारण भी करेगा।

निर्विवाद है कि एक विश्वभाषा के रूप में हम अभी भी सूचना-युग में हिंदी के न्यायोचित स्थान के लिए संघर्षरत हैं। वैश्विक फैलाव वाले नवीन सूचना साधनों पर हिंदी में उपलब्ध सूचना की मात्रा वक्ता-आबादी के अनुपात में अन्य भाषाओं की तुलना में बहुत कम है। इस कमी के बावजूद हिंदी के वैश्विक समुदाय को अभी से तैयार होना पड़ेगा, ताकि आगामी युग में भी इस प्रकार का असंतुलन न हो। इसके लिए अनिवार्य है कि हिंदी विश्व स्तर पर ज्ञान की वाहिका भाषा बने। उतनी ही समृद्ध वाहिका, जितनी बड़ी उसकी वक्ता-संख्या।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस दृष्टि से हिंदी में कुछ ऐसे प्रकृतिगत गुण हैं जो इसको इतिहास की कमियों को पाटकर आगे की ओर छलाँग लगाने में सक्षम बनाती है। हिंदी सूचना प्रधान भाषा नहीं थी, अनुभव और ज्ञान प्रधान थी और है। सूचना का आधिक्य होना ज्ञान के आधिक्य होने का समानार्थक नहीं है। एक ही क्रिकेट मैच पर हज़ार रिपोर्ट होने से उसके रनों की संख्या नहीं बदल जाती। आवृत्ति मात्र होती है। इसकी तुलना में एक ही अनुभव पर लिखी हज़ार कविताओं में ज्ञान की विविधता की संभावना अधिक है। इस बात को मान कर चलें तो स्पष्ट है कि ज्ञान युग में हिंदी का साहित्य उसकी महत्वपूर्ण धरोहर है...हिंदी का भारतेतर साहित्य उसकी वैश्विक धरोहर। लेकिन यह धरोहर उजागर होने के लिए सही विवेचन व समझ के उचित पासवर्ड की माँग करता है। मेरा अनुभव है कि अभी तक इस खज़ाने को गलत चाबी से खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सही कुंजी के प्राप्ति के लिए हिंदी (भाषा, व्यक्ति और सोच) में कई दृष्टियों से परिवर्तन की आवश्यकता होगी। आप देखिए कि सूचना युग ने ही हिंदी की प्रकृति, स्वरूप, व्यवहार आदि में इतने परिवर्तन ला दिए। सूचना युग में भाषा के स्वरूप और उसके वाहक कितना बदले हैं। ज्ञान-युग और अधिक परिवर्तनों की माँग लेकर आएगा। जहाँ स्वरूप और वाहन में परिवर्तन की स्थापित दिशा बरकरार भी रह सकती है, वहीं भाषा या उसके संपूर्ण भाषिक समुदाय की वैचारिक प्रवृत्ति में आमूल परिवर्तन की माँग अटल है।

ज्ञान-युग का गुरुमंत्र है 'मुक्तता'। सूचना मुक्त, ज्ञान मुक्त, अध्यापक-अध्येता मुक्त, सोच मुक्त, मानसिकता मुक्त! एम.आइ.टी. जैसे विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय द्वारा अपनी सारी पाठ्य सामग्री का 'ओपन सोर्स' किया जाना बहुत प्रभावशाली संकेत है। यह मुक्तता लारुस प्रकाशन-गृह के अत्यंत प्रभावशाली प्रतीक चिह्न और आदर्श वाक्य की याद दिलाती है। प्रतीक चिह्न में एक महिला एक सिंहपर्णी (डैंडिलियन) पर फूँक मारते हुए उसकी पंखुड़ियों (जो उसके बीज के वाहक होते हैं) को हवा में बिखेरती है। आदर्श वाक्य है “Je sème à tout vent” अर्थात् ''मैं हवाओं में बिखेरती हूँ ज्ञान के बीज''। इस दिशा में सिंहपर्णी ज्ञान-युग में हिंदी की प्रगति-प्रवृत्ति का प्रतीक बनती है।

पत्रिका के मुखपृष्ठ पर पूरी मुक्तता के साथ अपने भविष्य को हवा में बिखेरती सिंहपर्णी का चित्र इसी संकल्पना को मूर्त रूप देने का प्रयास है।

प्रवासी साहित्य विशेषांक

इसी सिंहपर्णी प्रवृत्ति की आवश्यकता होगी विश्व हिंदी साहित्य में समाए ज्ञान की असीम क्षमता की लगाम खोलने के लिए।

वैसे, विश्व हिंदी पत्रिका के इस अंक का, न ही इस संपादकीय का 'प्रवासी' कहे जाने वाले हिंदी साहित्य पर केंद्रित होना किसी योजना का फल है। हिंदी साहित्य (भारतीय अथवा भारतेतर) पर केंद्रित पत्र-पत्रिकाओं की पहले से पर्याप्त संख्या के कारण विश्व हिंदी पत्रिका अपने पूर्व अंकों में भाषा के वैश्विक स्वरूप से संबंधित ऐसे मुद्दों को उभारने पर ध्यान केंद्रित करती आई है, जिनकी चर्चा कम ही होती है। इसी मान्यता के आधार पर पत्रिका के पूर्व अंक हिंदी प्रचारक व्यक्तियों व संस्थाओं, हिंदी और सूचना संचार प्रौद्योगिकी, देश-विदेश में हिंदी शिक्षण आदि पर जानकारियों व विचारों को अधिक उभारती रही है।

इस अंक में भी पूजानंद नेमा जैसे हिंदीसेवी को श्रद्धांजलि अर्पित किए बिना शुरुआत नहीं हो सकती थी। हिंदी की विश्व-यात्रा के संस्मरण, हिंदी के वैश्विक स्वरूप पर चिंतन करने वाले विद्वानों द्वारा अलग-अलग मंचों पर अभिव्यक्त किए गए विचार, भारत के 'हिंदीतर प्रदेशों' में पुरोधा भाषा प्रचारकों की स्मृति, सूचना क्रांति पर चर्चा आदि इसी परंपरा को सुदृढ़ करते हैं।

दूसरी ओर भारत के साथ-साथ अन्य अनेक देशों में हिंदी की स्थिति से संबंधित आलेख आप पूर्व अंकों में भी लगातार पढ़ते आ रहे हैं। फिर भी किसी भी राष्ट्रीय परिवेश में एक भाषा की स्थिति इतनी गति से परिवर्तित होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती कि साल-दर-साल आप 'अमुक देश में हिंदी' शीर्षक आलेख बिना सूचना की आवृत्ति के भय के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इसलिए इस अंक में ऐसे आलेखों को भी स्थान दिया गया, जो विश्व स्तर पर हिंदी के स्वरूप संबंधी चिंतन में कुछ अलग आयाम जोड़ते हैं। कुछ आयाम आरंभ में अप्रासंगिक लगते हुए भी गहरी परख का अनुरोध करते हैं।

इन सभी सूचना व विचार-समृद्ध अभिव्यक्तियों के अतिरिक्त इस अंक के लिए अधिकतर आलेख ऐसे प्राप्त हुए, जो विश्व-पटल पर फैलते जा रहे हिंदी साहित्य से संबंधित थे। सबने मिलकर अनायास ही पत्रिका का ऐसा स्वरूप बनाया, जो विश्व हिंदी साहित्य पर केंद्रित हो।

यह संयोग एक स्वीकारोक्ति भी है। विश्व भर में हिंदी में जो भी लिखा जा रहा है, उसमें सर्वाधिक मात्रा 'साहित्य' (ललित साहित्य) की ही है। इसलिए भाषा के वैश्विक प्रचार का दस्तावेज़ बन रही सचिवालय की पत्रिका अधिक समय तक साहित्य-केंद्रित अंक टाल नहीं सकती थी। इधर मॉरीशस के श्री अभिमन्यु अनत को साहित्य अकादमी की मानद महत्तर सदस्यता प्रदान किए जाने से विश्व हिंदी साहित्य के लिए ऐतिहासिक बने वर्ष 2014 में यह संयोग सुखद ही है।

संचयन और शोध का मार्गदर्शक चिंतन

लेकिन आलेखों के चयन, मूल्यांकन की प्रक्रिया में यह सुखद अनुभव कुछ खट्टा होने लगा। यह अनुभूति चुभी कि विश्व हिंदी साहित्य के विषय में अभी तक 'सूचना संचयन' अधिक हुआ है, 'शोध' कम, 'चिंतन' तो बहुत कम। 'प्रवासी हिंदी साहित्य' जैसे शीर्षक रखने वाले ऐसे भी कई आलेख मिले थे, जिनमें भारतेतर साहित्यकारों के नाम, नाम के साथ रचनाओं की फेहरिस्त, प्राप्त सम्मान और समाप्त। चिंतन (विवेचन और मूल्यांकन नहीं) बहुत कम मिला। विश्व हिंदी पत्रिका के लिए 'प्राप्त' आलेख किसी भी रूप में विश्व हिंदी साहित्य पर हुए या हो रहे चिंतन का संख्यात्मक व गुणात्मक मापदंड नहीं हो सकते; इसलिए सचिवालय के पुस्तकालय में भारतेतर हिंदी साहित्य पर प्राप्त पुस्तकों (विश्वास कीजिए इनका संचयन करने में सचिवालय कसर नहीं छोड़ता) की तलाश में पहुँचा। साहित्य

मिला, संचयन मिले, कोश मिले, पर चिंतन बहुत कम मिला।

याद आई दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में साहित्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, साहित्य सिद्धांत, साहित्यालोचना के सिद्धांत वाली पुस्तकों से आद्यंत भरे 'गलियारों' की, जहाँ वर्ष बीतने पर भी अधिकतर पुस्तकें अनछुई ही रह जाती थीं। याद आई देश-विदेश के पुस्तकालयों में ऐसी पुस्तकों की भरमार की, जो अलग-अलग देश, भाषा की ही नहीं, एक ही देश में अलग-अलग युग और धारा के साहित्य के विश्लेषण के मार्गदर्शक सिद्धांतों से भरी हैं।

अनुभव पुख्ता हुआ, 'चिंतन' बहुत कम है। यह चिंतन के अभाव में ही गलत चाबी से ज्ञान का खज़ाना खोलने की कोशिश की जा रही थी।

संक्षेप में, जिस प्रकार प्रत्येक लेखन-धारा की अपनी एक विशिष्ट बुनावट होती है, उसी प्रकार लेखन की समझ की भी विशेष बुनावट की माँग करती है। इस विशेषता के चलते ही उस साहित्य की समझ को विकसित करने हेतु पूछे गए अधिकांश प्रश्न अलग हो जाते हैं। इन भिन्न प्रश्नों के आधार पर ही उस साहित्य का न्यायोचित विवेचन, मूल्यांकन हो सकता है। हिंदी में आदिकाल से लेकर अद्यतन साहित्य की समझ को विकसित करने के मार्गदर्शक सिद्धांतों ने यही तो किया है। तभी तो विवेचन के लिए देश-काल-वातावरण-पात्र-चरित्र-संवाद आदि आधारभूत तत्वों की समानता के बावजूद हम इन साहित्य-धाराओं की अलग समझ रखते हैं।

क्या विश्व हिंदी साहित्य की न्यायोचित समझ के लिए, आवश्यकता होते हुए भी ऐसे मार्गदर्शक सिद्धांत हैं ? क्या वे होते तो हम प्रेमचंद और अभिमन्यु अनत को एक ही लेंस से देखते हुए 'मॉरीशस का प्रेमचंद' जैसे संबोधन उभारते।

आगे बढ़ने से पूर्व एक बात

भारतेतर हिंदी साहित्य यदि आज प्रकाश में आया है तो उसका पूरा श्रेय निर्विवाद रूप से भारतीय पाठकों, आलोचकों को ही जाता है। और इस साहित्य की समझ के विकास की प्रक्रिया यदि धीमी है तो उसका एक कारण यह भी है कि जिन देशों में यह साहित्य लिखा जा रहा है, वहाँ के विद्वान इसकी समझ की बुनावट पर चिंतन से लेकर इसकी आलोचना-समालोचना क्षेत्र में कम ही आगे आए हैं। अभिमन्यु अनत के साहित्य को पढ़ने-समझने के लिए यदि भारत या अन्य देशों में बसे छात्रों को किसी मॉरीशसेतर देश में लिखी हुई कुंजी पर ही निर्भर रहना पड़े तो उसमें सबसे ज़्यादा अभिमन्यु के देश के पाठकों-आलोचकों का (मेरा भी) दोष है।

इसलिए यहाँ से आगे कही जाने वाली बातों को किसी 'दोषी कौन ?' कार्यवाही के रूप में नहीं बल्कि एक विचार-मंथन प्रक्रिया के रूप में समझें। उद्देश्य है—विश्व हिंदी साहित्य की समझ की प्रक्रिया को सुदृढ़ करना। और फिर जिस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के संपादक मंडल के लिए यह निवेदन कवच होता है कि 'पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं। संस्था और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है,' उसी प्रकार आप भी मेरे विचारों से सहमत हों, इसकी अपेक्षा मैं तनिक भी नहीं करता। बहुत संभावना है कि मेरा दृष्टिकोण आपके नज़रिए से मेल न खाए। यहाँ उद्देश्य मतैक्य है ही नहीं, मतों पर मंथन है!

प्रवासी! कौन प्रवासी?

मेरा दृष्टिकोण ? मैं एक ऐसे देश के बरामदे से झाँक रहा हूँ, जहाँ दुनिया की अनेक महत्वपूर्ण भाषाओं का (जिनमें अधिकतर इस देश की 'अपनी' भाषा नहीं है) साहित्य लिखा जाता है, लेकिन मैंने किसी को 'प्रवासी अंग्रेज़ी साहित्य', 'प्रवासी फ्रेंच साहित्य' नाम से संबोधित होते हुए नहीं सुना। फिर मॉरीशस से लेकर सूरीनाम तक का हिंदी साहित्य कहाँ का प्रवासी ? पाँच-छः पीढ़ी बाद भी प्रवासी ? इसलिए सुरेश ऋतुपर्ण जी के आलेख के विचारोत्तेजक शीर्षक 'प्रवासी साहित्य कितना प्रवासी!' में प्रश्न की पेंच को और कसते हुए पूछूँगा—कौन प्रवासी ?

मेरे अनुसार, उपर्युक्त चिंतन के अभाव का सबसे गोचर प्रभाव इस साहित्य-धारा के नाम पर है। मॉरीशस के युवा लेखक का मन क्या पूछेगा? ''यदि मेरे अभिमन्यु का 'लाल पसीना' 'प्रवासी साहित्य' है तो क्या एलिस वॉल्कर का 'द कलर पर्पल' भाषा के आधार पर प्रवासी बरतानी साहित्य होगा अथवा जाति के आधार पर 'प्रवासी अफ्रीकी साहित्य'?''

चलिए यह मान लिया कि अभिमन्यु अनत नहीं, पर किसी भी देश में पहली पीढ़ी के प्रवासियों का साहित्य तो प्रवासी कहा जा सकता है। लेकिन प्रश्न यह है कि नॉस्टेल्जिया आदि 'प्रवास' से जुड़ी जिन भावनाओं के कारण 'प्रवासी' नामकरण होता है, क्या वे इन देशों में दूसरी पीढ़ी के रचनाकारों में भी उतनी ही प्रमुख होंगी? प्रमाण तो इस बात का है कि वे भावनाएँ पहली पीढ़ी के साहित्य के आरंभिक दौर मात्र तक प्रमुख रहती हैं। यदि इस साहित्य का 'प्रवासी' तत्व इसकी पूरी विकास-यात्रा का एक चरण मात्र है, फिर वर्तमान ही नहीं, आने वाली पीढ़ी तक को इस नामकरण को बाँध रखने का क्या उद्देश्य? इसलिए मेरा मानना है कि इस साहित्य की समझ विकसित करने की प्रक्रिया में पहला कदम होना चाहिए 'प्रवासी' शब्द का पूर्णत: निकाल फेंका जाना।

दूसरा नाम?

'गिरमिटिया साहित्य' भी इस साहित्य के एक युग का ही द्योतक हो सकता है। इसे भी कृपया त्यागें।

'प्रवासी' में समझ का प्रस्थान-बिंदु भारत है...'आप्रवासी' में कम-से-कम इतना अच्छा है कि उसकी समझ का प्रस्थान-बिंदु प्रवास का देश है (जिस देश में बसकर साहित्य रचना की जा रही है), जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हर साहित्य के केंद्र में होता है। चाहे उसमें लेखक आप्रवास के देश में रहकर मातृभूमि की ही तलाश क्यों न कर रहा हो। लेकिन यहाँ भी प्रश्न तो वही रहेगा कि दूसरी या पाँचवीं पीढ़ी भी आप्रवासी?

2013 में मॉरीशस में हिंदी साहित्य प्रकाशन की पहली शताब्दी पूर्ण होने के बाद यहाँ नए लेखकों के प्रोत्साहन के मंच के रूप में 'दूसरी शताब्दी का साहित्य' अभियान आरंभ किया गया। अधिकतर युवा लेखक हैं, वास्तविक युवा। इन लेखकों में किसी का दादा भी प्रवासी-आप्रवासी नहीं था। आप बताइए, इनको कैसे समझाया जाए कि इस ज़मीन पर उनके साहित्य की शताब्दी पूरी होने के बाद भी उनका लेखन आप्रवासी साहित्य है।

'हिंदी का विदेशी साहित्य' नाम का प्रयोग तो बिल्कुल ही न करें कृपया। जिस युवा साहित्यकार की पीढ़ियाँ भारतेतर भूमि को अपना देश मानकर लाल पसीने से सींचती आ रही हैं, उसके साहित्य के साथ विदेशी शब्द कैसे जोड़ा जाए। इसलिए कि कुछ विवेचनार्थियों की मध्यकालीन विचारधारा के अनुसार हिंदी साहित्य का 'स्वदेश' केवल भारत है। यह तो किसी भी नई कलम की स्याही सोख लेगा।

संबोधन और वर्गीकरण आवश्यक हैं। इस बात पर विवाद तो है ही नहीं। अस्वीकृति तो उस समझ से है, जिसके आधार पर इस साहित्य का नामकरण और वर्गीकरण किया जा रहा है।

जहाँ बंधन में भी मुक्तता हो

अस्वीकृति का कारण? उपर्युक्त तमाम नामकरणों के साथ किसी भी भारतेतर हिंदीभाषी (शुक्र है, हमें प्रवासी हिंदीभाषी कहके संबोधित नहीं किया जाता) की मुख्य आपत्ति होगी कि इनमें संपूर्ण भारतेतर साहित्य को भारतीय साहित्य की समझ के साथ 'बाँधने' की भावना प्रमुख है। नामकरण की प्रक्रिया में यह बंधन असल में इस साहित्य की समझ में बहुत गहरी पैठी भावना का प्रतिबिंब ही है। नामकरण तक तो ठीक भी था। साहित्य की समझ में बंधन की उपस्थिति और भी हानिकारक है। समझ के विकास के लिए घातक भी।

इस बात के विस्तार के लिए डॉ. कमल किशोर गोयनका के शब्दों का सहारा लूँगा। वे अग्रज हैं, भारतेतर साहित्य के संकलन से लेकर

समालोचना तक में पुरोधाओं में गिने जाते हैं और उनका आलेख इस बात का प्रमाण है कि इस विषय पर चिंतन में भी वे पुरोधाओं में ही गिने जाएँगे। इसलिए इस बालक की उद्दंडता को क्षमा करने की सामर्थ्य उनमें मानकर उनके शब्द उद्धृत कर रहा हूँ। भारतेतर देशों के हिंदी साहित्य को 'प्रवासी साहित्य' अथवा 'डायस्पोरा साहित्य' न कहकर उसे 'हिंदी साहित्य का ही विस्तार' मानने के श्री वेदप्रकाश 'बटुक' और श्री सत्येंद्र श्रीवास्तव के विचार को अस्वीकार करने का कारण बताते हुए वे कहते हैं, ''मॉरीशस-फीजी हो या अमेरिका-इंग्लैंड, सभी का इतिहास, परिवेश, प्रकृति, समाज, संस्कृति, धर्म, जीवन-मूल्य, परंपरा आदि सब भारत से भिन्न हैं, अत: भारत एवं भारतेतर देशों के साहित्य में एकरूपता नहीं हो सकती। यहाँ तक कि मॉरीशस और अमेरिका का हिंदी साहित्य भी एक जैसा नहीं है।''

यह उनका कथन मात्र नहीं है, यह एक विचारधारा है, जिसको लेकर भारतेतर साहित्यकार की आपत्ति इसमें 'हिंदी' और 'भारतीय' का पर्यायाभास होने से है। इस धारणा से है कि किसी साहित्य को 'हिंदी' साहित्य का विस्तार इसलिए नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह 'भारत' से बाहर लिखा गया है! विश्व हिंदीभाषी तो यही पूछेगा न कि क्या तीसरी सहस्राब्दी में, हिंदी के वैश्विक संदर्भ में भी 'हिंदी' होना 'भारतीय' होना ही है...रहेगा? और दूसरा यह कि यदि अलग-अलग देश में लिखा गया साहित्य 'एक जैसा नहीं है' (जो कि सही भी है) तो उन सभी 'भिन्न' साहित्य को 'प्रवासी' संबोधन की एकरूपतावादी परिधि में क्यों बाँधा जाए? यह तो निरा सरलीकरण है।

अब सूर्यदेव सिबोरत की 'कोलकामानी' कविता लीजिए। इसका न केवल शीर्षक ठेठ मॉरीशसीय है (मॉरीशस में एक समय कोलकामानी नामक शरीर पर चिपकने वाले 'स्टिकर' बच्चों के बीच इतने प्रसिद्ध थे कि इस नामवाचक संज्ञा का अर्थविस्तार होकर सभी स्टिकर के लिए प्रयुक्त होने लगा), बल्कि इसमें अभिव्यक्त भावना यह सिद्ध करती है कि मॉरीशस जैसे देशों का साहित्य भारतीय, अफ़्रीकी, चीनी, यूरोपीय आदि जातीय और सांस्कृतिक मूल के जनमानस के आपसी सह-अस्तित्व के अनुभवों को अभिव्यक्त करने वाला हिंदी का बिरला साहित्य होगा। अपनी-अपनी पूर्वजीय मातृभूमि के प्रति नॉस्टेल्जिया से सिक्त सह-अस्तित्व नहीं बल्कि एक होकर 'प्रवास' की भूमि पर एक इंद्रधनुषी राष्ट्र की स्थापना वाला सह-अस्तित्व। एक ऐसा सह-अस्तित्व, जिसकी आत्मा मॉरीशसीय है।

'हिंदी का प्रवासी साहित्य भारतेतर देशों को भारत से जोड़ने का एक सेतु बनता है, जिसके मूल में...' जैसा वाक्य विश्व भर में फैले, अलग-अलग अनुभवों से सराबोर अत्यंत समृद्ध साहित्य को गर्भनाल संबंध से बाँधे रखने की प्रवृत्ति का सूचक है। यह प्रवृत्ति उस संपूर्ण भावात्मक समृद्धि को एक ही मूल्य (भारतेतर देशों को भारत से जोड़ने का एक सेतु) के आधार पर तौलकर उसे अत्यंत सीमित कर देती है।

मॉरीशस की कवयित्री सुमति बूधन जी की यह पंक्ति 'एक संसार बसे अपना जहाँ बंधनों में भी मुक्तता हो' आधुनिक मानव की वाजिब और जायज़ चाह है। और यदि इसकी अभिव्यक्ति विश्व हिंदी साहित्य की ओर से हो तो भी उसकी स्वाभाविकता और औचित्य कम न होंगे।

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी

बाँधने की भावना का अधिक गहन प्रभाव इस साहित्य के विवेचन की प्रक्रिया में मिलता है।

जोहांस्बर्ग में 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन में एक भारतीय विद्वान ने 'प्रवासी साहित्य में दलित चेतना' विषय पर आलेख प्रस्तुत किया था, जिसमें मॉरीशसीय रचनाओं में भी 'दलित' चेतना की अभिव्यक्ति को खूब उभारा गया था। जी, मॉरीशस में दलित अवश्य हैं। एक देश जिसकी कमोबेश पूरी आबादी दासता और गिरमिटिया प्रथाओं की बदौलत बसी हो, वहाँ आम आदमी का दलन होना ऐतिहासिक सत्य है। इसमें क्या आपत्ति! आपत्ति तो इस बात पर है कि आज हिंदी साहित्यालोचना में 'दलित' एक पारिभाषिक शब्द बन चुका है। उसके अर्थ की बारीकियों में 'जाति विशेष' के दलन का भाव उभरता है। उक्त आलेख में उसी प्रकार की बारीकियाँ मॉरीशसीय हिंदी साहित्य में उभारने का प्रयास था।

यह विवेचन नहीं, विवेचन के मार्गदर्शक सिद्धांतों के अभाव में कोरा वैचारिक डंपिंग है।

गिरमिटिया प्रथा के 'अच्छे' प्रभावों में एक यह था कि दलन जाति के आधार पर नहीं हो रहा था। सब दलित थे! और इसी विकासक्रम में गिरमिटिया प्रथा के अंतर्गत आने वाले देशों में जो लोग आज दलित हैं, वे भी जाति के आधार पर नहीं हैं। ऐसे में एक देश की रचना पर अन्य देश में प्रचलित हो रहे विवेचना-सिद्धांत को लादने की कोशिश में उस देश के यथार्थ पर आयातित विचारधारा की एक अपारदर्शी चादर ही चढ़ेगी। न्याय नहीं होगा।

इसी प्रकार से कुछ विचारधाराएँ प्रमाणित करती हैं कि ''भले ही उनके साहित्य में अमुक, अमुक, अमुक विशेषताएँ हैं, पर उनकी आत्मा भारतीय ही है!'' क्या हिंदी में लिखी हर रचना की आत्मा भारतीय होना अनिवार्य है? तो फिर क्या भारत में लिखे जाने वाले अंग्रेज़ी साहित्य की आत्मा में अंग्रेज़ियत होती है? प्रश्न आत्मा का किसी देश का होने न होने का नहीं है। प्रश्न उस पूर्वग्रह का है, जो आलोचक को उस साहित्य की सही पहचान से रोकता है। शायद यदि आत्माओं को अलग करके देखा जाए—बंधन में भी मुक्तता हो और देखन की भावना में विस्तार हो, तो विवेच्य साहित्य के नए आयाम खुलें।

सिंहपर्णी

साहित्य संबंधी इन कुछ बातों को उदाहरण मानते हुए वापस अपनी सिंहपर्णी पर आऊँगा।

जैसा कि आरंभ में कहा गया था, ज्ञान-युग का गुरु मंत्र है 'मुक्तता'। ऐसे में यदि विश्व हिंदी साहित्य की समझ विकसित करने के आधारभूत बिंदु ही बंधन का आभास दें तो यह साहित्य उस ज्ञान-युग में हिंदी की समृद्धि का असीम कोश बनकर कैसे उभरे? इस साहित्य में अभी कितना कुछ और है, जिसे 'बाँधने' की इस प्रवृत्ति के कारण उभारा नहीं जा सका।

मानता हूँ कि अंतरराष्ट्रीय भाषा होने की दृष्टि से हिंदी में मूल देश और मूल देशेतर साहित्य रचना का अनुपात बहुत असंतुलित है। यह हिंदी की वैश्विकता की एक बड़ी खामी भी है। लेकिन बड़ा होने पर भी भारतीय हिंदी साहित्य, खासकर आलोचना जगत वट-वृक्ष प्रवृत्ति न अपनाए, इसी में उसका बड़प्पन होगा। इसलिए बाँधने की इच्छा, वर्ग में कैद करने की प्रवृत्ति, अपनी परिभाषा के अनुरूप भारतीयता तलाशने का पूर्वग्रह, हिंदी में लिखे हर शब्द को भारतीय मानने की लालसा आदि का त्याग ही इस भारतेतर साहित्य की समझ की कुंजी है।

इस त्याग के बाद ही हम इस तमाम साहित्य को विश्व भाषा हिंदी में लिखित 'विश्व हिंदी साहित्य' के रूप में देख सकेंगे। आलोचकों और इतिहासकारों को उस साहित्य के संकलन में वैज्ञानिकता लाने के लिए कुछ वर्ग, युग, क्षेत्र आदि में विभाजन की अनिवार्यता होगी ही। उसके लिए मॉरीशसीय हिंदी साहित्य, बरतानी हिंदी साहित्य और उसी की तर्ज़ पर भारतीय हिंदी साहित्य (आखिर क्यों नहीं...) भी एक वर्ग होगा।

फिर उस देश के साहित्य के रूप में स्वीकृति के बाद उसकी भाषिक और साहित्यिक विशेषताएँ स्वीकारी जाएँगी। स्वीकारा जाएगा कि अभिमन्यु 'अनत' है 'अनंत' नहीं। और ऐसा हो सकता है, क्योंकि गिरमिटिया प्रथा के अवशेषों में से एक यह भी है कि दूसरे देश में आने पर हमारे पूर्वजों के नाम एक ओर अधिक्तर देशज रूप में बोले जाते थे (बिसूनदयाल, सिवनाथ आदि) और उसपर विदेशी हाकिम के अधिकतर मुंशियों द्वारा हिंदी प्रदेश की ध्वनियों की पहचान न होने के कारण उन नामों का रोमन लिपि में अंकन भी मनमर्ज़ी से हो जाता था। इतिहास को अब बदलने की क्या आवश्यकता। क्यों न यह मान लिया जाए कि भूमंडलीकृत विश्व में और उसकी हिंदी में भी सबकुछ एक सा नहीं हो सकता, विभिन्नताएँ अवश्यंभावी हैं, अनिवार्य भी।

जहाँ-जहाँ यह साहित्य लिखा जा रहा है, वहाँ-वहाँ की स्थानीयता के तमाम आयाम और उन आयामों से जुड़ा ज्ञान इस साहित्य के माध्यम से हिंदी में उपलब्ध है। सोचिए! पहले से कितनी ज्ञान-समृद्ध है विश्व हिंदी। और जिस प्रकार भारत के इतिहास-ओ-वर्तमान,

लोक, मानस आदि को समझने के लिए भारतीय हिंदी साहित्य का ज्ञान अनिवार्य है, उसी प्रकार दुनिया के किसी भी शोधार्थी के लिए विश्व समाज की समझ के लिए (केवल प्रवासी समाज नहीं) विश्व हिंदी साहित्य का शोध अनिवार्य बनेगा। हिंदी साहित्य के बिना विश्व का ज्ञान-भंडार अधूरा माना जाएगा। वह शोध 'प्रवासी साहित्य' पर उन प्रपत्रों से अलग होगा, जो आजकल उद्योग बन गए पर्यटनीय 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों' में प्रस्तुत किए जाते हैं।

असल में, विश्व की अनेक महान साहित्यिक धाराओं की समझ मात्र को विकसित करने के लिए दशकों पहले से विशेष पाठ्यक्रम निर्मित हैं। पोस्टकॉलोनियल साहित्य अध्ययन एक प्रमुख उदाहरण है। उसी प्रकार से डायस्पोरा साहित्य अध्ययन एक विस्तृत विचार मंच है, जिसका गहराई से अध्ययन करने के बाद ही 'रेफरीड' शोध पत्रिका के लिए प्रथम शब्द लिखने की चेष्टा की जाती है। हिंदी के क्षेत्र में यह विचार-मंथन अभी नया है, अब शुरू सा हो रहा है। विश्वविद्यालय 'प्रवासी साहित्य' की रचनाएँ अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके अत्यंत साहसपूर्ण और सराहनीय कार्य कर रहे हैं। पर अभी भी कम विश्वविद्यालयों में प्रवासी साहित्य अध्ययन की प्रणालियाँ, सिद्धांत, प्रविधियाँ आदि उस 'प्रवासी साहित्य मॉड्यूल' की पढ़ाई से पहले की पूर्वापेक्षा है। ऐसे में आलोचक की मनीषा को यह प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हो पाता कि साहित्य के माध्यम से प्रत्येक देश की अलग-अलग आत्मा को कैसे देखा जाए। हम भरतमुनि से आज तक की साहित्य-आलोचना के सिद्धांतों के अपने ज्ञान के आधार पर ही उस साहित्य का मूल्यांकन आदि करते हैं, जिससे उस साहित्य में प्राप्त संपूर्ण ज्ञान उभर नहीं पाता।

ज्ञान-युग की सिंहपर्णी हिंदी और उसमें लिखा गया तमाम साहित्य ज्ञान का स्रोत होंगे। ऐसा ज्ञान, जो एक संदर्भ, देश, जन-मानस या आत्मा से बँधा न हो। भले ही सिंहपर्णी हिंदी का मूल पौधा सदियों से भारत भूमि पर खिला हुआ है, लेकिन अलग-अलग हवाओं (चाहे वह प्रवास हो, गिरमिटिया प्रथा हो, भारतेतर विद्वानों का हिंदी प्रेम हो) के प्रभाव से उस सिंहपर्णी के बीज जहाँ भी जाकर गिरेंगे, वहाँ उसी धरती में उसकी नई पौध उगेगी। उसकी शक्ति और उसकी आत्मा उस धरती से जुड़ी होगी, वंश भले ही एक हो। और उस नई पौध में उस धरती की कथा, उसका अनुभव, उसकी अभिव्यक्ति, उसकी आत्मा पल्लवित होगी।

सिंहपर्णी हिंदी में उस अनुभव और अभिव्यक्ति से नया ज्ञान फलेगा। जितना अधिक ज्ञान फलेगा, ज्ञान-युग में वह भाषा उतनी ताकतवर होगी और उतना ही ताकतवर होगा उस भाषा से जुड़ा समुदाय, विश्व हिंदी समुदाय।

—गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल

संपादक व कार्यवाहक महासचिव

पुनश्च...

आभार

विश्व हिंदी पत्रिका का यह पृष्ठ विश्व हिंदी सचिवालय की ओर से आभार के कुछ शब्द कहने का मंच भी है। आभार न केवल पत्रिका के प्रकाशन में सहयोगियों का बल्कि उन सभी व्यक्तियों व संस्थाओं का, जिन्होंने वर्ष 2014 में सचिवालय के प्रत्येक कार्य, प्रत्येक योजना एवं उपलब्धि में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से सहयोग दिया।

प्रथम आभार स्वाभाविक रूप से भारत और मॉरीशस की सरकार, उनके प्रतिनिधि मंत्रालयों और उच्चायोग तथा इन संस्थाओं में कार्यरत सभी हिंदी व सचिवालय के शुभचिंतकों का। आप नींव हैं। अडिग रहें। भारत व मॉरीशस में हालिया आम चुनावों के बाद सचिवालय के प्रमुख उत्तरदायी मंत्रालयों में नए मंत्रीगण नियुक्त हुए हैं। उनका स्वागत भी इस मंच से, विश्व हिंदी परिवार की ओर से करना समीचीन होगा।

वर्ष 2014 सचिवालय में गतिविधियों की दृष्टि से अपूर्व रहा। साथ रही नौजवान सहयोगियों की एक छोटी सेना। लेकिन सैनिकों से अधिक विजय-पताकाएँ देखता हूँ तो प्रतिपल स्मरण होता है कि देश-विदेश की सहयोगी संस्थाओं, उनके प्रत्येक सदस्य के सहयोग के बिना यह यात्रा और यात्रा की हर सफलता असंभव होती। कोटिश: आभार!

पत्रिका का हर शब्द किसी-न-किसी के प्रति आभार के अनुरोध से नतमस्तक है। आलेखों के लिए विद्वान लेखकों, साभार प्रकाशन की अनुमति देने वाले सहयोगियों और मुद्रण के लिए भारत के विद्या विहार प्रकाशन की पूरी टीम तक हमारा आभार पहुँचे। संपादन कार्य से स्थायी रूप से जुड़े अंजलि, विजया, उषा, कैलाश, करिश्मा, खुशबू, प्रशासन से लेकर वाहन तक अपने-अपने कार्यभार को सँभालते हुए भी एशमा, रति और केशव, विश्वविद्यालय की छुट्टियों में सचिवालय के कार्यों में सहायता के लिए सदैव तत्पर जय और शिक्षा तथा एक संदेश पर अध्यापन कार्य की छुट्टियों को त्यागकर सहायता के लिए दौड़े सलिल, अरविंद, वशिष्ठ और अनुक्षा—सभी पाठकों के आशीर्वाद के पात्र हैं।

पाठकगण, प्रणाम! आपकी अमानत आपको अर्पित!

अंतिम वाक्य पिछले वर्ष की पत्रिका से उधार। विश्व हिंदी सेवी हैं तो विश्व हिंदी सचिवालय और विश्व हिंदी पत्रिका सार्थक है। सार्थकता प्रदान करने वाले आप सभी के प्रति आभार के साथ, 'नव वर्ष' व 'विश्व हिंदी दिवस' की शुभकामनाएँ!

—संपादक

हिंदी के पथप्रदर्शक
अमर दीपों को श्रद्धांजलि

1 हिंदी के अनन्य साधक फ़ादर कामिल बुल्के

श्री राजेंद्र उपाध्याय

जन्म : 20 जून, 1958 को मध्य प्रदेश में रतलाम ज़िले की सैलाना तहसील में।

- बी.ए., एल.एल.बी. और एम.ए., हिंदी साहित्य में प्रथम
- पत्तियों की अज्ञात स्वरलिपि में (कविता-संग्रह)
- सिर्फ पेड़ ही नहीं कटते हैं, कविता-संग्रह, 1983,
- खिड़की के टूटे हुए शरीशे में, कविता-संग्रह, 1991,
- लोग जानते हैं, कविता-संग्रह, 1997, पुरस्कृत,
- पानी के कई नाम हैं; कविता-संग्रह, 2006,
- मोबाइल पर ईश्वर, 2005
- रचना का समय, 2005
- दिल्ली में रहकर भाड़ झोंकना, व्यंग्य-संग्रह, 1999
- रूबरू, साक्षात्कार-संग्रह, वर्ष 2007
- ऐशट्रे, कहानी-संग्रह, 1990 में प्रकाशित
- नारी-हृदय तथा अन्य कहानियाँ—सुभद्राकुमारी चौहान, वर्ष 2008
- प्रभाकर माचवे पर साहित्य अकादमी से मोनोग्राफ़, 2004
- वहाँ मलय सागर तक, यात्रा-वृत्तांत, 2012 पुरस्कृत
- जनमनमयी सुभद्रा कुमारी चौहान; पुरस्कृत, 2008
- रवींद्रनाथ ठाकुर की दस प्रतिनिधि कहानियाँ, 2006 संपादित
- कुर्रतुल एन हैदर की दस प्रतिनिधि कहानियाँ, 2009 संपादित
- रंग तेंदुलकर का संपादन प्रयाग शुक्ल के साथ
- अंक यात्रा का संपादन, प्रयाग शुक्ल के साथ
- राजस्थान सरकार के शिक्षकों की किताब 'बादल और पतंग' का संपादन
- तनाव का एक अंक विस्वावा शिंबोर्स्का का अनुवाद
- आकाशवाणी दिल्ली में उपनिदेशक (समाचार)

हिंदी के अनन्य साधक फ़ादर कामिल बुल्के का जन्म 1 सितंबर, 1909 को बेल्जियम के पश्चिम में स्थित फ्लैंडर्स प्रांत के रम्सकपेल गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम अदोल्फ़ और माता का नाम मारिया बुल्के था। अभाव और संघर्ष भरे अपने बचपन के दिन बिताने के बाद बुल्के ने कई स्थानों पर अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए लुवेन विश्वविद्यालय (Leuven University, Lissewege) से वर्ष 1930 में अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की। बाद में वे जेसुइट सेमिनरी में लैटिन भाषा पढ़ने के बाद ब्रदर बने। बुल्के ने अपना जीवन एक संन्यासी के रूप में बिताने का निश्चय किया और कई महत्वपूर्ण संस्थाओं में अध्ययन करने के बाद भारत आ गए। यहाँ उन्होंने विज्ञान के अध्यापक के रूप में सेंट जोसेफ़ कॉलेज, दार्जिलिंग और येसू संधियों के मुख्य निवास स्थान मनरेसा हाउस, राँची में प्रवास किया तथा कई संस्थाओं से जुड़े रहने के बाद 1941 में पादरी बने।

फ़ादर कामिल बुल्के ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1947 में एम.ए. हिंदी किया तथा 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' विषय पर डी.फिल. की उपाधि प्राप्त की। वे 1950 से 1977 तक सेंट ज़ेवियर कॉलेज, राँची के हिंदी और संस्कृत के विभागाध्यक्ष रहे। उनकी महत्वपूर्ण हिंदी और अंग्रेज़ी की रचनाओं में 'रामकथा और तुलसीदास', 'मानस-कौमुदी' तथा ईसाई धार्मिक साहित्य दर्शन पर केंद्रित 'ईसा जीवन और दर्शन', 'एक ईसाई की आस्था' एवं 'अंग्रेज़ी-हिंदी कोश' और 'बाइबल' से संबंधित अनूदित कई कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। अपनी उदार दृष्टि, तपसाधना और समर्पित जीवन के कारण फ़ादर कामिल बुल्के ने भारत और पश्चिमी जगत को एक बिंदु के द्वारा जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया तथा अध्ययन और मनन द्वारा वे अपनी रचना-आस्था को निरंतर मज़बूत करते रहे। कई संस्थाओं से संबद्ध फ़ादर कामिल बुल्के को भारत सरकार ने 1974 में पद्मभूषण से सम्मानित किया। फ़ादर बुल्के एक आस्थावान और गहरी प्रार्थना में डूबे साहित्य-साधक थे।

उन्होंने अंग्रेज़ी-हिंदी कोश का निर्माण किया जिसे पढ़कर अनेक लोगों ने हिंदी सीखी। आज भी अनेक कार्यालयों में इसकी मदद से हिंदी का अनुवाद कार्य आसानी से किया जाता है। हिंदी के जाने-माने लेखक इलाचंद जोशी ने इस कोश का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'यह कोश न केवल हिंदी और अंग्रेज़ी के नए पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा वरन् हम जैसे पुराने घिसे हुए लेखकों के लिए भी बड़े काम की चीज़ है।' स्वयं मुझे अपने निबंधों के लेखन में इससे बड़ी सहायता मिली है।

अज्ञेय ने फ़ादर बुल्के को 'ताताचार्य' कहा था जो रेवरेंड फ़ादर

का सही अनुवाद है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने बुल्के को हिंदी के 'तरुतात' कहा है। निश्चय ही इस ताततरु की गहरी जड़ों और छाया में ही हिंदी का पौधा लहलहा रहा है।

फ़ादर कामिल बुल्के जैसे विदेशी हिंदी विद्वानों के बारे में ही शायद तुलसीदास ने लिखा है ''उपजहिं अनत, अनत छवि लहहीं'' (उत्पन्न कहीं होते हैं, शोभा कहीं और पाते हैं)। उनका जन्म भले ही विदेश में हुआ, पश्चिम में हुआ किंतु वे पश्चिम और पूर्व के प्रीतिकर सम्मिलन तथा ईसाई और भारतीय परंपराओं के मैत्रीपूर्ण संवाद के प्रतीक हैं।

फ़ादर ने अपनी अभिव्यक्ति का मूल माध्यम हिंदी को ही बनाया था। उनके अधिकांश सर्वोत्तम लेखन की भाषा हिंदी है। उनकी विश्वप्रसिद्ध रचना (जो वर्षों के परिश्रम के बाद लिखी गई।) 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' (1950) के बारे में उनके गुरु और प्रसिद्ध विद्वान डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने लिखा है कि यह ग्रंथ वास्तव में रामकथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश कहा जा सकता है। वास्तव में यह खोजपूर्ण रचना अपने ढंग की पहली ही है। हिंदी क्या किसी भी यूरोपीय अथवा भारतीय भाषा में इस प्रकार का कोई दूसरा अध्ययन उपलब्ध नहीं है।

उन्होंने अंग्रेज़ी-हिंदी कोश का निर्माण किया जिसे पढ़कर अनेक लोगों ने हिंदी सीखी। आज भी अनेक कार्यालयों में इसकी मदद से हिंदी का अनुवाद कार्य आसानी से किया जाता है। हिंदी के जाने-माने लेखक इलाचंद जोशी ने इस कोश का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'यह कोश न केवल हिंदी और अंग्रेजी के नए पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, वरन् हम जैसे पुराने घिसे हुए लेखकों के लिए भी बड़े काम की चीज़ सिद्ध होगा।'

वे मृत्यु के कुछ महीने पहले तक बाइबल के अनुवाद में लगे हुए थे। जून 1982 में उनके दाहिने पैर की उँगली में गैंग्रीन हो गया। पहले राँची के मांडर और फिर पटना के कुर्जी के मिशन अस्पताल में उनका इलाज हुआ। कुर्जी में ही गैंग्रीन उनके दाहिने पैर में इतनी तेज़ी से फैला कि मिशन के अधिकारी चिंतित हो उठे और उनको अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली में 8 अगस्त को भरती कराया। उन दिनों एक ही पीड़ा उन्हें थी कि बाइबल का अनुवाद अधूरा रह गया है। लेकिन मृत्यु के पदचाप भी सुनाई दे रहे थे। उन्होंने 15 अगस्त, 1982 को फ़ादर प्रोविंशियल पास्कल तोचना से कहा ''फ़ादर! मैं ईश्वर की इच्छा संपूर्ण हृदय से ग्रहण करता हूँ और उनके पास जाने को तैयार हूँ। अब मुझे बाइबल का अनुवाद पूरा करने की चिंता नहीं है। प्रभु बुलाते हैं तो मैं प्रस्तुत हूँ।''

17 अगस्त, 1982 को सवेरे 8 बजे उनका निधन हो गया और 18 अगस्त को दिल्ली के कश्मीरी गेट के निकॉलसन कब्रगाह में उनको दफ़ना दिया गया। रामकथा और तुलसी का एक अनन्य उपासक सदा के लिए सो गया। कश्मीरी गेट में उनकी कब्र के पास ही दिल्ली सरकार को एक स्मारक बनाने पर ठोस रूप से विचार करना चाहिए क्योंकि वे एक संत से कम नहीं थे, ताताचार्य थे, रेवरेंड फ़ादर थे।

1950 में भारतीय नागरिक होने के बाद उन्होंने तन, मन, धन से उस देश की सेवा की जो उनकी मातृभूमि तो नहीं था पर उनकी मातृभूमि से भी अधिक बन गया था। वे सब धर्मावलंबियों का आदर करते थे, सब धर्मावलंबी उनका आदर करते थे। वे सच्चे अर्थों में ईसाई थे पर उन्हें अपने भारतीय होने पर भी गर्व था। भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं में वे गहरे रचे-बसे थे। एक विदेशी पौधा हमारी मिट्टी में आकर रच-बस गया था। उस वट-वृक्ष ने अपनी अगाध शाखाओं से सैकड़ों हिंदी प्रेमियों को छाया दी।

वे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) और प्राच्य विद्या संस्थान (बड़ौदा) के आजीवन सदस्य थे। 1974 में उचित ही भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया।

बलिष्ठ शरीर के गौरवर्ण और लंबी कदकाठी के स्वामी फ़ादर दाढ़ी और सफ़ेद चोगे में भव्य लगते थे पर उतने नीरोग नहीं रहे। बचपन से उन्हें कम सुनाई पड़ता था। दमा और पेस्टिक अल्सर सहित कई बीमारियों ने उनमें घर बना लिया था। उच्च रक्तचाप, हृदयरोग भी छूटता न था।

फिर भी वे राँची की सड़कों पर साइकल लेकर निकल जाते और स्थानीय गरीब-गुरबों का हालचाल पूछते। सामर्थ्य अनुसार उनकी मदद करते। उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाते। शाम को गोधूलि के बाद ही लौटते थे। 'स्टेट्समैन' की वर्ग पहेली हल करने या ब्रिज खेलने में उनका मन लगता था।

वे भारतीयों से भी अधिक भारतीय थे। एक अवसर पर उन्होंने 'आलोचना' पत्रिका में लिखा था—''भगवान के प्रति धन्यवाद, जिसने मुझे भारत भेजा है और भारत के प्रति धन्यवाद, जिसने मुझे इतने प्रेम से अपनाया है।''

बी-108, पंडारा रोड, नई दिल्ली 110003

upadhyaya58@gmail.com

2 गांधी जी की नज़र में हिंदी

• प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

युगपुरुष, युगनिर्माता और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारत के स्वंतत्रता आंदोलन के महानायक थे। महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान न केवल उस युग की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार किया, वरन् इस युग की हिंदुस्तानी जाति के गठन और उसके सांस्कृतिक परिवेश के युग पर भी चिंतन किया। इस युग की जो भी राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रही है, उससे हिंदी और उर्दू भाषाओं को नई अर्थवत्ता और युगानुरूप मूल्य प्राप्त हुआ। हिंदी को युगानुरूप प्रवृत्तियों से जोड़कर राष्ट्रभाषा का स्थान दिया। वास्तव में स्वतंत्र भारत की नींव को सुदृढ़ करने के लिए गांधी जी ने जो-जो कार्य किए, उनमें हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की आवाज़ गांधी जी से पहले उठी थी, किंतु उस आवाज़ को सशक्त और बलवती बनाने का काम गांधी जी ने ही किया था। सुविख्यात फ्रांसीसी विद्वान गार्सा द तासी ने सन् 1852 में फ्रांस में अपने भाषण में हिंदुई-हिंदुस्तानी को भारत की सार्वदेशिक या लोकभाषा की संज्ञा दी थी। सन् 1886 में अंग्रेज़ी के शब्दकोश हाब्सन-जाब्सन में हिंदुस्तानी को सभी भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रभाषा माना गया। भारत में राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंद आदि ने भारत को एकसूत्र में बाँधने वाली भाषा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अभिहित किया।

भारत बहुभाषी, बहुसांस्कृतिक और बहुजातीय देश है। अत: भारत की बहुभाषी समस्या के बारे में गांधी जी के विचार बड़े स्पष्ट, व्यावहारिक और निरपेक्ष भाव हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए गांधी जी राष्ट्रीय एकता पर बल देते थे। राष्ट्रीय एकता के लिए उन्होंने एक ऐसी संपर्क भाषा की आवश्यकता समझी, जिसके अध्ययन से समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में जोड़ा जा सके। सन् 1915 में जब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने पूरे देश की यात्रा की और यह पाया कि हिंदी ही एक मात्र भाषा है, जो देश के अधिकतर भागों में बोली और समझी जाती है। वास्तव में गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में ही हिंदी की शक्ति और महत्ता को पहचान लिया था। इसलिए उन्होंने 1906 में 'इंडियन ओपिनियन' नामक अपनी पत्रिका में इस भाषा के महत्व पर चर्चा करते हुए इसे मीठी, नम्र और ओजस्वी भाषा कहा था। उन्होंने अपने लेखों से जहाँ स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न पक्षों पर चर्चा की है, वहाँ उनके भाषा विषयक विचार 'यंग इंडिया', 'हरिजन सेवक', 'नवजीवन', 'हरिजन बंधु' आदि पत्र-पत्रिकाओं में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त 'इंडियन होमरूल' जैसी पुस्तकों और कुछ तत्कालीन विशिष्ट व्यक्तियों को लिखे उनके पत्रों में भी उनके विचार और अवधारणाएँ मिल जाती हैं। यहाँ यह बताना असमीचीन न होगा कि गांधी जी ने हिंदी भाषा की शक्ति को स्वीकार करते हुए सन् 1903 में दक्षिण अफ्रीका में अपने संपादन में 'इंडियन ओपिनियन' अखबार चार भाषाओं में छापा था जिसमें एक भाषा हिंदी भी थी। गांधी जी के भाषा संबंधी विचार सबसे पहले सन् 1909 में 'हिंदी स्वराज' और 'होमरूल' में व्यक्त किए गए हैं, हर एक

शिक्षा : एम.ए., एम.लिट्., पीएचडी।

प्रकाशन : Pedagogical Grammar (1981), Poetics (1971), प्रयोजनमूलक भाषा और कार्यालयी हिंदी (1992-1995), व्यावहारिक हिंदी और रचना (1992), Sociolinguistics (Code Switching) (1994), Stylistics and Language of Acharya Ramchandra Shukla (1996), अनुप्रायोगिक हिंदी (2001), हिंदी के विविध रूप और अनुवाद (2005), आधुनिक हिंदी : विविध आयाम (2007), अनुवाद विज्ञान की भूमिका (2008), हिंदी का भाषिक और सामाजिक परिदृश्य (2009) तथा अनेक पुस्तकों का संपादन-सह-संपादन किया। कई कोशों का संकलन-संपादन भी। विभिन्न अनुवाद कार्य भी किए हैं।

सम्मान : विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के विकास के लिए मानस संगम, कानपुर द्वारा सम्मानित, दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के प्रचार व विकास के लिए आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी द्वारा सम्मानित, अमेरिकन बायोग्राफ़िकल इंस्टीट्यूट द्वारा 'मैन ऑफ़ द ईयर 1997' सम्मान, सेंट्रल वर्ल्ड हिंदी कॉन्वेंशन; फ़ीजी हिंदी साहित्य समिति, सुवा; हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद इत्यादि संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

संप्रति : प्रोफ़ेसर व सलाहकार, सीडैक [Centre for Development of Advanced Computing (CDAC)], नोएडा।

पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सब को हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों तथा पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहनेवाले हिंदुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए तो हिंदी होनी ही चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। ऐसा होने पर हम आपस के व्यवहार में से अंग्रेज़ी को निकाल बाहर कर सकेंगे। इस प्रकार गांधी जी के मतानुसार हिंदी भारत की, जनता की असली राष्ट्रभाषा है। इसी से भारत में एकता होगी और भारत का विकास होगा।

राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो सकती है

राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार करते हुए गांधी जी एक ही भाषा को बनाए रखने के पक्षधर और समर्थक थे। उनके मतानुसार राष्ट्र के लिए एक भाषा होने से देश की एकता सिद्ध करने में भी सहायता मिल सकती है, इसलिए हिंदी को शिक्षा में सम्मिलित करना आवश्यक है। राष्ट्रभाषा के संबंध में उनकी अवधारणा स्पष्ट है। उन्होंने सन् 1917 में गुजरात शिक्षा परिषद, भड़ौच में अध्यक्षीय अभिभाषण देते हुए राष्ट्रभाषा संबंधी अपनी अवधारणा पर विस्तार से चर्चा की थी। किसी भाषा के राष्ट्रभाषा बनने के क्या लक्षण होने चाहिए, इस बात पर उन्होंने पाँच मुख्य लक्षण बताए—

1. सरकारी कर्मचारियों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए।
3. यह ज़रूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर ज़ोर नहीं देना चाहिए।

इसी संदर्भ में गांधी जी आगे कहते हैं कि इनमें से एक भी लक्षण अंग्रेज़ी में नहीं है। हिंदी में ये सभी लक्षण हैं और इसलिए हिंदी राष्ट्रभाषा पद के योग्य ठहरती है। राष्ट्र की भाषा अंग्रेज़ी नहीं हो सकती है। अंग्रेज़ी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।

उन्होंने सन् 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा था कि यदि हिंदी भाषा की भूमिका सिर्फ़ उत्तर प्रांत की होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित होगा। हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसा भाषक वैसी भाषा। भाषासागर में स्नान करने के लिए पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण से पुनीत महात्मा आएँगे तो सागर का महत्व स्नान करने वालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य-दृष्टि से भी हिंदी भाषा का स्थान विचारणीय है। हिंदी की व्याख्या करते हुए गांधी जी ने यह भी कहा था कि हिंदी वह भाषा है जिसको उत्तर में हिंदू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा अरबी-फारसी लिपि में लिखी जाती है। वह हिंदी एकदम संस्कृतमयी नहीं है और न ही वह एकदम अरबी एवं फारसी के शब्दों से लदी हुई है। गांधी जी ने यह देखा और परखा था कि हिंदी या हिंदुस्तानी भाषा में जोड़ने की अद्‌भुत शक्ति निहित है और वह भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर सकती है।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा

शिक्षा का माध्यम कौन सी भाषा हो, इस बारे में उनका दो टुक जवाब था कि मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। उन्होंने 'यंग इंडिया', 'हरिजन' आदि पत्रिकाओं में यदा-कदा विदेशी माध्यम का बच्चों पर प्रभाव (अंग्रेज़ी बनाम मातृभाषा), उच्च शिक्षा के लिए पूर्णतया नकार दिया। उनके शब्दों में भारत में विदेशी भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा देने के कारण राष्ट्र की अपार बौद्धिक और नैतिक क्षति हुई है। हम अपने समय के इतने निकट हैं कि इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि इससे कितनी क्षति हुई है। इस प्रकार गांधी जी समूचे भारत में शिक्षा के लिए हिंदी को अनिवार्य बनाने के प्रबल समर्थक थे। वे शिक्षा-माध्यम के साथ केंद्रीय तथा प्रादेशिक राज-काज में और अंतरराष्ट्रीय पत्र-व्यवहार में अंग्रेज़ी के प्रयोग के विरोधी थे। उनकी यह मान्यता थी कि विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से छात्र की क्षमता और योग्यता का पूर्ण विकास नहीं हो पाता।

हिंदी बनाम उर्दू, हिंदी या हिंदुस्तानी, हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू, हिंदी+उर्दू+हिंदुस्तानी संबंधी लेख में गांधी जी ने 'हरिजन

सेवक' (17 जुलाई, 1937, 3 जुलाई, 1937, 29 अक्तूबर, 1938, 8 फरवरी, 1942) के विभिन्न अंको में हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी के विवाद पर अपनी लेखनी चलाई थी और वे बाद में इसी समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत करते रहे। उस काल में एक वर्ग हिंदी का प्रबल समर्थक था और उसे श्रेष्ठ मानता था। दूसरा वर्ग उर्दू को श्रेष्ठ मानता था। इस विवाद से गांधी जी काफ़ी आहत थे, क्योंकि उन्हें यह आशंका थी कि यह विवाद भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में बाधक हो सकता है। उन्होंने दोनों वर्गों की गलतफ़हमी दूर करने के लिए कहा कि हिंदी उर्दू और हिंदुस्तानी शब्द उस एक ही ज़बान के सूचक हैं, जिसे उत्तर भारत में हिंदू-मुसलमान बोलते हैं तथा जो देवनागरी या अरबी-फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। इस बारे में उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और उर्दू अरबी-फारसी लिपि में लिखी जाती है, किंतु इन दोनों भाषा-रूपों का मौखिक रूप हिंदुस्तानी है जिसे सभी वर्ग बोलते हैं। वास्तव में उस समय मुस्लिम समुदाय में अविश्वास और पार्थक्य की भावना पैदा हो रही थी जिसे वे दूर करना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि सरकारी कामकाज और सूचनाएँ दोनों लिपियों में प्रकाशित की जाएँ। वास्तव में पूर्ण धर्मनिरपेक्ष भारत की भाषा हिंदी के लिए उनका यह सुझाव उचित भी था। वे जानते थे कि हिंदुस्तानी का सुझाव देने से दोनों वर्ग में अलगाव और अविश्वास की भावना दूर होगी इसीलिए उन्होंने एक बात और कही कि असली प्रतिस्पर्धा तो हिंदी और उर्दू में नहीं बल्कि हिंदुस्तानी और अंग्रेज़ी में है। वही करारा मुकाबला है, क्योंकि हिंदुस्तानी उस काल की माँग थी।

गांधी जी एक महान मनीषी, विचारक, दार्शनिक और भाषाचिंतक थे। भारत में जातीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता के साथ भाषिक विविधता भी मिलती है। इसी कारण गांधी जी की भाषा नीति वास्तव में भारत की भाषा नीति थी। उनके भाषा दर्शन में हिंदी, उर्दू और हिदुस्तानी का सिद्धांत उठना स्वाभाविक था क्योंकि स्वतंत्र भारत में अखिल भारतीय राजभाषा का अन्य भारतीय भाषाओं से संबंध भी अपेक्षित है। इसीलिए वे हिंदुस्तानी के समर्थक थे और वे जीवन पर्यंत इसी बात पर अड़े रहे, हालाँकि उनके मन में यह साफ़ था कि हिंदी भारत की राजभाषा के रूप में अधिक प्रभावकारी होगी। गांधी जी के हिंदी और उर्दू संबंधी विचारों से कई लोग सहमत नहीं थे किंतु यह बात अवश्य है कि गांधी जी अंग्रेज़ी को संपर्क भाषा मानने के लिए कतई सहमत नहीं थे। उन्होंने 21 सितंबर, 1947 के 'हरिजन' पत्र में स्पष्ट लिखा था कि मुट्ठी भर अंग्रेज़ीदाँ लोगों के लिए सारे राष्ट्र पर ऐसा सांस्कृतिक बोझ कभी नहीं लादा जा सकता। ''मैं कहता हूँ कि एक सांस्कृतिक अपहारक के रूप में अंग्रेज़ी को भी हमें उसी तरह निकाल फेंकना चाहिए जिस तरह हमने अंग्रेज़ों के राजनैतिक शासन को सफलतापूर्वक उखाड़ फेंका।''

गांधी जी राष्ट्रीय आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अंग्रेज़ी के पक्ष में बिलकुल नहीं थे। उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में यह कह दिया था कि जो लोग अपनी मातृभाषा छोड़ देते हैं, वे देशद्रोही हैं और वे जनता के प्रति विश्वासघात करते हैं।

किसी भाषा के राष्ट्रभाषा बनने के क्या लक्षण होने चाहिए, इस बात पर उन्होंने पाँच मुख्य लक्षण बताए—

1. **सरकारी कर्मचारियों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।**
2. **उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए।**
3. **यह ज़रूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।**
4. **राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।**
5. **उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर ज़ोर नहीं देना चाहिए।**

देवनागरी लिपि ही राष्ट्रीय लिपि

लिपि की समस्या भी हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी की भाँति रही हैं किंतु गांधी जी जानते थे कि देवनागरी लिपि ही राष्ट्रीय लिपि के योग्य है। उन्होंने 'हिंदी नवजीवन' के 21 जुलाई, 1927 के अंक में कहा, ''सचमुच मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत की तमाम भाषाओं के लिए एक ही लिपि का होना फायदेमंद है और वह लिपि देवनागरी ही हो सकती है।'' 18 फरवरी, 1938 के 'हरिजन सेवक' के अंक में भी गांधी जी ने कहा था कि यदि भारत की कोई सर्वमान्य हो सकने वाली लिपि है तो वह देवनागरी है। सन् 1948 में गांधी जी के निधन के बाद अधिकतर राजनेता उनकी विचारधारा से परे जाने लगे। वे अंग्रेज़ी के गुलाम हो गए हैं। वास्तव में गांधी जी की विचारधारा एक चिंतन प्रक्रिया और उनके अनुभवों पर आधारित है, चाहे वह विवादास्पद ही रही है किंतु यह बात अवश्य है कि गांधी जी के विचार नितांत स्पष्ट, सहज और अनुभवाश्रित हैं।

इस प्रकार गांधी जी का भाषा चिंतन एक ऐसी प्रक्रिया से गुज़रा है जो पूरे राष्ट्र को अपने भीतर समेटे हुए था। वे भाषाविद तो नहीं थे किंतु युगद्रष्टा के रूप में हिंदी भाषा की महत्ता से पूरी तरह परिचित थे। उन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने का जो संकल्प लिया था उसकी बुनियाद निश्चय ही भाषा थी और वह भी हिंदी। इसी कारण हमारे राजनेताओं ने संविधान में देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को राजभाषा का स्थान दिलाने का कृतसंकल्प लिया था।

1764, आउट्रम लाइन्स,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली–110009
kkgoswami1942@gmail.com

3 पूजानंद : मॉरीशस का एक अनूठा हिंदी साहित्यकार

● श्री राज हीरामन

1. प्रस्तावना

पूजानंद नेमा, यह मॉरीशसीय हिंदी साहित्यकार अपनी कृतियों में अमर रहेंगे और अपनी रचनाओं द्वारा ग्रामीण मॉरीशस का प्रतिनिधित्व करते रहेंगे। 13 मार्च, 2014 को पूजानंद नेमा का देहावसान हुआ था। वे अपनी बाद की पीढ़ी और नई पौद के लिए साहित्य-लेखन का एक टोर्च छोड़ गए थे। बंजर ज़मीन और घने जंगलों को काटकर एक समतल रास्ता बनाया जिस पर स्थानीय कवि/कहानीकार आसानी से चलकर कविता और कहानी के मंतव्य तक पहुँच सकें।

पूजानंद नेमा, लेखक, कवि, चिंतक, संपादक, छायाकार तथा घुमंक्कड़ी दार्शनिक-आध्यात्मिक पुरुष बहुत पढ़े-लिखे तो नहीं थे पर जितना भी पढ़े-लिखे, वज़ीफे और अपने बल-बूते पर पढ़े मगर विद्वान और साहित्यकार से अधिक वे समझ रखते थे तथा समझदार मनीषी थे। वे धर्म, संगीत, समाज-सेवा और योगविद्या में भी रुचि रखते थे। हिंदी के लिए किया, जिया। हिंदी के लिए मरे और हिंदी ने ही उन्हें अमरता प्रदान की।

मॉरीशस के दक्षिण-प्रांत, ला-फ्लोरा में रामप्रताप नेमा तथा आईना हुती गोन्या दंपती से उनका जन्म हुआ। पूजानंद को पिता से ही हिंदी, संस्कृति और विद्रोह का समर्थन मिला था। उस माहौल और पिता से प्राप्त विरासत के कारण ही पूजानंद के गहरे में हिंदी की पैठ थी। उनका शिक्षार्थी जीवन मनमौजी-सा बीता। जहाँ स्कूल में पादरी ईसाईयत के लिए आते वहाँ पढ़ने जाते ही नहीं थे। न पिता जाने ही देते। बाहरी संस्कृति के प्रहारों के उपरांत वे बचते-बचाते रहे। पर हिंदी के हृदय को और अधिक मज़बूत किया। हिंदी का भरण-पोषण किया और इसे समृद्ध बनाया। धर्मो रक्षति रक्षितः।

तमिल भाषी हिंदी के कर्मठ श्री नरेश रागेन, नेमा जी की पाठशाला में हिंदी क्या पढ़ाने आ गए कि उनकी काया ही पलट गई। *'उन्होंने नरेश रागेन से हिंदी सीखी'* (चिंतामणि डॉ. मु. 'मॉरीशसीय हिंदी साहित्य' पृष्ठ 15, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1996) और उनके हिंदी-प्रेम को संबल मिला। वे नरेश रगेन जैसे हिंदी प्रेमी एवं विद्वान से बहुत प्रभावित हुए।

माध्यमिक शिक्षा के लिए 20 पैसे बस का भाड़ा नहीं था रामप्रताप के पास! कॉलेज फ़ीस तो दूर की बात थी। आज जैसे बस किराया और कॉलेज विद्यार्थियों के लिए मुफ़्त नहीं हुआ करते थे।

श्रद्धांजलि

श्री पूजानंद नेमा

- जन्म : 24 नवंबर, 1943
- मॉरीशस के प्रसिद्ध हिंदी कवि व कथाकार पूजानंद नेमा का 13 मार्च, 2014 को देहांत हो गया।
- श्री नेमा अभिमन्यु अनत के नेतृत्व में श्री रामदेव धुरंधर के साथ वसंत पत्रिका के प्रारंभिक व ऐतिहासिक संपादकों में से थे।
- आपने मॉरीशस में हिंदी का प्रथम वेब साइट/ब्लॉग का निर्माण किया था।
- आप 1964-1978 प्राथमिक पाठशाला के हिंदी शिक्षक रहे हैं।
- आपकी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जैसे 'नया सफ़र सहने का' लघु कथा-संग्रह (1992); 'चुप्पी की आवाज़' कविता-संग्रह (1995); 'आकाश गंगा' मॉरीशसीय हिंदी कविता-संग्रह (1972); 'परी तालाब' मॉरीशसीय लोक-कथाएँ व अन्य लघु कहानी-संग्रह तथा अन्य संग्रहों में आपकी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।
- सृजनात्मक लेखन एवं प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित 'वसंत' और 'रिमझिम' पत्रिकाओं के प्रकाशन में सह-संपादक के रूप में श्रीनेमा का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

इसी कारण उनकी पढ़ाई-लिखाई अनियमित ढंग से होती रही थी। उन्होंने स्वयं लिखा है—*'पढ़ाई छोड़ने के बाद मैंने रात-रात भर तकिया भिगोया था। पर मैंने तो पढ़ाई की ज़िद पकड़ ली थी। गरीबी से छुटकारा पाने के लिए पढ़ाई एकमात्र रास्ता था।'* (वसंत 90, सितंबर 1992, पृष्ठ 81)

पूजानंद नेमा ने श्री जयनारायण रॉय के 'मॉरीशस कॉलेज' में उनके द्वारा दिए गए वज़ीफे से अपनी माध्यमिक पढ़ाई पूरी की। *'श्री जयनारायण रॉय को भारतीय मानस को बचाने के लिए मॉरीशस कॉलेज खोलना था जहाँ भारतवंशी बच्चों को बिना ईसाई तंत्र में फँसे माध्यमिक पढ़ाई करने का मौका मिला था।'* (वसंत 90, सितंबर 1992 , पृष्ठ 80) नेमा ने पहली बार जब जयनारायण रॉय को देखा *तो उनके चेहरे की सौम्यता, आँखों की गंभीरता और उनके शांत हँसमुख व्यवहार ने मुझे आकर्षित किया। वे हमेशा अंग्रेज़ी में बोलते थे पर मुझसे हिंदी में ही बोलते।'* (वही)

'मॉरीशस कॉलेज' जाकर पूजानंद नेमा को अपने व्यक्तित्व-विकास के लिए स्वच्छ और सकारात्मक वातावरण मिला। हिंदी बोलनेवाला पुरोधा मिला जो स्वयं गांधीवादी विचारधारा के थे और गांधी जी तथा मदन मोहन मालवीय जैसे स्वतंत्रता क्रांतिकारियों का सानिध्य प्राप्त कर चुके थे। पूजानंद को इस हिंदीमय वातावरण ने व्यक्तित्व निर्माण में बहुत सहयोग दिया। इस तरह के कॉलेज में जाकर पूजानंद ने पाया कि उनका व्यक्तित्व और भविष्य कुछ अलग ढंग से विकसित होने लगा है। *'मुझमें एक ऐसी चेतना जागी कि उन्हीं अनुभवों और कार्यों से मैं श्री जयनारायण रॉय जी को अपना शैक्षिक अभिप्रेरक एवं उद्धारक तथा अपने जीवन का अनौपचारिक गुरु भी मानता हूँ।'* (वसंत 90, सितंबर 1998, पृष्ठ 80)

श्री राज हीरामन

- **जन्म** : 11 जनवरी, 1953
- पाँच सालों तक प्राथमिक सरकारी पाठशाला में हिंदी अध्यापक
- टाइम्स ऑफ़ इंडिया (बंबई) से पत्रकारिता
- मास्को (रूस) अंतरराष्ट्रीय पत्रकारिता संस्थान से डिप्लोमा इन जरनलिज़म स्थानीय रेडियो और दूरदर्शन में चार सालों तक पत्रकार
- स्वदेश हिंदी साप्ताहिक का तीन सालों तक संपादन
- 10 सालों से भी अधिक प्राथमिक सरकारी तथा माध्यमिक पाठशालाओं के हिंदी पाठ्य-लेखन पैनल का सदस्य
- आजकल महात्मा गांधी संस्थान के सृजनात्मक लेखन एवं प्रकाशन विभाग में 'रिमझिम' तथा 'वसंत' पत्रिका का वरिष्ठ उप-संपादक
हिंदी कविता व गद्य के अनेकों रचनाओं का प्रकाशन

2. कारवाँ चलता रहा

माध्यमिक शिक्षा के बाद एक प्यासे की तरह पूजानंद नेमा हिंदी, संस्कृति और अध्यात्म की खोज में निकल पड़े। जितना हो सका उतने ही कुएँ खोदे। कहीं कुएँ में पानी था, कहीं कम था, कहीं खारा तो कहीं सूखा था। उनके अंदर की प्यास और बुलंद होती गई एवं आग की लपटें अधिक ऊपर उठती गईं।

1960 में उनकी पहली कविता 'कारोल' आजकल में छपी। 'कारोल' आजतक के मॉरीशस का सबसे भयंकर तूफ़ान है जिसने 1960 में हमारे देश को घुटने टेका दिया था। तभी से उनके लिखने का कारवाँ चल पड़ा था। उसी साल उन्होंने लुधियाना, भारत से कहानी लेखन कोर्स पूरा किया और कहानी के क्षेत्र में भी उतरने का सफल तथा सराहनीय प्रयास किया।

1965 में नेमा ने 'टीचर ट्रेनिंग कॉलेज' में प्रवेश पाया और एक वर्ष प्रशिक्षण के बाद सरकारी पाठशाला में हिंदी शिक्षक नियुक्त हुए। टी.टी.सी. के मुख्य-प्राध्यापक प्रो. रामप्रकाश थे। व्यक्तित्व के धनी, प्रेरक, बहुभाषी विद्वान तथा सांस्कृतिक पुरुष प्रो. रामप्रकाश ने पूजानंद की साहित्यिक गुणवत्ता को उकसाया एवं प्रेरित किया और वे 1978 में महात्मा गांधी संस्थान के सृजनात्मक लेखन एवं प्रकाशन विभाग में आ गए जहाँ से 'वसंत' हिंदी त्रैमासिक श्री अभिमन्यु अनत के संपादन में शुरू हुआ। वसंत के पहले अंक का विमोचन श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने किया था।

दूसरे विद्वान मनीषी जिन्होंने नेमा को प्रभावित किया था, वे भी सांस्कृतिक पुरुष थे: प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल। महात्मा गांधी संस्थान के भूतपूर्व निदेशक स्वर्गीय उत्तम विष्णुदयाल के संपादन में प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल: संपूर्ण वांग्मय प्रकाशित हुआ था। उस ग्रंथ का सारा शोध पूजानंद का ही था।

3. पूजानंद नेमा संपादक

'वसंत' पत्रिका के बाद 1994 में उसी विभाग से एक बाल पत्रिका निकली 'रिमझिम'। 'रिमझिम' और 'वसंत' दोनों पत्रिकाओं

के संपादक श्री अभिमन्यु अनत जी ही थे पर पूजानंद नेमा का इन पत्रिकाओं के निरंतर विकास में विशेष योगदान रहा था। उनके साथ रामदेव धुरंधर और राज हीरामन भी काम करते थे। वसंत के संपादक बनकर पूजानंद ने विशेष ख्याति प्राप्त की और पत्रिका का स्तर बढ़ाया। इस तरह से मॉरीशस की स्वतंत्रता के बाद पूजानंद नेमा ही एक ऐसे हिंदी संपादक रहे जिन्होंने बड़ी गंभीरता से हमारे देश, हिंदू समाज, हिंदी पत्रकारिता और हिंदी भाषा की समस्याओं को पाठकों के सामने रखा। उनके शीर्षक गंभीर और दिल को छूने तथा उद्वेलित करनेवाले होते थे:—

1. *'एक सामाजिक प्रश्न'* है कि क्या देर होने से पहले पूर्वजों की अर्जित धरोहर को हम बचा पाने में समर्थ होंगे। (वसंत 52, सितंबर 1981)
2. *हिंदी किसकी ज़िम्मेदारी* 'हिंदी राजमार्ग से पगडंडी पर उतर चुकी है। सामूहिक रूप से भी यदि कुछ नहीं बन पड़ा तो धीमी गति से आ रही हिंदी की मौत कभी कब्रिस्तान पहुँचेगी।' (वसंत 54, सितंबर 1983)
3. ***समाज की संक्रामक पितंडा*** मॉरीशस के सभी हिंदू जहाजी भाई और चटईया-भाई थे किंतु आज हम सर्वत्र यही देख रहे हैं कि जातिवाद की पितंडा फैलती जा रही है। (वसंत 57, दिसंबर 1988)

इसी तरह उन्होंने बच्चों की पत्रिका 'रिमझिम' के लिए भी संपादकीय लिखे। बच्चों के स्तर पर उतरकर उन्हें अच्छी-अच्छी सलाह दी। इस स्तंभ की सहायता से अच्छी हिंदी बोलने में मदद मिलेगी और हिंदी को बेहतर रूप से समझाने में कुछ आसानी होगी।

अपने अनुभवों से प्राप्त सूझ-बूझ, शब्दों के ताने-बाने, वाक्य-विन्यास और अपनी शैली में अनूठेपन की वजह से नेमा ने अपने संपादन के रोचक विषयों में जान फूँक दी है।

'चुप्पी की आवाज़' 1995 में बिड़ला फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित हुई। इस संग्रह की कविताओं में मॉरीशस के आम आदमी का अतीत है, इतिहास और दर्द है जो उन्हें उपनिदेशिक शक्ति से प्राप्त हुए थे। नई कविता में चुप्पी की आवाज़, मील का पत्थर हैं, एक प्रवासी का गहरा दर्द है। 'चुप्पी की आवाज़' में मॉरीशस का अतीत और वर्तमान समाया हुआ है। कवि केवल अपने सुख-दुख को पूरी तरह व्यक्त करता है। पूजानंद नेमा के मन में प्रवासी होने पर भी अपनी मातृभूमि भारत के प्रति गहरा ममवद बना हुआ है। (प्रो. विजयेंद्र स्नातक, भूतपूर्व प्रोफ़ेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

4. व्यक्तित्व

24 नवंबर, 1943 को जन्मे पूजानंद नेमा का देहावदान 13 मार्च, 2014 को हुआ। 1949 से प्राथमिक पाठशाला और 1986 में माध्यमिक कॉलेज में प्रवेश हुए। 1962 में जी.सी.ई. में उतीर्ण तथा 1965 में हिंदी अध्यापक बने। 1978 में महात्मा गांधी संस्थान में 'वसंत' पत्रिका के सह-संपादक बने। यहीं से उनकी लेखन-यात्रा की शुरुआत मानी जाती है।

'पूजानंद नेमा एक ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनका तेवर अपनी एक विशेष पहचान रखता है।' (अभिमन्यु अनत, संपादक वसंत)

उन्होंने कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पत्रिकाओं में लेख लिखे, कहानियाँ छपवाईं, कविताएँ प्रकाशित कराईं और उनके कई फोटोग्राफ़ भी छपे।

नेमा ने स्थानीय रेडियो पर कई प्रोग्राम प्रस्तुत किए। स्वप्नों पर आधारित 'बोलते स्वप्न' (1993) विद्वानों और महापुरुषों पर प्रेरक प्रोग्राम 'निर्माण' (1998) आदि।

कई सभा-समाजों में वे सदस्य रहे और निष्ठा से अपनी सदस्यता, प्रधान या मंत्री होने की भूमिका निभाई। वे ला फ़्लोरा आर्य समाज, ला फ़्लोरा शिवालय कमेटी तथा सोमदत्त बखोरी द्वारा बनाए गए हिंदी परिषद संगीत सभा आदि में सक्रिय रहे।

पूजानंद नेमा, जो थे वही साहित्य में और अपनी रचनाओं में होते थे। पूजानंद नेमा अत्यंत भावुक व्यक्ति थे। (रामदेव धुरंधर) वे भावनापूर्ण, गंभीर और परिपक्व व्यक्ति थे। जैसे चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने कम रचना कर हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रसिद्धी प्राप्त की, उसी तरह पूजनीय पूजानंद नेमा ने उनसे कुछ अधिक लिखकर मॉरीशस हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखवा लिया।

1960 में मॉरीशस के अब तक का सबसे भयंकर तूफ़ान कारोल

आया और नेमा के दिलो-दिमाग में एक तूफ़ान को जन्म दे गया। पूजानंद नेमा के अंदर का तूफ़ान था, अभिव्यक्ति! साहित्याभिव्यक्ति! उनकी पहली रचना निर्मित हुई 'कारोल'। उन्होंने आरंभ से ही कविता में अधिक रुचि दिखाई। कविता ही वह विधा है जिसमें कम-से-कम शब्दों में अत्यधिक विचारों की अभिव्यक्ति कर सकते हैं। फिर भी कविता ही सर्वश्रेष्ठ विधा है क्योंकि इसमें संप्रेषणीयता अधिक होती है। (साक्षात्कार लघुशोध, सुलक्षणा गोबिन, 2003)

पूजानंद ने मुक्तक में नई कविता का इज़हार किया। 425 तक कविताएँ लिखीं। 180 पत्र-पत्रिकाओं में छपीं और 'चुप्पी की आवाज़' (1995) में छपी। उसकी भूमिका में अभिमन्यु अनत लिखते हैं कि ''पूजानंद नेमा जितने अच्छे कहानीकार हैं, उतने अच्छे कवि भी हैं।'' उनका पहला संग्रह एक कविता-संग्रह ही है जो 1972 में 'आकाश गंगा' नाम से छपा था। पूजानंद नेमा ने अनेक विधाओं में अपनी रचनाएँ देश-विदेश की पत्र-पत्रिकाओं में छपवाईं पर उन्होंने मुख्यत: कविताएँ लिखीं और कहानियाँ। इन्हीं दो विधाओं में लिखकर उन्होंने मॉरीशसीय हिंदी को समृद्ध बनाया और ख्याति प्राप्त की।

5. कविता

पूजानंद नेमा ने दो कविता-संग्रह प्रकाशित किए। 'आकाश गंगा' (बहादुर प्रिंटिंग, पोर्ट-लुई, 1972) और 'चुप्पी की आवाज़' (बिड़ला फाउंडेशन, नई दिल्ली, 1975), मॉरीशस के नव हिंदी कवि (महात्मा गांधी संस्थान, 1975) तथा मॉरीशस की हिंदी कविता (महात्मा गांधी संस्थान, 1992) का संपादन किया। विदेश के हिंदी कवि (हिंदी प्रचारिणी सभा, 1985) के संपादन में सहयोगी बने।

पूजानंद नेमा की प्रकाशित रचनाएँ

1. आकाश गंगा काव्य-संग्रह 1978
2. परितालाब मॉरीशस की लोक कथाएँ
3. नया सफ़र सहने का कहानी-संग्रह 1992
4. चुप्पी की आवाज़ कहानी-संग्रह 1995
5. Footprints of a Himalayan Yogi, Biography, 2002

सह-संपादन

6. मॉरीशस के नव हिंदी कवि, महात्मा गांधी संस्थान, 1975
7. विदेश के हिंदी कवि, हिंदी प्रचारिणी सभा, 1985
8. मॉरीशस की हिंदी कविता, महात्मा गांधी संस्थान, 1992

'आकाश गंगा' के बहाने मॉरीशस की हिंदी ने कवि के रूप में पूजानंद नेमा को पाने का सौभाग्य प्राप्त किया। परंपरा तथा रूढ़ि के परे थीं उनकी कविताएँ। नया अंदाज़ था, नए विषय थे। कविताओं में आम आदमी की पीड़ा थी और उनका अभाव था। स्वतंत्रता (1968) के बाद पूजानंद एक ऐसे कवि के रूप में उभरे जिनकी रचनाएँ आम लोगों के शोषण की गाथा कहती हैं। स्वातंत्र्योत्तर पुलाव हलवा ही नसीब था जिन लोगों ने सोचा था कि देश की आज़ादी के बाद पूरी हलवे मिलेंगे।

'चुप्पी की आवाज़' 1995 में बिड़ला फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित हुई। इस संग्रह की कविताओं में मॉरीशस के आम आदमी का अतीत है, इतिहास और दर्द है जो उन्हें औपनिवेशिक शक्ति से प्राप्त हुए थे। नई कविता में 'चुप्पी की आवाज़', मील का पत्थर है, एक प्रवासी का गहरा दर्द है। 'चुप्पी की आवाज़' में मॉरीशस का अतीत और वर्तमान समाया हुआ है। कवि केवल अपने सुख-दुख को पूरी तरह व्यक्त करता है। पूजानंद नेमा के मन में प्रवासी होने पर भी अपनी मातृभूमि भारत के प्रति गहरा संबंध बना हुआ है। (प्रो. विजयेंद्र स्नातक, भूतपूर्व प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

पूजानंद नेमा की कविताएँ जो 'चुप्पी की आवाज़' में संकलित हैं, कतई चुप्पी साधे नहीं हैं। सबकी, सब देश की दयनीय स्थिति की आवाज़ बुलंद करती है।

हाेटलों या बँगलों में उठते
हर कीमती कोर में
एक खेतिहर का पसीना होता है
और जूठन जितने लिटर बनती है
उतने ही पेट
गाँवों में भूखे सो जाते हैं।
एक कमरा जागिदार का वातानुकूलित होता है
तो दस चूल्हे गरीबों के
ठंडे पड़ जाते हैं।

(चुप्पी की आवाज़, पृ. 91)

मॉरीशस के जन जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक

तथा राजनीतिक वास्तविकताओं और यथार्थ को शब्द और आवाज़ देने वाली चुप्पी की आवाज़ की 107 कविताओं में मॉरीशस की आत्मा बसती है। इस पुस्तक में डॉ. कमल किशोर गोयनका लिखते हैं—

'पूजानंद नेमा प्रबुद्ध और संवेदनशील कवि हैं। देश की पीड़ा और व्यथा के कवि हैं तथा देश की अस्मिता और पहचान के भी कवि हैं।' (वही) स्वयं कवि अपनी रचना पर बोलते हैं। 'चुप्पी की आवाज़ में ऐसी स्थिति आ गई है कि हर किसी ने चुप्पी साध ली है, मठाधिश चुप, राजनेता चुप, सही बोलने वाले चुप, सामान्य जनता भी चुप। उसी चुप्पी को मैंने आवाज़ देने का प्रयास किया है।' (साक्षात्कार-लघुशोध, सुलक्ष्णा गोबिन, 2003) पर कथाकार अभिमन्यु अनत 'चुप्पी की आवाज़' को 'दो शब्द' में लिखते हैं कि ''हमारे देश के नवोदित हिंदी कथाकारों में पूजानंद नेमा एक ऐसा हस्ताक्षर है जिसका तेवर अपनी एक विशेष पहचान रखता है। उनकी कविताएँ शब्दों के व्यामोह और अदबी नुमाइशों से मुक्त हैं तथा उनकी यह काव्यात्मक बेचैनी, छटपटाहट औरों के भीतर के उल्लास और यातनाओं को आत्मसात करके उपजती हैं।'' (चुप्पी की आवाज़)

(ii) कथा-साहित्य

पूजानंद नेमा ने कुछ लघुकथाएँ भी लिखी हैं जिनमें 'क' और 'ख' बहुत प्रचलित हुई। उन्होंने कुछ बाल कहानियाँ भी लिखीं। 'घोड़े बाबा', 'क्रिसमस' और 'तलाश' जैसी कहानियाँ बाल भारती में छपीं। उन्होंने मॉरीशस की लोक कथाएँ भी लिखीं और इन कथाओं का एक संग्रह छपवाया; 'परितालाब'।

उनका पहला एकमात्र कहानी-संग्रह 'नया सफ़र सहने का' 1992 में महात्मा गांधी संस्थान ने प्रकाशित किया। प्रतिष्ठित कथाकार तथा सारिका के संपादक श्री कमलेश्वर ने इस पुस्तक का लोकार्पण अपने कर-कमलों से किया था। (डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, मॉरीशसीय हिंदी साहित्य, 1996)

'नया सफ़र सहने का' की दसों कहानियों की पृष्ठभूमि में मॉरीशसीय मिट्टी गमकती है। कथ्य में विविधता है। आम आदमी है। जीवन मूल्यों और विश्वासों तथा संस्कारों के संघर्ष की मार्मिकता की अभिव्यक्ति है। ''1968 जब से मॉरीशस आज़ाद हुआ तब ही से मॉरीशसवासियों के जीवन का नया सफ़र शुरू हुआ।'' (पूजानंद नेमा, भूमिका, नया सफर सहने का, 1992)

(iii) उपसंहार

पूजानंद नेमा बहुमुखी व्यक्ति, स्वभाव के धनी, सहृदय, सहनशील, प्रगतिशील, संवेदनाशील, सलीके बातूनी, हँसने में उस्ताद, कविता लिखने में निपुण, कहानी लिखने में प्रेमचंद, तर्क करने में माहिर, आध्यात्म में गहरे और चिंतन में ओशो थे। बहुत कम लोग जानते हैं कि 1993 में नेमा ने मॉरीशसीय हिंदी साहित्यकार और साहित्य पर पहला वेबसाईट जारी किया था। वह आज भी शोधकर्ताओं द्वारा देखा जाता है।

और यह बात तो इने-गिने लोग ही जानते होंगे कि साल 1999 का दिसंबर महीना था। लोग खुशियाँ मनाने, खरीदारी करने में व्यस्त थे। पटाखों के फटने और फूलझड़ियों के जलने से, नए साल की आपाधापी से और गर्मी ऊपर उठती ही जा रही थी। पूजानंद नेमा कुछ देर पहले दफ़्तर से पहुँचे थे। उनके सुपीरियर से नोंक-झोंक हुई। चुपचाप नए साल के शोर में पूजानंद नेमा की यह क्रांति दब गई थी। जनवरी में यह खबर आग की तरह संस्थान में फैली थी जब सारे जोश ठंडे हो गए थे। पूजानंद नेमा के अंदर आत्म-सम्मान की गर्मी मरी नहीं थी। घर का आटा गीला था। दो बेटियाँ ब्याहनी थीं। बेटे को विदेश में पढ़ाना था। पर नेमा अपना फ़ैसला ले चुके थे।

और वे अपनी आध्यात्म और दर्शन की दुनिया में खो गए थे। उन्होंने स्वयं कहा है ''फिर वह स्वतंत्रता जो व्यक्ति समाज में नहीं प्राप्त कर पाता, उस स्वतंत्रता को मैंने आध्यात्मिकता में पाया, इसमें विनतन की स्वतंत्रता है। इसी कारण मेरे अनुसार जो आत्म-संतोष आज का संपन्न व्यक्ति तलाश कर रहा है वह आध्यात्मिकता द्वारा ही संभव है।'' (पूजानंद नेमा, एक साक्षात्कार)

इस तरह पिछले 13 मार्च, 2014 को चुप हो गई थी चुप्पी की आवाज़।

सृजनात्मक लेखन व प्रकाशन विभाग,
महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस
rajheeramun@gmail.com

4 2014 में हिंदी जगत को अलविदा करने वाले विशेष हिंदी सेवक

डॉ. मदनलाल मधु

पिछले 57 सालों से रूस में रह रहे और रूस के प्रसिद्ध लेखकों और कवियों की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद करने वाले डॉ. मदनलाल मधु का सोमवार, 7 जुलाई, 2014 की शाम को देहांत हो गया।

डॉ. मधु 89 वर्ष के थे और पिछले कुछ समय से बीमार चल रहे थे। डॉ. मधु ने अनेक विश्वप्रसिद्ध रूसी लेखकों और कवियों की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया है। उन्होंने रसूल हमज़ातोव की रचना 'मेरा दगिस्तान' को हिंदी में प्रस्तुत किया था। उनके द्वारा अनूदित कृतियों में लेव तालस्तोय के उपन्यास 'युद्ध और शांति' तथा 'आन्ना करेनिना' भी शामिल हैं। इसके अलावा उन्होंने विश्व प्रसिद्ध रूसी कवि अलेक्सांदर पूश्किन की कविताओं और गद्य-रचनाओं का भी हिंदी में अनुवाद किया है। डॉ. मदनलाल मधु द्वारा अनूदित गोर्की, दस्तायेवस्की और तुर्गनेव की रचनाएँ भी हिंदी के पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय हैं।

मास्को स्थित हिंदुस्तानी समाज के अध्यक्ष योगेंद्र नागपाल ने डॉ. मधु को श्रद्धांजलि दी है और हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनकी भूमिका को सराहा है। डॉ. मधु करीब 25 साल तक हिंदुस्तानी समाज, मास्को के अध्यक्ष रहे थे। रेडियो रूस भी उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

डॉ. मदनलाल मधु भारत-रूस के बनते रिश्ते को सांस्कृतिक एवं भाषाई रूप से और सुदृढ़ करने वाले युग पुरुष थे। अथाह ज्ञान एवं अनुभव से उन्होंने दोनों देशों के साहित्य को समृद्ध किया। उनका निधन एक युग का बीत जाना है और दोनों देशों के लिए सांस्कृतिक क्षति है। उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि!

रेडियो रूस से साभार

हिंदी के अग्रणी साहित्यकार श्री अमरकांत

हिंदी के अग्रणी साहित्यकार अमरकांत का 17 फरवरी, 2014 को इलाहाबाद में निधन हो गया। वे 80 वर्ष के थे। श्री अमरकांत 'ज्ञानपीठ पुरस्कार', 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'सोवियत लैंड नेहरू' और 'व्यास सम्मान' जैसे कई लब्धप्रतिष्ठ पुरस्कारों से सम्मानित थे।

अमरकांत के बेटे अरविंद बिंदु ने बीबीसी से बातचीत करते हुए कहा, ''अमरकांत जी एकदम ठीक थे। उनकी मौत अचानक हुई। इससे पहले उनकी तबीयत ख़राब नहीं थी। हालाँकि शारीरिक रूप से उनको थोड़ी परेशानी थी।''

हिंदी साहित्यकार असग़र वजाहत ने अमरकांत जी के निधन पर शोक जताते हुए कहा, ''अमरकांत अपनी पीढ़ी के एक ऐसे कहानीकार थे जिनसे उस समय के युवा कहानीकारों ने बहुत सीखा। वो कहानीकारों में इस रूप में विशेष माने जाएँगे कि एक पूरी पीढ़ी को उन्होंने सिखाया-बताया।''

अमरकांत जी के कथा साहित्य की चर्चा करते हुए श्री वजाहत ने कहा, ''उनकी कहानियों में हम जो संवेदना देखते हैं वो मुख्य रूप से मध्य वर्ग, निम्न मध्य वर्ग, एक वृहत्तर हिंदी समाज की संवेदना है। उन्होंने इसी को अपनी कहानियों का केंद्रीय विषय बनाया है।''

अमरकांत जी हिंदी कथा साहित्य में 'दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलेक्टरी', 'जिंदगी और जोंक' जैसी कहानियों से चर्चित हुए थे।

अमरकांत जी का जन्म वर्ष 1925 में उत्तर प्रदेश के बलिया में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। अमरकांत जी को प्रेमचंद की परंपरा का कहानीकार माना जाता रहा है। 'सूखा पत्ता', 'आकाश पक्षी', 'काले-उजले दिन', 'सुन्नर पांडे की पतोहू', 'इन्हीं हथियारों से' इत्यादि उनके प्रमुख उपन्यास थे। 'इन्हीं हथियारों से' के लिए ही उन्हें वर्ष 2007 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। 'ज़िंदगी और जोंक', 'देश के लोग', 'मौत का नगर', 'एक धनी व्यक्ति का बयान', 'दुख-सुख का साथ' इत्यादि उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

वर्ष 2009 में उन्हें 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया था। इस साल उन्हें 'व्यास सम्मान' भी दिया गया था।

बी.बी.सी. हिंदी से साभार

वैश्विक हिंदी : क्षेत्र व आयाम

5 बुल्गेरिया में हिंदी भाषा

● पी.के. जयलक्ष्मी

विश्व बंधुत्व की भावना से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति आज विश्व संस्कृति की संवाहिका बन चुकी है। भूमंडलीकरण के नेपथ्य में केवल हिंदी ही संपर्क भाषा की योग्य भूमिका निभा सकती है। आज विश्व के लगभग नब्बे देशों में हिंदी बोली जाती है। अनेक विदेशी तथा बहुदेशीय कंपनियाँ हिंदी जाननेवाले अधिकारियों को नियुक्त करने के प्रति ज़्यादा आसक्त हैं। उन्हें भली-भाँति मालूम है कि यदि भारत के अथाह संभावनाओं वाले बाज़ार को हस्तगत करना है तो उसके लिए हिंदी ही एकमात्र सशक्त माध्यम है। विश्व के विभिन्न देशों में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अमेरिका, यूरोप, रूस आदि देशों में हिंदी के प्रति शैक्षिक अभिरुचि के साथ प्रयोजनपरक दृष्टि भी है। हिंदी का अध्ययन एवं अध्यापन जिन देशों में हो रहा है वे अपने-अपने अध्यापकों एवं शोधार्थियों को हिंदी में पारंगत बनाने के लिए विशेष प्रशिक्षण हेतु भारत भेज रहे हैं। भारत सरकार द्वारा प्रायोजित छात्रवृत्तियों के आधार पर कई विदेशी विद्यार्थी अध्ययन करने भारत आते हैं। पिछले कुछ वर्षों से हिंदी भाषा का अध्ययन विश्व स्तर पर प्रगति की दिशा में है।

आंध्रप्रदेश में जन्म। 12 वर्षों तक सेंट जोसफ़ महिला महाविद्यालय, विशाखापट्टनम में हिंदी विभाग की अध्यक्षा के रूप में काम किया। हिंदी में अनुवाद किया। हिंदी में 4 तथा तेलुगु में 3 ग्रंथों का प्रकाशन। तेलुगु के प्रसिद्ध आचार्य कोर्रपाटि श्री राममूर्ति के तेलुगु सामाजिक नाटक 'समता' का हिंदी में अनुवाद किया। आकाशवाणी से हिंदी तथा तेलुगु के अनेक लेख, कहानियाँ, कविताएँ प्रसारित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत। संप्रति : संदर्शक आचार्या, भारतीय विद्या विभाग, सोफ़िया विश्वविद्यालय, सोफ़िया, बुल्गेरिया (यूरोप)

भारतीय संस्कृति को करीब से जानने और पहचानने के लिए हिंदी एक सक्षम और शक्तिशाली माध्यम है। वैदिक संस्कृति को जानना, भारतीय व्यापारियों से संपर्क रखना, भारतीय चलचित्रों को समझना, मानव-सहज उत्सुकता आदि विभिन्न कारणों से अब विदेशी नागरिक विपुल संख्या में हिंदी की ओर आकर्षित हो रहे हैं और हमारी राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा को सीखने के प्रति आसक्त हो रहे हैं।

कई वर्षों से विदेशों में अनेक स्थानों पर हिंदी विधिवत पढ़ाई जा रही है। इन्हीं विधिवत शिक्षा-केंद्रों में से एक है बुल्गेरिया का सोफ़िया विश्वविद्यालय, जहाँ हिंदी का अध्ययन-अध्यापन स्नातक स्तर पर होता है। इसमें हिंदी-शिक्षण की नियमित व्यवस्था सन् 1974 से प्रारंभ हुई। इस द्विवर्षीय पाठ्यक्रम में हिंदी ध्वनि और उच्चारण पर अधिक बल दिया जाता है। दूसरे कोर्स से लेकर चौथे कोर्स तक हिंदी भाषा-शिक्षण सन् 2000 में अंकित रूप से स्वीकृत पाठ्यक्रम के अनुसार निर्धारित है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के सौजन्य से विज़िटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में सोफ़िया विश्वविद्यालय के भारत विद्या विभाग में हिंदी पढ़ाने का सुअवसर मुझे पिछले वर्ष दिसंबर में मिला। इस भारत विद्या विभाग में हिंदी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। विभाग में बी.ए. तथा एम.ए. के 30 से अधिक विद्यार्थी हिंदी, उर्दू तथा संस्कृत का अध्ययन कर रहे हैं। उनके पाठ्यक्रम में शामिल हैं आधुनिक भारत की भाषाएँ और हिंदी साहित्य का इतिहास, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, आधुनिक हिंदी कविता, हिंदी के विविध रूप, हिंदी नाटक, हिंदी वार्तालाप, भारत में स्त्री-लेखन आदि। व्यावहारिक स्तर पर हिंदी भाषा अध्यापन के मुख्य उद्देश्य को कार्यान्वित किया गया है जो भाषा की सभी शैलियों और उनसे संबंधित भेदों को क्रमिक अध्ययन के योग्य बनाए। पाठ्यपुस्तक के अंत में हिंदी-बुल्गेरियन शब्दकोश दिए गए हैं, जिनमें करीब 1500 शब्द संगृहीत हैं। बुल्गेरियन पाठ्य सामग्री का प्रमुख उद्देश्य है कि विद्यार्थियों का भाषिक और अभिव्यक्तिशील ज्ञान मज़बूत एवं विकसित हो। अध्ययन में प्रमुख रूप से भाषिक निपुणता और भाषावैज्ञानिक अभ्यास पर बल दिया जाता है।

भारत विद्या के अधिकतर विद्यार्थी भारतीय संस्कृति तथा भाषा में रुचि रखते हैं। ऐसे विभाग के परिष्कृत किंतु उन्मुक्त वातावरण में

हिंदी पढ़ाने में (विदेशी भाषा के रूप में) नएपन के साथ-साथ रचनात्मक सक्रियता से जुड़ना निश्चय ही मेरे लिए एक सुखद अनुभव रहा। यहाँ आने पर मुझे अनुभव हुआ कि भारत विद्या विभाग का मूल चरित्र पारस्परिक संवाद और विश्वास की भूमि पर टिका है। यहाँ अध्ययन के प्रति खुला और स्वस्थ दृष्टिकोण है। पाठ्यक्रम बहुत लचीला है। इसमें विद्यार्थियों की अभिरुचि और सामयिकता का पूरा ध्यान रखा जाता है। अध्ययन क्रम के आरंभ में हिंदी भाषी देश भारत का अंतरंग परिचय देने का प्रयत्न होता है। भारतीय परंपरा, मूल्य, मान्यता और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का व्यावहारिक परिचय देते हैं—जैसे इस वर्ष बी.ए. प्रथम वर्ष के छात्रों को पूजा की सभी वस्तुएँ दिखाते हुए मैंने भारतीय पूजा-पद्धति से अवगत कराया।

विदेशी भाषा के रूप में अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी को पढ़ाना एक आत्मीय व संतोषजनक अनुभव है जो कि हमारे अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने से नितांत भिन्न है। इस अध्यापन में पारस्परिक संवाद की महती भूमिका होती है। विदेश में हम केवल भाषा ही नहीं पढ़ाते बल्कि इसके साथ-साथ हिंदी भाषी देश भारत का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक इतिहास भी समझाते हैं। उसके भौगोलिक विस्तार का भी परिचय देते हैं, वहाँ के रीति-रिवाज़, खानपान, पहनावे और मूल्यों-मान्यताओं की जानकारी भी देते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि उपर्युक्त अंश किसी निर्धारित पाठ्यक्रम के अंतर्गत नहीं होता। आपसी वार्तालाप के दौरान छात्रों की जिज्ञासाएँ शांत करते हुए सब कुछ सहज ही जुट जाता है। साहित्य के माध्यम से पारस्परिकता के तार जोड़ते हुए विद्यार्थी की समझ का विस्तार करना विदेश में हिंदी अध्यापन का लक्ष्य है। हिंदी सीखने वाले विद्यार्थी को अगर कुछ साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ कठिन भी मालूम पड़ती हैं तो संवाद के बाद उनकी दृष्टि और समझ का विस्तार होता है।

बुल्गेरिया के भारतीय विद्या विभाग के विद्यार्थी हिंदी रचनाओं को बुल्गेरियन भाषा में और बुल्गेरियन साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने के लिए तत्पर रहते हैं। यह कार्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बनकर भी होता है और स्वतंत्र रूप से भी। विद्यार्थी को सृजनात्मक लेखन की ओर प्रोत्साहित करने हेतु एक हस्तलिखित पत्रिका की परिकल्पना भी की जा रही है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन रचनात्मक भी है। आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ हिंदी विज्ञापन-जगत को भी रोज़ नई अभिव्यक्तियों से भरा जा रहा है। ऐसे में हिंदी के विविध रूपों का परिचय देते हुए आरंभ से अब तक हिंदी के क्रमिक विकास को स्पष्ट करते हुए विद्यार्थी को आज के हिंदी समाचार-पत्रों और अंतर्जाल पर उपलब्ध हिंदी ब्लॉग तथा पत्र-पत्रिकाओं से जोड़ना सार्थक प्रयास होगा। सबसे पहले विद्यार्थी को मानक भाषा का ज्ञान देना आवश्यक है। बाद में बोलचाल की हिंदी से अवगत कराकर अंततः रोज़गारपरक हिंदी भी सिखाएँ। जैसे—पर्यटन, अनुवाद और रचनात्मक लेखन से जुड़ी हिंदी। ऐसा पढ़ाने से विद्यार्थी निश्चित ही अधिक लाभान्वित होंगे। इस प्रकार योजनाबद्ध ढंग से हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाया जा सकता है। हिंदी अध्ययन-अध्यापन को वैश्विक स्तर पर मानक बनाने हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम, योग्य शिक्षक, सुव्यवस्थित शिक्षण-सामग्री आदि की अपेक्षाएँ और भी आवश्यक हैं।

बुल्गेरिया के भारतीय विद्या विभाग के विद्यार्थी हिंदी रचनाओं को बुल्गेरियन भाषा में और बुल्गेरियन साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने के लिए तत्पर रहते हैं। यह कार्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बनकर भी होता है और स्वतंत्र रूप से भी। विद्यार्थी को सृजनात्मक लेखन की ओर प्रोत्साहित करने हेतु एक हस्तलिखित पत्रिका की परिकल्पना भी की जा रही है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन रचनात्मक भी है। आज प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ हिंदी विज्ञापन- जगत को भी रोज़ नई अभिव्यक्तियों से भरा जा रहा है।

pk.jayalakshmi@yahoo.in

साभार : गर्भनाल—वर्ष-4, अंक-3,
इंटरनेट संस्करण 90, मई 2014

6 ऑस्ट्रेलिया में हिंदी

● डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

आधुनिक ऑस्ट्रेलिया एक बहु-सांस्कृतिक समाज है जहाँ घरों में बोली जाने वाली भाषाओं की संख्या 400 है। ऑस्ट्रेलिया की सरकार न केवल अप्रवासियों को अपनी भाषा और संस्कृति बनाए रखने की अनुमति देती है बल्कि इस कार्य में उनकी सहायता भी करती है। परंतु ऐसा सदा नहीं होता था। सन् 1901 में ऑस्ट्रेलिया की सरकार ने 'श्वेत ऑस्ट्रेलिया' की नीति अपनाई थी जिसके अनुसार भारतीयों तथा एशिया-अफ्रीका आदि देशों के व्यक्तियों को ऑस्ट्रेलिया में प्रवासी के रूप में प्रवेश करने पर प्रतिबंध था। सन् 1947 में भारत के ब्रिटेन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया जब भारत में पैदा हुए एंग्लो-इंडियन तथा अंग्रेज़ों को ऑस्ट्रेलिया में स्थायी रूप से निवास करने की अनुमति मिली। 1960 के दशक के उत्तरार्ध में भारत से डॉक्टरों, इंजीनियरों, शिक्षकों आदि को ऑस्ट्रेलिया में स्थायी रूप से निवास करने की अनुमति मिली। उसके बाद के वर्षों में कंप्यूटर विशेषज्ञों तथा अन्य व्यावसायिकों को भारत से ऑस्ट्रेलिया में आने दिया गया। 1980 में ऑस्ट्रेलियाई नियमों में कुछ और परिवर्तन हुए जिनके कारण ऑस्ट्रेलिया में बसे हुए भारतीयों के रिश्तेदारों का ऑस्ट्रेलिया आना अधिक आसान हो गया।

सन् 1996 में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी-भाषियों की संख्या 35,000 थी। अगले दस वर्षों में यह संख्या दुगनी हो गई। सन् 2006 में की गई जनगणना के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में 70,000 हिंदी भाषी थे और सन् 2011 में यह संख्या एक लाख से ऊपर हो गई।

जन्म : 1942 में लखनऊ में

शिक्षा : लखनऊ विश्वविद्यालय (भारत), मोनाश विश्वविद्यालय (ऑस्ट्रेलिया) तथा विस्कांसिन विश्वविद्यालय-मैडिसन (अमेरिका) में शिक्षा। हिंदी विश्वविद्यालय प्रयाग से विशारद की उपाधि।

भारत, इथियोपिया, अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया में अध्यापन तथा शोध-कार्य।

भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग में हिंदी अनुवादक तथा दिल्ली में वैज्ञानिक व अनुसंधान परिषद् के प्रकाशन विभाग में विज्ञान समाचार सेवा के पाक्षिक बुलेटिनों का संपादन।

हिंदी में वैज्ञानिक विषयों पर लेख तथा पुस्तकें लिखीं। 1971 से ऑस्ट्रेलिया में निवास।

ऑस्ट्रेलियाई सरकार द्वारा हाई स्कूल तथा अनुवादक व दुभाषिया परीक्षाओं में हिंदी को मान्यता दिलवाई।

रेडियो पर हिंदी कार्यक्रम आरंभ किया तथा 'देवनागरी' नामक पत्रिका निकाली। 2004 से 'हिंदी-पुष्प' मासिक पत्रिका का संपादन।

ऑस्ट्रेलिया में भारतीय मूल के लोग कई देशों, उदाहरण के लिए फ़ीजी, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, इंग्लैंड आदि से आए हैं इसलिए इन सबकी हिंदी भाषा में वे अंतर पाए जाते हैं जो इन देशों में बसे हिंदी भाषी लोगों की भाषा में देखे जाते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षण

ऑस्ट्रेलिया सरकार की भाषाई नीति के अनुसार सोमवार से शुक्रवार तक लगनेवाले सामान्य स्कूलों में केवल 8 चुनी हुई भाषाएँ (4 यूरोपियन तथा 4 एशियाई) पढ़ाए जाने का प्रावधान है। इन भाषाओं का चुनाव ऐतिहासिक तथा आर्थिक कारणों से किया गया है और इनमें हिंदी सम्मिलित नहीं है। इसलिए हिंदी कक्षाएँ अधिकतर सप्ताहांत में लगती हैं। ये कक्षाएँ कुछ प्रदेशों (उदाहरण के लिए विक्टोरिया), प्रादेशिक सरकार के शिक्षा विभाग के अंतर्गत चलती हैं परंतु अधिकतर ये कक्षाएँ हिंदी के प्रचार में रुचि रखने वाले व्यक्तियों अथवा संगठनों द्वारा चलाई जाती हैं। निजी रूप से चलाई जाने वाली हिंदी तथा अन्य सामुदायिक भाषाओं के विद्यालयों को बहुधा ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार से अनुदान मिलता है जो इन विद्यालयों को चलाने के लिए पर्याप्त तो नहीं होता है परंतु सहायक होता है। केंद्रीय सरकार की एक योजना के अंतर्गत इन्हें सामुदायिक भाषा विद्यालय (कम्युनिटी लैंग्वेजेज़ स्कूल) का नाम दिया जाता है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों में हिंदी इसी प्रकार के विद्यालयों में पढ़ाई जाती है।

माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षा में एक बड़ा परिवर्तन तब आया जब विक्टोरिया की सरकार ने सन् 1993 में 11वीं तथा

12वीं कक्षा में हिंदी को हाईस्कूल में मान्यता प्रदान की। बाद में यह मान्यता ऑस्ट्रेलिया के अन्य प्रदेशों ने भी प्रदान की। परिणामस्वरूप आज ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों के विद्यार्थी उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी पढ़ सकते हैं और 12वीं कक्षा की राष्ट्रीय हिंदी परीक्षा में भाग ले सकते हैं।

विक्टोरिया में हिंदी शिक्षा के विकास का इतिहास

जब मैं 1970 के दशक में ऑस्ट्रेलिया आया था, उस समय यहाँ प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्तर के बच्चों की हिंदी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। इसलिए अपने पुत्र तथा पुत्री को हिंदी सिखाने के लिए मैंने उन्हें भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली के पत्राचार विभाग द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिलवाया। 'हिंदी प्रवेश' तथा 'हिंदी-परिचय' के दो-वर्षीय पाठ्यक्रम आज भी उपलब्ध हैं परंतु मुझे इनमें कुछ कमियाँ लगीं क्योंकि ये पाठ्यक्रम मूल रूप से अहिंदी भाषी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए तैयार किए गए थे जिनके लिए अपनी नौकरी बनाए रखने अथवा पदोन्नति के लिए हिंदी जानना आवश्यक था। इसलिए कई पाठ्यांशों और व्याकरण के नियमों को समझाने की भाषा वयस्कों के लिए उपयुक्त थी पर बच्चों के लिए अनुपयुक्त। इसके अतिरिक्त एक पाठ पर आधारित अभ्यास को पूरा करके भारत से त्रुटियाँ ठीक करके वापस लौटने में औसतन एक महीना या उससे अधिक समय लग जाता था। 'हिंदी प्रवेश' पाठ्यक्रम में प्रवेश करने की न्यूनतम आयु दस वर्ष थी। इसलिए दस वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए यह पाठ्यक्रम अनुपयोगी था। हिंदी-प्रवेश अथवा 'हिंदी-परिचय' पाठ्यक्रमों की परीक्षा देने भारतीय उच्चायुक्त अथवा भारतीय वाणिज्य दूतावास के कार्यालय में जाना पड़ता था जो सबके लिए सुविधाजनक नहीं था।

उपर्युक्त कारणों से जब मेरे पुत्र तथा पुत्री ने केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पाठ्यक्रम पूरे कर लिये तो मुझे लगा कि अन्य बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए ऑस्ट्रेलिया में ही कुछ प्रबंध होना चाहिए। मैंने ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रदेश की सरकार के शिक्षा विभाग से संपर्क किया तो पता चला कि शनिवार को सैटरडे स्कूल ऑफ़ मॉडर्न लैंग्वेजज़ जो अब विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजज़ के नाम से जाना जाता है, में अन्य सामुदायिक भाषाओं को पढ़ाए जाने का प्रबंध है और वहाँ हिंदी पढ़ाए जाने का भी प्रबंध किया जा सकता है। परंतु इसके लिए हिंदी सीखने के इच्छुक बच्चों तथा उनके माता-पिता के नाम तथा पते देने होंगे, विक्टोरिया में हिंदी-भाषी समुदाय की ओर से प्रार्थना-पत्र देना होगा और हिंदी शिक्षक का प्रबंध करना होगा। लगभग तीन वर्षों के प्रयत्न के पश्चात् सन् 1986 में विक्टोरिया में मेल्बर्न के ब्रंज़विक उपनगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहली हिंदी कक्षाएँ आरंभ हुईं। इस कक्षा के प्रथम शिक्षक स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पांडेय थे और उनकी अनुपस्थिति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती इंदुमति पांडेय जो स्वयं एक अनुभवी अध्यापिका थीं, इस कक्षा को पढ़ाया करती थीं। विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण इसके बंद हो जाने का भय हमेशा बना रहता था। विक्टोरिया में हिंदी शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन तब मिला जब मेरे दस वर्षों के प्रयत्न के पश्चात् 1993 में 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में हिंदी के पठन-पाठन को सरकारी मान्यता मिली। अब ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश नगरों में विद्यार्थी हाई स्कूल की 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में न केवल हिंदी पढ़ सकते हैं बल्कि 12वीं कक्षा में हिंदी विषय लेकर हाई स्कूल उत्तीर्ण करने पर विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए उन्हें बोनस अंक भी प्राप्त होते हैं।

11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में हिंदी को सरकारी मान्यता दिलवाने में जिन व्यक्तियों ने मेरी सहायता की उनमें श्रीमती अन्ना कोवियस, श्रीमती इवाल बायरन, श्रीमती सुधा जोशी, स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पांडेय, श्रीमती इंदुमती पांडेय तथा श्रीमती मंजीत सेठी का योगदान प्रमुख रहा। 1993 में हाई स्कूल स्तर पर हिंदी को सरकारी मान्यता

सन् 1996 में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी भाषियों की संख्या 35,000 थी। अगले दस वर्षों में यह संख्या दुगनी हो गई। सन् 2006 में की गई जनगणना के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में 70,000 हिंदी-भाषी थे और सन् 2011 में यह संख्या एक लाख से ऊपर हो गई।

मिलने से लेकर अब तक श्रीमती मंजीत सेठी विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजज़ में 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाती रही हैं। बाद में हिंदी अध्यापन के कार्य में कई शिक्षकों ने अपना योगदान दिया। इनमें डॉ. नरेंद्र अग्रवाल व श्रीमती अनुश्री जैन का योगदान उल्लेखनीय है।

हाई स्कूल स्तर पर हिंदी को सरकारी मान्यता प्राप्त होने के बाद एक प्रमुख समस्या यह आई कि ऑस्ट्रेलिया के पाठ्यक्रम के अनुरूप हिंदी में कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। नेशनल सेंटर ऑफ़ साऊथ एशियन स्टडीज़ की निदेशिका, श्रीमती मरीका विक्ज़ियानी ने इस संबंध में सहायता की और हिंदी में पाठ्यपुस्तक तैयार करने के लिए मेल्बर्न के ला ट्रोब विश्वविद्यालय को अनुदान दिया गया। श्रीमती रीना वर्मा टंडन ने यह पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था 'ऑस्ट्रेलिया में समकालीन हिंदी'। यह पुस्तक दो भागों में प्रकाशित हुई। इस परियोजना के संचालन तथा पुस्तक के संपादन में श्रीमती सुधा जोशी तथा श्री रिचर्ड डिलेसी ने विशेष सहयोग दिया।

पाँच वर्ष पश्चात् पाठ्यक्रम में परिवर्तन हुए। परिणामस्वरूप एक नई पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता महसूस हुई। विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजज़ के तत्वावधान में दो भागों में 'हिंदी नक्षत्र' नामक एक दूसरी पाठ्यपुस्तक सन् 2006 और 2007 में प्रकाशित की गई। मेरे साथ इस पुस्तक का संपादन श्रीमती सुधा जोशी ने किया। इस पुस्तक को लिखने में श्री रिचर्ड डिलेसी, डॉ. नरेंद्र अग्रवाल, श्रीमती मंजू अग्रवाल, श्रीमती सुधा अग्रवाल तथा मृदुला कक्कड़ ने सहयोग दिया। इस पुस्तक को तकनीकी रूप से तैयार करने और कंप्यूटर साज-सज्जा के प्रस्तुतीकरण का उत्तरदायित्व भी श्रीमती मृदुला कक्कड़ ने सँभाला।

हिंदी और राष्ट्रीय पाठ्यक्रम

सन् 2011 में ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार के आदेश पर अकारा (ऑस्ट्रेलियन करीकुलम, असेसमेंट एंड सर्टिफ़िकेशन अथॉरिटी) ने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के लिए ऑस्ट्रेलियाई स्कूलों में पढ़ाए जाने के लिए भाषाओं का चयन किया और भाषा-अध्ययन के मुख्य सिद्धातों का प्रारूप प्रस्तुत किया। इस प्रारूप में एशियाई भाषाओं के पढ़ाए जाने पर तो ज़ोर दिया गया था। इंडोनेशियाई, चीनी, जापानी, कोरियाई भाषाओं का समावेश किया गया था परंतु हिंदी का कहीं नाम भी नहीं था। इस बात से ऑस्ट्रेलिया के हिंदी समर्थकों को गहरा धक्का लगा और ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न हिंदी प्रचारक संगठनों ने मिलकर अकारा से निवेदन किया कि विश्व में तीसरी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसके लिए एक जन-आंदोलन चलाया गया और न केवल हिंदी समर्थक संगठनों ने बल्कि व्यक्तिगत रूप से भी लोगों ने हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने के लिए याचिकाएँ भेजीं। राजनीतिक स्तर पर प्रादेशिक तथा केंद्रीय स्तर पर भी विभिन्न राजनीतिक नेताओं से भेंट की गई। अंत में अकारा ने नवंबर 2011 में अपने अंतिम प्रारूप में हिंदी भाषा को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने का निर्णय घोषित किया परंतु यह प्रावधान लगाया कि सबसे पहले चीनी तथा इतालवी भाषाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार किया जाएगा बाद में अन्य भाषाओं की बारी आएगी। इस निर्णय से हिंदी-समर्थकों को बड़ी राहत मिली। हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने की घोषणा के पश्चात् शीघ्र ही विक्टोरिया के एक सरकारी प्राथमिक विद्यालय ने न केवल भारतीय बच्चों को बल्कि अपने स्कूल के सभी 350 विद्यार्थियों को जिनमें अधिकतर विद्यार्थियों की मातृ-भाषा अंग्रेज़ी अथवा अन्य भाषा है, हिंदी सिखाने का निर्णय लिया। आशा है भविष्य में अन्य विद्यालय भी इस उदाहरण का अनुकरण करेंगे और हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होगी।

विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षा

कैनबरा स्थित ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी काफ़ी समय से पढ़ाई जाती रही है। यहाँ का हिंदी विभाग प्रोफ़ेसर रिचर्ड मैकग्रेगर द्वारा स्थापित किया गया था। यहाँ हिंदी विषय स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर अध्ययन के लिए उपलब्ध है। यहाँ एशियन स्टडीज़ संकाय के अंतर्गत स्नातक स्तर पर दो पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं—तीन वर्षीय बैचलर ऑफ़ एशियन स्टडीज़ (हिंदी) और चार वर्षीय बैचलर ऑफ़ एशियन स्टडीज़ विशेषज्ञ (हिंदी), जिसमें तीसरा वर्ष एक भारतीय विश्वविद्यालय में उच्च स्तर पर हिंदी भाषा का अध्ययन शामिल है। चौथे वर्ष में विद्यार्थी हिंदी के अतिरिक्त

भारत के बारे में विशिष्ट अध्ययन करते हैं।

इसके अतिरिक्त मेल्बर्न के ला ट्रोब विश्वविद्यालय में भी स्नातक स्तर पर हिंदी पढ़ने की सुविधा उपलब्ध है, जहाँ ओपन युनिवर्सिटी द्वारा दूर-शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से हिंदी शिक्षा उपलब्ध है। कई अन्य विश्वविद्यालयों, उदाहरण के लिए सिडनी विश्वविद्यालय तथा मेल्बर्न के चार विश्वविद्यालयों, मेल्बर्न, मोनाश, ला ट्रोब तथा रायल मेल्बर्न इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी में स्नातक स्तर पर समय-समय पर हिंदी पढ़ाई जाती रही है। खेद की बात है कि सिडनी विश्वविद्यालय में जहाँ हिंदी सन् 2010 में पढ़ाई जा रही थी, वहाँ यह सुविधा अब नहीं उपलब्ध है। अब विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी विषय का अध्ययन केवल कैनबरा की ऑस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी तथा मेल्बर्न के ला ट्रोब विश्वविद्यालय में उपलब्ध है। 90 के दशक में हिंदी को अच्छा प्रोत्साहन तथा श्रीमती सुधा जोशी ने विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी के पठन-पाठन में विशेष योगदान दिया। श्रीमती सुधा जोशी आज भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं।

वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा

वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा के स्रोत बदलते रहे हैं। 1970 के दशक में हिंदी टेक्निकल ऐंड फ़र्दर एजुकेशन (टेफ) के कुछ केंद्रों में हिंदी शिक्षा का प्रबंध था तथा 1980 के दशक के उत्तरार्ध में विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजज़ की कक्षाओं में स्कूली बच्चों के साथ-साथ वयस्क विद्यार्थी भी प्रवेश ले सकते थे। इसके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालय (उदाहरण के लिए, क्वींसलैंड विश्वविद्यालय) भी भूतकाल में वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा प्रदान करते रहे हैं परंतु विभिन्न प्रांतों में वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा का प्रमुख स्रोत वयस्क शिक्षा एजेंसियाँ, उदाहरण के लिए, विक्टोरिया में काउंसिल ऑफ़ एडल्ट एजुकेशन रही हैं। वयस्कों के लिए अधिकांश पाठ्यक्रम, रॉबर्ट स्नेल की पुस्तक 'टीच योरसेल्फ़' हिंदी पर आधारित रहे हैं।

हिंदी प्रचारक संस्थान

1990 के दशक के आरंभिक वर्षों में ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न शहरों में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थान स्थापित हुए। उदाहरण के लिए मेल्बर्न में 'हिंदी निकेतन' तथा सिडनी व पर्थ में 'हिंदी समाज' की स्थापना हुई। इनकी गतिविधियों में काफ़ी समानताएँ थीं। होली, दीपावली आदि भारतीय त्योहारों को मनाना, हिंदी कक्षाओं का प्रबंध करना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना आदि। किसी सीमा तक ये संस्थाएँ आज भी यह कार्य कर रही हैं। मेल्बर्न के हिंदी निकेतन के एक विशेष कार्यक्रम का उल्लेख करना असंगत न होगा। यह कार्यक्रम है—वी.सी.ई. समारोह जिसमें हर वर्ष हिंदी विषय लेकर 12वीं कक्षा उत्तीर्ण करनेवाले विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है। इसी प्रकार पर्थ के हिंदी समाज द्वारा आयोजित फुलवारी कार्यक्रम बच्चों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर प्रदान करता है। सन् 2011 में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए हिंदी शिक्षा संघ (ऑस्ट्रेलिया) नामक संस्था की स्थापना की गई। गत दो वर्षों में इस संस्था ने बाल-दिवस समारोह मनाया और 2013 में मेल्बर्न में हिंदी शिक्षा का रजत जयंती समारोह मनाया।

विक्टोरियन स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजज़ के सहयोग से हिंदी शिक्षा संघ (ऑस्ट्रेलिया), ऑस्ट्रेलियाई विद्यार्थियों के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में लगा हुआ है। पहली कक्षा के विद्यार्थियों के लिए श्रीमती अनुश्री जैन द्वारा लिखी हुई पुस्तक पिछले वर्ष प्रकाशित हो चुकी है। अगले स्तर की पुस्तकों पर काम चल रहा है। ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख शहरों में कवि-गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मेलन भी इन संस्थाओं द्वारा आयोजित किए जाते हैं। मेल्बर्न में शारदा कला केंद्र द्वारा लंबे समय तक हर दूसरे महीने साहित्य-संध्या तथा संगीत-संध्या आयोजित की जाती रही हैं। पिछले दो वर्षों से साहित्य-संध्या आयोजित करने का काम ऐच्छिक रूप से एक उत्साही वर्ग ने ले लिया है जिसका संयोजन डॉ. नलिन शारदा तथा हरिहर झा कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से सिडनी में भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया भी भारतीय संस्कृति तथा हिंदी-उर्दू के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। 14 सितंबर, 2010 को हिंदी-दिवस पर न्यू साऊथ वेल्स संसद भवन में एक समारोह में 47 हिंदी-उर्दू के कवियों-शायरों की कृतियाँ 'गुलदस्ता' शीर्षक की पुस्तक का

विमोचन तथा इन भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान देनेवाले व्यक्तियों को सम्मानित करके एक नया कीर्ति-स्तंभ कायम किया है।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी मीडिया

ऑस्ट्रेलिया में अंग्रेज़ी में अनेक भारतीय मासिक समाचार-पत्र निकलते हैं। केवल मेल्बर्न से ही एक दर्जन से अधिक ऐसे समाचार-पत्र निकलते हैं। इनमें से केवल एक मासिक समाचार-पत्र है जिसमें दो पृष्ठ हिंदी के होते हैं। कुछ अन्य समाचार-पत्रों में अन्य भारतीय भाषाओं, उदाहरण के लिए तमिल, सिंधी, पंजाबी के भी कुछ पृष्ठ होते हैं। ऑस्ट्रेलिया से इंडिया मेल्बर्न नामक समाचार-पत्रों में अंग्रेज़ी, गुरुमुखी तथा हिंदी में भी पठन सामग्री होती है। हाल ही में सिडनी से 'हिंदी गौरव' नामक हिंदी समाचार प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ है।

रेडियो स्पेशल ब्रॉडकास्टिंग सर्विस या संक्षेप में 'एस.बी.एस.' रेडियो राष्ट्रीय स्तर पर प्रति सप्ताह 4 घंटे हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित करता है। हाल ही में भारत से सीधे आधे घंटे का हिंदी में समाचार का प्रसारण भी आरंभ हुआ है। इसके अतिरिक्त कई सार्वजनिक तथा निजी रेडियो स्टेशन भी हिंदी कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

हिंदी चलचित्र एस.बी.एस. टेलीविज़न समय-समय पर हिंदी चलचित्र प्रसारित करता रहा है। अब तो हिंदी चलचित्र ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख नगरों के सिनेमाघरों में भी देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय दुकानों से हिंदी चलचित्रों के वीडियो-कैसेट तथा डी.वी.डी. किराए पर लिये जा सकते हैं या खरीदे जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों से भारत के टेलीविज़न चैनलों, उदाहरण के लिए 'ज़ी स्टार', 'टाइम्स' आदि चैनलों द्वारा भी हिंदी कार्यक्रमों का प्रसारण उपलब्ध है।

कई स्थानीय संस्थाएँ हिंदी साहित्य, संगीत तथा नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करती हैं और भारत से भी कलाकारों को आमंत्रित करती हैं। इसके अतिरिक्त त्योहारों के अवसर पर विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम, मेले आदि भी आयोजित किए जाते हैं।

संक्षेप में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। यद्यपि अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। आशा है कि भविष्य में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी का पठन-पाठन करनेवाले लोगों की संख्या में वृद्धि होगी और भारत की आर्थिक शक्ति में उभरने के साथ-साथ ऑस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में न केवल भारतीय उद्गम के व्यक्तियों में बल्कि वहाँ के स्थानीय लोगों में भी हिंदी की लोकप्रियता बढ़ेगी।

dsrivastava@optusnet.com.au

साभार : गर्भनाल—वर्ष-4, अंक-1,
इंटरनेट संस्करण 88, मार्च 2014

7 चीन में हिंदी 'चीन की डायरी'

● डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

1 नवंबर, 1962 के समशेर नगर, बहादुर गंज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश में जन्म। विगत दो दशकों से साहित्य-सृजन में सक्रिय।

दलित साहित्य का स्वरूप, विकास और प्रवृत्तियाँ पुस्तक प्रकाशित।

शिरोमणि सम्मान (साहित्य, कला परिषद् जालौन) तथा तुलसी सम्मान (मानस स्थली, सूकरखेत, उत्तर प्रदेश) से सम्मानित।

संप्रति : आचार्य, हिंदी विभाग, गुआंगदोंग अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, गुआंगझोऊ, चीन।

चीन में हिंदी बहुत ज़ोरों से लोकप्रियता अर्जित कर रही है। यहाँ के सिनेमा-हॉलों में कभी-कभी एक हफ़्ते तक हिंदी फ़िल्म चल जाती है। फ़िल्मों से बैर रखने वाला मैं भी धीरे-धीरे बॉलीवुड का प्रशंसक हो गया हूँ। यहाँ के विश्वविद्यालयों से लेकर बाज़ार तक के चीनी युवाओं के मोबाइलों में भरे हिंदी गीत अपनी मिठास से इन्हें झुमाते, नचाते, गवाते हुए गोल-गोल घुमाते रहते हैं।

'हिंदी हैं हम वतन है, हिंदोस्ताँ हमारा।' यानी हमारे रक्त में हिंदी है। हम डॉ. राम विलास शर्मा के वंशज हैं। इसलिए हिंदी जाति के भी हुए। इन्हीं सब वजहों से रविवार को जमकर हिंदी की याद में हिचकियाँ आती रहीं। छुट्टी का दिन था फिर भी सुबह-सुबह सोचा कि आज हिंदी दिवस है। कार्यालय बंद है फिर क्यों न इसे घरेलू उत्सव की तरह मना लें। यही सोचकर अपने विश्वविद्यालय से बस आधे घंटे की दूरी पर स्थित 'नांफांग मेडिकल विश्वविद्यालय' के अपने भारतीय मेडिकल छात्र-छात्राओं को भी बुलाया जा सकता था पर उन्हें बुलाया नहीं। चीन की नागरिक हिंदी प्रवक्ता भी आज मेरे आवास पर आई थीं पर मैंने उनके सामने भी अपने आयोजन का भेद नहीं खोला। किस मुँह से बताता कि हिंदुस्तान में हिंदी पर संकट है। इसलिए उसको संबल देने के लिए आज मैं हिंदी दिवस मना रहा हूँ।

सच मानिए चीन में हिंदी का सम्मान देखकर हम मंत्रमुग्ध हैं। यहाँ के गुआंगदोंग भाषा विश्वविद्यालय में मेरे अलावा तीन और लोग हिंदी शिक्षण से जुड़े हैं जबकि हिंदी पढ़ने वाले कुल विद्यार्थी 37 हैं। क्या भारत में 37 विद्यार्थियों के लिए एक प्रोफेसर, एक एसोसिएट प्रोफेसर और दो-दो प्रवक्ता या असिस्टेंट प्रोफेसर रखे जा सकते हैं? यहाँ के शिक्षक से लेकर विद्यार्थी तक अपना नाम हिंदी में भी रखते हैं। यही नहीं वे जहाँ मंडारिन या कैंटोनी को मातृभाषा मानते हैं वहीं हिंदी को दूसरी मातृभाषा। यहाँ की यह प्रवक्ता महोदया तो मनसा, वाचा और कर्मणा से हिंदी को ही समर्पित हैं। इनका मूल नाम त्यानकेपिंग है लेकिन इन्होंने अपना हिंदी नाम भी रख रखा है 'तारा'। विद्यार्थियों ने भी अपने हिंदी नाम रख रखे हैं राजेश, सुरेश, शालिनी, मालिनी, शीला, राधा, सीता और विमला। यह महिला प्रवक्ता लगभग चालीस मिनट तक मेरे आवास पर रहीं। इन्होंने मुझसे और मेरी पत्नी से बातें करने के साथ-साथ मेरे घर आए सभी भारतीय विद्यार्थियों से भी बातें कीं लेकिन इस दौरान शायद ही कोई अंग्रेज़ी का शब्द उनके मुँह से निकला हो। यहाँ तक कि अरबी-फ़ारसी के शब्द भी नहीं। भाषा का यह निखालिस रूप होते हुए भी पूरी बातचीत के दौरान बनावटीपन भी नहीं दिखा। इनकी भाषा में हिंदी के छायावादी रूप का सौंदर्य भी समझ आया। इनका हिंदी को अपनी दूसरी मातृभाषा कहना बहुत ही सार्थक लगता है। अपनी मातृभूमि भारत में जब कोई इतर भाषा का एक भी शब्द प्रयोग किए बिना हिंदी बोलता है तो वह बनावटी भाषा लगने लगती है। लेकिन इनके चालीस मिनट के संभाषण में कहीं भी बनावटीपन नहीं दिखा। इनके इस हिंदी प्रेम पर मेरे समेत सभी विद्यार्थी मुग्ध थे लेकिन इनके जाते ही सभी विद्यार्थी स्टुडेंट हो गए। मैं मानता हूँ कि वे चिकित्सा विज्ञान (मेडिकल) के छात्र थे लेकिन मैं कौन अंग्रेज़ी साहित्य का विद्या वाचस्पति था तो मैं भी उन्हीं में शामिल हो गया।

यह विडंबना नहीं तो और क्या है कि हम कंप्यूटर के लिए अभी

तक अपना कुंजी-पटल भी विकसित नहीं कर पाए। हमें आज भी इधर-उधर पड़ी टंकण की मशीनों में अब भी अपनी भाषा में सफ़ेदी के साथ चमकता कुंजी-पटल देखकर गौरव अनुभव होता है। भाषा के क्षेत्र में इस अभाव का कारण आलस्य के साथ-साथ भाषा प्रेम की कमी भी है। हम चीन में बैठकर अपने देश के लोगों को देवनागरी लिपि में संदेश भेजते हैं जबकि उनमें से अधिकांश के जवाब रोमन लिपि में आते हैं। इसका क्या कारण है ? शायद हम भारतीय अभिजन भाषा को संस्कृति और सभ्यता जैसा गंभीर मुद्दा नहीं मानते। जबकि हकीक़त में भाषा का मुद्दा सभ्यता और संस्कृति से अधिक गंभीर है। हम संयुक्त राष्ट्रसंघ को शायद एक करोड़ यूरो यानी तब के 82 करोड़ रुपए दे देते तो अरबी के साथ ही हिंदी भी संयुक्त राष्ट्र की कामकाजी भाषा (राजभाषा) हो जाती। लेकिन अरब देशों की तरह हम निर्णय नहीं ले पाए। शायद हम यह सोचते रह गए कि यह तो संयुक्त राष्ट्र का दायित्व है कि वही खर्च करे। पैसे के अभाव में ही हिंदी संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यालय में आज तक प्रवेश नहीं पा सकी। इस यथार्थ के उलट हमारे कर्णधार जनता तक कुछ और ही कहानी पहुँचाते रहे। यदि बी.बी.सी. वाले भेद न खोलते तो यह सच कोई नहीं जान पाता और अपने जयचंदों को कोसने के बजाय संयुक्त राष्ट्रसंघ वालों को बेमतलब गरियाता रहता।

सच मानिए चीन में हिंदी का सम्मान देखकर हम मंत्रमुग्ध हैं। यहाँ के गुआंगदोंग भाषा विश्वविद्यालय में मेरे अलावा तीन और लोग हिंदी शिक्षण से जुड़े हैं जबकि हिंदी पढ़नेवाले कुल विद्यार्थी 37 हैं। क्या भारत में 37 विद्यार्थियों के लिए एक प्रोफेसर, एक एसोसिएट प्रोफेसर और दो-दो प्रवक्ता या असिस्टेंट प्रोफेसर रखे जा सकते हैं? यहाँ के शिक्षक से लेकर विद्यार्थी तक अपना नाम हिंदी में भी रखते हैं। यही नहीं, वे जहाँ मंडारिन या कैंटोनी को मातृभाषा मानते हैं, वहीं हिंदी को दूसरी मातृभाषा।

जब तक गूगल का मूल्य मुक्त हिंदी यूनिकोड उपलब्ध नहीं था तब तक हिंदी प्रेमी तरह-तरह के फोंट्स बाज़ार में बेच रहे थे। यह है हमारी भाषा प्रेम ! हम बनावटी रूप में भाषा प्रेम दर्शाते हैं। अगर ऐसा न होता तो हमारे भारतीय भी हिंदी फोंट्स के बाज़ार नहीं सजाते। उन्हें वे भी तो मुफ़्त उपलब्ध करा सकते थे।

गुआंगदोंग भाषा विश्वविद्यालय, गुआंगझोऊ चीन में बहुत सारे देशों की भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। दुनिया भर के विश्वविद्यालयों से परस्पर समझौतों के आधार पर भाषा, दर्शन, साहित्य और संस्कृति शिक्षण ने मुझे प्रभावित किया। इससे कुछ महीने पहले मैंने भी व्यक्तिगत रुचि लेकर यहाँ के विश्वविद्यालय और किसी भारतीय विश्वविद्यालय के बीच हिंदी और मैंडारिन (चीनी) के शिक्षण और विद्यार्थियों के परस्पर आदान-प्रदान का प्रयास किया। यहाँ (चीन में) मेरे प्रस्ताव को न केवल नैतिक बल मिला बल्कि भारतीय विश्वविद्यालय को यहाँ से एम.ओ.यू. तैयार कराके हाथों-हाथ देकर भी आया।

उधर से कोई साँस-डकार नहीं। मुझे लगा कि उनके हिसाब से बिना देखे ही यह विश्वविद्यालय उनसे हीनतर है। इसलिए यदि वे इससे रिश्ता जोड़ेंगे तो उनकी गरिमा वैसे ही घटेगी जैसे रावण के कारण अगाध-अपार सिंधु की घटी थी 'महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो पड़ोस।'

वहाँ से निराशा हाथ लगने के बाद मैंने महात्मा गांधी इंस्टीटयूट, मोका (मॉरीशस) से बात आगे बढ़ाई। वहाँ की हिंदी विभाग की अध्यक्षा ने खुद न केवल मुझसे फ़ोन करके विस्तृत जानकारी ली बल्कि अपने निदेशक से भी बात कर ली। इन दो उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाषा, संस्कृति और देश के हवाई उद्गार हमारी ज़ुबान पर तो बहुत जल्दी चढ़ते हैं पर हृदय प्रदेश में कम ही उतरते हैं। एक दूसरी सच्चाई यह भी है कि हम जितनी रुचि व्यक्तिगत विकास में लेते हैं उतनी संस्थागत विकास में नहीं। यही कारण है कि हम विश्व स्तर पर भाषा प्रचार के क्षेत्र में कई देशों से इतना पिछड़ गए।

यहाँ के शिक्षकों से हिंदी और हिंदुस्तान के भविष्य के बारे में चर्चा होती रहती है। सभी दोनों के उज्ज्वल और शक्तिशाली भविष्य के प्रति आश्वस्त लगते हैं। इनके साथ ही यहाँ से भारत पढ़ने गए विद्यार्थियों से भी मैंने हिंदी और हिंदुस्तान के प्रति प्रतिक्रिया जाननी चाही तो एक से एक सुंदर जवाब मिले। हिंदी सभी को कठिन लगती है लेकिन साथ-साथ सभी को अपनी मातृभाषा जैसी ही प्यारी भी लगती है। हिंदी भाषा के अलावा जब मैंने सभी विद्यार्थियों से भारत की एक सबसे अच्छी चीज़ या बात पूछी तो सबके अलग-अलग उत्तर थे। किसी को वहाँ की पुरानी और ऐतिहासिक इमारतें पसंद थीं

तो किसी को भारत का दूध। बहुत से विद्यार्थियों ने कहा 'भारत का दूध बहुत स्वादिष्ट और सस्ता है।' वास्तव में चीन में क्रीम की उपलब्धता के आधार पर सामान्यत: दूध बारह से अठारह युआन यानी भारतीय मुद्रा में 120 से 180 रुपए प्रति लीटर के भाव से मिलता है। भारत में चीन से आई हर चीज़ सस्ती है। यहाँ तक कि चीन के उत्पाद भी भारत में सस्ते हैं। इसी तरह बारी-बारी से किसी ने बॉलीवुड के गीत गाए तो कोई भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर मुग्ध था। एक छात्र हेचानशान को भारत की एक बात बहुत ही पसंद आई कि 'वहाँ (भारत में) इनसान और जानवर एक साथ रह सकते हैं।'

एक सबसे बुरी बात कि ज़्यादातर उत्तरों में स्त्रियों के प्रति भेदभाव, असुरक्षा और दुराचार की पीड़ा ही सामने आई। इसके बाद लेटलतीफी और गंदगी की चर्चा मुख्य थी। पर्यावरण के प्रति अज्ञानता और अरुचि की ओर भी एकाध ने ध्यान खींचा। मैंने इन युवाओं से भारत की बेहतरी के लिए सुझाव भी माँगे। कुछ ने कहा, 'भारत को 'एक बच्चे' की नीति सख़्ती से लागू करनी चाहिए।' कुछ ने शायद इनकी सलाह को लिखते देख लिया हो तो उन्होंने कहा कि भारत में 'एक बच्चे' का नियम लागू ही नहीं हो सकता क्योंकि वहाँ सभी को लड़का पसंद है। इसलिए दो बच्चों का नियम हो पर सख़्ती से लागू हो। मैं तो इन विद्यार्थियों की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि पर दंग था। स्त्रियों को चौके-चूल्हे से बाहर लाया जाए। कुछ छात्राओं ने कहा कि 'हमें भारत की शादी और जाति की प्रथा बहुत गंदी लगती है।' मेरे द्वारा कारण पूछे जाने पर उन्होंने बताया कि इस तरह की शादी के बाद लड़कियाँ प्राय: चौके-चूल्हे से बँधकर रह जाती हैं। उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है और वे गुलामी का जीवन जीती हैं। बच्चा कब हो या उसका लिंग निर्धारण गर्भधारण करनेवाली स्त्री नहीं बल्कि घरवाले करते हैं। यह अन्याय माना जाता रहा है लेकिन यह अन्याय नहीं उपराध की कोटि में आना चाहिए। दोनों देशों की स्त्रियों में मूलभूत अंतर जीवन शैली का है। यहाँ पूँजी पर स्त्री-पुरुष दोनों का समान अधिकार है। यहाँ दोनों समान रूप से घर से बाहर रहते हैं। यहाँ स्त्री पुरुष से मुक्त है। पूर्ण स्वतंत्र है जबकि भारत में स्त्री पुरुष से बँधी है। वहाँ पुरुष खूँटा है और स्त्री गाय। अगर खूँटा तोड़कर भागती है तो उसी खूँट से पीटी भी जाती है।

आज मेरे दिमाग में एक विचार और आया कि यदि इस हिंदी दिवस (14 सितंबर 2014) को स्त्री और बच्चों को समर्पित कर दिया जाता, इन पर सभी संस्थाएँ लेख लिखवातीं, नाटक करवातीं, फ़िल्में दिखातीं और बच्चों तथा स्त्रियों को सांस्कृतिक टूर पर ले जातीं तो कैसा रहता? फिर लगा, नहीं ऐसा करने से शायद उपद्रव मच जाता। अब प्रश्न उठता है क्यों? इसका सीधा सा उत्तर है— बड़े-बड़े मठाधीशों की दिहाड़ी मारी जाती। टी.वी. के स्क्रीन पर बच्चों और स्त्रियों के आगे वे नहीं जोड़ पाते। अखबारों की कतरनें अपनी प्रोफ़ाइल में नहीं जोड़ पाते। मेरा एक विचार है कि हिंदी दिवस पर केवल हिंदी की बातें करते-करते लोग बोर होने लगे हैं। अब आगे के कुछ हिंदी दिवसों पर 'केवल हिंदी की' नहीं 'केवल हिंदी में' बातें की जाएँ।

एक और बात जिसे मैं भी तोड़ता रहता हूँ कि हिंदी में ज़रूरत से ज़्यादा दूसरी भाषाओं के शब्द न भरे जाएँ। सुविधा के लिए दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनाते-अपनाते हमने अपनी हिंदी को कबीर से भी आगे की कबीरी हिंदी यानी पंचफोरन (पंचमेल खिचड़ी) बना लिया है। यह प्रयोग शब्दों तक ही सीमित नहीं है। हम वाक्य विन्यास के स्तर पर भी निस्संकोच ऐसे प्रयोग कर रहे हैं जो विश्वग्राम के युग में अगर निंदनीय नहीं हैं तो बड़े उत्साह वाले और अभिनंदनीय भी नहीं हैं। क्रियापदों से अलगाई जाने वाली भाषा समूचे वाक्य कैसे निगल सकती है। लेकिन उसे ज़बरन निगलवाया जा रहा है। भाषा को समावेशी बनाने का पक्षधर मैं भी हूँ लेकिन बहुत बेमेल खिचड़ी नहीं। बहुत अधिक बेमेल होने पर बोलने और सुनने किसी में भी आनंद नहीं आता।

आज मैं सोच रहा हूँ कि अपने देश में अगर 14 सितंबर सोमवार या मंगलवार को पड़ता तो कितने ज़ोरदार ढंग से ताज़िया निकलते। लेकिन आज तो रविवार है। छुट्टी का दिन। बहुतेरे 11 बजे तक तान के सोए होंगे। इसी बीच चैनलों पर फ़र्ज़ अदायगी वाले हिंदी के कई कार्यक्रम निकल भी गए होंगे। यदि मैं स्वदेश में होता तो कम-से-कम अपने विभाग में आज के दिन हिंदी दिवस मनाने का अभिनय अवश्य करता। आने का मन तो मेरा भी नहीं होता पर हिंदी के प्रति अपने जानलेवा प्यार को मटक-मटककर दिखाता और बहुतों की छटपटाहट का आनंद लेता। हिंदी के ताज़िया निकलने वाले कितने लोगों ने आज अपने दफ्तर जाकर हिंदी दिवस मनाया। कितने प्रकाशकों ने अपने लेखकों को कम-से-कम एक लेखनी देने का उपक्रम किया। कितने लेखकों ने आज हिंदी की एक किताब खरीदी। कितनों ने हिंदी पर गंभीरता से सोचा। कल यानी 15

सितंबर को अगर किसी अखबार में आदरणीय नामवर सिंह जी भी '2015 में हिंदी की स्थिति' पर कोई आलेख भेजेंगे तो उसे भी 15 सितंबर, 2015 के हिंदी विशेषांक हेतु संरक्षित जैसी संपादकीय टिप्पणी के साथ अगले साल के लिए सुरक्षित कर लिया जाएगा। हम कितने सच्चे हैं कि सच में दिवस ही मानते हैं। इसलिए हिंदी पर लिखी सामग्री अगले दिन ही बासी हो जाती है।

आज हिंदी देश की ही नहीं दुनिया की भाषा हो चुकी है। इसलिए इसे बड़े अदब से चीन भी झुककर सलाम कर रहा है। आज हिंदी में उसी तरह अंतरराष्ट्रीय सेमिनार संपन्न हो रहे हैं जैसे कभी अंग्रेज़ी में हुआ करते थे। जहाँ तक मेरी सीमित जानकारी है उसके आधार पर अकेले भारत में सन् 2014 के अंत तक दस-बारह अंतरराष्ट्रीय सेमिनार संभावित हैं। भारत से बाहर चीन में तीन संभावित हैं। अभी हाल में सिओल, थिंपू और सिंगापुर में हिंदी सेमिनार सफलतापूर्वक संपन्न हुए हैं और कुछ अन्य देशों में भी प्रयास जारी हैं। इन सेमिनारों पर यह आरोप भी लगता है कि आजकल फ़ैशन के तौर पर कुछ लेखक विदेश भ्रमण करते हुए हिंदी का उद्धार कर रहे हैं। कुछ भी हो हिंदी में हलचल तो हो रही है।

यहाँ कोई मंडारिन दिवस नहीं मनाता। सबके दिलों में उसका वास है। अभी ये भी दुनिया भर की भाषाएँ पढ़ने लगे हैं लेकिन अपनी भाषा से प्रेम कम नहीं हुआ है। दूसरी भाषाएँ इनकी रोज़गार-मूलक भाषाएँ हैं। इनकी अभिव्यक्ति का मूल माध्यम अब भी मंडारिन और कैटोनीज़ ही हैं। काश हम भी अंग्रेज़ी से अपना मोह थोड़ा कम कर पाते और अपनी-अपनी मातृभाषाओं में बोल-बतिया कर आनंद पाते। हिंदी दिवस, सप्ताह, पखवाड़ा या माह मनाकर हर वर्ष बैनर समेट के रख लिया जाता है। ये सब भी प्राय: श्राद्ध के दिनों में ही पड़ते हैं। इसलिए मुझे लगता है कि लोगों में अपने पुरखों की तरह हिंदी के लिए भी रोने का मौसम बन जाता है। यही वजह है कि जैसे ही सितंबर आता है, जगह-जगह ताज़िया रखे जाने लगते हैं। 14 सितंबर तक लोग छाती पीट-पीटकर लहूलुहान हो जाते हैं। उन्हें सोचना चाहिए कि हिंदी अब दयनीय नहीं रही। इसलिए अब हिंदी पर रोने की नहीं गर्व करने की ज़रूरत है। अब किसी भी दृष्टिकोण से हिंदी दिवस मना के श्राद्ध करने की ज़रूरत शेष नहीं रही है।

हिंदी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। इसलिए मेरा मन करता है इस दिन रोने की परंपरा बंद की जाए। हिंदी दिवस मनाना ही है तो इसे उत्सव की तरह मनाया जाए। नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, म्याँमार, त्रिनिदाद, गयाना, फ़ीजी, मॉरीशस और सूरीनाम सहित अन्य भारतीय आबादी बहुल देशों की हिंदी जानने, समझने और बोलने वाली जनसंख्या को इस उत्सव में अपनेपन के साथ शामिल किया जाए। अब तक इन्हें ऐसे देखा जाता रहा है जैसे हिंदी से इनका कोई सरोकार ही न हो। हिंदी के साथ यह बहुत बड़ा षड्यंत्र है। इसे हिंदी-जगत नज़रअंदाज़ कर हिंदी के साथ-साथ अपना व्यक्तिगत नुकसान भी कर रहा है। मेरे हिसाब से उर्दू बोलने वालों को हिंदी से काटकर देखा जाना भी बिल्कुल गलत है। आँकड़े तैयार करने वाले उर्दू बोलने वालों को हिंदी से अलग रखते हैं। ऐसा करके वे भाषा के लिखित रूप पर नज़र रखते हैं न कि बोलचाल के रूप पर। यदि उपर्युक्त सभी देशों के हिंदी भाषियों को जोड़ लिया जाए तो निस्संदेह रूप से हिंदी विनर भले न हो पर वर्तमान संसार की रनर-अप भाषा ज़रूर बन जाती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि अब तक पहले स्थान पर बैठी चीनी (मंडारिन) को सबसे बड़ी चुनौती हिंदी से ही मिल रही है। इस चुनौती को चीनी नागरिक स्वस्थ स्पर्धा के रूप में लेकर बहुत तेज़ी से हिंदी की ओर झुक रहे हैं। आओ, हम भी मंडारिन की ओर हाथ बढ़ाएँ। इस समय चीन के नौ विश्व विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अभी कई विश्वविद्यालय इच्छुक हैं कि उन्हें भारत के किसी विश्वविद्यालय से सहयोग मिल जाए। इस दृष्टि से हिंदी वैश्विक हो चुकी है। उसके इस वैश्विक स्वरूप को सजाएँ-सँवारें और साल के 365 हिंदी दिवसों को सार्थक बनाएँ।

आखिर हम कब उबरेंगे अपनी इस सोच से कि केवल अंग्रेज़ी से ही हमें रोज़गार मिल सकता है। कब हिंदी के 365 दिवस प्रतिवर्ष मनेंगे? एक अधिवर्ष के साथ हर चौथे साल जब किसी वर्ष 366 हिंदी दिवस मनेंगे, उस दिन हिंदी भाषा के इतिहास में दीवाली का दिन होगा। यह भी मैं आज इसलिए लिख रहा हूँ ताकि सनद रहे और मेरा यह पवित्र तथा नितांत मौलिक विचार कल तक बासी न हो जाए।

हिंदी विभाग, गुआंगदोंग अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय,
गुआंगझोऊ, चीन
dr.gunshekhar@gmail.com
साभार : गर्भनाल—वर्ष-4, अंक-8
इंटरनेट संस्करण 95, अक्टूबर 2014

8 नेपाली हिंदी : भाषिक संबंध

● डॉ. मृदुला शर्मा

धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय तथा भाषिक विविधता का देश नेपाल हिमालय की गोद में अवस्थित एक स्वतंत्र राष्ट्र है। यह भारत के उत्तर में करीब 500 मील की लंबाई में पूरब से पश्चिम तक अर्थात मेची से महकाली तक फैला हुआ है। आकार में छोटा होते हुए भी यह अपने अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य, शौर्य तथा सांस्कृतिक चेतना के कारण शुरू से ही ज्ञान पिपासु और पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र रहा है।

नेपाल के केवल पहाड़ी क्षेत्र में ही कई भाषाएँ बोली जाती हैं। सांस्कृतिक संपर्क भाषिक सन्निकट स्रोत की दृष्टि से नेपाल और भारत सा दूसरा उदाहरण विश्व में नहीं। भारत की तरह नेपाल में भी भोरोपेली, तिब्बती (भोट), चिनियाँ, आग्रेली तथा द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं।

भारत और नेपाल के बीच कैसा और कितना आत्मीय संबंध है इसकी चर्चा करने के पूर्व यह जानना आवश्यक हो जाता है कि इन दोनों राष्ट्रों की भाषा नेपाली और हिंदी में कितनी समानता है। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य भी उक्त विषय की जानकारी देना है।

जन्म : 22 सितंबर, 1951

शिक्षा : बी.ए/बी.एड., एम.ए., पीएचडी त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडु, नेपाल

- 15 वर्षों से शिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत
- संप्रति एसोसिएट प्रोफेसर
- **प्रकाशन** : साहित्यिक आलेख, शोध पत्र, कहानियों के हिंदी अनुवाद, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय प्रकाशनों में कविताएँ प्रकाशित (उन्नयन, मधुपर्क, गरिमा, नारी, गगनांचल, समकालीन हिंदी साहित्य, नागरिक प्रचारिणी, कादंबिनी, शांतिदूत, विश्व हिंदी सचिवालय पत्रिका आदि)
- **प्रकाशित पुस्तकें** : Feelings of Nepali Writers, Village: Long & Short poems of Nepali poet, Manjul, The pen tips of Nepali women, Concise Hindi-Nepali Dictionary, Representative stories of Nepali Writers, Expressions, Nepali poet Vyathit and his Hindi literary works, Concise Nepali-Hindi Dictionary, Prose Selection, Concise Dictionary of Nepal-Hindi Proverbs & Idioms, Prose & Poetry Collection.

सम्मान : महेंद्र विद्या भूषण, भारती उपाध्याय कला प्रबंधन केंद्र साहित्य सम्मान, नेशनल हिंदी सम्मान आदि।

भारोपेली परिवार की भाषा

भारोपेली भाषा परिवार के अंतर्गत नेपाल में सबसे अधिक नेपाली बोली जाती है। भाषा विकास के क्रम में नेपाली भाषा विभिन्न पड़ावों को पार कर आज औपचारिक रूप में राष्ट्रभाषा बनी है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह नेपाल की संपन्न और समृद्ध भाषा है। नेपाली भाषा के अतिरिक्त यहाँ भारोपेली भाषा की अन्य उप-भाषाओं का खुलकर प्रयोग होता है। खुली सीमा के कारण भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा सिक्किम से बहुत पहले लोग यहाँ आकर बस गए थे। ये आगंतुक नेपाल में रहते हुए भी आपस में अपनी मातृभाषा अर्थात मैथिली, भोजपुरी, थारु, अवधी, मगही, उर्दू, मारवाड़ी, बंगाली और हिंदी बोला करते हैं। हिंदी भाषा में ये मैथिली, भोजपुरी, थारु तथा अवधी आदि के शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो उचित नहीं क्योंकि ऐसा करने पर मैथिली, भोजपुरी, थारु तथा अवधी जैसी भाषाएँ अंततोगत्वा लोपावस्था की स्थिति में जा सकती हैं। नेपाल में हिंदी समझनेवालों की संख्या कम नहीं। भारत में भी प्रवासी नेपालियों की जनसंख्या लगभग नेपाल की कुल जनसंख्या के बराबर है। जो हमारे बीच के भाषिक और सांस्कृतिक संबंध दिखाता है। आदिकालीन सिद्ध और नाथ संप्रदायों की परंपरा में लिखे गए अभिलेख और ग्रंथों से यह प्रमाणित होता है कि आदिकाल से लेकर आज तक दोनों राष्ट्रों का एक-दूसरे के भाषिक श्रीवृद्धि में योगदान रहा है।

नेपाल की राष्ट्रीय जनगणना वि. सं. 2068 के अनुसार नेपाल में 123 मातृभाषाएँ हैं जिसमें अधिक संख्या नेपाली बोलनेवालों की है। केवल पहाड़ी क्षेत्र में तेरह भाषाएँ बोली जाती हैं अन्य क्षेत्र में न जाने कितनी भाषिकाएँ हैं। दो वर्ष पूर्व नेपाल के केंद्रीय तथ्यांक विभाग द्वारा दिए गए सर्वेक्षणनुसार नेपाली बोलनेवालों की जनसंख्या 48.6 प्रतिशत, मैथिली की 22.56, भोजपुरी की 11.58 और थारु की 11.10 है। नेपाल सरकार के राष्ट्रीय योजना आयोग सचिवालय के केंद्रीय तथ्यांक विभाग द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार नेपाली के पश्चात यहाँ दूसरी-तीसरी भाषा मैथिली, भोजपुरी

और थारु ही हैं। तत्पश्चात तामाड, नेवारी आदि भाषाएँ हैं। भारत की तरह नेपाल की अन्य उप-भाषाओं का विकास भी प्राय: संस्कृत के मागधी और अर्धमागधी से हुआ है।

मैथिली

मैथिली भाषा मागधी प्राकृत से विकसित हुई है। मिथिला क्षेत्र की मातृभाषा होने के कारण इसे मैथिली कहा गया है। यह नेपाल के पूर्वी क्षेत्र जनकपुर के साथ ही अन्य क्षेत्र जैसे—सर्लाही, रौतहट, गौर, महोत्तरी, धनुषा, सिरहा और विराटनगर में बोली जाती है। इसी जनकपुर में जगत जननी सीता ने पृथ्वी के गर्भ से जन्म लिया था। मैथिली भाषा नेपाल और भारत दोनों में बोली जाती है। इसकी अपनी लिपि है, जिसे 'तिरहुताक्षर' और 'मिथिलाक्षर' भी कहते हैं। पर अब इस लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि का प्रयोग होने लगा है। साहित्यिक दृष्टि से यह समृद्ध भाषा है।

भोजपुरी

मागधी प्राकृत से भोजपुरी भाषा का विकास हुआ है। दसवीं शताब्दी में सधुक्कड़ी भाषा में जो रचनाएँ हुई थीं उनमें इस भाषा का प्रयोग मिलता है। यह नेपाल की मध्य तराई भू-भाग, जैसे-बारा, पर्सा, चितवन, रुपंदेही आदि में बोली जाती है। इसकी अपनी लिपि है जिसे कैथी लिपि कहते हैं। पर अब यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

थारु

थारु भाषा का संबंध मागधेली प्राकृत से है। यह नेपाल के पूर्व में मोरंग से लेकर पश्चिम तक जैसे—कपिलवस्तु, दाड़, देउखुरी, कैलाली, कंचनपुर और बर्दिया आदि ज़िलों में बोली जाती है। यूँ तो साहित्यिक दृष्टि से थारु भाषा की श्रेष्ठ रचनाएँ उपलब्ध नहीं पर सातवीं शताब्दी (अंशुवर्मा के समय) का शिलालेख जो चापागांव में उसमें थारु शब्द का प्रयोग मिलता है। आजकल इस भाषा की कुछेक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ बाज़ार में आने लगी हैं। थारु भाषा में तिब्बती और बर्मेली भाषा परिवार की विशेषता मिलने के कारण इसे बर्मेली शाखा की भाषा भी कहते हैं। परंतु मूल रूप में यह भारोपेली भाषा परिवार की ही भाषा है।

> **संस्कृत की अर्धमागधी प्राकृत से अवधी भाषा का विकास माना जाता है। यह मुख्यतः नेपाल के पश्चिम तराई, जैसे-नवलपरासी, रुपंदेही, कपिलवस्तु से लेकर वर्दिया, कंचनपुर तक बोली जाती है। वर्षों पहले नेपाल में इस भाषा की कुछेक काव्य रचनाएँ, जैसे—दड़गी शरण तथा रतनबोध आदि हुई थीं पर इधर कोई ठोस रचनाएँ नहीं मिलतीं।**

अवधी

संस्कृत की अर्धमागधी प्राकृत से अवधी भाषा का विकास माना जाता है। यह मुख्यत: नेपाल के पश्चिम तराई जैसे-नवलपरासी, रुपंदेही, कपिलवस्तु से लेकर वर्दिया, कंचनपुर तक बोली जाती है। वर्षों पहले नेपाल में इस भाषा की कुछेक काव्य रचनाएँ जैसे—'दड़गी शरण' तथा 'रतनबोध' आदि हुई थीं पर इधर कोई ठोस रचनाएँ नहीं मिलतीं।

मगही

मगही भाषा मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है। नेपाल की खुली सीमा के कारण बिहार प्रांत से आए लोग नेपाल में मगही बोला करते हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह समृद्ध भाषा नहीं।

उर्दू और चुरेटी

नेपाली इस्लाम धर्मी समुदाय इस भाषा का प्रयोग किया करते हैं। इसकी लिपि अरबी है। इसका साहित्य अत्यंत समृद्ध है।

मारवाड़ी

मारवाड़ी भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसे 'राजस्थानी' भाषा भी कहते हैं। व्यापारिक उद्देश्यों से ये मारवाड़ी राजस्थान से नेपाल आए थे। आपस में ये अपनी मातृभाषा मारवाड़ी बोला करते हैं। ये मारवाड़ी वर्ग व्यापार के सिलसिले में नेपाल के विभिन्न क्षेत्र में पाए जाते हैं।

बंगाली

रोज़गार और काम के सिलसिले में नेपाल आए। बंगालवासी आपस में बंगाली बोला करते हैं। यद्यपि मैथिली, भोजपुरी आदि भाषाभाषी की तुलना में इनकी संख्या नेपाल में कम है पर साहित्यिक दृष्टि से इनका साहित्य अत्यंत समृद्ध है।

अंग्रेज़ी

अंग्रेज़ी भाषा को चूँकि अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है इसीलिए नेपाली जनता भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खड़ा होने के लिए इस भाषा का प्रयोग करती है। अंग्रेज़ी के संबंध में कई विद्वानों का यह मत है कि इसका विकास भारोपेली परिवार की केंतुम शाखा की जर्मनिक (ट्यूटानिक) भेद से हुआ है। साहित्यिक दृष्टि से यह अत्यंत संपन्न और समृद्ध भाषा है।

ताजपुरी

ताजपुरी भाषा को राजवंशी भाषा भी कहते हैं। यूँ तो यह नेपाल के झापा और विराटनगर में बोली जाती है। पर मुख्य रूप से यह आसाम के निचले क्षेत्र और उत्तर-पूर्वी बंगाल की भाषा है। इस भाषा की समृद्ध साहित्यिक रचना नहीं मिलती, छिटपुट रचनाएँ ही मिलती हैं।

दनुवारी

नेपाल की दनुवार जाति की यह भाषा है। इस भाषा का विकास मागधी प्राकृत से हुआ है। इस भाषा के वक्ता नेपाल के पश्चिम तथा भीतरी मध्य भू-भाग के आस-पास महाभारत पर्वत के निकट रहते हैं। इनमें अधिकांशत: नेपाल के कमलाखोंच और मरिन नामक पहाड़ी नदी के निकट जैसे—काभ्रे, पाँचथर, सिंधुली, उदयपुर, झापा और मोरंग में रहते हैं। इनका रहन-सहन थारुओं से मिलता-जुलता है। इनकी भाषा में मैथिली, भोजपुरी, हिंदी के अतिरिक्त भोटिया और बर्मेली परिवार की भाषा के शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। इसीलिए यदि इसे मिश्रित भाषा कहा जाए तो शायद अत्युक्ति न हो। साहित्यिक दृष्टि से यह समृद्ध भाषा नहीं।

दरै

संस्कृत की अर्धमागधी से दरै भाषा विकसित हुई है। यह नेपाल के तनहुँ, पाल्पा तथा चितौन आदि ज़िलों में बोली जाती है। इस भाषा में नेपाली, कुमाले और बोटे भाषा के शब्द मिलते हैं। हजसन ने इसे तुरानियन से संबंध रखनेवाली भाषा कहा है पर ग्रियर्सन ने इसे भरोपेली भाषा के अंतर्गत ही रखा है। इसका साहित्य समृद्ध नहीं।

कुमाले

यह नेपाल की कुम्हार जाति की भाषा है। इस भाषा का विकास अर्धमागधी प्राकृत से हुआ है। यह नेपाल के तनहुँ, पाल्पा और चितवन ज़िलों में बोली जाती है। इस भाषा में नेपाली, भोजपुरी, माझी, दनुवारी और दरै भाषा के शब्द मिलते हैं। कुछ भाषाविदों के मतानुसार शुरू में इस समुदाय की भाषा आग्नेली परिवार की थी भारोपेली परिवार के वक्ता के संपर्क में आने के पश्चात ही इन्होंने भारोपेली परिवार की भाषा बोली है। इनका साहित्य भी समृद्ध नहीं।

माझी

यह नेपाल के मल्लाह वर्ग की भाषा है। इस भाषा का विकास मागधी प्राकृत से हुआ है। हजसन ने इसे 'कुशवार' भाषा कहा है। ये लोग पूर्वी और पश्चिमी नेपाल की बड़ी-बड़ी नदियों के तट पर रहते हैं। भाषाविदों के अनुसार ये पहले आग्नेली परिवार की भाषा बोला करते थे। भारोपेली परिवार की भाषा का प्रयोग अपने बोलचाल के क्रम में शुरू किया है।

बोटे

बोटे भाषा अर्धमागधी प्राकृत से विकसित हुई है। यूँ तो यह माझी, दनुवार, कुमाले, दरै, मैथिली, भोजपुरी आदि से प्रभावित दिखती है पर मूल रूप में यह नेपाली भाषा से ही प्रभावित रही है। यह नेपाल के पाल्पा, तनहुँ, गुल्मी, पर्वत, बाग्लुड़, स्यांजा आदि स्थानों में बोली जाती है। साहित्यिक दृष्टि से इसका साहित्य समृद्ध नहीं।

चिनियाँ तिब्बती परिवार की भाषा

चिनियाँ तिब्बती भाषा परिवार के अंतर्गत नेपाल में ढेर सारी भाषाएँ बोली जाती हैं। जिनमें मुख्य हैं—तामाड़ी, नेवारी, मगर, राई-किराती, लिंबु, गुरुड़ी, सेर्पेली, चेपाड़ी, थामी; धिमाल, थकाली, जरेली, मेचे, सुनवारी, हायु (वायु), व्यासी, राउटे, पहरी, तिब्बती, लेप्चा, दुरा, काईके (कैके) आदि। इनके अतिरिक्त कागते, मनाड़े, मुर्मी, डोल्पाली, अठपहंरिया, घले, राजी, कुसुंडा, तिछुरोड़, बेल्हारे, छिंताड़, तेली, मुगाली, फाड़दुवाली, थाक्खा, यारख्खा, थाम्फे, दक्षिणीलोरुड़ (लोरड़), उत्तरी लोरुड़ (लोरड़), पुमा (पोमा), चाम्लिड़ (चाम्लड़), दुड़माली, कुलुड़, नाछेरिड़ (नाछिरिड), छुक्वा (चुक्वा), साड़पाड़, मेवाहाड़, मेवोहाड़, पोडयोड़, खालिड़, दुमी, कोयू, जेरुड़, चोरास्या, उंबले, तिलुड़, थुलुड़, लिड़खिम, वांतवा, पश्चिमी किराती आदि भाषाएँ भी नेपाल के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं।

तामाड़ी

यह तामाड़ जाति के लोगों की मातृभाषा है। कर्णाली अंचल के आसपास के क्षेत्रों के अतिरिक्त काठमांडू घाटी के अन्य क्षेत्र जैसे- काभ्रेपलाञ्चोक के मध्य और पहाड़ी इलाकों में, जैसे—सिंधुपाल्चोक, रसुवा, नुवाकोट, धादिड़, मकवानपुर, सिंधुली एवं रामेछाप में बोली जाती है। तामाड़ी भाषा पहले तिब्बती लिपि में लिखी जाती थी पर बाद में चलकर यह देवनागरी लिपि में लिखी जाने लगी। तामाड़ी भाषा की पहली पुस्तक 'जिकतेन तामछ' (तामाड़ वंशावली, 1956 ई.) को बुद्धिमान मोक्तान ने देवनागरी लिपि में लिखा था। इन दिनों इस भाषा में 'म्हेंदों' तथा 'फयापुल्ला' आदि जैसी कुछेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी हैं।

नेवारी

यह नेपाल की नेवार जाति की मातृभाषा है। काठमांडू घाटी की यह प्राचीनतम भाषा है। यह बारहवीं शताब्दी से पूर्व की भाषा है। प्राचीन ग्रंथ और शिलालेखों में नेवारी भाषा को 'नेपाल भाषा', स्वदेश भाषा के अतिरिक्त 'आदर्श नेवारी' भाषा भी कहते हैं। इसकी अपनी लिपि है जो 'रंजना लिपि' कहलाती है। यह विभिन्न शैलियों में जैसे—भुँजिमोल, क्योमोल, गोलमोल तथा लुतिमोल आदि नौ लिपियों में लिखी जाती है। नेवार जाति नेपाल का व्यापारी वर्ग है। ये नेपाल के प्राय: सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। विश्व-विद्यालयी स्तरों पर भी इस भाषा की पढ़ाई होती है। इस भाषा की विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ एवं साहित्यिक संस्थाएँ हैं। अब इस भाषा पर देश-विदेशों में अनुसंधान कार्य भी हो रहे हैं।

मगर

मगर जाति की भाषा को मगर भाषा के अतिरिक्त मगराती, लाड़ाली, कपिसेली, कपिकेमी, काइकेली, लाखाली, माकेली भी कहा जाता है। इस भाषा का मूल क्षेत्र गंडक क्षेत्र यानी मध्य नेपाल है। इन दिनों यह भाषा विकास की ओर उन्मुख है क्योंकि अब इस भाषा का सांगीतिक और साहित्यिक विकास हो रहा है। देश-विदेशों में भी इस भाषा पर अनुसंधानात्मक कार्य हो रहे हैं।

राई-किराती

राई-किराती मुख्य रूप से पूर्वी नेपाल के निवासी हैं। राई-किराती के उपनामों में जिस प्रकार भिन्नता है ठीक उसी प्रकार इनकी भाषा में भी भिन्नता है। इस भाषा के कहीं बाईस तो नहीं छत्तीस रूप देखने को मिलते हैं। ये राई-किराती नेपाल के संखुवासभा, उदयपुर, भोजपुर, ओखलढुँगा, धनकुटा, खोटाड़ तथा इलाम में पाए जाते हैं। इनका साहित्य भी उतना समृद्ध नहीं दिखता।

थकाली

नेपाल के पश्चिम क्षेत्र में अर्थात 'थाक खोला' (थाक नामक पहाड़ी नदी) के इर्द-गिर्द बसनेवालों की यह भाषा है। तामाड़ी भाषा से यह बहुत कुछ मिलती है। प्रारंभ में यह कथ्य भाषा थी इसीलिए लिखित रूप में इसका कोई प्राचीन ग्रंथ नहीं मिलता। पर अब इस भाषा की कुछ पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ बाज़ार में आने लगी हैं।

लिंबु

लिंबु भाषा नेपाल के इलाम, पाँचथर, तेरथुम, ताप्लेजुड़, धनकुटा तथा संखुवासभा के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। इस भाषा की अपनी लिपि है जिसका विकास नवीं शताब्दी में हो चुका था पर यह

देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इसमें 'मुंधुम' नामक धार्मिक ग्रंथ भी है।

गुरुड़गी

नेपाल के मनाड़, मुस्ताड़, कास्की, लमजुड़, तनहुँ, स्याड़जा, गोरखा तथा पर्वत आदि ज़िलों में रहनेवाले गुरुड़ जाति की यह मातृभाषा है। साहित्यिक दृष्टि से इसका पूर्ण विकास अभी तक नहीं हो पाया है।

सेर्पेली

शेरपा जाति की यह भाषा है। ये नेपाल के सोलुखुंबु और मुस्ताड़ के निवासी हैं। पर अब ये नेपाल के विभिन्न स्थानों में रहने लगे हैं। साहित्यिक दृष्टि से ये अभी कम विकसित ही है।

चेपाड़गी

चेपाड़ जाति की यह मातृभाषा है। नेपाल के धादिड़, मकवानपुर, चितवन और गोरखा के इलाकों में इस भाषा को बोलनेवाले अधिक हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह अभी तक विकसित नहीं हो पाई है।

थामी

थामी भाषा धिमाल और लिंबु भाषा से मिलती-जुलती भाषा है। पहले यह सुनवार भाषा के अंतर्गत थी पर अब यह स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा के वक्ता नेपाल के सिंधुपाल्चोक, रामेछाप, सिंधुली और ओखलढुँगा आदि क्षेत्रों में पाए जाते हैं। कोई ठोस साहित्यिक कृति इस भाषा की नहीं मिलती।

धिमाल

यह नेपाल के धिमाल जाति की भाषा है। राई, लिंबु और खुंबु से ये बहुत कुछ मिलती-जुलती है। शायद इसीलिए धिमाल जाति इन्हें अपना सहोदर यानी भाई-बहन मानते हैं। इस भाषा का प्रयोग भारत के कुछ प्रांतों में भी लोग करते हैं।

जिरेली

जिरेली भाषा पर शेरपा और तामाड़ी भाषा का प्रभाव दिखता है। यह नेपाल की दोलखा ज़िले के अंतर्गत जिरी में बोली जाती है। साथ ही यह नेपाल के अन्य क्षेत्र जैसे-क्षेत्रपा, जुँगु, चेतपु, इयाँकु आदि में भी बोली जाती है। साहित्यिक दृष्टि से यह भाषा अभी कम विकसित है।

मेचे

नेपाल की मेची नदी के आस-पास बोली जाने के कारण इसका नाम मेचे पड़ा। मेचे भाषा को 'बोडे' या 'बोडो' भाषा भी कहते हैं। यह आसाम की कोचारी जाति की (आग्नेली परिवार की) भाषा से मिलती है। नेपाल में यह झापा के शनिश्चरे, धुलावारी, दमक, बुधवारे, जलथल, जाइजन और लाखुरीबारी में अधिक बोली जाती है। इसका साहित्य उतना समृद्ध नहीं।

हायु

हायु भाषा को वायु भाषा भी कहते हैं। यह सुनकोसी और लिखु के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। इसके प्रयोक्ता समुदाय की संस्कृति लिंबु जाति की एका वर्ग से बहुत कुछ मिलती है। इस भाषा पर नेपाली भाषा का ही अधिक प्रभाव है। साहित्य की दृष्टि से यह अभी कम विकसित है।

व्यासी

दार्चुला ज़िले के व्यास पर्वत की तलहटी में बोले जाने के कारण यह व्यासी भाषा कहलाई। भारत के कुछेक क्षेत्रों में भी इस भाषा को बोलनेवाले लोग मिलते हैं। इस भाषा पर अभी तक विशेष अध्ययन नहीं हुआ है।

राउटे

नेपाल के खानाबदोश और बंजारे लोग हैं। इनकी भाषा को 'राउटे' और 'खाम्ची' भाषा भी कहते हैं। राउटे भाषा नेपाल की काली गंडकी और कर्णाली नदी के मध्य भाग में बोली जाती है। निश्चित ठौर ठिकाना न होने के कारण इनकी भाषा की प्रकाशित साहित्यिक रचनाएँ नहीं मिलतीं।

पहरी

पहरी भाषा को नेवारी की उपभाषा भी कहते हैं। यह काठमांडू घाटी के आस-पास के ज़िलों में जैसे—ललितपुर, काभ्रेपलांचोक तथा

सिंधुपलांचोक में बोली जाती है। इस भाषा की साहित्य समृद्ध नहीं।

तिब्बती

यूँ तो तिब्बती भाषा का मूल क्षेत्र तिब्बत है, पर यह नेपाल के उत्तरी क्षेत्र में बोली जाती है। इसकी ब्राह्मी लिपि है। धार्मिक ग्रंथ तो इस भाषा के मिलते हैं, पर साहित्यिक पुस्तकें नहीं मिलतीं।

लेप्चा

लेप्चा भाषा तिब्बती भाषा से मिलती है। यह मुख्यतया सिक्किम और नेपाल के पूर्वी क्षेत्र के इलाकों में बोली जाती है। इस भाषा का बौद्ध धार्मिक ग्रंथ जो सातवीं शताब्दी में लिखा गया था आज भी उपलब्ध है। किंतु अब यह कथ्य रूप ही रह गई है।

दुरा

लमजुड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में यह भाषा बोली जाती है। इस भाषा का संबंध 'मगर' भाषा से है। यह एक प्रकार से लोपोन्मुख भाषा हो चुकी है। अब कुछेक वृद्धजन ही इस भाषा का प्रयोग कर पाते हैं। बाकी सभी नेपाली ही बोला करते हैं।

काइके

डोल्पा ज़िले के कुछ हिस्सों में काइके भाषा बोली जाती है। भाषागत अध्ययन इस भाषा में अभी तक कम हुआ है।

आग्नेली परिवार की भाषा

भारत और नेपाल में आग्नेली में परिवार की भाषा की गणना सर्वप्राचीन भाषा में होती है। दक्षिण एशिया और उत्तरी हिंद चीन के निवासी जो असम से होते हुए भारत और नेपाल आए थे, उन लोगों द्वारा इस भाषा का प्रयोग हुआ करता था। आज भी भारत के असम और बिहार में इस भाषा का प्रयोग कुछ लोग करते हैं। नेपाल में आग्नेली परिवार की यह भाषा सतार और संथाल नाम से झापा और मोरंग में बोली जाती है। इस भाषा का महत्वपूर्ण ग्रंथ तो नहीं मिलता पर पत्र-पत्रिकाओं में इसकी चर्चा प्राय: होती ही रहती है।

द्रविड परिवार की भाषा

आर्यों के आगमन से भारत और नेपाल में मंगोल और आग्नेली भाषा परिवार के वक्ता ही प्राय: पाए जाते थे। यूँ तो द्रविड़ परिवार की अधिकांश भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं पर नेपाल में भी इस परिवार की कुछ भाषाएँ बोली जाती हैं। नेपाल की झाँगड़ भाषा को द्रविड़ परिवार की भाषा माना जाता है। किसान भाषा को कुछ लोग इन दिनों द्रविड़ परिवार की भाषा मानने लगे हैं।

झाँगड़

द्रविड़ परिवार की झाँगड़ भाषा को धाँगड़ भाषा भी कहते हैं। भारत के नागपुर के कुरुसा भाषा से यह कुछ-कुछ मिलती-जुलती है। यह नेपाल के तराई क्षेत्र में बोली जाती है। तराई की अन्य भाषाएँ जैसे—मैथिली, भोजपुरी आदि का प्रभाव इसपर दिखता है।

किसान भाषा

नेपाल के पूर्वी तराई के किसान वर्ग ही प्राय: इस भाषा का प्रयोग करते हैं। विक्रम संवत् 2058 की जनगणना के दौरान इसे द्रविड़ भाषा में शामिल किया गया है।

उपरोक्त भाषा परिवार के अतिरिक्त नेपाल में एक ऐसी भाषा भी है, जिसे एकल भाषा या कुसुंडा भाषा कहते हैं। कुसुंडा जाति के लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं। यह नेपाल के तनहुँ, गोरखा, प्युठान और दाड ज़िले में बोली जाती है।

अंग्रेज़ी भाषाविद बोलिंगर ने लिखा है कि ''भाषाएँ मनुष्य के समान हैं। अपनी आंतरिक समानताओं के बावजूद, उस भाषा की बोलनेवालों की संख्या जितनी अधिक होगी उसमें उतनी ही विविधता होगी।'' उनका यह कथन नेपाल के परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल सही उतरता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. सूर्यनाथ गोप, नेपाल में हिंदी और हिंदी साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, 1994
2. मोहन राज शर्मा, कृष्ण हरि बराल, भाषा विज्ञान—नेपाली भाषा, काठमांडू बुक सेंटर, भोटाहिटी, वि.सं. 2050
3. राममूर्ति सिंह, हमारे पड़ोसी राष्ट्र, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1949

4. चूड़ामणि बंधु, नेपाली भाषा की उत्पत्ति, साझा प्रकाशन, काठमांडू, वि.सं. 2037
5. ठाकुर प्रसाद पराजुल, नेपाली साहित्य की परिक्रमा, नेपाली विद्या प्रकाशन, काठमांडू, वि.सं. 2045
6. बालकृष्ण पोखरेल, नेपाली भाषा साहित्य, रत्न पुस्तक भंडार, काठमांडू, वि. सं. 2032
7. बालकृष्ण पोखरेल, राष्ट्रभाषा, साझा प्रकाशन, काठमांडू, वि.सं. 2032
8. डॉ. देवी प्रसाद गौतम, प्रेम प्रसाद चौलागाई, भाषा विज्ञान, पाठ्य-सामग्री, पसल, काठमांडू, वि.स. 2067
9. Dwight Bolinger, Aspect of Language, Harcourt Brace Jvanovich, USA 1975
10. वासुदेव धिमरे, समाज भाषा विज्ञान, वाङ्मय प्रकाशन तथा अनुसंधान केंद्र प्रा.लि. 2064
11. राष्ट्रीय जनगणना 2068 वि.सं. संक्षिप्त नतीजा, केंद्रीय तथ्यांक विभाग, काठमांडू, वि. सं. 2068
12. चौमासिक तथ्यांक गतिविधि, केंद्रीय तथ्यांक विभाग, काठमांडू, 2012-13 ई.
13. साहित्यलोक, त्रिभुवन विश्वविद्यालय हिंदी विभाग का मुखपत्र, अंक-1, वि.सं. 2039

पद्म कन्या कैंपस,
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
drmridulas@gmail.com

9 कोरिया में हिंदी अध्यापन : कुछ अनुभव

● *विजया सती*

शिक्षा : बी.ए. (ऑनर्स) और एम.ए. हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय

संप्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज में एसोसिएट प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत।

कार्य–विज़िटिंग प्रोफ़ेसर, भारोपीय अध्ययन विभाग, ऐल्ते विश्वविद्यालय, बुदापैश्त, हंगरी-वर्ष 2011-2013।

दिल्ली विश्वविद्यालय के जीवन पर्यंत शिक्षण संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ़ लाइफ लॉन्ग लर्निंग) में ई-कंटेंट निर्माण योजना में एसोसिएट को-ऑर्डिनेटर के रूप में चयनित।

पुरस्कार : दिल्ली विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ठ छात्रा होने के नाते 'सरस्वती पुरस्कार', 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' और 'प्रोफ़ेसर सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण पदक' से पुरस्कृत।

प्रकाशन : एक सहयोगी कविता-संकलन के अतिरिक्त दो शोध-पुस्तकों का प्रकाशन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख और कविताएँ निरंतर प्रकाशित।

एशिया के पूर्व में बसा कोरिया गणराज्य द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापानी औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुआ। विभाजन का दर्द झेलकर 'हान नदी के आश्चर्य के' रूप में विख्यात इस प्रायद्वीप दक्षिण कोरिया ने साठ के दशक के बाद अभूतपूर्व प्रगति की। फरवरी 2014 के अंतिम सप्ताह में सब तैयारियाँ पूरी कर जब हम दिल्ली से रवाना हुए तब हमारा गंतव्य स्थल था इसी दक्षिण कोरिया की राजधानी सिओल।

राजधानी सिओल में कई विश्वविद्यालय हैं। इन्हीं में से एक विदेशी भाषाओं के अध्ययन का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ है जिसकी स्थापना 1954 में हुई। विश्वविद्यालय के सिओल परिसर में हिंदी विभाग की स्थापना 1972 में हुई। इसका एक अन्य परिसर ग्लोबल कैंपस के नाम से जाना जाता है जो शहर से कोई पचास किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 1984 में स्थापित इस ग्लोबल परिसर में भारतीय अध्ययन विभाग में हिंदी पढ़ाई जाती है। दक्षिण कोरिया में हिंदी के अध्ययन को हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ के ये दो विभाग निरंतर बढ़ावा देते चले आए हैं। भाषा के माध्यम से दूसरे देश और उसकी संस्कृति को समझने की प्रवृत्ति विभाग को निरंतर सक्रिय बनाई हुई है।

इस विश्वविद्यालय में अनेक विदेशी भाषाएँ भी पढ़ाई जाती हैं। इसीलिए परिसर में प्रदान किए गए आवासों में कई देशों के प्रोफ़ेसर साथ मिलकर रहते हैं ब्राज़ील, वियतनाम, जापान, चीन, अमेरिका, कनाडा, थाईलैंड, पुर्तगाल, स्पेन, इटली, जर्मनी, तुर्की, मिस्र आदि देशों से आए अध्यापक अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त साहित्य, भाषा विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, विकास-अध्ययन, शिक्षण, राजनीति आदि विषय पढ़ाते हैं। परिसर में सुखद बहुसांस्कृतिक माहौल है। नित नई हलचल से भरा परिसर किसी-न-किसी आयोजन की चहल-पहल से ओतप्रोत रहता है। सुखद यह जानना भी है कि विश्वविद्यालय वास्तव में सही मायने में मुक्त है इसकी कोई चारदीवारी नहीं है बंद कर दिया जानेवाला कोई मुख्य द्वार नहीं है। आप किसी भी कोने से यहाँ प्रवेश कर सकते हैं!

हांकुक विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में पिछले चालीस वर्ष से हिंदी पढ़ाई जा रही है। यहाँ विद्यार्थी के लिए दो मुख्य विषय यानि मेजर लेने का नियम है। अर्थात हिंदी के विद्यार्थी एक अन्य प्रमुख विषय को भी साथ-साथ पढ़ते हैं। ह्युंदै, सैमसंग और एलजी जैसी कंपनियाँ तथा अब कुछ बैंक भी, भारत भेजे जाने वाले अपने कर्मचारियों को हिंदी सीख कर जाने के लिए प्रेरित करते हैं। इस उद्देश्य से विशिष्ट समूह के लिए निश्चित समयाधृत हिंदी कक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। इस तरह हिंदी भारत के लिए प्रवेश-द्वार के रूप में भी देखी जा रही है। विश्वविद्यालय द्वारा तीन वर्ष हिंदी पढ़ लेने वाले विद्यार्थियों के समक्ष चौथे वर्ष में हिंदी की विदेशी भाषा परीक्षा (फ़ॉरेन लैंग्वेज एग्जामिनेशन फ्लेक्स) पास करने का लक्ष्य रखा गया है। हिंदी सीख लेने के बाद विद्यार्थी सांस्कृतिक केंद्रों, दूतावासों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और पर्यटन केंद्रों में नौकरी पा सकते हैं। यहाँ भारतीय अध्ययन संस्थान और एरिया स्टडीज़ जैसे विभागों में भी ग्रेजुएट स्तर (एम.ए. के समकक्ष) पर हिंदी विषय अनिवार्यत: लेने वाले छात्र हैं। हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति, कला, वाणिज्य, व्यापार आदि को जानने की जिज्ञासा छात्रों में दिखाई देती है। हांकुक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की छात्राओं ने दो नृत्य क्लब बनाए हैं जिनके

अंतर्गत वे मिलकर भारतीय फ़िल्मों से प्रेरित समसामयिक नृत्य का अभ्यास करती हैं और विभागीय उत्सवों पर उनकी प्रस्तुति भी देती हैं। इन्हें सबकी सराहना मिलती है। इस तरह इस देश में भारतीय फ़िल्में भी हिंदी की समझ और छात्र वर्ग के भाषिक जुड़ाव को बढ़ावा देने का माध्यम बनती हैं।

कोरिया गणतंत्र में हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ के अतिरिक्त दो और प्रमुख स्थानों पर हिंदी पढ़ाई जा रही है, ये हैं सिओल नेशनल यूनिवर्सिटी और बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़। सिओल नेशनल यूनिवर्सिटी में भारतीय संस्कृति और हिंदी की कक्षाएँ प्रदान की गई हैं। देश के दक्षिण में स्थित प्रसिद्ध शहर बुसान में स्थित बुसान यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ में हिंदी विभाग की स्थापना 1984 में हुई। यहाँ अच्छी संख्या में विद्यार्थी हिंदी का अध्ययन कर रहे हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि कोरिया में प्रतिवर्ष विभिन्न स्थानों पर सौ से अधिक विद्यार्थी हिंदी पढ़ते हैं और लाभांवित होते हैं। हिंदी पढ़ने वाले छात्र अपने ही धन से या कोरियाई छात्रवृत्ति पाकर या भारत सरकार की योजना के तहत भारत जाकर हिंदी का अध्ययन भी करते हैं। वे दिल्ली विश्वविद्यालय या केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा और दिल्ली के छात्र के रूप में जाते हैं। भारतीय प्राध्यापक भी हिंदी-शिक्षण के लिए हांकुक यूनिवर्सिटी द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

हांकुक विश्वविद्यालय में हिंदी और भारतीय अध्ययन विभाग के अधिकतर कोरियाई मूल के प्राध्यापक भारत में हिंदी का विशिष्ट अध्ययन करके आए हैं जिसमें हिंदी एम.ए. और पीएचडी उपाधियाँ शामिल हैं। वे हिंदी के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ हैं यथा भाषा विज्ञान, व्याकरण, मध्यकालीन और आधुनिक हिंदी कविता, हिंदी उपन्यास और कथा-साहित्य, हिंदी नाटक, भारतीय दर्शन एवं कलाएँ तथा संस्कृत साहित्य। विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर हिंदी की पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन के प्रति भी सजग हैं। इसलिए छात्रों के लिए हिंदी वार्तालाप, भारत परिचय, हिंदी व्याकरण और मिश्रित हिंदी पाठों (कविता, कहानी, निबंध, वार्तालाप) के अभ्यास सहित कई पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध हैं। इनमें हिंदी के साथ कोरियाई भाषा का प्रयोग किया गया है। ये पुस्तकें प्रकाशन संबंधी गुणवत्ता के कारण भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। विभागीय प्रोफ़ेसर कोरियाई-हिंदी और हिंदी-कोरियाई शब्दकोश के निर्माण में भी दीर्घ अवधि तक संलग्न रहे और अब ये ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तकों के अतिरिक्त हांकुक यूनिवर्सिटी से प्रकाशित जर्नल ऑफ़ साउथ एशियन स्टडीज़ के अंक भी हिंदी आलेखों से संवर्धित हुए हैं।

हिंदी के लिए समर्पित भाव से काम करने वाले विशिष्ट और वरिष्ठ कोरियाई विद्वान प्रोफ़ेसर भारत सरकार द्वारा सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। भारत सरकार ने प्रोफ़ेसर ली जंग हो की विशिष्ट उपलब्धियों के लिए उन्हें हिंदी सेवी सम्मान प्रदान किया। हिंदी अध्ययन-अध्यापन और हिंदी अनुसंधान में निरंतर संलग्न विभाग में वरिष्ठ प्रोफ़ेसर डॉ किम ऊजो को हिंदी के प्रति एकाग्र और अनवरत प्रयासों के लिए सर्वप्रथम न्यू यॉर्क में आयोजित आठवें हिंदी सम्मलेन में सम्मानित किया गया। हिंदी के प्रति उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें पुनः इस वर्ष नई दिल्ली में महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार प्रदान किया।

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद और भारतीय दूतावास, सिओल के सहयोग से हांकुक विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग अब तक दो अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मलेन आयोजित कर चुका है। पहला आयोजन नवंबर 2007 में

राजधानी सिओल में कई विश्वविद्यालय हैं। इन्हीं में से एक विदेशी भाषाओं के अध्ययन का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ है जिसकी स्थापना 1954 में हुई। विश्वविद्यालय के सिओल परिसर में हिंदी विभाग की स्थापना 1972 में हुई। इसका एक अन्य परिसर ग्लोबल कैंपस के नाम से जाना जाता है जो शहर से कोई पचास किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 1984 में स्थापित इस ग्लोबल परिसर में भारतीय अध्ययन विभाग में हिंदी पढ़ाई जाती है। दक्षिण कोरिया में हिंदी के अध्ययन को हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ के ये दो विभाग निरंतर बढ़ावा देते चले आए हैं।

हुआ जिसका प्रमुख विषय 'पूर्वी एशिया में हिंदी-शिक्षण और अध्ययन' रखा गया था। कोरिया के अतिरिक्त सम्मलेन में जापान, चीन और भारत से आए विद्वानों ने 'हिंदी एवं कोरियाई भाषाओं की ध्वनियों का अध्ययन', 'भाषा शिक्षण एवं हिंदी फ़िल्म-गीत प्रयोग', 'द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व जापान में हिंदी-उर्दू भाषी भारतीय अध्यापक', 'ऑडियो-विज़ुअल हिंदी के अध्यापन में मेरा अनुभव' जैसे विषयों पर विचार प्रस्तुत किए। इन आलेखों को प्रकाशित भी किया गया।

दूसरा अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन मार्च 2014 में आयोजित किया गया जिसका मुख्य विषय था '21वीं शताब्दी में हिंदी-शिक्षण : एशियाई-पैसिफ़िक संदर्भ'। सम्मेलन में कोरिया, जापान, चीन, भारत और ऑस्ट्रेलिया का प्रतिनिधित्व करते हुए विद्वान वक्ताओं ने पाँच सत्रों में जिन विषयों पर विमर्श प्रस्तुत किया, उनमें से उल्लेखनीय शीर्षक हैं 'ऑस्ट्रेलिया में हिंदी : अतीत, वर्तमान और भविष्य', 'दक्षिण कोरिया में हिंदी-शिक्षण : 40 वर्ष का सफ़र', 'हिंदी-शिक्षण में लोककथाओं की उपयोगिता', 'डिजिटल युग में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन'। इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन भी हुआ तथा सभी आलेख संकलित-प्रकाशित हुए।

हिंदी की कुछ साहित्यिक कृतियाँ कोरियाई भाषा में अनूदित हुई हैं और कुछ कोरियाई रचनाओं के अनुवाद हिंदी में भी उपलब्ध हैं। मुख्य रूप से कथाओं और कविताओं का अनुवाद हुआ है।

कोरियाई भाषा की लिपि हंगुल है। कोरियाई भाषा में देश का नाम हन्गुक है। हिंदी वर्णमाला की तरह स्वर और व्यंजनों से बनी हंगुल भाषा को यह रूप देने में देश के लोकप्रिय राजा सेजोंग की दिलचस्पी का योगदान है। इससे पहले चीनी लिपि-चिह्नों पर आधारित भाषा साधारण जन को कठिन मालूम होती थी। अब यह सभी देशवासियों के लिए समान रूप से सरल है। यहाँ उच्चारण में 'ग' को 'क' या 'क' को 'ग' कहने में हर्ज़ नहीं होता, 'र' और 'ल' भी आपस में मिल जाते हैं। इसीलिए हिंदी भाषा का प्रयोग करते हुए हांकुक (विश्वविद्यालय) लिखने का एक अन्य प्रकार हन्गुक भी हो जाता है और इसीलिए आप 'दूर' नहीं 'दूल' भी जा सकते हैं।

सभी कोरियावासी केवल अपनी मातृभाषा बोलते हैं, अंग्रेज़ी का प्रयोग किसी अन्य की ज़रूरत होने पर ही किया जाता है। लेकिन देश में आनेवाले विदेशी परेशानी में न पड़ें इसलिए टैक्सी में इंटरप्रिटेशन की सुविधा प्रदान की गई है। यहाँ युवाओं का बड़ों के प्रति आदर व्यक्त करने का तरीका ध्यान आकर्षित करता है। छात्र बहुत अधिक झुककर नमस्कार और विदा कहते हैं। विद्यार्थी कक्षा में एक छोटा-सा कागज़ भी दोनों हाथों से संभालकर आदर सहित देते हैं और लेते भी उसी प्रकार हैं—दोनों हाथ बढ़ाकर अदब से सिर झुकाकर!

हांकुक विश्वविद्यालय परिसर में सभी कक्षाओं में इंटरनेट के कनेक्शन सहित कंप्यूटर, माइक और प्रोजेक्टर हैं, बटन दबाते ही सब उपलब्ध हो जाता है। इसलिए कभी किसी हिंदी वेबसाईट पर जाकर आरंभिक हिंदी सिखाना, किसी हिंदी गीत के माध्यम से हिंदी शब्द-ज्ञान देना, कभी किसी एनीमेशन फ़िल्म, वृत्त-चित्र या फ़िल्म के ही माध्यम से हिंदी पढ़ाना और भारत का परिचय देना अध्यापन को रोचक और प्रीतिकर बना देता है। स्मार्टफ़ोन के दीवाने छात्रों के पास हिंदी का शब्दकोश भी उसी में विद्यमान है।

साठ के दशक के बाद 'घनी आबादी वाले महानगर' के रूप में तेज़ी से विकसित होनेवाली राजधानी सिओल को यहाँ सोल ऑफ़ एशिया कहकर विज्ञापित किया गया है। राजधानी की हलचल के लगभग बीच में खड़ा हांकुक विश्वविद्यालय परिसर हरियाली और खुलेपन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। विश्वविद्यालय का ग्लोबल परिसर तो पूरी तरह प्रकृति की गोद में ही बसा है। सत्रारंभ की हलचल शुरू होते ही हर सुबह एक हुजूम-सा उमड़कर आता है विश्वविद्यालय के प्रांगण में। जिन्हें देरी हो गई, वे छात्र दौड़ लगा देते हैं, समय पर कक्षा में पहुँचने के लिए! अनुशासन की इस भावना के बावजूद कई कारणों से नींद पूरी न कर पाने वाले छात्र खूब झपकियाँ ले डालते हैं कक्षाओं में! वसंत के संपूर्ण अंत से पहले मई के आरंभ में जो बहुत से उत्सव यहाँ मनाए जाते हैं उनमें पंद्रह मई को मनाया जानेवाला अध्यापक दिवस भी महत्वपूर्ण है जिस अवसर पर विद्यार्थी अपने गुरुजनों को उपहार और फूल भेंट करते हैं। कोरियाई वर्णमाला अन्वेषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले राजा सेजोंग के जन्मदिन को ही यहाँ अध्यापक दिवस के रूप में मनाया जाता है। विद्यार्थी अपने उन अध्यापकों से मिलने भी जाते हैं जो सेवानिवृत्त हो चुके हैं या अस्वस्थ हैं।

कोरिया में हिंदी की गतिविधियों के संदर्भ में हांकुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ की भूमिका को केंद्र में रखा जा सकता है।

सिओल, दक्षिण कोरिया
vijayasatijuly1@gmail.com

10 आधुनिक सिंगापुर में हिंदी शिक्षण के पच्चीस वर्ष

• *संध्या सिंह*

- हिंदी साहित्य में एम.ए. और बी.एड. किया है।
- शोध कार्य जारी है।
- पिछले 13-14 वर्षो से सिंगापुर में हिंदी के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाई है।
- शुरुआत हिंदी सोसाइटी के एक स्वयं सेविका के रूप में की, जहाँ उप-विभागाध्यक्षा का पद भी सँभाला।
- एन.पी.एस. अंतरराष्ट्रीय पाठशाला में आधुनिक भाषाओं के विभागाध्यक्ष के रूप में काम किया है।
- नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर व नान्यांग टेक्नॉलॉजिकल यूनिवर्सिटी में व्याख्याता के रूप में काम किया है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित।

सिंगापुर प्रजातीय एकता व बहुसांस्कृतिक समाज का सुंदर रूप दुनिया के सामने प्रस्तुत कर रहा है। सिंगापुर को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में 9 अगस्त, 1965 को पहचान मिली। उस समय मलय भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया, जबकि चीनी, अंग्रेज़ी और तमिल को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया। सरकार ने विद्यालयों में द्विभाषी नीति की शुरुआत सन् 1966 में की। सरकार ने अपने बहुप्रजातीय समाज में यह कदम मातृभाषा को संरक्षित रखने तथा सिंगापुर को अपने पड़ोसी मुल्कों व विश्व की मुख्य भाषाओं से जुड़े रहने के योग्य बनाने के लिए उठाया। शुरुआत में शिक्षा का माध्यम सभी चारों भाषाओं में उपलब्ध कराया गया अर्थात् कुछ विद्यालय ऐसे थे जो जातीय भाषा विद्यालय बने। सरकार ने एक नीति लागू की कि अगर कोई जातीय माध्यम के स्कूल में दाखिला करवाता है तो उसे द्वितीय भाषा के रूप में अंग्रेज़ी पढ़नी पड़ेगी साथ ही अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ रहे छात्रों को अन्य तीनों आधिकारिक भाषाओं में से एक भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ना पड़ेगा। हालाँकि जातीय स्कूलों में घटती संख्या और अंग्रेज़ी के प्रति बढ़ते रुझान और वाणिज्य की बढ़ती संभावनाओं ने सन् 1987 तक सभी जातीय स्कूलों को अंग्रेज़ी माध्यम स्कूल में बदल दिया। सिंगापुर में बहुसांस्कृतिक समाज होने के कारण भिन्न भाषा–भाषी लोगों ने एक सामान्य मंच के रूप में अंग्रेज़ी को वरीयता दी।

अब बारी आई मातृभाषा अध्ययन की। विद्यालयों में सिर्फ़ तीन भाषाओं चीनी, मलय और तमिल को ही पाठ्यक्रम में शामिल किए जाने के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के बच्चों को मजबूरन इन्हीं में से एक भाषा चुननी पड़ी। कहने की आवश्यकता नहीं कि अगर हिंदी भाषी घर में हिंदी बोले और विद्यालय में मातृभाषा के रूप में चीनी, मलय या तमिल पढ़े तो उसकी क्या हालत होगी। इस उपस्थित स्थिति के कारण न सिर्फ़ काफ़ी नुकसान उठाना पड़ता था, बल्कि उनकी रुचि भी भाषा–अध्ययन के प्रति विकसित नहीं हो पा रही थी। इतिहास पर गौर करने पर हिंदी की कक्षाएँ सन् 1930 के आसपास भी चलती हुई दिखाई देती है जो बाद तक किसी–न–किसी रूप में चलती रहीं परंतु सरकार द्वारा मान्यता न मिलने कारण हिंदी पढ़ने वालों की न तो संख्या बढ़ पाई, न रुझान। बात सिर्फ़ भाषा सीखने की होती तो शायद सिंगापुर का भारतीय समुदाय इतना व्यथित न होता पर दूसरी भाषा में कम अंक आने के कारण कुल प्राप्तांक घटने लगा और हिंदी भाषी बच्चे अग्रणी विद्यालयों में दाखिला पाने को तरसने लगे जबकि वे अन्य विषयों में दूसरों से कहीं कम नहीं थे। हिंदी ही नहीं पंजाबी, गुजराती, बंगाली व उर्दू भाषी भी इसी समस्या से गुज़र रहे थे। इस दिशा में अपने–अपने स्तर पर काफ़ी लोग प्रयास में लगे हुए थे। इस आवश्यकता को सत्य करने का प्रयास बस यहीं से शुरू हो गया।

हिंदी सोसाइटी का इतिहास

हिंदी सोसाइटी सिंगापुर ही वह संस्था है जिसने इस भूमि पर हिंदी शिक्षण रूपी दीपक की लौ को न सिर्फ़ प्रज्ज्वलित किया,

अपितु उसके प्रकाश से विद्यार्थियों व हिंदी प्रेमियों के जीवन को प्रकाशित भी किया। इसी संस्था ने द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी की शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लिया और इसे इस मुकाम तक पहुँचाया कि आज सिंगापुर में रहते हुए अपनी भाषा की धरोहर पर गर्व महसूस हो।

सिंगापुर की द्विभाषी नीति के उद्घोष ने कई लोगों के लिए नए आयाम खोले तो कई लोगों के लिए मुश्किलें भी खड़ी कीं। भाषा सीखना अलग बात होती है और उसमें अच्छे अंक लाना अलग। जब बात अंकों से जुड़ जाए और शैक्षणिक व व्यावसायिक जीवन को प्रभावित करने लग जाए तो सुंदर-से-सुंदर भाषा भी कई बार बोझ लगने लगती है। ऐसा ही कुछ 70-80 के दशक में भारतीय, खासकर उत्तर भारतीय समुदाय के साथ हुआ। विद्यार्थियों को दूसरी भाषा के रूप में चीनी, मलय व तमिल में से एक भाषा को मजबूरी में चुनना पड़ता। चीनी भाषा की लिपि चित्रात्मक होती है। ऐसी मान्यता बन गई कि वह मलय भाषा की अपेक्षा में ज़्यादा मुश्किल है। मलय भाषा में रोमन अक्षरों का प्रयोग होता है, अत: ऐसा लगता है कि वह आसान है। कम-से-कम अक्षर तो नहीं सीखने पड़ेंगे क्योंकि तमिल भाषा के अक्षरों की बनावट भी अनोखी है जिसे समझना इतना आसान नहीं। और फ़िर, अतीत में सिंगापुर का एक मलय शासित क्षेत्र रहने के कारण मलय को बाज़ार की भाषा की संज्ञा भी मिली हुई थी। ज़ाहिर है अधिकांश उत्तर भारतीय विद्यार्थियों ने द्वितीय भाषा के रूप में मलय को चुना पर इस भाषा में परीक्षा में अच्छा न कर पाने का परिणाम आगे की पढ़ाई पर अपना काला साया दिखाने लगा। यह बात काफ़ी चिंताजनक थी कि एक हिंदी भाषी छात्र अच्छे माध्यमिक विद्यालय या विश्वविद्यालय के अच्छे पाठ्यक्रम में महज इसलिए नहीं जा पाता, क्योंकि द्वितीय भाषा में उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। इस गंभीर विषय पर हिंदी समुदाय में काफी विचार-विमर्श हुआ। अपने-अपने स्तर पर प्रयास का ज़्यादा फल नहीं मिल सकता था, अत: एक समिति बनाकर इस मसले को सरकार के समक्ष रखने का विचार ही आगे आया। सन् 1988 में, श्री श्रीनिवास राय और श्री कैलाश नाथ राय राष्ट्रीय विचारधारा और हिंदी को मातृभाषा के रूप में पढ़ने की आवश्यकता पर अपने अध्ययन की सामग्री के साथ एकत्र हुए और हिंदी भाषा से संबंधित मुद्दों पर चर्चा हुई। निष्कर्षों के बाद सिंगापुर उत्तर भारतीय हिंदू एसोसिएशन को स्थापित किया गया। सिंगापुर उत्तर भारतीय हिंदू एसोसिएशन ही वह स्थान था जहाँ पहली बार हिंदी पढ़ाने के विषय में बातचीत हुई। समुदाय के लोगों ने अपने-अपने विचार रखे और इस पर गहन चर्चा हुई इस नेक कार्य को कैसे आगे सरकार तक पहुँचाया जाए।

हिंदी समुदाय से जुड़े संस्थान ही इस नेक कार्य में भागीदार बन सकते थे, अत: सिंगापुर उत्तर भारतीय हिंदू एसोसिएशन ने जनवरी 1989 में हिंदी के अध्ययन पर गौर करने के लिए व हिंदी समर्थक समिति गठित करने के लिए आर्य समाज सिंगापुर, श्री लक्ष्मी नारायण मंदिर और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को आमंत्रित किया। सबकी सहमति से श्री सिवाकांत तिवारी को हिंदी समिति के अध्यक्ष के रूप में मनोनित किया गया था। बाद में सिंगापुर गुजराती समाज, सिंगापुर सिंधी व्यापारी संघ और सिंगापुर बंगाली एसोसिएशन के प्रतिनिधि समिति में शामिल हो गए। श्री सिवाकांत तिवारी जी कानूनी सेवा में थे, अत: शिक्षा संबंधी नीतियों से लेकर कानूनी बातें में उनसे बेहतर कौन जानता!

इस समिति ने 4 फरवरी, 1989 को पहली बार आपसी बैठक की और हिंदी-परीक्षा, हिंदी का अध्ययन करने की संभावना, छात्रों की संख्या, छात्रों को आकर्षित करने के उपायों, हिंदी भाषी जनसंख्या, कक्षाओं, सुविधाओं, वित्त संसाधनों की उपलब्धता आदि पर गौर करके एक आवेदन शिक्षा मंत्रालय को भेजा।

शिक्षा के मुद्दे पर समिति अध्यक्ष श्री सिवाकांत तिवारी ने उस समय के शिक्षामंत्री, डॉ. टोनी तान (वर्तमान राष्ट्रपति) से मुलाकात की और उनके समक्ष अपना आवेदन रखा। अभ्यावेदन रिकॉर्ड पर हिंदी भाषी छात्रों को पेश आ रही समस्याओं और एक दूसरी भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता देने के लिए अनुरोध करने के इरादे से जानकारी रखी गई थी। डॉ. टोनी तान ने हिंदी समिति के अध्यक्ष होने के नाते श्री तिवारी जी के समक्ष यह चुनौती रखी कि अगर मंत्रालय हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में मान्यता दे देता है तो क्या समिति हिंदी के द्वितीय भाषा के रूप में शिक्षण के आयोजन और प्रबंधन के लिए तैयार है? यह एक ऐसा प्रश्न था, जो काफ़ी चुनौतीपूर्ण था पर श्रीमान तिवारी जी ने समिति के प्रतिनिधि के रूप में तुरंत इस

चुनौती को स्वीकार कर लिया। इस सकारात्मक कदम का असर जल्द ही 6 अक्टूबर, 1989 को शिक्षा मंत्री द्वारा संसद में एक घोषणा के रूप में दिखाई दिया। शिक्षा मंत्री श्रीमान टोनी तान जी ने संसद में यह घोषित कर दिया कि माध्यमिक विद्यालयों में एक दूसरी भाषा के रूप में ओ-लेवल अर्थात दसवीं कक्षा की परीक्षाओं के लिए बंगाली, गुजराती, पंजाबी और उर्दू के साथ हिंदी में परीक्षा देने की अनुमति दी जाएगी। मंत्रालय सभी भाषाओं के लिए परिसर प्रदान करेगा, हालाँकि छात्रों के लिए शिक्षकों का इंतजाम समुदाय विशेष को करना होगा।

सिंगापुर में शैक्षणिक सत्र जनवरी के महीने में शुरू होता है। अत: समिति के पास कक्षाएँ प्रारंभ करने की तैयारी के लिए दो माह से भी कम समय था। समिति ने इस चुनौती को बखूबी अंजाम दिया और एक ऐसा इतिहास रचा, जिसने सिंगापुर के हिंदी भाषियों के जीवन में एक नया संचार कर दिया। 21 जनवरी, 1990 को हिंदी समिति द्वारा आयोजित पहली हिंदी कक्षाएँ, बेंग वान प्राइमरी स्कूल में शुरू कर दी गईं। यह एक ऐतिहासिक अवसर था। इस द्वीप के एक सरकारी स्कूल में पहली बार हिंदी शिक्षण का यह कार्य व्यापक आधार पर कई भारतीय संगठनों के समर्थन के साथ आयोजित किया गया था। ये कक्षाएँ मुख्य रूप से माध्यमिक स्तर पर हिंदी की शिक्षा देने के लिए थीं, क्योंकि उस समय सिर्फ़ उस स्तर की बोर्ड परीक्षाओं में हिंदी परीक्षा देने की अनुमति मिली थी। उसके उपरांत समिति के अध्यक्ष श्रीमान तिवारी जी द्वारा हिंदी सोसाइटी सिंगापुर का पंजीकरण करवाने की दिशा में प्रयास हुआ और 4 अगस्त, 1990 पर हिंदी सोसाइटी सिंगापुर नामक संस्था पंजीकृत हुई। माध्यमिक कक्षाओं में मिली मान्यता ने हिंदी सोसाइटी को काफ़ी प्रोत्साहित किया और उसे लगा कि जब हम प्राथमिक स्तर पर भी कक्षाएँ चलाएँगे तभी तो भविष्य में विद्यार्थी हिंदी ले पाएँगे। पंजीकरण से पूर्व ही यह विचार संस्था के अग्रणी लोगों में उमड़ने लगा। प्राथमिक कक्षाओं में मान्यता प्राप्त करने की दिशा में प्रयास संस्था द्वारा चल रहे थे। यद्यपि तब तक प्राथमिक कक्षाओं में परीक्षा की मान्यता सरकार द्वारा नहीं मिली थी, परंतु सोसाइटी ने हिंदी में प्राथमिक कक्षाओं को 5 अगस्त, 1990 को शुरू कर दिया। शिक्षा मंत्रालय ने बाद में 25 मार्च, 1991 में 'ए' स्तरों (बारहवीं) और 23 जुलाई, 1993 में पी.एस.एल.ई. (प्राथमिक छह) में दूसरी भाषा के रूप में हिंदी लेने को मंजूरी दे दी। पहले से ही प्राथमिक कक्षाएँ चलाने के कारण जब सरकार द्वारा मान्यता मिली तो काफी छात्रों ने द्वितीय भाषा के रूप में आधिकारिक रूप से हिंदी विषय को चुना। श्री सिवाकांत तिवारी ने हिंदी के पौधे को पल्लवित करने में दिन-रात की अथक मेहनत की। उनकी अध्यक्षता में समिति, अध्यापकों, अभिभावकों के सहयोग से यह पौधा धीरे-धीरे वृक्ष बनने की ओर बढ़ने लगा।

सन् 1990 में मात्र 100 छात्र हिंदी सोसाइटी के बैनर तले हिंदी शिक्षा ले रहे थे। वर्ष प्रति वर्ष की बढ़त पर अगर ध्यान दें तो सब कुछ खुद स्पष्ट हो जाएगा। हिंदी सोसाइटी स्वयंसेवकों और श्रीमान तिवारी जी की नि:स्वार्थ सेवा का फल था कि दस वर्षों का अगर लेखा देखें तो हिंदी सोसाइटी में 100 छात्रों की संख्या 1800 हो गई थी। उसके उपरांत भी इसी तरह की बढ़त जारी रही और 2009 तक लगभग 2300 छात्र इस संस्था के माध्यम से हिंदी की शिक्षा ले रहे थे। सन् 2014 में इस संस्था ने अपने पच्चीस वर्ष पूरे कर लिये हैं और लगभग 2800 छात्रों को हिंदी की शिक्षा दे रही है।

छात्रों की बढ़ती संख्या ने शिक्षण की अन्य ज़रूरतों को भी बढ़ाया, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी सोसाइटी ने अपने सेंटरों की संख्या में बढ़ोतरी की। शुरुआत में सिर्फ़ बेंगवान प्राथमिक विद्यालय में कक्षाएँ लगाती थीं। धीरे-धीरे एक सेंटर ने तीन सेंटरों तक अपना कार्य फैलाया। उसके बाद एक ही समय में सभी छात्रों व कक्षाओं के संचालन में मुश्किल होने लगी, जिसे दूर करने के लिए सन् 1999 से रविवार की सुबह व दोपहर दोनों समय में कक्षाएँ लगने लगीं। आज यह संस्था सात सेंटरों में शनिवार को कक्षाएँ चलाती हैं।

स्थानीय विद्यालयों में मातृभाषा के लिए निर्धारित भाषाओं में हिंदी की कक्षाएँ शुरू करने का श्रेय भी हिंदी सोसाइटी को ही जाता है। शुरुआत हुई सन् 1998 में स्विस कॉटेज प्राथमिक विद्यालय से और बढ़ते-बढ़ते वर्तमान में लगभग 48 स्थानीय विद्यालयों में हिंदी मातृभाषा के घंटे में हिंदी सोसाइटी से संबंधित अध्यापिकाओं

द्वारा पढ़ाई जा रही है। मातृभाषा के निर्धारित समयावधि में हिंदी पढ़ाने की अनुमति से विद्यार्थियों के अंक और बेहतर हुए हैं, क्योंकि अब छात्र चार या पाँचों दिन हिंदी पढ़ सकते हैं। उन्हें हिंदी का माहौल ज़्यादा मिलता है, जिससे वे भाषा की गहराई को बेहतर समझ व अपना सकते हैं।

शिक्षा में सबसे बड़ा संसाधन शिक्षक वर्ग होता है। हिंदी को मान्यता मिलने के बाद उपयुक्त शिक्षक वर्ग का चुनाव संस्था के समक्ष एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। सिंगापुर ऐसा देश नहीं है, जहाँ हिंदी के ज्ञाता आसानी से मिल सकें। अत: इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए हिंदी सोसाइटी ने भारत से काम करने आए आई.टी., बैंकिंग आदि क्षेत्रों के लोगों की पत्नियों हिंदी संबंधी प्रतियोगिताओं/क्षमताओं का सार्थक प्रयोग करने का विचार किया। ये महिलाएँ स्नातक या उससे ऊँची डिग्री रखती थीं और ज़्यादातर हिंदी इनकी मातृभाषा थी या यही संपर्क की भाषा थी। कई महिलाएँ पहले भारत व अन्य देशों में पढ़ा भी चुकी थीं। प्रारंभिक शिक्षकों में श्री उमाशंकार दूबे, श्रीमती कमलेश गौड़, श्रीमती वीणा शर्मा, श्रीमती आशा अग्रवाल प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने हिंदी ज्ञान से सिंगापुर की धरती को सींचा। सोसाइटी समय-समय पर शिक्षिकाओं को प्रशिक्षण देती रहती है, ताकि उनका कौशल अद्यतन रहे और बेहतर माध्यम से भाषा का शिक्षण हो सके। भाषा सीखना अगर एक कौशल है तो सिखाना उससे भी बड़ा कौशल है। आवश्यक नहीं कि जो हिंदी बोलता हो, वह पढ़ा भी सकता है। हिंदी सोसाइटी इस दिशा में काफी प्रयत्नशील रही है, हालाँकि कभी-कभी कुछ कमियाँ अवश्य नज़र आई हैं।

सिंगापुर में शैक्षणिक सत्र जनवरी के महीने में शुरू होता है। अतः समिति के पास कक्षाएँ प्रारंभ करने की तैयारी के लिए दो माह से भी कम समय था। समिति ने इस चुनौती को बखूबी अंजाम दिया और एक ऐसा इतिहास रचा, जिसने सिंगापुर के हिंदी भाषियों के जीवन में एक नया संचार कर दिया। 21 जनवरी, 1990 को हिंदी समिति द्वारा आयोजित पहली हिंदी कक्षाएँ, बेंग वान प्राइमरी स्कूल में शुरू कर दी गईं। यह एक ऐतिहासिक अवसर था। इस द्वीप के एक सरकारी स्कूल में पहली बार हिंदी शिक्षण का यह कार्य व्यापक आधार पर कई भारतीय संगठनों के समर्थन के साथ आयोजित किया गया था।

अब तो बी.टी.टी.एस.एल. (Board for Teaching and Testing South Asian Languages) द्वारा एक समान किताबें सभी पाँचों गैर तमिल भारतीय भाषाओं के लिए बना दी गई हैं, पर इससे पहले 2007 तक हिंदी सोसाइटी की अध्यापिकाएँ ही शिक्षण सामग्री तैयार करती थीं। साथ ही भारत में प्रचलित कुछ पुस्तकें जैसे 'बाल भारती', 'सरस भारती', 'ज्ञान सुधा' भी पाठ्यक्रम का हिस्सा हुआ करती थीं। इससे बच्चों को पाठों में भिन्नता मिल जाती थी और पठन की रोचकता बरकरार रहती थी। विभागाध्यक्ष की देख-रेख में कई अभ्यास-पुस्तिकाओं की रचना हुई। सामग्री निर्माण में पाठ्यक्रम की आवश्यकता के साथ विद्यार्थियों की रुचि को ध्यान में रखा जाता था।

श्रीमान तिवारी जी व समिति के अन्य सदस्यों ने प्रारंभ से हिंदी शिक्षण के साथ सांस्कृतिक महत्व को भी भरपूर पल्लवित किया। समय-समय पर हिंदी सोसाइटी ने कई सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लिया और छात्रों की प्रतिभा का पूर्ण प्रदर्शन भी किया। हिंदी सोसाइटी कई सामुदायिक कार्यक्रमों का हिस्सा पहले भी रही है और आज भी है। वार्षिक समारोह के आयोजन में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों को छात्रों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सभी कार्यक्रम हिंदी में ही प्रस्तुत किए जाते हैं। सामुदायिक केंद्र में होली मिलन हो या भारतीय सांस्कृतिक मेले में सहभागिता हो या विश्व हिंदी दिवस का आयोजन हो, किसी भी मौके को हिंदी सोसाइटी हाथ से जाने नहीं देती।

भाषा तभी पूर्ण होती है जब वह बोली जाए और उसका इस्तेमाल हो। मौखिक हिंदी के प्रति हिंदी सोसाइटी ने अपना सकारात्मक पक्ष हमेशा रखा है। श्रीमान तिवारी जी ने सन् 2008 में

मौखिक हिंदी में अच्छा करने व बेहतर सुधार वाले ग़ैर हिंदी भाषियों को प्रेरित करने के लिए हर वर्ष 5 विद्यार्थियों को मौखिक हिंदी अवॉर्ड देने की घोषणा की। उन्होंने स्वयं पाँच हज़ार डॉलर का अनुदान इसके लिए दिया ताकि अगले दस वर्षों तक इनाम राशि दी जा सके। वे स्वयं भी समय-समय पर अलग-अलग सेंटरों पर जाते और छात्रों से हिंदी में बात करते। हिंदी सोसाइटी कई मौखिक प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करती है ताकि विद्यार्थी हिंदी बोलने की झिझक को दूर कर सकें।

श्रीमान तिवारी जी सन् 1990 से सन् 2010 तक हिंदी सोसाइटी के अध्यक्ष रहे पर सन् 2010 में अचानक उनकी मृत्यु ने संस्था को झकझोर दिया। हालाँकि संस्था के अन्य सदस्यों ने बखूबी कार्यभार संभाल लिया, पर जो रिक्तता तिवारी जी के जाने से बन गई थी, उसका भर पाना मुश्किल है। श्रीमान तिवारी जी के बाद अध्यक्ष का पद श्री रणबीर कुमार सिंह ने सँभाला। वे पेशे से वकील हैं और संस्था के प्रति अपनी निष्ठा पहले से समर्पित करते आए हैं। सन् 2012 में श्री विजय कुमार राय जी ने हिंदी सोसाइटी के अध्यक्ष का पद सँभाला और सन् 2013 में श्री नंदप्रसाद शिवशंकर जी ने कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में संस्था की बागडोर अपने हाथों में ली।

आज इस संस्था के मुखिया में फेरबदल भले ही दिखाई दे रही हो, पर संस्था का जो लक्ष्य था, संस्था उससे जुड़ी है और उसी दिशा में प्रयासरत है।

विदेशी शिक्षा प्रणाली में हिंदी को मान्यता दिलाना व सँजोकर आगे बढ़ाना इतना सहज नहीं था। इसके पीछे कई लोगों का अथक प्रयास है। इन प्रयासों में एक नाम अग्रणी है जिसे सम्मान देना यहाँ अनिवार्य हो जाता है।

श्री शिवाकांत तिवारी

सिंगापुर में हिंदी, जिसके बिना आज शायद वह मुकाम न हासिल कर सकी होती जो आज कर पाई है, वे हैं श्री शिवकांत तिवारी।

सिंगापुर में हिंदी भाषा स्थानीय व अंतरराष्ट्रीय विद्यालयों में काफ़ी बड़े पैमाने पर पढ़ाई जा रही है, पर हिंदी को स्थानीय विद्यालयों में आज यदि पढ़ाना संभव हो सका है तो इसके पीछे श्रीमान शिवाकांत तिवारी जी का ही हाथ है। हिंदी सोसाइटी के संस्थापक श्रीमान शिवाकंत तिवारी जी के हिंदी को पहचान दिलाने के कार्य को भुलाया या छोड़ा नहीं जा सकता। आज वे हमारे बीच नहीं हैं पर अगर हिंदी का यह बगीचा फल-फूल रहा है तो यह उनकी उस नि:स्वार्थ सेवा का फल है जो सन् 1989 के बहुत पहले से उन्होंने शुरू कर दी थी।

श्री सिवाकांत तिवारी जी जो सबके बीच तिवारी जी के नाम से मशहूर थे, सिंगापुर बाल्यावस्था में आए। कहते हैं होनहार विरवान-के होत चीकने पात—जो तिवारी जी के लिए बिलकुल सटीक है। प्राथमिक कक्षाओं की पढ़ाई में इतना अव्वल प्रदर्शन किया कि यहाँ के सर्वश्रेष्ठ विद्यालय रैफल्स इंस्टीट्यूशन में उन्हें आगे की पढ़ाई करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके बाद यहाँ के राष्ट्रीय विद्यालय से कानून की पढ़ाई की और सिंगापुर कानून सेवा में कार्यरत हुए।

सिंगापुर के लिगल सर्विस में ये न सिर्फ़ वरिष्ठ कानूनी अधिकारी थे, बल्कि देश के कई बड़े मामलों को सुलझाने वाले व सम्मान पाने वाले अधिकारी भी थे। अंतरराष्ट्रीय कानून के इस ज्ञाता ने 'ASEAN : Life after the Charter', नामक पुस्तक भी प्रकाशित की जिसे बहुत प्रशंसा मिली। पेडरा बेयान्का मामले में इन्होंने देश को जो कुछ दिया अद्वितीय है। श्री सिवाकांत तिवारी जी ने हिंदी के प्रति प्रेम को इस देश में पहचान दिलाने में अपनी अहम भूमिका निभाई। क्या दिन क्या रात खुद इतना व्यस्त होने के बावजूद हिंदी को मान्यता दिलाने से लेकर उँगलियों पर गिनने लायक संख्या से शुरू हुई संस्था को हज़ारों छात्रों तक पहुँचाने तक हर कदम पर जी जान से सेवा की। मंत्रालाय को लिखे शुरुआती पत्रकार पर यदि ध्यान दिया जए तो कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी, आईना खुद-ब-खुद सारी कहानी कह देगा कि हिंदी यदि इस देश में, विद्यार्थियों के जीवन में है तो इसका बड़ा श्रेय इसी महान हस्ती को है। इन्होंने नि:स्वार्थ सेवा की। कभी सोसाइटी से कुछ लिया नहीं, देते गए, आखिरी दम तक, बस एक जुनून था कि बच्चे हिंदी पढ़ें, हिंदी बोलें। शायद इसीलिए एक नारा भी दिया—

‘speak hindi : if you don't use it, you will lose it.’ हिंदी को बढ़ावा देने के लिए मौखिक हिंदी पुरस्कार भी शुरू किया जिसमें वे खुद दान देते थे। काफ़ी लोग संस्थाओं से जुड़ते हैं पर धीरे–धीरे अपने जीवन की व्यस्तता कब उन्हें थोड़ा ढीला कर देती है पता नहीं चलता। लेकिन तिवारी जी सप्ताह भर दिन में अपनी नौकरी के प्रति पूरी तरह समर्पित रहते तो सप्ताहांत में बिलकुल गांधी जी की तरह खद्दर के कुरते में हिंदी के लिए लगे हुए दिखाई देते। यही नहीं, रात के तीन बजे भी, यदि अपने काम से समय मिलता तो ई–मेल लिख पूरी जानकारी लिया करते थे। हिंदी सोसाइटी जैसे उनका दूसरा घर था। विद्यालयी पत्रिका के मुख्य पृष्ठ का डिज़ाइन देखने में भी उतनी ही रुचि लेते थे जितनी पाठ्यक्रम के पुस्तकों के चयन पर। कहने का तात्पर्य है कि संस्था से जुड़ी कोई भी बात उनके लिए छोटी नहीं होती थी। हृदय से इतने सरल कि बस कई बार उनकी सरलता पर मोहित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। मैंने खुद अपने जीवन में नि:स्वार्थ सेवा का ऐसा पुजारी नहीं देखा है।

हिंदी सोसाइटी कार्यालय, जो महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग में है, अपने सभी सेंटरों व विद्यालयों की देख–रेख व निरीक्षण आज भली–भाँति कर रहा है। बी.टी.टी.एस.एल. के साथ हर प्रकार से हिंदी शिक्षण व परीक्षण का कार्य पूर्ण दायित्व के साथ निभा रहा है, ताकि विश्व मंच पर हिंदी का परचम लहराता रहे।

सिंगापुर
sandhyasingh077@gmail.com

11 मॉरीशस में बैठका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और हिंदी के उन्नयन में उसकी भूमिका

श्री राजेश कुमार उदय

मॉरीशस हिंद महासागर के बीच विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों की एक प्रयोगशाला के समान है। आचार्य काका कालेलकर का यह कथन सर्वोपरि सत्य है। *(विश्व हिंदी पत्रिका विशेषांक 2011, पृष्ठ 27)*। अतएव यह पुष्ट होता है कि नाना प्रकार की संस्कृतियों के जनों ने अपने-अपने समाज की स्थापना की। फलतः यहाँ का बहुजातीय समाज का प्रत्येक अंग सह-अस्तित्व की भावना का पालन करते हुए विरासत में प्राप्त अपने धर्म, संस्कृति तथा भाषा की पूर्ण रक्षा हेतु सक्रिय कार्य करता है। मॉरीशस में अनेक भाषाओं का प्रचलन है। अंग्रेज़ी और फ्रेंच के बाद जिस भाषा को सर्वाधिक महत्व मिला है, वह हिंदी है। हिंदी पूर्णतः एक वैज्ञानिक भाषा है जिसमें प्रौद्योगिकीय कौशल भी समाविष्ट है। मॉरीशस में हिंदी भाषा का उज्ज्वल स्वरूप और उनकी वैश्विक गरिमा पर अनेकों ने लिखा है। परंतु उल्लेखनीय बात यह है कि मॉरीशस में हिंदी की उत्पत्ति और उसका जन्म-स्रोत बैठका ही है। मॉरीशस में हिंदी भाषा की उत्पत्ति, संघर्ष व विकास में बैठकाओं की विशेष भूमिका इस शोध विषय का केंद्रीय विषय है।

जन्म : 29 मार्च, 1983, ग्राम-बुआ गाँव, मॉरीशस में

शिक्षा : ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट ऑफ मानेजमेंट स्टडीज से डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक, मॉरीशस विश्वविद्यालय से उत्तर स्नातक, मॉरीशस इंस्टिट्यूट ऑफ एजुकेशन से पी.जी.सी.ई. ओपन यूनिवर्सिटी ऑफ मॉरीशस से पी-एच.डी. शोधरत

संप्रति : हिंदू गर्ल्स कॉलेज में हिंदी शिक्षक और एम.बी.सी रेडियो में प्रस्तुतकर्ता।

भारतीय आप्रवासियों का पदार्पण जब मॉरीशस भूमि पर सन् 1834 से आरंभ हुआ तो वे अपनी भाषा, संस्कृति, भारतीय सभ्यता, धर्म एवं परंपरा साथ लेते आए थे। यदि मॉरीशस के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी की उज्ज्वल स्थिति को देखें तो इसके पीछे इस भाषा का सतत संघर्ष रहा है। आज मॉरीशस में हिंदी भाषा का स्थान विशेष एवं अग्रगण्य इसलिए है क्योंकि इसके पुष्पित, पल्लवित एवं फलित होने का एक बड़ा ऐतिहासिक कारण है। यदि मॉरीशस के इतिहास की ओर नज़र दौड़ाएँ तो चार सौ वर्षीय यह इतिहास अपने आप में अत्यंत विस्तृत, विराट परंतु रचनात्मक है। इसी विराटता एवं रचनात्मकता के धरातल पर हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में उसे एक मंच मिला। हमारे भारतीय पूर्वजों ने उसी मंच को 'बैठका' नाम से अभिहित किया।

'बैठका' की व्युत्पत्ति 'बैठना' शब्द से हुई। 'बैठका' के शाब्दिक अर्थ में एक सांस्कृतिक वैभव है, 'बैठका' से एक इतिहास जुड़ा हुआ है। मॉरीशसीय हिंदू समाज में यह शब्द न केवल सर्वप्रचलित है अपितु यह सांस्कृतिक जीवन से भी जुड़ा हुआ है। जिस जगह पर भारतीय मज़दूर बैठते थे उसी स्थान को हम 'बैठका' कहते हैं। 'बैठका' अपने सच्चे अर्थ में एक सामाजिक केंद्र था जहाँ पर भारतीय आप्रवासी बैठकर अपने दिनचर्या व सुख-दुख बाँटते थे।

बैठका भारतीय आप्रवासियों का एक सर्वोदय स्रोत रहा। बैठका-व्यवस्था पर यदि दृष्टिपात करें तो भारत के बिहार प्रांत के कुछ स्थलों पर यह व्यवस्था रही। चूँकि हमारे अधिकांश पूर्वज़ भारत के बिहार प्रांत से आए हुए थे तो वे अपने साथ उस व्यवस्था को भी लाए। अतः मॉरीशस में उस व्यवस्था को क्रियान्वित करने में भारतवंशियों का साहसिक प्रयास रहा *(मॉरीशस के प्रसिद्ध लेखक, श्री अजामिल माताबदल से साक्षात्कार लेते समय इस जानकारी की पुष्टि हुई)*। बैठका में हिंदी की पढ़ाई के अतिरिक्त धार्मिक

शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। धार्मिक शिक्षा का केंद्र होने की वजह से इन बैठकाओं को 'मठिया' भी कहा जाता था। (वसंत, आप्रवासी विशेषांक, अंक 41, पृष्ठ 14)। बैठकाओं का आविर्भाव बीसवीं सदी के उस आरंभिक चरण में हुआ जब भारतीय आप्रवासियों को यह लगा कि शिक्षा के लिए अलग से कोई कमरा होना नितांत आवश्यक है जो हर समय हिंदी-शिक्षण या 'बटोर' के लिए खुला रहे। *(दीपक नोबिन के सौजन्य से प्राप्त जानकारी)* उस समय बैठका निर्माण हेतु तन, मन और धन समर्पित करने में कोई झिझक नहीं थी। बैठका के निर्माण कार्य के अंतर्गत मरम्मत, लिपाई-पुताई आदि एक मैत्रीपूर्ण व पारिवारिक वातावरण में संपन्न होता था।

भारतीय आप्रवासी समुदाय के इतिहास में बैठका एक बहुप्रयोजनीय संस्था भी थी। बैठका घर के बाहर जाकर बैठने के स्वाभाविक प्रयोजन को पूरा करता था और यों हर शाम बैठका जाना एक सामाजिक कर्तव्य बन गया था। वे बैठका में जाकर बातें, हँसी-मज़ाक करते, चर्चा और वाद-विवाद करते एवं अपनी जिज्ञासाओं का शमन करते। बैठका में कुछ लोग अपनी शंकाओं के समाधान के लिए प्रश्न करते थे और कुछ लोग केवल चुपचाप बैठे ध्यान से सुनते रहते थे। 'तोता-मैना', 'सुख सागर', 'प्रेम सागर', 'अक़बर-बिरबल' आदि लोक-कथाओं का श्रवण करना बैठकाओं की संस्कृति का अंग था। *(प्रह्लाद रामशरण के साथ साक्षात्कार)*

इसके उपरांत ऐसे हिंदी अध्यापक थे जो खेत में कड़ी धूप में परिश्रम करने के पश्चात् शाम को जब घर लौटते थे तो स्नान करने के बाद बड़ी तनमयता और श्रद्धा भाव के साथ बैठका में पढ़ाने जाते थे। प्रारंभिक काल में बैठकाओं में बारहखड़ी की पढ़ाई होती थी। बारहखड़ी हिंदी अक्षरों की एक शिक्षण विधि है। वर्णमाला और बारहखड़ी के ज्ञान के बाद संयुक्ताक्षर तथा शब्द-रचना की जानकारी दी जाती और तब विद्यार्थी पशु-पक्षियों की छोटी-छोटी कहानियाँ पढ़ने लगते और अंत में रामायण बाँचते थे। इसके अतिरिक्त छात्र गणित भी हिंदी के माध्यम से सीखते थे। पहाड़ा, गुणाकार, भागाकार आदि हिंदी में ही सीखे जाते थे। अत: यह स्पष्ट है कि हिंदी भाषा की विस्तृति और लोकप्रियता में बैठका की विलक्षण भूमिका रही है।

गरीबी के कारण बच्चे नंगे पाँव ही बैठका जाते थे। उस समय बैठका में 'पटसन' की चटाई पर 'पलथी' मारकर हिंदी की पढ़ाई सुगमतापूर्वक होती थी। अभिभावक शिक्षा संबंधी सामग्री खरीदने में असमर्थ थे क्योंकि उस समय जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना ही कठिन था। परंतु बच्चे इस विकट परिस्थिति से हताश न होकर अपनी शिक्षण सामग्री स्वयं बनाते थे। पेड़ का कोई स्थूल अंग काटकर उसे सुखाया जाता था। इसे काठ भी कहा जाता है। काठ बढ़ई को दी जाती थी। उसके ऊपरी भाग में तीन अंगुल चौड़ी मूठ होती थी जिसमें एक छेद किया जाता था। छेद में रस्सी का एक फंदा होता था जो टाँगने के काम आता था। नई पाटी की दोनों सतह पर घंटों भर निरंतर रूप से कोयला घिसा जाता था और बोतल की पेंदी का उपयोग इसलिए होता था कि पाटी संपूर्णत: काली व चिकनी हो जाए। पाटी पर लिखने के लिए खड़िया को छुरी से रेतकर चूण बना लिया जाता था, फिर उसमें पानी मिलाकर स्याही बनाई जाती थी। सरकंडे को काटकर एक पैनी कलम बनाकर और खड़िया के घोल में डुबो-डुबोकर पाटी पर लिखा जाता था। इस प्रकार सीमित साधनों से ही हिंदी की पढ़ाई बैठकाओं में होती थी। *(यह ऐतिहासिक तथ्य पूजानंद नेमा के साथ साक्षात्कार लेते समय प्राप्त हुआ—अगस्त 2013)*। तीन बजे बैठका खुल जाती थी और शाम के छ: बजे तक हिंदी की पढ़ाई होती थी। यह बात ध्यातव्य है कि छात्रगण जब बैठका जाते थे तो वहाँ पहुँचते ही बैठका को साफ़ करते थे—झाड़ू-पोंछा लगाना, खिड़कियों को साफ़ करना, पुस्तकों से धूल निकालना, ये सब विद्यार्थियों का उत्तरदायित्व था। ऐसा करने से वे और ज़्यादा ज़िम्मेदार व संस्कारी बन जाते थे।

यह एक अकाट्य सत्य है कि मॉरीशस में जब बैठकाओं में हिंदी की पढ़ाई होती थी तो हिंदू धर्म के धरातल पर होती थी। मॉरीशस में भारतीय वंशज रामचरितमानस के माध्यम से हिंदी पढ़ते थे। अतएव बैठका का हिंदी शिक्षण हम धर्म से पृथक नहीं कर सकते हैं। कारण यह है कि पाटी पूजा बैठकाओं की एक महत्वपूर्ण और विशेष गतिविधि थी। यदि बैठका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देखें तो यह पता चलता है कि हर गाँव की बैठकाओं में

प्रति गुरुवार को पाटी पूजा होती थी। गुरुओं को सम्मानित करना, संझा प्रार्थना उच्चरित करना और रामायण बाँचना बैठका की संस्कृति बन चुकी थी। हिंदी की पढ़ाई का श्रीगणेश एक विशेष प्रार्थना से होता था जो इस प्रकार से उल्लेखनीय है—

सर सर, सर सर संझा कली
सोने रूप गिरवर धरी
जो जाने गिरवर के भेवे
नित्य उठे पूजे गणपथ देवा
गणपथ पूजे का करिजे
पहले फूल विनायक दीजे
दुसरका सरोसती दीजे
तिसरका महादेव
चौथे गुरु पाँव पावे आसीष
गुरु चतिया जीय लाख बरीस गुरु द्वारे बरसे चांदी अकल्मंदी
विद्या के फल बैठल खाया

इस प्रकार से बैठका में छात्र व गुरु का परस्पर संबंध सुदृढ़ व घनिष्ठ था। बैठका में छात्रों से रामचरितमानस गायन का अभ्यास करवाते थे तथा दोहों और चौपाइयों की व्याख्या करवाते थे। इस दृष्टि से छात्रगण हिंदी सीखने में सक्षम रहते थे। **राम गति देहु सुमति** यह मॉरीशस की बैठकाओं का मूलमंत्र था जिसका तात्पर्य यह है कि राम मार्ग हमें ज्ञान की ओर ले जाएगा। अत: इस बात की पुष्टि होती है कि रामचरितमानस गायन हिंदी सीखने की एक सटीक एवं सशक्त विधि थी।

यदि बैठकाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अंवेषण करें तो उसकी विकासात्मक यात्रा में विभिन्न हिंदी योद्धाओं ने अपना निस्स्वार्थ योगदान दिया। यों कह सकते हैं कि उन लोगों ने बैठका के माध्यम से हिंदी का आंदोलन छेड़ा। इस आंदोलन में कई नामों का उल्लेख करना उचित होगा।

13 अक्टूबर, 1907 को मणिलाल डॉक्टर का मॉरीशस में आगमन हुआ। मॉरीशस में उनके पदार्पण से मानो भारतीयों को एक सच्चा संरक्षक मिल गया हो। मणिलाल जी हरेक गाँव की बैठकाओं में हिंदी में ओजस्वी भाषण देते क्योंकि हिंदी वहाँ के लोगों की भाषा थी। 1908 में ही मणिलाल जी के नेतृत्व में यंगमैन हिंदू एसोसिएशन की स्थापना की गई। 1910 में आर्य समाज की स्थापना हुई और यह एक महत्वपूर्ण कड़ी थी जहाँ पर भारतीय मूल के मॉरीशसवासियों का एक सुधारवादी आंदोलन शुरु हुआ था। उस समय बैठका की एक विशेष भूमिका थी क्योंकि उसी समय मणिलाल डॉक्टर बैठकाओं में जाकर भारतीयों में जागरूकता का मंत्र फूँकते थे। 15 मार्च, 1909 को 'हिंदुस्तानी' पत्र का प्रकाशन मणिलाल डॉक्टर के सौजन्य से हुआ। यह बात उल्लेखनीय है कि बैठकाओं में ही 'हिंदुस्तानी' पत्र का वितरण होता था। 'हिंदुस्तानी' में विभिन्न विषयों पर हिंदी के लेख लिखे जाते थे। इसके अतिरिक्त सन् 1924 में जब सर कुँवर महाराज सिंह भारतीय आप्रवासियों की स्थिति को जाँचने के लिए आए थे तो उन्होंने भारतीय भाषाओं के शिक्षण का समर्थन करते हुए उसकी अनुशंसा की।

परिणामत: बैठकाओं में हिंदी भाषा का शिक्षण सुचारू रूप से होने लगा और हिंदू समाज के लिए बैठका एक महत्वपूर्ण भवन बन गया। सन् 1948, 1950 में अखिल मॉरीशस में प्राय: 400 से अधिक बैठकाएँ थीं। उनमें हिंदी का पठन-पाठन उस समय सक्रिय रूप से हो रहा था। सन् 1950 बैठका का विकास काल था।

तदंतर डॉ. भारद्वाज अपनी पत्नी सहित मॉरीशस पहुँचे और मणिलाल डॉक्टर एवं महात्मा गांधी की कार्य-प्रणालियों का अनुसरण किया। जन सेवा, लोक कल्याण एवं लोकोदय के कार्यों में अपने आप को समर्पित करना भारद्वाज का वैशिष्ट्य था। अत: सायंकाल वे बस्तियों में चले जाते थे और वहाँ की बैठकाओं में हिंदी तथा स्वामी दयानंद की शिक्षाओं के बारे में पढ़ाते थे। उनकी पत्नी सुमंगली देवी दोनों सायंकाल व रात्रि के समय आर्य समाज की उस बैठका में हिंदी पढ़ाती थीं और जितने छात्रगण हिंदी पढ़ते थे वे देश के सशक्त हिंदी भक्त, हिंदी योद्धा और पक्का हिंदू बन जाते थे। लखन दूबारी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। पंडित आत्माराम विश्वनाथ, जो मॉरीशस के भारतीय वंशी लोगों के लिए देव दूत बनकर सन् 1912 में मॉरीशस आए थे, वे आर्य समाज की बैठकाओं के लिए वरदान थे। इसके अतिरिक्त 1954 के अधिवेशन की रिपोर्ट से पता चलता है कि पंडित आत्माराम आर्य सभा के उपप्रधान पद पर आसीन थे। इस पदवी का भरपूर लाभ उठाते हुए

उन्होंने आर्य सभा की शाखाओं का दौरा किया और उन बैठकाओं में जाकर प्रेरणास्रोत बनकर हिंदुओं से हिंदी पढ़ने की विनम्र माँग की। यह उल्लेख्य है कि बैठकाओं में वार्षिक उत्सव एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी जहाँ पर विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र व पुरस्कार दिया जाता था। इस प्रकार उन छात्रों को हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाता था।

इसके अतिरिक्त पंडित काशीनाथ किष्टो ने बैठका आंदोलन और मॉरीशस में हिंदी भाषा के उन्नयन में अथक संघर्ष किया। उन्होंने गाँव-गाँव और शहर में जाकर बैठकाएँ खोलनी शुरू की। पंडित काशीनाथ किष्टो की पुत्री मोक्षदा था इस देश के भारतवंशियों में प्रथम लोरिएट बनी। यह ध्यातव्य है कि पुत्री मोक्षदा बैठका की ही उपज थी। पंडित काशीनाथ किष्टो के अथक प्रयास व संघर्ष से आर्य परोपकारिणी सभा ने इन्हीं की देख-रेख में पहली अगस्त, 1918 को वाकुआ में दस छात्रों के साथ आर्यन वैदिक स्कूल की नींव रखी। यह बैठका का विकसित रूप था जहाँ हिंदी भाषा के अतिरिक्त युरोपीय भाषाओं का भी पठन-पाठन होता था। पंडित जी अपनी पत्नी सहित इसी स्कूल में अध्यापन का कार्य कर हिंदी के सेवक बने।

पंडित जगनंदनलाल का बैठकाओं के विकास तथा हिंदी आंदोलन में भी विशेष योगदान रहा है। पंडित जगनंदनलाल के घर के पीछे एक नदी थी जिसके तट पर उन्होंने घास-फूस की एक छोटी सी बैठका बनवाई थी। पंडित जगनंदनलाल की पत्नी गाय और बकरी का पालन करती थी। अत: इनके घर में दूध की कमी नहीं होती थी। बैठका में आए बच्चों को भी दूध दिया जाता था। पंडित जी हिंदी भाषा के सशक्त हिमायती थे। वे हमेशा हिंदी में ही बात करते थे।

इस प्रकार से बैठका में छात्र व गुरु का परस्पर संबंध काफ़ी सुदृढ़ व घनिष्ठ था। बैठका में छात्रों से रामचरितमानस गायन का अभ्यास करवाते थे तथा दोहों और चौपाइयों की व्याख्या करवाते थे। इस दृष्टि से छात्रगण हिंदी सीखने में सक्षम रहते थे। राम गति देहु सुमति यह मॉरीशस की बैठकाओं का मूलमंत्र था जिसका तात्पर्य यह है कि राम मार्ग हमें ज्ञान की ओर ले जाएगा। अत: इस बात की पुष्टि होती है कि रामचरितमानस गायन हिंदी सीखने की एक सटीक एवं सशक्त शिक्षण विधि थी।

बैठका आंदोलन में मोहनलाल मोहित का नाम लेना समीचीन है। उनके नेतृत्व में लावेनिर की बैठका में प्रति रविवार को हिंदी की पढ़ाई नियमित रूप से होती थी। तभी से उन्होंने बालकों को विधिवत पढ़ाना शुरू किया और बैठका के नियम ***अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए*** को सार्थकता प्रदान की।

उधर 1926 में तिलक विद्यालय क्रेव केएर गाँव में स्थापित हुआ। उसी को सरस्वती कन्या पाठशाला भी कहा गया था। यह पाठशाला विशेष रूप से कन्याओं के लिए खोली गई थी। उस समय कन्या पाठशाला में सप्ताह भर दिन के दौरान हिंदी की पढ़ाई होती थी जिसमें सुरुज प्रसाद मंगर भगत हिंदी अध्यापक थे। तिलक विद्यालय का स्थानांतरण धारा नगरी (*मोंताय लोंग-मॉरीशस के उत्तर प्रांत का एक गाँव*) में हुआ और वह 'हिंदी प्रचारिणी सभा' नाम से 1935 में पंजीकृत हुआ। हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना का उद्देश्य था मॉरीशस की सभी बैठकाओं को संचालित करना। बैठकाओं की वार्षिक परीक्षाएँ, पाठ्य पुस्तकें, प्रमाण-पत्र वितरण आदि कार्यों को सँभालना हिंदी प्रचारिणी सभा की मुख्य प्रतिबद्धताएँ हैं।

इसके उपरांत हिंदी प्रचारिणी सभा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में श्री जयनारायण रॉय जी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। श्री जयनारायण रॉय के व्यक्तिगत संपर्क से ही इलाहाबाद के हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं की व्यवस्था हमारे देश में हुई। इस तरह मॉरीशस की बैठकाओं में हिंदी शिक्षण व परीक्षाएँ बहुत ही सक्रिय रूप से संचालित होने लगीं। 1946 में 'परिचय' की परीक्षा पहली बार हुई। कुछ वर्षों के बाद 1956 में 'प्रथमा' तथा 1963 में 'उत्तमा' की परीक्षा होने लगी। इन परीक्षाओं के आयोजन एवं

संचालन में श्री जय नारायण राय का अभूतपूर्व योगदान रहा। यह उल्लेखनीय बात है कि हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम व पाठ्य-पुस्तकें छात्रों के लिए काफ़ी लाभकारी थीं। छात्रों को हिंदी भाषा के साथ-साथ हिंदी साहित्य भी पढ़ना पड़ता था। अत: हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा संचालित परीक्षाएँ हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में इसलिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं क्योंकि देश की सभी बैठकाओं में परीक्षाएँ होती थीं।

बैठका के निर्माण और विकास में वासुदेव विष्णुदयाल का योगदान उल्लेखनीय है। यह बात ध्यातव्य है कि जब वासुदेव जी 1939 में, भारत से मॉरीशस लौटे तो हिंदी एवं बैठका आंदोलन का श्रीगणेश हो चुका था। अपने भाइयों के साथ उन्होंने बैठका को लेकर जो संघर्ष किया वह अपने आप में बड़ी बात है। उदाहरणार्थ उनके यहाँ रात्रिकाल में बैठकाएँ होती थीं जिनमें भारी मात्रा में बच्चे पढ़ने आते थे। जो वयस्क थे वे पुरोहित बनने के उद्देश्य से हिंदी सीखने आते थे। इनकी बैठका में हिंदी सिखाते समय हिंदुत्व समझाने का सिरतोड़ परिश्रम किया जाता था। वासुदेव विष्णुदयाल एक सृजनात्मक लेखक होने के साथ-साथ एक ओजस्वी वक्ता भी थे। उन्होंने बैठका आंदोलन में जान फूँकने के लिए पाठ्य-पुस्तकें भी लिखीं तथा उनके निर्देशन, सलाह व प्रेरणा से और बैठकाएँ खोली गईं। गाँव-गाँव में जाकर वासुदेव जी ने हिंदू जाति को बैठका खोलने के लिए अभिप्रेरित किया। उनके देशव्यापी दौरों में हिंदू समाज में जागृति की लौ दिखाई दी। इस प्रकार बैठका के उत्थान में विष्णुदयाल का योगदान अप्रतिम रहा है। अत: इस प्रकार से बैठका का काल-निर्धारण किया जा सकता है—

उद्भव काल—1834-1898

उदय काल—1898-1926

विकास काल—1926-1950

पुनरुत्थान काल—1950 आज तक

यदि समकालीन संदर्भ में बैठका की स्थिति देखें तो यह दृष्टिगोचर होता है कि प्राथमिक पाठशालाओं व माध्यमिक स्कूलों ने बैठकाओं की जगह ले ली है। आजकल मॉरीशस में ऐसी बहुत सारी आधुनिकतम एवं सुंदरतम शैक्षणिक संस्थाएँ हैं जहाँ पर हिंदी भाषा का पठन-पाठन हो रहा है। नए शैक्षणिक भवनों में एक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण छाया हुआ है जिसमें औपचारिक शिक्षा पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता है। फिर भी संपूर्ण मॉरीशस में बैठकाएँ अभी तक संचालित होती हैं।

समग्रत: हिंदी भाषा यदि आज मॉरीशस में पुष्पित, पल्लवित एवं फलित है तो इसका बहुत बड़ा श्रेय उन बैठकाओं को जाता है जो हमारे भारतीय आप्रवासियों की देन हैं।

ग्राँ-बुआ, मॉरीशस
abhikesh1402@yahoo.com

12 मॉरीशसीय आर्य समाज द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ

● *श्रीमती शांति मोहाबीर*

शिक्षा : मॉरीशस इंस्टिट्यूट ऑफ़ एजुकेशन और महात्मा गांधी संस्थान से हिंदी अध्ययन में डिप्लोमा, मॉरीशस विश्वविद्यालय से हिंदी विज़ एजुकेशन में बी.ए., कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, भारत से एम.ए. हिंदी, ओपन यूनिवर्सिटी ऑफ़ मॉरीशस में पीएचडी (हिंदी) शोधरत।

शोध विषय : आर्य समाज द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की मॉरीशस के विकास में भूमिका।

- सन् 2013 के अंतरराष्ट्रीय आर्य सम्मेलन में शोध पत्र का प्रस्तुतिकरण,
- आर्य सभा मॉरीशस द्वारा प्रकाशित आर्योदय पत्र में लेख प्रकाशित,

संप्रति : हिंदू गर्ल्स कॉलेज में शिक्षिका तथा आर.डी.आई. में अंशकालिक प्राध्यापिका के रूप में कार्यरत।

खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो॥

—*अकबर*

सन् 1960 में पं. सुंदरप्रसाद जी द्वारा संपादित अर्द्ध साप्ताहिक हिंदी पत्र—'समाजवाद' के उक्त वाक्य उसके आदर्श वाक्य थे। पत्रकारिता के प्रभाव को उजागर करने वाली इन पंक्तियों ने सदैव ही मेरे मर्म को स्पर्श किया है। बात सही भी है। आज अधुनातन संचार माध्यमों की कोई कमी नहीं है, फिर भी समाचार-पत्रों का स्थान कोई नहीं ले सका है। सफ़ेद कागज़ पर स्याही का अचूक असर अच्छे-अच्छों की बोलती बंद कर देता है।

मॉरीशस टापू में हिंदी पत्रकारिता की कहानी भारतीय जन-जागरण की कहानी है। यह जागरण वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास को समझने व महसूस करने की कहानी है। यह जागरण अंधविश्वास की जकड़न से मुक्ति पाने की कहानी है। 15 मार्च, 1909 में श्री मणिलाल मगनलाल डॉक्टर द्वारा संपादित 'हिंदुस्तानी' पत्र भी तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दुरवस्था से मुक्ति प्राप्त करने के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। 'हिंदुस्तानी' के उद्भव से ही मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता का उद्भव माना जाता है। लंबी अवधि तक अंधकार को ही अपनी नियति मानकर भारतीय आप्रवासी जिए जा रहे थे। सन् 1834 में जब वे यहाँ पर बंधुआ मज़दूर के रूप में लाए गए थे तब उनपर करालता की जो बिजली टूटी थी, उससे अनभिज्ञ कोई नहीं है। भारतीय मज़दूरों की परिस्थिति दयनीय थी। वे शोषित थे, आर्थिक रूप से विपन्न थे; उनकी दशा दासों की सी थी। सामाजिक विषमताओं से घिरे, उचित शिक्षा व आर्थिक सहायता के अभाव में वे जीवन की त्रासदी भोगते थे।

ऐसी विषम परिस्थिति में कलम ने श्री कृष्ण का रूप लिया। जिस प्रकार महाभारत का युद्ध जीतने के लिए पांडवों ने श्रीकृष्ण को आगे रखा था, ठीक ऐसे ही मॉरीशस का उद्धार करने के लिए एवं भारतीय मज़दूरों को उनका अधिकार दिलाने के लिए विद्वानों ने कलम का सहारा लेना समीचीन समझा। सन् 1909 से लेकर आज तक हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन जितनी बड़ी संख्या में मॉरीशस में हुआ है, भारत के बाहर शायद ही किसी अन्य देश में हुआ होगा। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में विशेष रूप से स्वयंसेवी संस्थाएँ संलग्न रही हैं। संगठन में परब्रह्म का वास है और जब भारतीय मज़दूर इस वास्तविकता से अवगत हुए तब इस लघु भारत में भी धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थाओं की सृष्टि आरंभ हुई।

मॉरीशस की प्रथम संस्था 'मॉरीशस हिंदू फ्रेंडशीप सोसाइटी' की स्थापना सन् 1898 में हुई। तेरह संस्थाओं की स्थापना के पश्चात सन् 1913 ई. को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुइस में आर्य समाज का पंजीकरण 'आर्य परोपकारिणी सभा' के नाम से हुआ। आर्य समाज की स्थापना अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि के लिए हुई थी। आर्य समाज का मंतव्य था ''मानव की सर्वांगीण उन्नति के लिए विद्या अपरिहार्य है।'' आर्य समाज का छठा नियम है कि *'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।'*

मॉरीशस में आर्य समाज के आगमन से पूर्व अविद्या एवं

अंधविश्वास व्याप्त था। सुधार हेतु आर्य समाज ने पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ किया और देश के हरेक क्षेत्र को प्रभावित किया। डॉ. के. हज़ारीसिंह के कथनानुसार ''आर्य समाज आंदोलन ने समाज के अधिकांश को प्रभावित किया और सभी क्षेत्रों में भारतीय जनता की सामाजिक प्रगति में उसका निश्चित योगदान रहा।''1

साक्षी है इतिहास

मॉरीशस को लघु भारत माना जाता है। इसके पीछे अनेक कारण हैं। उन कारणों में से एक कारण तो यह है कि यहाँ पर बसे हम हिंदुओं के पितामह तथा प्रपितामह भारतीय थे। दूसरा कारण यह है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मॉरीशस की प्रगति में भारत का सदैव बहुत बड़ा योगदान रहा है। आर्य समाज के गठन को लेकर भी कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है। श्री खेमलाल लाला ने श्री गुरुप्रसाद दलजीतलाल और श्री जगमोहन गोपाल से मिलकर क्यूर्पिप में सन् 1903 में आर्य समाज की स्थापना की थी। श्री खेमलाल लाला महर्षि दयानंद कृत 'सत्यार्थ प्रकाश' से प्रेरित हुए थे। सत्य के अर्थ को उजागर करनेवाला यह ग्रंथ उन्हें हाइलेंड्स, फेनिक्स निवासी श्री भिखारीसिंह ने दिया था। इतिहास कहता है कि सन् 1897 में प्रथम बंगाल पैदल सेना मॉरीशस आई थी। सेना में श्रीमान भोलानाथ तिवारी नामक हिंदी साहित्य के एक प्रेमी थे। इनके पास हिंदी की अनेक पुस्तकें थीं। सन् 1902 में यहाँ से वापस जाते समय इन्होंने अपनी पुस्तकें यही छोड़ दी थीं। श्री भिखारी सिंह भारतीय सिपाहियों को दूध देने की ज़िम्मेदारी सँभालते थे। दो पुस्तकें 'संस्कार विधि' और 'सत्यार्थ प्रकाश' इनके हाथ पड़ी। इन्हें हिंदी का ज्ञान न था, अत: इन्होंने श्री खेमलाल लाला जी को ये पुस्तकें सौंप दीं। तभी से सत्य-विद्या का प्रचार प्रारंभ हुआ। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को प्रचार का माध्यम बनाया गया। धीरे-धीरे ही सही, परंतु प्रगति का सूर्य उदय हुआ। उसके आलोक और उष्णता से भारतीय मज़दूरों को जीवन-शक्ति की प्राप्ति हुई। आज यदि हम सम्मान से सिर ऊँचा करके जी रहे हैं देश-विदेश में नाम कमा रहे हैं, तो इसका श्रेय आर्य समाज द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को भी जाता है।

इस तथ्य का उल्लेख करते हुए बड़े ही गर्व का अनुभव होता है कि मॉरीशस में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में आर्य समाज एक सौ तीन वर्ष से संलग्न है। इस लेख में उन पत्र-पत्रिकाओं के संक्षिप्त परिचय के साथ-साथ उनके संपादकों या उनसे जुड़े विशेष कार्यकर्ताओं की जीवनी भी संक्षिप्त में रेखांकित की जा रही है।

भारतीय नवजागरण हेतु 'जागृति' का प्रकाशन सन् 1939 में प्रारंभ हुआ। राष्ट्रीय पुस्तकालय में शुक्रवार 17 जनवरी, 1940 का अंक 12 विद्यमान है। तमिल भाषी पं. नारायण संजीवी 'जागृति' के संपादक थे। वे हिंदी पढ़कर, हिंदी में भजन गा-गाकर समस्त मॉरीशस में धर्म, शिक्षा, संस्कृति, भाषा आदि का प्रचार करते थे। यह उनका हिंदी भाषा पर अधिकार ही था कि 'आर्य पत्रिका', 'आर्यवीर', 'जनता' आदि अखबारों में उनके लेख छपते रहते थे। धर्मोपदेश के साथ-साथ हिंदी पाठशालाएँ खुलवाना, उनमें सुचारू रूप से हिंदी भाषा की पढ़ाई करवाना आदि उनके जीवन का लक्ष्य था।

मॉरीशस आर्य पत्रिका (1911)

'सन् 1911 से डेढ़ सौ वर्ष पहले की फ्रेंच और बाद की अंग्रेज़ी की दुर्लभ प्रकाशित सारी सामग्री अभिलेखागार में उपलब्ध है, मात्र 'हिंदुस्तानी', 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' और 'ओरियंटल गजट' की प्रतियाँ गायब हैं या उन्हें सायास गायब कर दिया गया था?'

उक्त प्रश्न पूछने का साहस करनेवाला कौन हो सकता है भला? ओजस्वी साहित्यकार डॉ. बीरसेन जागासिंह ने सन् 2003 में प्रकाशित 'स्मारिका' पत्रिका के एक लेख में इस कटु सत्य का उद्घाटन किया था। पोर्ट लुइस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' और 'ओरिएंटल गजट' का नामोनिशान नहीं है। 'हिंदुस्तानी' पत्र के केवल दो अंक उपलब्ध हैं—एक पूरा, दूसरा अधूरा। यद्यपि सन् 1911 में प्रकाशित 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का एक भी अंक मौजूद नहीं है तथापि उसके अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता है। 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' आर्य समाजियों द्वारा देश-सेवा निमित्त प्रकाशित

होती थी। इसका प्रमाण पंडित आत्माराम विश्वनाथ द्वारा रचित 'मॉरीशस का इतिहास' के पृष्ठ 176 पर विद्यमान है। श्री रामधन पूरण द्वारा विरचित 'मॉरीशस आर्य समाज का इतिहास' में भी इसका प्रमाण उपस्थित है। श्री पूरण को पुस्तक लिखकर उसे प्रकाशित करने की प्रेरणा व विचार श्री दलजीतलाल से प्राप्त हुआ था। श्री खेमलाल लाला और श्री गुरुप्रसाद दलजीतलाल मित्र थे। सन् 1903 में जब प्रथम बार के लिए क्यूर्पिप में आर्य समाज की स्थापना हुई थी तब श्री दलजीतलाल मंत्री पद पर नियुक्त हुए थे और श्री खेमलाल प्रधान पद पर। रेखांकित करने योग्य बात यह है कि आज जहाँ क्यूर्पिप में निर्घीन भवन सिर उठाकर बड़ी शान से खड़ा है, वहीं पर सन् 1903 में आर्य समाज की स्थापना हुई थी। तब इसी स्थान पर श्री जगमोहन गोपाल की दूकान हुआ करती थी। आर्य समाज का बीज यहीं से अंकुरित होना आरंभ हुआ था। 'मॉरीशस आर्य समाज का इतिहास' पुस्तक को भली-भाँति संपन्न करने के लिए श्री रामधन पूरण को सारी सामग्री श्री दलजीतलाल की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्रों से प्राप्त हुई थी। पिता की अंतिम इच्छा थी कि सभी हस्तलिखित कागज़ात और बही जिनमें आर्य समाज का विवरण था और जो उन्होंने स्वयं लिखा था, श्री पूरण को सौंप दी जाए। उन आवश्यक कागज़ात में 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' की प्रतियाँ भी थीं जिनसे लेख उद्धृत करके श्री पूरण ने अपनी पुस्तक में छापा था।

श्री रामधन पूरण के कथनानुसार 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का प्रकाशन 1 जून, 1911 को प्रारंभ हुआ था। श्री खेमलाल लाला इस समाचार-पत्र के संपादक थे। यह पत्र 'हिंदुस्तानी प्रेस' से मुद्रित और प्रकाशित होता था। श्री इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ द्वारा रचित 'आर्य समाज और हिंदी विश्व संदर्भ में' पुस्तक के पृष्ठ 200 में इस बात का उल्लेख हुआ है कि जब श्री खेमलाल अस्वस्थ हो गए थे तब स्वामी स्वतंत्रानंद ने 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का संपादन कार्य संपन्न किया था। यह पत्र निश्चित रूप से कब बंद हुआ, यह पाक्षिक था कि साप्ताहिक इन बातों को लेकर विद्वानों में मतभेद है और यह स्वाभाविक भी है।

जब सन् 1924 में पं. काशीनाथ किष्टो के संपादन में 'आर्य पत्रिका' का पुन: प्रकाशन प्रारंभ हुआ था तब इसके अंक 7, 28 नवंबर, 1924 को 'दत्त' द्वारा लिखित 'वंदेमातरम' शीर्षक लेख के अंतर्गत निम्न पक्तियाँ ध्यान आकृष्ट करने योग्य हैं—

''...यही 'आर्य पत्रिका' पूर्व में कितनी लाभदायक थी, बाद में छिप गई। आज बड़े आंनद के साथ कहना पड़ता है कि पुनरपि इस पत्र को महोपदेशक श्रीयुत पंडितजी ने खोज-ढूँढ़कर प्रकाशित करने का प्रबंध किया...।''

'कर्मा' नाम से लिखित 'Autobiography of Arya Patrika'[2] नामक लेख में 'आर्य पत्रिका' की उत्पत्ति से संबंधित तथ्य प्रकाश में आया है—

''I was born on the 15th October 1911... my father's name was T. Iallah... my nurse was G. Duljeetlall. I will continue flashing my sword of Vedic Truth over your heads. So beware!"

श्री रामधन पूरण की पुस्तक 'मॉरीशस आर्य समाज का इतिहास' में पृष्ठ 35 पर 1 जून, 1911 को जो प्रथम हिंदी लेख छपा था, उसका अंश प्रस्तुत है—

''इस टापू में अपने हिंदू भाई अथवा उनके बाप-दादा बहुत करके गुलामगिरी की दशा में दाखिल हुए थे, मुलुक से आप जो कुछ धर्म की वृति, आचार-विचार आदि थेवेली कोठी में रहने पर अनेक कारणों से दिन पर दिन कम होते गए, यहाँ तक कि बहुत से आदमी न खाने लायक अन्न खाने लग गए और न करने लायक विवाह आदि संबंध भी करने लग गए... अपने भाइयों की अधोगति होती ही जाती है... अच्छी विद्या को बराबर फैलाने के लिए प्रेमी भाइयों की मदद से यह 'आर्य पत्रिका' का आरंभ होता है...।''

उपर्युक्त वाक्यों में हिंदी का आरंभिक रूप दृष्टिगोचर होता है। उस समय की हिंदी में विशुद्धता का अभाव था। 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' का उद्देश्य था वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार, भारतीय धर्म, संस्कृति व सभ्यता की सुरक्षा, सामाजिक उन्नति, राजनीतिक जागरण, आर्थिक विकास और एक शिक्षित व स्वस्थ मानव-समाज की सृष्टि।

आर्य पत्रिका (1924)

राष्ट्रीय पुस्तकालय पोर्ट लुइस में सन् 1924 में प्रकाशित 'आर्य पत्रिका' के कई अंक उपलब्ध हैं। 18 नवंबर, 1924 को प्रकाशित 'आर्य पत्रिका' के पंचम अंक के दर्शन करने का सौभाग्य आज भी प्राप्त हो सकता है। तो क्या हुआ यदि प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अंक अनुपलब्ध हैं! सुलभ प्रतियाँ साप्ताहिक रूप से प्रति शुक्रवार को हिंदी व अंग्रेज़ी में छपी थीं। पत्र के संपादक पं. शीनाथ किष्टो जैसे साहसी विद्वान थे। शुक्रवार, 17 सितंबर, 1926 से इस

पत्र का संपादन श्री मुसासिंह करने लगे। श्री मुनींद्रनाथ वर्मा के कथनानुसार इस पत्र के संपादन से पं. बेणीमाधो सतीराम भी जुड़े रहे और 1924 से लेकर 1940 तक यह पत्र प्रकाशित होता रहा। वरिष्ठ इतिहासकार श्री प्रह्लाद रामशरण के अनुसार पं. काशीनाथ के अटूट प्रयास से 'शताब्दी अंक' नाम से 'आर्य पत्रिका' का एक विशेषांक निकला था जो मॉरीशस में हिंदी आंदोलन की दृष्टि से एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। 'शताब्दी अंक' प्रकाशन महर्षि दयानंद की जन्मशती के अवसर पर हुआ था।

'आर्य पत्रिका' का मुद्रण एवं प्रकाशन कार्य द वैदिक प्रेस, दयानंद धर्मशाला', 16 फ्रेर फेलिक्स दे वाल्वा रोड़, पोर्ट लुइस में संपन्न होता था। श्री इसरापेन मुच्यें पत्र के मालिक थे। श्री मोहनलाल मोहित बताते हैं कि 'आर्य पत्रिका' के प्रकाशन निमित्त तमिलभाषी आर्य श्री मुच्यें ने तमिल कवि पं. परमाल सुब्रायन को भारत भेजकर प्रेस मँगवाया था।[3]

'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्ररय चक्षुषा समीक्षामहे।'

यजुर्वेद का उपर्युक्त मंत्र 'आर्य पत्रिका' का आदर्श वाक्य था। पत्र का उद्देश्य उजागर करते हुए पं. काशीनाथ अपने प्रथम लेख में कहते हैं कि "जिस समय मॉरीशस प्रगाढ़ निद्रा में तल्लीन था, स्वदेश, स्वजाति और स्वधर्म से बेखबर भारत सनातन आर्यावर्त देश, आर्यजाति सनातन धर्म वेद, धर्म के नाम-मात्र भी भारतीयों की वाणी से हज़ारों कोस परे थे। ओह कैसी भयानक अवस्था थी। स्मरण मात्र से ही रोमांच होता है।...उस भयानक सुषुप्तावस्था में जब कि आर्य संतान अपनी पवित्र मातृ-भाषा से वंचित होकर एकाध ग्रामीण मोटी भाषा और टूटी-फूटी क्रियोली मिलाकर एक खिचड़ी भाषा से जैसे-तैसे अपना काम निकालते थे। आज भारतीयों में शनैः-शनैः जीवन संचार हो रहा है। वे अपनी मातृभाषा से प्यार करना आरंभ कर रहे हैं।...यह पत्रिका अपनी जाति में कुसंस्कारों से उत्पन्न बुराइयों को दूर करेगी। जाति का सुधार करने के लिए किसी भी विषय को अछूता न छोड़ेगी।...शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति तथा मनुष्य का हितैषी बनने का पक्षपात रहित इसका उद्देश्य सदैव रहेगा।...सत्य के पक्षपाती और असत्य के विरोधी होंगे तभी हमारी जाति और हमारे देश का कल्याण होगा।"[4]

उपलब्ध अंक के अवलोकन से इस बात की पुष्टि होती है कि इस पत्र को प्रकाशित करने के पीछे जहाँ देश, जाति व धर्म की उन्नति की बात थी, वहीं हिंदी भाषा (खड़ीबोली) को भी घर-घर पहुँचाने का, उसे परिष्कृत करने का प्रयास जारी था। भारत में द्विवेदी युग में खड़ीबोली आंदोलन चला था और सफ़ल भी रहा था। छायावादी युग के गद्यकार एवं पद्यकार भी खड़ीबोली का परिष्कार एवं संस्कार करते रहे। वहीं खड़ीबोली आंदोलन भारत से बाहर लघु भारत मॉरीशस में भी चलाया गया था। हिंदू धर्म के सशक्त प्रचारक, सुधारक, राजनीतिक सक्रियवादी पं. काशीनाथ ने लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज में महात्मा हंसराज जैसे विद्वान की छत्र-छाया में विद्या प्राप्त की। वे सन् 1910 से लेकर 1915 तक भारत में रहकर सिंध, बलूचिस्तान तथा पंजाब में उपदेशक रूप में कार्यरत थे। फिर खड़ीबोली आंदोलन से वे अछूता कैसे रह सकते थे। यहाँ पर उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित करके इस आंदोलन को जारी रखा। 'आर्य पत्रिका' को जन्म देने से पूर्व सन् 1918 में ही 'आर्यन वैदिक स्कूल' की नींव उन्होंने रख दी थी। श्री धनपत लाला सरीखे विद्वान को इस विद्यालय का मैनेजर बना दिया था और अपनी पत्नी के साथ इस विद्यालय में वर्षों अध्यापन-कार्य करते-कराते रहे।

'आर्य पत्रिका' में लेख के अतिरिक्त कविता, निबंध, कहानियाँ, गीत, जीवनी, संस्मरण, शोक समाचार, सूचनाएँ, विज्ञापन आदि छपते थे।

आर्यवीर (1929)

अभी 'आर्य पत्रिका' अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच ही पाई थी कि शुक्रवार 3 मई, 1929 से 'आर्यवीर' का प्रकाशन हिंदी तथा अंग्रेज़ी में होने लगा। चार पृष्ठों वाला यह पत्र साप्ताहिक था और श्री इसरापेन मुच्चें इसके मालिक थे। यह पत्र 22 फॉक्वार स्ट्रीट, पोर्ट लुइस में मुद्रित तथा प्रकाशित होता था। इसका आदर्श वाक्य था 'सत्यमेव जयते नानृतम'। 'आर्यवीर' के संपादक पं. काशीनाथ किष्टो प्रथम अंक के दूसरे पृष्ठ पर पत्र का उद्देश्य रेखांकित करते हैं—

"...जिससे स्वजाति, देश और धर्म की रक्षा हो।...उत्तम शिक्षा...स्त्री शिक्षा का अत्यंताभाव है जिसके कारण जाति उसकी तरह है, जो कि एक दुर्गम पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढ़ना चाहता है। अतः

स्त्री शिक्षा का प्रचार करना हमारा दूसरा उद्देश्य होगा। ...नैतिक शासनानुशासन संबंधित बातों से भी यथा तथ्य राजा, प्रजा को सचेत करना हमारा उद्देश्य होगा...सामाजिक सुधार...हमारा कर्तव्य होगा।''

'आर्यवीर प्रेस' का पुन: नामकरण करके उसे 'श्रद्धानंद प्रेस' नाम दिया गया। वास्तव में स्वामी दयानंद के अपूर्ण कार्य को इस प्रेस के माध्यम से आर्य समाज के सदस्य पूर्ण करना चाहते थे।

यदि हम ऐसा कहें कि 'आर्यवीर' हमारे पूर्वजों के दुखद एवं संघर्षपूर्ण जीवन का दर्पण है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके पन्ने दुर्भिक्ष, दरिद्रता, चोरी-डकैती, आत्महत्या, बेरोज़गारी, लाचारी, संक्रामक बीमारी का प्रकोप, हिंदी भाषा को दबाए रखने की साज़िश, हिंदी अध्यापकों के वेतन में कटौती आदि की गवाही देते हैं। मानव एवं नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक सुधार पर आधारित लेखों का कोई अभाव न था। साहित्यिक लेखों की भी कमी न थी। पं. काशीनाथ ने अपने अनेक लेखों में हिंदी भाषा को मातृभाषा की उपाधि दी है। देश के कोने-कोने में हिंदी पाठशाला, कन्या पाठशाला आदि खुलने की सूचनाएँ भी छपती थीं। 'आर्यवीर' ने निस्संदेह ही गहरी निद्रा में सोए शर्तबंद मज़दूरों को जगाया है और उनके ह्रदय में आत्मविश्वास की अग्नि प्रज्ज्वलित की है। राष्ट्रीय पुस्तकालय में 'आर्यवीर' की कई प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

जागृति (1939)

भारतीय नवजागरण हेतु 'जागृति' का प्रकाशन सन् 1939 में प्रारंभ हुआ। राष्ट्रीय पुस्तकालय में शुक्रवार 17 जनवरी, 1940 का अंक 12 विद्यमान है। तमिल भाषी पं. नारायण संजीवी 'जागृति' के संपादक थे। वे हिंदी पढ़कर, हिंदी में भजन गा-गाकर समस्त मॉरीशस में धर्म, शिक्षा, संस्कृति, भाषा आदि का प्रचार करते थे। यह उनका हिंदी भाषा पर अधिकार ही था कि 'आर्य पत्रिका', 'आर्यवीर', 'जनता' आदि अखबारों में उनके लेख छपते रहते थे। धर्मोपदेश के साथ-साथ हिंदी पाठशालाएँ खुलवाना, उनमें सुचारू रूप से हिंदी भाषा की पढ़ाई करवाना आदि उनके जीवन का लक्ष्य था।

'जागृति' चार पृष्ठोंवाला साप्ताहिक पत्र था। यह हिंदी, अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषाओं में प्रकाशित होता था। 4 जुलाई, 1941 से श्री बेणीमाधव सतीराम इसका संपादन-कार्य सँभालने लगे थे। श्री बेणीमाधव सतीराम भारत से शिक्षा ग्रहण करके सन् 1925 में मॉरीशस लौटे थे। आप एक सशक्त वक्ता, प्रचारक, संस्कृत तथा हिंदी भाषा के प्रकांड विद्वान थे। आपने न केवल 'आर्य पत्रिका' व 'जागृति' का ही संपादन किया अपितु 'आर्यवीर-जागृति', 'जनता', 'आर्योदय', 'समाजवाद' आदि पत्रों का भी संपादन किया।

'जागृति' पत्र का आदर्श वाक्य था—'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निवोधत'। ठीक इसके नीचे इसका अर्थ लिखा रहता था—'उठो। जागो और उन्नत राह बतानेवालों को पहचानो'। 'जागृति' भी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं साहित्यिक गौरव को ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण योगदान देता था। इसके लेख अत्यंत ही प्रभावशाली व ओजस्वी होते थे। 'लोभ और दरिद्रता से मृत्यु अच्छी', 'मज़दूरों में शराबखोरी', 'मज़दूरों में विलासिता', 'झाड़-फूँक', 'ओझाई', 'चुनाव', 'शुद्धि', 'उद्योग बिना प्रारब्ध नहीं खुलता', 'नारी शिक्षा', 'हिंदी भाषा', 'व्यापार', 'वाणिज्य', मातृभाषा—आदि शीर्षकों वाले लेख 'जागृति' के पत्रों को सुशोभित करते थे। इस पत्र में भारतीय एवं पाश्चात्य जगत के विद्वानों, राजनीतिज्ञों, स्वतंत्रता सेनानियों एवं दार्शनिकों की जीवनियाँ भी छापी जाती थीं।

'जागृति' ने तत्कालीन हिंदी समाज में घर कर गई संकीर्ण मानसिकता को दूर भगाकर उसे व्यापक दृष्टि प्रदान करने का भरसक प्रयास किया। सन् 1945 में आर्यवीर और 'जागृति' मिलकर 'आर्यवीर-जागृति' नाम से प्रकाशित होने लगे।

आर्यवीर-जागृति (1945)

शत्रुता युद्ध को जन्म अवश्य देती होगी परंतु यही शत्रुता कभी-कभी अनायास ही मानव समुदाय को एकता व प्रेम का पाठ भी पढ़ा देती है। द्वितीय विश्व युद्ध के चलते अभाव का साम्राज्य चहुँ ओर फैला हुआ था। उसी अभाव ने 'आर्यवीर' और 'जागृति' को दो से एक बना दिया। दोनों में संधि हो गई और सन् 1945 से 'आर्यवीर-जागृति' नाम से प्रकाशित होने लगे। वीर आर्यों को जन-मन में जागृति लानी थी सो 'आर्यवीर-जागृति' को एक होना ही पड़ा। पोर्ट लुइस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में 1 जनवरी, 1948, संख्या 135 से लेकर 31 दिसंबर, 1948, संख्या 185 तक के ही अंक उपलब्ध हैं। यह पत्र हर शुक्रवार को प्रकाशित होता था। इसके दो आदर्श वाक्य थे—'सत्यमेव जयते' और 'कृण्वंतोविश्वमार्यम'। भारतीय मज़दूरों के उन्नयन में यह पत्र सदैव संघर्षशील रहा। सन्

1950 से इस पत्र का पुन: नामकरण हुआ और इसका नाम पड़ा 'आर्योदय'। आर्यों द्वारा प्रकाशित, समस्त भारतीय जनता के विकास में यह पत्र सन् 1950 से लेकर आज तक प्रकाश में आ रहा है।

आर्योदय (1950)

'आर्योदय' आर्य सभा मॉरीशस का मुख पत्र है। 3 मई 1950 को आर्य सभा का पंजीकरण हुआ था। भारतीय गणतंत्र समारोह में भाग लेने के लिए फरवरी 1950 में श्री मणिलाल डॉक्टर एवं स्वामी स्वतंत्रानंद मॉरीशस पधारे थे। 'आर्योदय' स्वामी स्वतंत्रानंद का दिया हुआ नाम है।

'आर्योदय' का प्रथम अंक 8 नवंबर 1950 को प्रकाशित हुआ। यह पत्र साप्ताहिक था और पोर्ट लुइस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में इसका चौथा अंक जो बुधवार 29 नवंबर, 1950 को प्रकाशित हुआ था, सुरक्षित है। प्रारंभ में इसका संपादन कार्य पं. आत्माराम विश्वनाथ संभालते थे। पं. विश्वनाथ की मृत्यु के उपरांत श्री दीप नारायण पदारथ और श्री लक्ष्मी जोधन ने सन् 1963 तक इसके संपादन का उत्तरदायित्व निभाया। सन् 1965 से श्री मोहनलाल मोहित इसका संपादन करने लगे। श्री मूलशंकर रामधनी भी आर्योदय के संपादन-कार्य का भार कई वर्षों तक संभालते रहे। श्री मोहनलाल मोहित के विषय में यहाँ पर एक तथ्य का उद्घाटन करना न्यायसंगत होगा कि उनके प्रयास से सन् 1954 में 'दीवाली संदेश' वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन संभव हो पाया था। छ: वर्ष तक अर्थात सन् 1959 तक यह पत्रिका निर्विघ्न रूप से निकलती रही। 'दीवाली संदेश' के संपादक श्री मोहनलाल मोहित ही थे। श्री प्रह्लाद रामशरण कहते हैं—

''वस्तुत: 'दीवाली संदेश' अपने समय की अनोखी पत्रिका थी। यद्यपि वह वार्षिक पत्रिका थी तथापि वह अपने समय के गणमान्य लेखकों और पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करती थी। वार्षिक पत्रिका होने के कारण विशेषांक रूप में वह निकलती थी।...इसने अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं का मार्ग प्रशस्त किया।''

लगे हाथ यह बताना भी उचित होगा कि प्रोफेसर सुदर्शन जगेसर के संपादन में आर्य युवा वर्ग की ओर से 'वैदिक जर्नल' का प्रकाशन भी होता था परंतु इसकी प्रकाशन अवधि अल्प रही। सन् 1977 से लेकर सन् 1979 तक ही 'वैदिक जर्नल' का प्रकाशन हुआ।

आज 'आर्योदय' त्रिभाषी पाक्षिक पत्र के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसके प्रधान संपादक डॉ. उदयनारायण गंगू हैं और सह संपादक श्री सत्यदेव प्रीतम हैं। डॉ. गंगू सन् 2000 से 'आर्योदय' पत्र का संपादन कर रहे हैं। इस पत्र का आदर्श वाक्य है—'सभी को मित्र की दृष्टि से देखें'। 'बहादुर प्रिंटिंग लिमिटेड' में मुद्रित यह पत्र ऑनलाइन भी पढ़ा जा सकता है।

'आर्योदय' के मुखपृष्ठ पर वेदों के मंत्रों के शब्दार्थ एवं भावार्थ, प्रधान संपादक का लेख एवं संपादकीय छपे होते हैं। अन्य तीन पृष्ठों पर आर्य जगत से जुड़े समाचार, विद्वानों की जीवनी, नैतिक एवं धार्मिक उन्नति संबंधी लेख, आवश्यक सूचनाएँ, आर्य समाज की गतिविधियों का विवरण, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, हिंदी भाषा की स्थिति व उसके उत्थान संबंधी सुझाव आदि विषयों पर लेख छपते हैं।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद एक प्रगतिशील महात्मा थे। उन्होंने हिंदी भाषा को 'आर्य भाषा' की उपाधि दी। भारत में आर्य समाज की स्थापना के सात साल बाद सन् 1882 में हिंदी पत्र द्वारा सुधार व प्रचार कार्य प्रारंभ हुआ था। मॉरीशस में भी सन् 1903 में आर्य समाज का गठन हुआ और चंद ही वर्षों बाद हिंदी पत्र को ही आर्य समाजियों ने सुधार-प्रचार का माध्यम बनाया। भारत में 'आर्य मैगज़ीन', 'आर्य दर्पण', 'आर्य भूषण', 'भारत बंधु', 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक', 'आर्य समाचार', 'देश-हितैषी' आदि पत्र प्रकाशित हुए। यहाँ मॉरीशस में 'आर्य पत्रिका', 'आर्यवीर', 'जागृति','आर्योदय' आदि का प्रकाशन हिंदी भाषा के साथ-साथ अंग्रेज़ी और फ्रेंच में भी होता रहा और होता आ रहा है। जब तक आर्य समाज का अस्तित्व बना रहेगा तब तक हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होंगी इसमें दो राय नहीं है। निष्ठावान कर्मयोगी डॉ. उदयनारायण गंगू को प्रधान संपादक के रूप में पाकर आर्योदय का उज्ज्वल भविष्य सुरक्षित है परंतु आर्य जगत अपनी बाँहे खोले, आँखें बिछाए उस स्वर्ण-युग की राह ताक रही है जब एक नहीं अपितु अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी भाषा में छपेंगी और आर्यों के जीवन को सार्थक बनाएँगी।

संदर्भ-ग्रंथ

1. 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ़ मॉरीशस,' जे.एडीशन
2. 'हिंदू मॉरीशस', पं. आत्माराम विश्वनाथ

3. 'मॉरीशस में भारतीयों का इतिहास', डॉ. के. हज़ारीसिंह, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड, 1976, पृष्ठ 99
4. 'आर्यरत्न, ओ.बी.ई श्री मोहनलाल मोहित, अभिनंदन ग्रंथ,' आर्य सभा, मॉरीशस, 1992, पृष्ठ-239
5. 'मॉरीशस का इतिहास', पं. आत्माराम विश्वनाथ, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1998, पृष्ठ-176
6. 'मॉरीशस आर्य समाज का इतिहास', श्री रामधन पूरण, अग्रवाल प्रिंटिंग प्रेस, ज्वालापुर, (हरिद्वार) भारत, पृष्ठ-39-40
7. 'आर्य समाज और हिंदी विश्व संदर्भ में', इंद्रदेव भोलानाथ इंद्रनाथ, स्टार पब्लिकेशंस प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-200
8. प्रहलाद रामशरण-साहित्य मर्मज एवं इतिहासवेत्ता', राजेंद्र सिंह कुशवाहा और भवानीलाल भारतीय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 425
9. 'हिंदी इन मॉरीशस', सोमदत्त बखोरी, दि रॉयल प्रिंटिंग, पोर्ट लुई, मॉरीशस, 1967, पृष्ठ 84
10. 'समाजवाद', 16 अक्टूबर 1960 - 23 जून 1961
11. 'मॉरीशस आर्य समाज स्थापना - शताब्दी 1903-2003', आर्य सभा मॉरीशस, पृष्ठ 89
12. 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' 21 नवंबर, 1924
13. आर्यवीर - 3 मई, 1929
14. जागृति - 17 जनवरी, 1940
15. इंद्रधनुष - पं. काशीनाथ किष्टो, इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद प्रकाशन, संपादकीय, 2003, पृष्ठ 4

सें पॉल, मॉरीशस
mohabeersantee164@gmail.com

13 स्वाधीनता संग्राम के युग में दक्षिण-भारत में हिंदी का प्रचार-प्रसार

● *प्रोफ़ेसर महावीर सरन जैन*

भारत की भाषाओं के अध्ययन के लिए नए प्रतिमानों एवं नई दृष्टि की आवश्यकता है। भारत में बोली जानेवाली भिन्न भाषा-परिवारों की भाषाओं के समान क्रोड के वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता असंदिग्ध है। किसी भी विषय का भेद दृष्टि से अध्ययन करने पर जहाँ हमें अंतर, असमानताएँ, भिन्नताएँ अधिक दिखाई देती हैं, उसी विषय का अभेद दृष्टि से अध्ययन करने पर हमें एकता एवं समानता अधिक नज़र आती है। विद्वानों ने भारत की भाषाओं के भेदों की जाँच-पड़ताल तो बहुत की है; बाल की खाल बहुत निकाली है; कामना है, विद्वान-गण भारत की भाषाओं में विद्यमान सादृश्य के सूत्रों की खोज के काम में भी उसी निष्ठा के साथ प्रवृत्त हों जिससे भारत की भाषिक एकता की अवधारणा और अधिक स्पष्ट एवं उजागर हो सके।

हिंदी की मातृभाषियों की संख्या विश्व में चीनी भाषा के बाद सर्वाधिक है तथा इसका प्रचार-प्रसार एवं अध्ययन-अध्यापन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है। कुछ ताकतें हिंदी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का कुचक्र रच रही हैं। इनकी शक्ति यद्यपि कम नहीं है तथापि इनके द्वारा समय-समय पर किए जाने वाले षड्यंत्रों को बेपरदा एवं बेनकाब करने की आवश्कता असंदिग्ध है।

मेरा आकलन है कि हिंदी को आगे बढ़ने से अब कोई ताकत रोक नहीं सकती। हिंदी निरंतर आगे बढ़ रही है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में एक सम्मेलन का समापन करते हुए मैंने यह मत व्यक्त किया था कि 19वीं शताब्दी फ्रेंच भाषा की थी, 20वीं शताब्दी अंग्रेज़ी भाषा की थी तथा 21वीं शताब्दी हिंदी की होगी। मैंने अपने इस मत की पुष्टि के लिए निम्नलिखित कारणों की विस्तार से विवेचना की थी—

अ. भाषा बोलने वालों की संख्या।

आ. भाषा व्यवहार क्षेत्र का विस्तार।

इ. हिंदी भाषा एवं लिपि व्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताएँ

ई. भविष्य में कंप्यूटर के क्षेत्र में टेक्स्ट टू स्पीच तथा स्पीच टू

• **जन्म** : 17 जनवरी, 1941

• **स्थान** : बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, भारत

• **भाषा-ज्ञान** : हिंदी, संस्कृत, पालि, अंग्रेज़ी, रोमानियन

• **शैक्षिक योग्यता** : एम.ए. (हिंदी-1960), डी.फिल. (हिंदी-भाषा विज्ञान-1962), डी.लिट्. (हिंदी-भाषा विज्ञान-1967)

• **कार्य अनुभव** : प्रो. जैन ने भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक, रोमानिया के बुकारेस्त विश्वविद्यालय के हिंदी के विज़िटिंग प्रोफ़ेसर तथा जबलपुर के विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग के लेक्चरर, रीडर तथा प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष के रूप में सन् 1964 से 2001 तक हिंदी के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार-विकास के क्षेत्रों में भारत एवं विश्व स्तर पर कार्य किया है।

• Working Group on Language Development and Book Promotion के सदस्य के रूप में कार्य किया।

• भारत सरकार के अनेक मंत्रालयों की राजभाषा सलाहकार समितियों के सदस्य के रूप में कार्य करते हुए मंत्रालयों में राजभाषा हिंदी के व्यवहार के लिए अनेक सुझाव दिए तथा राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन के लिए अपनी भूमिका का निर्वाह किया। प्रो. जैन ने भारत के अनेक विश्वविद्यालयों की विद्वत-परिषद, कला-संकाय तथा चयन समिति के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। भारत के 25 से अधिक विश्वविद्यालयों के पी-एच.डी. एवं डी.लिट्. उपाधियों के लिए प्रस्तुत शताधिक शोध-प्रबंधों का परीक्षण-कार्य किया तथा अनेक संस्थाओं की विभिन्न समितियों में परामर्शदाता की भूमिका का निर्वाह किया।

• **पुरस्कार एवं अलंकरण**

राज्य साहित्यिक पुरस्कार, भारतीय शिक्षा परिषद की सर्वोच्च मानद उपाधि (साहित्य वाचस्पति), 'International Cultural Diploma of Honor', ब्रज विभूति सम्मान, बुकारेस्त विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण में योगदान के लिए स्वर्ण-पदक।

• **प्रकाशित साहित्य** : ग्रंथ एवं पुस्तकः 45; शोध निबंधः 216; चयनित लेखः 147; समीक्षा/भूमिका/आमुखः 56

टैक्स्ट तकनीक का विकास उ. भारतीय मूल के प्रवासी एवं अनिवासी भारतीयों की संख्या, श्रमशक्ति, मानसिक प्रतिभा में निरंतर अभिवृद्धि।

मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे उनमें सन् 1998 के पूर्व, हिंदी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1991 के सेन्सॅस ऑफ़ इंडिया का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ जुलाई 1997 में प्रकाशित हुआ। यूनेस्को की टेक्निकल कमिटी फॉर द वॅल्ड लैंग्वेजिज रिपोर्ट ने अपने दिनांक 13 जुलाई, 1998 के पत्र के द्वारा यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर हिंदी की रिपोर्ट भेजने के लिए भारत सरकार से निवेदन किया। भारत सरकार ने उक्त दायित्व के निर्वाह के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन को पत्र लिखा। प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने दिनांक 25 मई, 1999 को यूनेस्को को अपनी विस्तृत रिपोर्ट भेजी।

प्रोफ़ेसर जैन ने विभिन्न भाषाओं के प्रामाणिक आँकड़ों एवं तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया कि प्रयोक्ताओं की दृष्टि से विश्व में चीनी भाषा के बाद दूसरा स्थान हिंदी भाषा का है। रिपोर्ट तैयार करते समय ब्रिटिश कॉउंसिल ऑफ़ इंडिया से अंग्रेज़ी मातृभाषियों की पूरे विश्व की जनसंख्या के बारे में तथ्यात्मक रिपोर्ट भेजने के लिए निवेदन किया गया। ब्रिटिश कॉउंसिल ऑफ़ इंडिया ने इसके उत्तर में गिनीज बुक ऑफ़ नॉलेज (1997 संस्करण) का पृष्ठ-57 फैक्स द्वारा भेजा। ब्रिटिश कॉउंसिल ने अपनी सूचना में पूरे विश्व में अंग्रेज़ी मातृभाषियों की संख्या 33,70,00,000 (33 करोड़, 70 लाख) प्रतिपादित की। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की पूरी आबादी 83,85,83,988 है। मातृभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार करने वालों की संख्या 33,72,72,114 है तथा उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करनेवालों की संख्या 04,34,06,932 है। हिंदी एवं उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करनेवालों की संख्या का योग 38,06,79,046 है, जो भारत की पूरी आबादी का 44.98 प्रतिशत है। मैंने अपनी रिपोर्ट में यह भी सिद्ध किया कि भाषिक दृष्टि से हिंदी और उर्दू में कोई अंतर नहीं है। इस प्रकार ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आयरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, न्यू ज़ीलैंड आदि सभी देशों के अंग्रेज़ी मातृभाषियों की संख्या के योग से अधिक जनसंख्या केवल भारत में हिंदी एवं उर्दू भाषियों की है। रिपोर्ट में यह भी प्रतिपादित किया गया कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से संपूर्ण भारत में मानक हिंदी के व्यावहारिक रूप का प्रसार बहुत अधिक है। हिंदीतर भाषी राज्यों में बहुसंख्यक द्विभाषिक समुदाय द्वितीय भाषा के रूप में अन्य किसी भाषा की अपेक्षा हिंदी का अधिक प्रयोग करता है।

प्रस्तुत आलेख का विवेच्य दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार की मीमांसा प्रस्तुत करता है। इस कारण इसी विशेष संदर्भ में विवेचना प्रस्तुत की जाएगी। इस विवेचना की पृष्ठभूमि के रूप में स्वाधीनता आंदोलन युग में हिंदी की राष्ट्रीय भूमिका को स्पष्ट करना ज़रूरी है।

स्वाधीनता के लिए जब-जब आंदोलन तीव्र हुआ तब-तब हिंदी की प्रगति का रथ भी तीव्र गति से आगे बढ़ा। हिंदी राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक बन गई। स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व जिन नेताओं के हाथों में था उन्होंने यह पहचान लिया था कि विगत 600-700 वर्षों से हिंदी संपूर्ण भारत की एकता का कारक रही है; यह संतों, फ़कीरों, व्यापारियों, तीर्थ-यात्रियों, सैनिकों द्वारा देश के एक भाग से दूसरे भाग तक प्रयुक्त होती रही है।

मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि हिंदी को राष्ट्रभाषा की मान्यता उन नेताओं के कारण प्राप्त हुई जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। बंगाल के केशवचंद्र सेन, राजा राममोहन राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, नेता जी सुभाष चंद्र बोस, पंजाब के बिपिनचंद्र पाल, लाला लाजपत राय, गुजरात के स्वामी दयानंद, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक तथा दक्षिण भारत के सुब्रह्मण्यम भारती, मोटूरि सत्यनारायण आदि नेताओं के 'राष्ट्रभाषा हिंदी' के संबंध में व्यक्त विचारों से मेरे मत की संपुष्टि होती है। हिंदी भारतीय स्वाभिमान और स्वातंत्र्य चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। हिंदी राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक हो गई। इसके प्रचार-प्रसार में सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय नेताओं ने सार्थक भूमिका का निर्वाह किया।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान दिल्ली के चारों ओर देशवासियों द्वारा संग्राम में भाग लेने के लिए हिंदी एवं

उर्दू में पर्चे बाँटे गए।

भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने सन् 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा बांग्ला, हिंदी और फ़ारसी भाषाओं में 'बंगदूत निकाला'। इसी परंपरा में केशव चंद्र सेन ने भारतीय ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा इस भावना को जागृत किया कि भारत की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। केशव चंद्र सेन ने सन् 1875 में सुलभ समाचार में लिखा : अगर हिंदी को भारतवर्ष की एक मात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाता है तो सहज में ही वह एकता स्थापित हो सकती है।

रवींद्रनाथ ठाकुर ने भारतीय भाषाओं और राष्ट्र भाषा हिंदी के अंतर-संबंधों की व्याख्या करते हुए हिंदी को राष्ट्रभाषा न कहकर भारत-भारती कहा—

''आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है, जिसका एक-एक दल, एक-एक प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य-संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ, जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बनकर रहें। प्रांत के जनगण की हार्दिक चिंता की प्रकाशभूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहे और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्य-मणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।''

भारतीय नवजागरण के शंखनाद के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने सन् 1875 में मुंबई में आर्य समाज की तथा स्वामी विवेकानंद ने सन् 1897 में कोलकाता में रामकृष्ण मिशन आश्रम की स्थापना की। आरंभ में दयानंद सरस्वती संस्कृत में व्याख्यान देते थे। कोलकाता में केशव चंद्र सेन ने स्वामी दयानंद को संस्कृत के स्थान पर हिंदी को अपने व्याख्यानों एवं ग्रंथों की भाषा बनाने का परामर्श दिया। प्रभावांवित दयानंद सरस्वती ने हिंदी को स्वभाषा की संज्ञा दी, हिंदी में ही व्याख्यान दिए तथा हिंदी में ही 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा एवं अनेक ग्रंथों की रचना की। आर्य समाज ने देश की शिक्षा प्रणाली में हिंदी को अपनाए जाने पर बल दिया तथा न्यायालयों में हिंदी के व्यवहार एवं प्रयोग के लिए आंदोलन चलाए।

पंजाब में स्वामी रामतीर्थ, श्रद्धाराम फुल्लौरी तथा स्वामी श्रद्धानंद आदि ने धार्मिक प्रवचनों, उपदेशों और भजनों के माध्यम से हिंदी को जनमानस से जोड़ दिया।

मराठी भाषी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने हिंदी को पूरे राष्ट्र की भाषा बनाने पर बल दिया। दिसंबर 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा के सम्मेलन में उन्होंने प्रतिपादित किया कि हम अपनी बात पूरे देश में हिंदी भाषा के माध्यम से ही पहुँचा सकते हैं—

'यदि आप राष्ट्र में एकता लाना चाहते हैं, तो इसके लिए एक सामान्य भाषा के व्यवहार से अधिक शक्तिशाली और कोई वस्तु नहीं है। हम भारतवासियों के लिए एकता एवं एकात्मकता लाने में देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी ही राष्ट्रभाषा बनकर सहायता पहुँचा सकती है।'

आपने पुणे से 'केसरी' दैनिक समाचार-पत्र निकाला जिसके एक पृष्ठ पर केवल हिंदी में समाचार छपते थे। तिलक की तरह महादेव गोविंद रानाडे का हिंदी प्रेम भी सर्वविदित है।

हिंदी को सार्वदेशिक व्यवहार की भाषा बनाने, संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने एवं राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने में महात्मा गांधी की भूमिका एवं योगदान अप्रतिम है। गांधी जी ने हिंदी के महत्व का आकलन दक्षिण अफ्रीका में ही कर लिया था। यह सर्वविदित है कि दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति एवं अंग्रेज़ों

मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि हिंदी को राष्ट्रभाषा की मान्यता उन नेताओं के कारण प्राप्त हुई जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। बंगाल के केशवचंद्र सेन, राजा राम मोहन रॉय, रवींद्रनाथ ठाकुर, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, पंजाब के बिपिनचंद्र पाल, लाला लाजपत राय, गुजरात के स्वामी दयानंद, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक तथा दक्षिण भारत के सुब्रह्मण्यम भारती, मोटूरि सत्यनारायण आदि नेताओं के राष्ट्रभाषा हिंदी के संबंध में व्यक्त विचारों से मेरे मत की संपुष्टि होती है।

के अत्याचारों का विरोध करने के लिए गांधी जी ने सत्याग्रह आंदोलन चलाया। नाटाल के सत्याग्रह आश्रम में हिंदी, बांग्ला, तमिल, तेलुगु आदि भाषाओं के बोलने वाले बच्चे रहते थे। गांधी जी ने निरीक्षण किया कि खेलते समय वे भिन्न भाषी बच्चे हिंदी बोलते हैं। इससे उन्होंने यह पहचान लिया कि भिन्न भाषियों की संपर्क भाषा हिंदी ही हो सकती है। उन्होंने उन बच्चों को हिंदी के माध्यम से पढ़ाना शुरू कर दिया। भारत लौटने के बाद गांधी जी ने पूरे देश का भ्रमण किया तथा हिंदी की सार्वदेशिक भूमिका को जाना तथा यह भी महसूस किया कि देश के किस-किस भाग में हिंदी को जनता की कामचलाऊ भाषा बनाने के लिए क्या करणीय है जिससे पूरा देश हिंदी के द्वारा एकजुट होकर राष्ट्रीय आंदोलन की ज्योति को पूरी आभा के साथ आलोकित कर सके।

सन् 1910 में गांधी जी ने कहा ''हिंदुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है।''

सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गांधी जी ने हिंदी में भाषण दिया तथा उद्घोष किया कि हिंदी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसी अधिवेशन में 26 दिसंबर को आर्य समाज मंडप में गांधी जी के सभापतित्व में एक भाषा, एक लिपि विषयक सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें सर्वसम्मति से संकल्प पारित हुआ कि हिंदी भाषा और देवनागरी का प्रचार-प्रसार देश-हित एवं ऐक्य-स्थापना हेतु करना चाहिए। तमिल भाषी श्री रामास्वामी अय्यर और श्री रंगस्वामी अय्यर इस प्रस्ताव के समर्थक थे।

सन् 1917 में गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में गांधी जी ने राष्ट्रभाषा के मानकों का निर्धारण करते हुए प्रतिपादित किया—

1. किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है जिसे वहाँ की अधिकांश जनता बोलती हो।
2. वह सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में माध्यम भाषा बनने की शक्ति रखती हो।
3. वह सरकारी कर्मचारियों एवं सरकारी कामकाज के लिए सुगम और सरल हो।
4. जिसे सुगमता तथा सरलता से सीखा जा सकता हो।
5. जिसे चुनते समय क्षणिक, अस्थायी तथा तात्कालिक हितों की उपेक्षा की जाए और जो संपूर्ण राष्ट्र की वाणी बनने की क्षमता रखती हो।

इन मानकों पर कसने के बाद गांधी जी का निष्कर्ष था कि बहुभाषी भारत में केवल हिंदी ही एक भाषा है जिसमें ये सभी गुण पाए जाते हैं।

संवत 1974 (सन् 1918) में इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में दिया गया गांधी जी का अध्यक्षीय वक्तव्य राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए मील का पत्थर है।

यहाँ इसको रेखांकित करना अप्रासंगिक न होगा कि हिंदीतर भाषी राष्ट्रीय नेताओं ने जहाँ देश की अखंडता एवं एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार की अनिवार्यता की पैरोकारी की, वहीं भारत के सभी राष्ट्रीय नेताओं ने एकमतेन सरल एवं सामान्य जनता द्वारा बोली जानेवाली हिंदी का प्रयोग करने एवं हिंदी-उर्दू की एकता पर बल दिया। हिंदी के जो विद्वान क्लिष्ट हिंदी का प्रयोग करते हैं, सामान्य जन द्वारा अपनाए गए अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग पर नाक-भौंह सिकोड़ते हैं तथा हिंदी एवं उर्दू को अलग-अलग भाषाएँ मानते हैं, उनको अपने राष्ट्रीय नेताओं के इन विचारों को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए तथा उन विचारों को आत्मसात करना चाहिए। इस प्रसंग में, मैं उदाहरण के लिए पंडित मदन मोहन मालवीय, पुरुषोत्तम दास टंडन एवं महात्मा गांधी जी के हिंदी साहित्य सम्मेलनों के अधिवेशनों के सभापति भाषणों के अंश प्रस्तुत करना चाहता हूँ—

(क) ''जितनी भाषाएँ हैं, हमारी हैं। बंगाली हमारी भाषा, पंजाबी हमारी भाषा और गुजराती हमारी भाषा है। हिंदी अपनी बहनों में सबसे प्राचीनतम और बड़ी बहन है। उर्दू और हिंदी, इन दोनों भाषाओं के रूप गाँठ बन गए हैं। अब इन दोनों को यथा संभव एक स्थल में लाइए। इस बात के लिए यत्न करना, जैसा हिंदुओं के लिए आवश्यक है; वैसा ही मुसलमानों के लिए भी आवश्यक है। दोनों ओर से यत्न होने से हम भाषा के क्रम को बहुत कुछ एक कर सकते हैं। मद्रास, बंगाल, बंबई आदि के अनेक विद्वान देश में एक ही भाषा चलाना चाहते हैं। देश के बहुतेरे लोगों

की जब ऐसी रुचि है तब आपका भी एक कर्तव्य है। आप भी ऐसा यत्न करें, जिससे आपकी भाषा राष्ट्रभाषा होने का गौरव पाए। झगड़ों में फँसने के बदले उन्हें मिटाना चाहिए। उर्दू के प्रेमी कहते हैं कि हिंदी भाषा उर्दू भाषा है। यही सही। यदि आप झगड़ा मिटाना चाहते हैं तो कह दें कि अच्छा यही सही। वे उसे एक नाम से पुकारना चाहते हैं तो पुकारने दीजिए, उसी में उन्हें संतोष करने दीजिए और यह कीजिए कि हिंदी में जो उर्दू-फारसी शब्द आ गए हैं उनका व्यवहार कर उर्दू वालों को और भी संतुष्ट कीजिए। आपकी हिंदी में कितने ही शब्द ऐसे हैं जो देश की बहुतेरी भाषाओं में ज्यों के त्यों या कुछ बदले हुए रूप में काम में लाए जाते हैं। आप उन शब्दों के व्यवहार में संकोच न कीजिए। हमें यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा के शब्द ऐसे हों जिनसे सब प्रदेश के लोग लाभ उठाएँ।''

(सन् 1910 में काशी (वाराणसी) के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में पंडित मदन मोहन मालवीय के सभापति भाषण से)

(ख) ''जिस भाषा में, मैं इस समय बोल रहा हूँ, वह हमारे देश की स्थानीय बोलियों से भिन्न है किंतु वह केवल शिष्टजनों की अप्राकृतिक नियमों से गढ़ी हुई भाषा नहीं कही जा सकती। ग्रामीण मनुष्य भी उस भाषा को पहचानता है और उसे अपनी भाषा कहता है यद्यपि वह उसे उसी रूप में व्यवहृत नहीं करता। हिंदी साधारण ग्रामीण बोली न होते हुए भी किसी विशेष कार्य के लिए गढ़ी नहीं गई। वह पूर्णरूप से और अति व्याप्त और अव्याप्ति के दोषों से बचते हुए जनता की भाषा कही जा सकती है। हाँ, यदि हममें से कुछ चतुर विद्वान इस भाषा में साधारणतया और गौरव शून्यता का दोष देखकर इस प्रकार से उसका शोधन करने बैठें कि उसमें आए हुए प्रचलित शब्दों को काट-छाँटकर व्याकरण के ऐसे अकाट्य नियम रखें जिनको बिना सीखे कोई भी शिष्ट-भाषा-भाषी न कहा जा सके, तो अवश्य ऐसी संस्कृत-हिंदी की सूरत और दशा दूसरी ही हो जाएगी। आज हिंदी और उर्दू दो भिन्न सभ्यता की सूचक भाषाएँ बन गई हैं। उनका धार्मिक प्रोत्साहन भी भिन्न उपमाओं और रूपकों तथा भिन्न दिव्य पुरुषों द्वारा होता है। किंतु वास्तव में, भाषा का आधार एक ही है और अभी ये दोनों स्रोत इतनी दूर एक-दूसरे से नहीं हुए हैं कि फिर मिलकर एक प्रबल धारा में परिणत हो भारतवर्ष को अपनी शक्ति से उर्वरा कर सुसज्जित न कर दें। मुझे तो आधुनिक हिंदी और उर्दू भाषाओं के पोषक देश-भक्तों का यही तात्कालिक कर्तव्य जान पड़ता है।''

(सन् 1922 में कानपुर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में श्री पुरुषोत्तम दास टंडन के सभापति भाषण से)

(ग) ''पचास वर्ष से हम अंग्रेज़ी के मोह में फँसे हैं, हमारी प्रजा अज्ञान में डूब रही है। अंग्रेज़ी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज़ सर्वव्यापक न रहेंगे तो अंग्रेज़ी भी सर्वव्यापक न रहेगी। जैसे अंग्रेज़ पादरी अंग्रेज़ी ज़बान में बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए। भाषा वही श्रेष्ठ है जिसको जनसमूह सहज में समझ ले। हिमालय में से निकलती हुई गंगा जी अनंत काल बहती रहेंगी। ऐसे ही देहाती हिंदी का गौरव रहेगा और जैसे छोटी सी पहाड़ी से निकलता हुआ झरना सूख जाता है वैसे ही संस्कृतमयी तथा फ़ारसीमयी हिंदी की दशा होगी। हिंदू-मुसलमानों के बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिंदी व उर्दू भाषा के भेद में है। हिंदुओं की बोली से फारसी शब्द का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा-यमुना के संगम सा शोभित अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिंदी-उर्दू के झगड़े में पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। भारतवर्ष में परस्पर व्यवहार के लिए एक भाषा होनी चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं है। आज भी हिंदी से स्पर्धा करने वाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिंदुओं को फारसी शब्द थोड़ा-बहुत जानना पड़ेगा। इस्लामी भाइयों को संस्कृत शब्द का ज्ञान संपादन करना पड़ेगा। ऐसे लेन-देन से हिंदी भाषा का बल बढ़ जाएगा और हिंदू-मुसलमानों में एकता का एक बड़ा साधन हमारे हाथ में आ जाएगा।

(संवत् 1974 (सन् 1918) में इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधी के सभापति भाषण से)

दक्षिण भारत में हिंदी की ज्योति ज्योतित करने वालों में सबसे

उल्लेखनीय नाम गांधी जी का है। इंदौर के अधिवेशन में गांधी जी का वक्तव्य राष्ट्र-भाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार की आधार-शिला है। गांधी जी केवल भाषण नहीं देते थे। जो कहते थे, उसके अनुरूप आचरण करते थे। उन्होंने देश की अखंडता और एकता के लिए हिंदी के महत्व एवं उसके प्रचार-प्रसार पर बल दिया। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत चौदह रचनात्मक कार्यक्रमों में राष्ट्रभाषा हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार का कार्यक्रम भी समाहित था। गांधी जी का विचार था कि दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार का कार्य वहाँ के स्थानीय लोग ही करें। कार्य का सूत्रपात करने के लिए गांधी जी ने अपने अठारह वर्षीय पुत्र देवदास गांधी को स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के साथ दक्षिण-भारत में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए मद्रास (चेन्नई) भेजा। बाद में इस कार्य में पंडित हरिहर शर्मा भी शामिल हो गए। पंडित हरिहर शर्मा के साथ सुब्रह्मण्यम भारती अपनी पत्नी सहित, का.मा. शिवराम शर्मा एवं आंजनेय शर्मा आदि कुछ नवयुवक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग हिंदी पढ़ने के लिए आए। इन्होंने साल भर तक हिंदी का विधिवत अध्ययन किया तथा अगस्त 1919 में विशारद की परीक्षा पास कर, वे दक्षिण-भारत लौटे। सन् 1919 में ही गांधी जी ने उत्तर भारत से कुछ नवयुवकों को हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए दक्षिण-भारत भेजा। इनमें प्रताप नारायण वाजपेयी, पंडित अवधनंदन, पंडित रघुवर दयाल मिश्र एवं पंडित देवदूत विद्यार्थी आदि शामिल थे। मैंने जब-जब दक्षिण-भारत की यात्राएँ कीं तथा वहाँ के हिंदी पुरोधा-प्रचारकों से भेंट की, सबने पंडित हरिहर शर्मा, पंडित अवधनंदन तथा पंडित देवदूत विद्यार्थी को अत्यंत श्रद्धाभाव से याद किया। सन् 1993 में दिल्ली में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का अमृतोत्सव समारोह आयोजित हुआ। उसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री पी.वी. नरसिंहराव ने किया। उन्होंने भी पंडित हरिहर शर्मा एवं श्री देवदूत विद्यार्थी के योगदान को विशेष रूप से रेखांकित किया। उनके शब्द थे—

''दक्षिण के हिंदी-प्रचार के बारे में सोचते समय खासकर हिंदीतर भाषी प्रदेश के हिंदी फैलाव के बारे में सोचते समय स्वर्गीय पंडित हरिहर शर्मा, श्री देवदूत विद्यार्थी जैसे निस्स्वार्थ प्रचारकों का पावन स्मरण होता है।

गांधी जी की प्रेरणा से हिंदी के प्रचारकों का दल गठित हुआ। इस दल के प्रचारकों में उपर्युक्त वर्णित नामों के अतिरिक्त मोटूरि सत्यनारायण, भालचंद्र आप्टे, पट्टाभि सीतारमैया, एस.आर. शास्त्री आदि के नाम अपेक्षाकृत अधिक उल्लेखनीय हैं। इस दल ने दक्षिण भारत के प्रत्येक भू-भाग में रहकर एवं जगह-जगह जाकर हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए साधक का जीवन व्यतीत किया। इनकी त्याग-भावना एवं तपस्या-मूलक जीवन स्तुत्य है।

दक्षिण भारत में स्वाधीनता के पूर्व हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए जिन संस्थाओं की स्थापना हुई, उनका परिचय निम्न है—

1. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (सन् 1918)

महात्मा गांधी के हिंदी प्रचार आंदोलन के परिणामस्वरूप दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के लिए एक सभा की स्थापना मद्रास नगर के गोखले हॉल में डॉ. रामास्वामी अय्यर की अध्यक्षता में एनी बेसेंट ने की।

सन् 1927 में बेंगलूर (बंगलुरु) में गांधी जी की अध्यक्षता में आयोजित अखिल कर्नाटक हिंदी प्रचार सम्मेलन में यह अनुभव किया गया कि दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से अलग स्वतंत्र संस्था का गठन करना ज़रूरी है। मद्रास नगर में स्थापित हिंदी प्रचार सभा को नवगठित संस्था का रूप मिला तथा इसका नाम दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा रखा गया। वहीं इसको पंजीबद्ध किया गया। इसका कार्य दक्षिण-भारत के सभी भागों में हिंदी का प्रचार-प्रसार करना था। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के प्रचारक संतों की तरह जगह-जगह घूमकर हिंदी का प्रचार-प्रसार करते थे। दक्षिण भारत के विभिन्न भागों के हिंदी प्रेमी सभा में आकर हिंदी का प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे तथा प्रशिक्षित होकर अपने-अपने क्षेत्रों में हिंदी की ज्योति प्रज्वलित करने लगे।

गांधी जी आजीवन इसके सभापति रहे। सन् 1920 तक सभा का कार्यालय जार्ज टाऊन, मद्रास (चेन्नई) में था। बाद में मालापुर एवं ट्रिप्लिकेन में आ गया। मोटूरि सत्यनारायण के प्रयास से त्यागराय नगर (टी. नगर) में इसका विशाल परिसर बना एवं भव्य भवन निर्मित हुए।

सन् 1932 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के चार प्रांतीय

कार्यालय खोले गए। सन् 1933 में गांधी जी विजयवाडा आए। वहाँ उनसे कुछ कार्यकर्ताओं ने यह अनुरोध किया कि आंध्र के लिए हिंदी प्रचार की स्वतंत्र संस्था का गठन हो। सन् 1934 में गांधी जी ने दक्षिण-भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार का निरीक्षण करने तथा दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के संविधान में आवश्यक सुधार प्रस्तुत करने के लिए काका कालेलकर को अधिकृत किया। काका कालेलकर ने दक्षिण भारत के सभी भागों का सघन दौरा किया तथा तदंतर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के संविधान में आवश्यक परिवर्तन करने तथा सभा के मद्रास मुख्यालय की चारों प्रांतों में अलग-अलग प्रांतीय सभाएँ स्थापित करने की संस्तुतियाँ कीं। सन् 1935 में तदनुसार संविधान में संशोधन संपन्न हुए तथा चार प्रांतीय सभाएँ स्थापित करने का निर्णय लिया गया। सन् 1936 में इन चार प्रांतीय सभाओं की स्थापना हुई—

1. **आंध्र :** हैदराबाद में हिंदी प्रचार संघ तथा विजयवाडा में आंध्र राष्ट्र हिंदी संघ काम कर रहे थे। दोनों को मिलाकर दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की प्रांतीय शाखा के रूप में संस्था का गठन हुआ और इसका नाम दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र शाखा, हैदराबाद रखा गया।
2. **तमिलनाडु :** तमिलनाडु शाखा का गठन तिरुचिनापल्ली में किया गया।
3. **कर्नाटक :** कर्नाटक शाखा का गठन धारवाड़ में किया गया। बाद में इसकी प्रशाखा बेंगलूर (बंगलुरु) में खोली गई।
4. **केरल :** केरल शाखा का गठन एर्नाकुलम में किया गया। वर्तमान में इस शाखा का मुख्यालय कोच्चि में है। डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर के अनुसार, ''केरल के विभिन्न नगरों व केंद्रों में सभा के शाखा-कार्यालय भी अपने भवनों में हैं, जैसे कालिकट, पालघाट, केल्लम, मावेलिक्करा आदि में सभा के अपने 'प्रवीण विद्यालय', 'विशारद विद्यालय' आदि हैं। इसके अलावा अनुदान पाने वाले प्रचारक संबद्ध विद्यालय चलाते हैं।'' (केरल में हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, पृष्ठ 107)

इस प्रकार दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के मुख्यालय एवं उसकी प्रांतीय सभाओं के द्वारा दक्षिण भारत के चारों राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य प्रशस्त हुआ।

2. हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद (सन् 1935)

हैदराबाद राज्य में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए साहित्यिक-शैक्षणिक संस्था हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद की स्थापना की गई। सभा ने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। सन् 1956 से राज्यों के पुनर्संगठन के कारण सभा में नवीन उत्साह का वातावरण बना। हैदराबाद रियासत का विलयन महाराष्ट्र, आंध्र एवं कर्नाटक के नए राज्यों में हो गया और इनमें सभा की शाखाएँ भी प्रस्थापित हो गईं लेकिन मुख्यालय हैदराबाद ही रहा।

3. केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम् (सन् 1934)

श्री के. वासुदेवन पिल्ले ने सन् 1934 में तिरुवितांकूर हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की। आरंभ में यह सभा दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की परीक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार करती थी। सन् 1948 से यह सभा स्वतंत्र रूप से अपनी परीक्षाएँ (हिंदी प्रथमा, हिंदी प्रवेश, हिंदी भूषण और साहित्याचार्य) संचालित करने लगी। सन् 1961 से इस संस्था का नाम 'केरल हिंदी प्रचार सभा' हो गया। इस संस्था के प्रमुख उद्‌देश्य केरल राज्य में राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए हिंदी की छोटी-बड़ी सभी परीक्षाओं को संचालित करना, हिंदी की पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करना तथा हिंदी नाटकों को अभिनीत करना रहे हैं। यह संस्था हिंदी, मलयालम और तमिल भाषाओं में सामंजस्य स्थापित करने के उद्‌देश्य से 'राष्ट्रवाणी' नाम की एक त्रिभाषा साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन करती है। इसके अतिरिक्त इस संस्था द्वारा 'केरल ज्योति' नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया जाता है। सभा भवन में एक केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय कार्य कर रहा है। सभा का प्रकाशन विभाग भी सुचारु रूप से चल रहा है।

4. मैसूर रियासत हिंदी प्रचार समिति, बेंगलोर (बंगलुरु) (सन् 1938)

सन् 1938 में मैसूर रियासत के हिंदी प्रेमियों तथा प्रचारकों का सम्मेलन बेंगलोर में आयोजित हुआ, जिसमें मैसूर रियासत

हिंदी प्रचार समिति की स्थापना मैसूर में की गई। सन् 1939 से इसका कार्यालय बेंगलोर (बंगलुरु) में कार्य कर रहा है।

5. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, बंगलुरु (सन् 1945)

डॉ. पी.आर. श्रीनिवास शास्त्री के अनुसार ''इस संस्था का बीजारोपण तो सन् 1942 में हो गया था किंतु पंजीयन अधिनियम के अनुसार दिनांक 9 जनवरी, 1945 को इसकी अधिकृत स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष डॉ. डी.के. भारद्वाज, प्रधान सचिव श्री आर.के. गोडबोले तथा संचालक श्री पी.आर. श्रीनिवास शास्त्री थे।'' (कर्नाटक में हिंदी प्रचार की गतिविधियाँ, पृष्ठ 115-121)

इन संस्थाओं में कार्य करने वाले हिंदी प्रचारकों एवं शिक्षकों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं अध्यापन का कार्य समर्पण एवं निष्ठा भाव से निष्पन्न किया। इनकी संख्या हज़ारों में है। इस लेख में सबके नामों का उल्लेख करना समीचीन नहीं है। यह सत्य है कि बहुत से प्रचारकों ने किसी एक राज्य में प्रचार न करके आवश्यकतानुसार अनेक राज्यों में प्रचार-प्रसार किया तथापि यह भी तथ्य है कि अधिकांश प्रचारकों का कार्य-क्षेत्र कोई राज्य विशेष रहा। इस दृष्टि से दक्षिण भारत के वर्तमान चार राज्यों में कार्य करने वाले अपेक्षाकृत अधिक उल्लेखनीय प्रमुख हिंदीतर भाषी अग्रगण्य प्रचारकों के नामों का उल्लेख किया जा रहा है।

(1) तमिलनाडु

(1) मोटूरि सत्यनारायण (इनका जन्म यद्यपि सन् 1902 में आंध्र-प्रदेश में हुआ था तथापि इनका कर्म-क्षेत्र विशेष रूप से दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास रहा। इनका योगदान केवल तमिलनाडु में हिंदी प्रचार-प्रसार तक सीमित नहीं है। एक लेख में लेखक ने इनके बहु-आयामी योगदान के संबंध में चर्चा की है।

(17 जुलाई, 2009 : महावीर सरन जैन का आलेख : प्रयोजनमूलक हिंदी की संकल्पना के प्रवर्तक मोटूरि सत्यनारायण.

www.rachanakar.org/2009/07/blog-post_17.html)

(2) एस. शारंगपाणि (3) बालशौरि रेड्डी (यद्यपि इनकी मातृभाषा तेलुगु है, मगर इनका कर्म-क्षेत्र तमिलनाडु रहा है। (4) र. शौरिराजन (5) एस. चंद्रमौलि (6) सदाशिवम् (7) के.वी. रामनाथ (7) एम. सुब्रह्ममण्यम् (8) रुकमाजी राव (9) महीलिंगम् (10) पी.के. बालसुब्रह्मण्यम् (11) डॉ. एन. सुंद्ररम्।

(2) आंध्र प्रदेश

(1) जंध्याल शिवन्न शास्त्री (2) पीसपाटि वेंकट सुब्बाराव (3) मुडुंबि नरसिंहाचार्य (4) मल्लादि वेंकट (4) सीतारामांजनेयुलु (5) दंमालपाटि रामकृष्ण शास्त्री (6) मेडिचर्ल वेंकटेश्वरराव (7) एस.वी. शिवराम शर्मा (8) भट्टारम वेंकट सुबय्या (9) आंजनेय शर्मा (10) जी. सुंदर रेड्डी (11) बोयपाटि नागेश्वर राव।

(3) कर्नाटक

(1) शिवराम शास्त्री (2) पंडित सिद्धनाथ पंत (3) डॉ. जांबूनाथन (4) विनायक राव (4) पंडित वेंकटाचलय्या (5) के.वी. श्रीनिवासमूर्ति (5) हिरण्मय्या (6) एस. श्रीकंठमूर्ति (7) रामकृष्ण नावडा (8) एन. नागेशराव (9) लक्षम्मा देवी (10) नागोबाई (11) आर.के. गोडबोले (12) मुत्तूबाई माने (13) ना. नागप्पा (14) बी. एस. शांताबाई (15) एम.एस. कृष्णमूर्ति (16) तंगवेलन (17) कटील गणपति शर्मा (18) पी.आर. श्रीनिवास शास्त्री

(4) केरल

(1) एम. के. दामोदरन उण्णि (2) पी.के. केशवन नायर (3) के. वासुदेवन पिल्लै (4) एन. वेंकटेश्वरन (5) ए.एस. दामोदरन आशान (6) सी.जी. अब्रहाम (7) लक्ष्मी कुट्टी अम्मा (8) एम. तंकम्मा मालिक (9) पी.जी. वासुदेव (10) अभयदेव (11) पंडित नारायण देव (12) पी. नारायण (13) शिवराम पिल्लै (14) ए. चंद्रहासन (15) के. भास्करन नायर (16) गोवर्धन शास्त्री (17) पंडित सी.वी. जोसेफ़

मैं इन प्रचारकों को तथा इनकी प्रेरणा एवं मार्ग-दर्शन के कारण हिंदी का कार्य करने वाले अन्य हज़ारों प्रचारकों को नमन करता हूँ तथा हिंदी प्रचार-प्रसार के प्रति इनकी निष्ठा-भावना, संकल्प-शक्ति, समर्पणशीलता तथा प्रतिबद्धता को अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।

बुलंद शहर (उत्तर प्रदेश-203001)
mahavirsaranjain@gmail.com

विश्व हिंदी साहित्य : विचार और विस्तार

14 प्रवासी साहित्य कितना प्रवासी?

● प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण

अभी पिछले दिनों एक किताब खोजते हुए अचानक मोहन राकेश की नाट्य-कृति 'आषाढ़ का एक दिन' दिख गई और यह भूलकर कि मैं क्या खोज रहा था उसे पढ़ने बैठ गया। मैंने यह नाटक अनेक बार पढ़ा है और इसकी कई प्रस्तुतियाँ भी देखी हैं। इस पर बनी फ़िल्म भी देखी थी। हर बार कोई-न-कोई नया अनुभव पाता रहा हूँ। फलत: इसे एक बार फिर पढ़ जाने की उत्कट इच्छा दबा न सका और इसे एक ही बार में पूरा पढ़ गया। इस बार पढ़ते हुए यकायक मेरा मन कालिदास द्वारा कही गईं निम्न पंक्तियों पर अटक गया जिनमें वे उज्जयिनी में बिताए गए अपने जीवन का संदर्भ लेकर मल्लिका से कहते हैं—

"लोग सोचते हैं, मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर कुछ लिखा है। परंतु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा है। जो कुछ लिखा है, वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। 'कुमार संभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम हो तथापि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया, तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई।"

अर्थात कालिदास ने अपने उज्जयिनी प्रवास में जो कुछ लिखा, वह वहाँ के जीवन और वातावरण से परे विगत जीवन की वे घनीभूत स्मृतियाँ थीं जो उसके प्रवासी मन पर आषाढ़ के बादलों की तरह छाई हुईं थीं और जो उज्जयिनी के वातावरण में जाकर रिमझिम-रिमझिम बरसती रहीं। यानी प्रवासी कालिदास का तन चाहे उज्जयिनी में था लेकिन मन-आत्मा के स्तर पर वह अपने गृह-प्रदेश, अपनी प्रिया, अपने बंधु-बांधवों, प्रकृति और वनस्पतियों से निरंतर जुड़ा रहा। यानी उसकी समस्त उर्जा का स्रोत उसके विगत जीवन के अनुभव और उनकी स्मृतियाँ ही थीं। भले ही आज हमें यह बात शत-प्रतिशत सही न लगे लेकिन इसके मनोवैज्ञानिक आधार को नकारा नहीं जा सकता।

तभी इन पंक्तियों को पढ़ते हुए मेरे मन में एक प्रश्न उठा कि

• **शिक्षा** : दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम.ए., एम.लिट्. एवं पी-एच.डी. की उपाधि

• सन् 1988 से 1992 तक त्रिनिदाद एवं टोबैगो स्थित भारतीय हाई कमीशन में एक राजनयिक के रूप में प्रतिनियुक्ति

• सन् 1999 से 2002 तक मॉरीशस स्थित 'महात्मा गांधी संस्थान में जवाहर लाल नेहरू चेयर ऑफ इंडियन स्टडीज़' पर अतिथि आचार्य के रूप में कार्य

• सन् 2002 से 2012 तक जापान के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय 'टोक्यो युनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज़', टोक्यो, जापान में प्रोफेसर पद पर कार्य एवं वहीं से सन् 2012 में सेवा-निवृत्त

• **प्रकाशन** : 'अकेली गौरैया देख', 'मुक्तिबोध की काव्य सृष्टि', 'नई कविता में नाटकीय-तत्व', 'फ़ीजी के राष्ट्रीय कवि : पं. कमलाप्रसाद मिश्र की काव्य साधना', 'दिविक', 'मुट्ठियों में बंद आकार', 'निबंधायन', 'हमारे ग्रंथ', 'हमारे त्यौहार', 'फ़ीजी में सनातन धर्म : सौ साल', 'गीत-अर्पनम' (संपादन), 'चाचा रामगुलाम' (चित्रकथा), सहित कई पुस्तकें प्रकाशित।

• जापान में तीन अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों का आयोजन एवं संयोजन (2006, 2008 एवं 2012)

• त्रिनिदाद में प्रथम बार अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मलेन का आयोजन (1992)

• प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर से लेकर आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क तक के सभी सम्मेलनों में सक्रिय भागीदारी अन्य अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, सेमिनारों एवं कार्यशालाओं में सक्रिय भागीदारी

• विदेशों में हिंदी प्रचार-प्रसार के कार्य के लिए 'भारतीय विद्या संस्थान', त्रिनिदाद द्वारा 'त्रिनिदाद हिंदी भूषन सम्मान'

• हिंदी फाउंडेशन ऑफ त्रिनिदाद एवं टोबैगो द्वारा 'हिंदी निधि सम्मान' द्वारा सम्मानित

• महादेवी वर्मा की स्मृति से जुड़ी इलाहाबाद की 'समन्वय' संस्था द्वारा 'फ़ादर कामिल बुल्के सम्मान' (2006)

• सरस्वती साहित्य सम्मान (इलाहाबाद 2009)

आज जब हमारे साहित्याकाश पर 'प्रवासी साहित्य' के बादल कुछ ज़्यादा ही उमड़-घुमड़कर कड़क रहे हैं तब हम जिसे प्रवासी

साहित्य कहकर विज्ञापित, प्रचारित और सम्मानित किए जा रहे हैं, वह वस्तुत: कितना प्रवासी है?

आज विदेश में रहने वाले हिंदी साहित्यकारों की सभी रचनाओं को 'प्रवासी-साहित्य' की संज्ञा से अविहित करना लगभग एक प्रवृत्ति बनता जा रहा है। फलत: अनेक कारणों से विदेश जाकर बसने वाले साहित्य-प्रेमी-जन यदि कुछ रचनाएँ बैठकर लिख लेते हैं तो भारत में बैठे उनके मित्र, संपादक, आलोचक उन्हें प्रवासी-साहित्यकार की संज्ञा से विभूषित करने लगते हैं।

अत: विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या भारत से बाहर लिखे जा रहे समस्त हिंदी साहित्य को 'प्रवासी-साहित्य' कहा जा सकता है? क्या मात्र भारत की सीमाओं से बाहर जाकर लिखा गया साहित्य ही प्रवासी साहित्य है? आज भूमंडलीकरण के चलते 'प्रवासी' और 'प्रवासी' का मतलब भी क्या वही रह गया है जो आज से कई शताब्दियों पूर्व उपनिवेशवादियों द्वारा जबरन ले जाए गए 'अफ्रीकी दासों' और फिर 'दास-प्रथा' के समाप्त हो जाने के बाद 'शर्तबंदी प्रथा' के अंतर्गत मॉरीशस, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम और फीजी जैसे देशों में ले जाए गए भारतीय किसान-मज़दूरों के लिए था जिन्हें 'कुली' कहा जाता था? आज आठ-दस घंटे की आरामदायक हवाई-यात्रा के बाद नई भूमि पर उतरने का अनुभव क्या कलकत्ता के घाट से शुरू होने वाली उस समुद्री यात्रा के अनुभव जैसा है जो कई महीने की अमानुषिक यात्रा के बाद पराई-भूमि पर पहुँचने में होता था?

इसी तरह हमारा आज का यात्री जो पढ़ा-लिखा है, जो टेक्नोक्रेट, ब्यूरोक्रेट, डिप्लोमैट, व्यापारी या अन्य प्रकार का कामकाजी है, क्या इस अनपढ़, गँवार, देहाती मेहनतकश किसान जैसा ही यात्री है जिसे यह नहीं मालूम था कि काले पानी की यह यात्रा कहाँ खत्म होगी? ऊपरी तौर पर तो दोनों ही यात्री हैं लेकिन दोनों की यात्राओं के कारण और अनुभव नितांत भिन्न हैं। यहाँ पहले यात्री के लिए 'विस्थापन' स्वेच्छा से वरण किया गया निर्णय है तो दूसरे प्रकार के यात्री के लिए 'विस्थापन' अनजाने में या जबरन लादा गया है। फलत: दोनों प्रकार के विस्थापनों से उपजे अनुभव भी अलग-अलग ही होंगे और इन अनुभवों से उपजे साहित्य की प्रकृति और संवेदना भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होगी और होनी चाहिए।

इसी संदर्भ को कुछ और विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारत के एक प्रदेश से दूसरे गाँव या शहर में जाकर काम करने वाला भारतवासी भी अपने देश में ही प्रवासी हो जाता है, परदेशी हो जाता है। गाँव, कस्बों और छोटे-छोटे शहरों से निकलकर महानगरों में बसने वाला हर व्यक्ति अपनी मूल चेतना में प्रवासी ही है। अंग्रेज़ी-शासन के दौरान कलकत्ता और बंबई (आज का कोलकाता और मुंबई) के कल-कारखानों में जाकर काम करने वाला व्यक्ति 'परदेसी' कहलाता था। तब के संयुक्त प्रांत और आज के बिहार और उत्तर-प्रदेश के असंख्य लोग अपने-अपने गाँवों से निकलकर कलकत्ता-बंबई के कारखानों में मज़दूर हो गए थे और उनका घर-परिवार 'देस' में, यानी गाँवों में रहकर मानसिक और शारीरिक कष्ट भोगता रहता था। उसी कष्ट और मानसिक पीड़ा की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति बिहार के प्रसिद्ध जन-कवि-अभिनेता भिखारी ठाकुर के 'विदेसिया' में मिलती है जिसके कारण उस समय भिखारी ठाकुर बिहार और पूर्वी उत्तर-प्रदेश में अपने गायन और अभिनय के बलबूते हज़ारों की भीड़ इकट्ठी कर लेते थे। तब उनकी लोकप्रियता, उस समय के अनुपात से देखें तो अमिताभ-शाहरूख जैसी ही रही होगी। तब भिखारी ठाकुर को प्रवासी संवेदना का अथच प्रवासी लेखक क्यों नहीं माना जाए?

वस्तुत: प्रवास के मूल में 'विस्थापन की त्रासदी' जुड़ी रहती है। अपनी मूल जड़ों से दूर जाने पर व्यक्ति के मन में एक तरह की

'विस्थापन' की जो प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म रूप में प्रेमचंद और प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में मिलती है, वही नई कहानी के युग में आकर साहित्य का मूल स्वर बन जाती है। नई कहानी के अधिकांश लेखक और पात्र गाँवों और कस्बों से निकलकर शहरों में आकर बसे लोग हैं और उनके मनों में अपने पीछे छूटे खेत-खलिहान, संयुक्त परिवार का घर-आँगन, माता-पिता सहित सामाजिक आत्मीयता की स्मृतियाँ और आगत भविष्य के स्वप्न मौजूद हैं। तब क्या यह सब भी प्रवासी मनोवृत्ति और संवेदना का साहित्य नहीं है?

उदासी छा जाती है। पीछे छूटा घर-परिवार, सामाजिक परिवेश, मित्र-नाते-रिश्तेदार, वन-प्रांत और एक खास तरह की जीवन-पद्धति का अभ्यास उसके जीवन में एक नाटकीय परिवर्तन ले आता है। नया समाज भी उसे एकदम नहीं अपनाता है वरन् अपने विजातीय होने का अहसास, उसकी चेतना में बसा रहता है। नई भाषा के साथ उसकी अपनी मातृभाषा की संगति भी आसानी से नहीं बैठती है। विजातीय समाज को लगता है कि जैसे वह इन प्रवासियों के कारण अपने ही घर में सुविधा विहीन होता जा रहा है। अभी पिछले कुछ वर्षों में मुंबई में 'पूरब से आए लोगों के प्रति' जिस प्रकार का विद्वेष भरकर और उन्हें अपने-अपने गृह-प्रदेश लौटने का संकेत दिया गया, वह इसी प्रवृत्ति का विस्फोट है। अत: मूल-परिवेश से दूर जाकर अपने होने का, अपनी अस्मिता और पहचान का संकट शुरू होता है। नई-नई परिस्थितियाँ उसके सामने चुनौती की तरह आ खड़ी होती हैं और वह अपने आप को अभिमन्यु की तरह एक चक्रव्यूह में फँसा पाता है। इन्हीं सब कारणों से उसके सामने अपने अस्तित्व की रक्षा और उसकी स्थापना का संघर्ष शुरू होता है।

उदाहरण के लिए विमल राय की प्रसिद्ध फ़िल्म 'दो बीघा ज़मीन' का नायक अपनी ही ज़मीन से विस्थापित किसान है जो कलकत्ता आकर रिक्शा खींचता है। अपनी ज़मीन को वापस लेने के लिए धन एकत्रित करने की प्रक्रिया में अपने प्राण खो बैठता है। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' का नायक 'होरी' भी अपनी ज़मीन से दूर होकर मज़दूर बनने के लिए विवश हो जाता है और लू-खाकर उसी सड़क पर पत्थर कूटते हुए मर जाता है जो गाँव को शहर से जोड़ने के लिए बन रही है। इसके विपरीत उसी का बेटा 'गोबर' गाँव से भाग कर शहर चला जाता है और वहाँ से चार पैसे कमाकर 'शरारती ठाठ' के साथ गाँव लौटता है तो अचानक 'गोबर' से 'गोबरधन' हो जाता है।

फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं में भी 'विस्थापन' अपने अनेक रूपों में मौजूद है। 'तीसरी कसम' का हीरामन अपने गाँव से दूर बैलगाड़ी में 'लदनी' ढोने का काम करता है, नौटंकीवाली हीराबाई के संपर्क में आकर उसमें अनेक तरह की नई-नई भावनाओं का प्रस्फूटन होता है, नौटंकी देखता है जो उसके अपने सामाजिक परिवेश में अच्छा काम नहीं समझा जाता है।

ये कुछ उदाहरण मात्र हैं, बात कहने के लिए। यों ऐसे हज़ारों उदाहरण और भी दिए जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि महान साहित्यिक रचना के मूल में 'विस्थापन का दर्द' समाया रहता है। अपनी जड़ों से दूर जाकर 'अपने होने की' समझ विकसित होती है। भारत के महान महाकाव्य रामायण और महाभारत को ही लें तो आप पाएँगे कि दोनों में ही 'विस्थापन' का तत्व मौजूद है। रामायण की मार्मिकता का नियामक तत्व उसका वनवास है। पांडवों का निर्वासन उन्हें निरंतर दृढ़ और ऊर्जावान बनाता है। हमारे पूर्ण-पुरुष श्रीकृष्ण भी ब्रज से विस्थापित होकर अंतत: द्वारका में जाकर बसते हैं। और मोहन राकेश के कालिदास की तरह ब्रज प्रदेश और राधा की स्मृतियाँ उनसे दूर नहीं हो पाती हैं। सूरदास ने कृष्ण के मुख से ही कहलवाया—

''ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहिं।
हंससुता की सुंदर कगरी अरु कुंजन की छाहिं।।''

हरिऔध का 'प्रिय-प्रवास' कृष्ण के प्रवास को राधा के संदर्भ से प्रस्तुत करता है। यानी जहाँ-जहाँ विस्थापन है, वहीं 'प्रवास' की चेतना मिलेगी। तो क्या इस विस्थापन और प्रवास से जुड़े समस्त साहित्य को 'प्रवासी-साहित्य' मान लिया जाए?

आज के आधुनिक युग में, औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में, गाँव टूट रहे हैं और नए-नए शहर विकसित हो रहे हैं। यह प्रक्रिया कमोवेश पूरे विश्व में ही चल रही है। कहीं इसकी गति धीमी है तो कहीं तेज़, लेकिन यह प्रक्रिया निरंतर चल रही है। इसके साथ ही भारत की जनसंख्या भी बढ़ रही है। एक छोटे स्थान पर रहते हुए रोज़ी-रोटी के लिए, पढ़ाई-लिखाई के लिए, अधिक सुविधाएँ पाने के लिए, व्यक्ति या समूह अपने-अपने मूल स्थानों से विस्थापित होने के लिए विवश हो जाते हैं। विकास के नाम पर नए-नए प्रकल्प सामने आते-जाते हैं और अचानक एक ही स्थान विशेष का बहुत बड़ा-जनसमुदाय विस्थापित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए नर्मदा या टिहरी पर बनने वाले बाँधों के कारण अनेक लोग विस्थापित कर दिए गए। इस विस्थापन के कारण जल, जंगल और ज़मीन के वर्चस्व एवं अधिकार की लड़ाई भी तेज़ होती जाती है। फलत: साहित्यिक रचनाओं में विस्थापन से जुड़े दर्द और संघर्ष के तत्व स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्ति पाने लगते हैं।

'विस्थापन' की जो प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म रूप में प्रेमचंद और प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में मिलती है वही नई कहानी के युग में

आकर साहित्य का मूल स्वर बन जाती है। नई कहानी के अधिकांश लेखक और पात्र गाँवों और कस्बों से निकलकर शहरों में आकर बसे लोग हैं और उनके मनों में अपने पीछे छूटे खेत-खलिहान, संयुक्त परिवार का घर-आँगन, माता-पिता सहित सामाजिक आत्मीयता की स्मृतियाँ और आगत भविष्य के स्वप्न मौजूद हैं। तब क्या यह सब भी प्रवासी मनोवृत्ति और संवेदना का साहित्य नहीं है ?

स्पष्ट है कि 'प्रवासी-साहित्य' पदबंध पढ़ते ही कई तरह के अर्थ एवं धारणाएँ मन में उभरने लगती हैं। उदाहरणार्थ 'प्रवास' में लिखा गया साहित्य (यथा यात्रा-संस्मरण, डायरी आदि) प्रवासी-लेखक द्वारा लिखा गया साहित्य (जैसे सूर-साहित्य, तुलसी साहित्य वैसे ही प्रवासी साहित्य) ऐसा साहित्य है जिसमें प्रवास के कारण उत्पन्न भावनाओं का चित्रण हो (जैसे प्रिय-प्रवास, वैदेही वनवास आदि) प्रवासी-प्रवृत्ति का साहित्य (जैसे भक्ति साहित्य, रीति-साहित्य आदि) या फिर प्रवास की परिस्थितियों से उत्पन्न मानसिक वेदना का ऐसा रूप चित्रण, जो प्रवास में जाए बिना संभव न हो (जैसे 'मेघदूत', 'विदेसिया' आदि)। निश्चय ही इस पद-बंध में अर्थ की अतिव्याप्ति है। जैसे किसी रचना में ढेर सारे आंचलिक शब्दों का प्रयोग उसे आंचलिक नहीं बना सकता है, कुछ उसी तरह प्रवास में रहते हुए या किसी प्रवासी द्वारा लिखी गई हरेक रचना 'प्रवासी-साहित्य' नहीं मानी जा सकती है।

प्रवासी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित होने की आकांक्षा एक नई प्रवृत्ति है। जब से भारत-सरकार ने 'प्रवासी-दिवस' मनाने की शुरुआत की है तब से यह प्रवृत्ति कुछ ज़्यादा ही ज़ोर मारने लगी है। विदेशों में अकूत संपत्ति और राजनैतिक-सामाजिक वर्चस्व के चलते जब लोग 'प्रवासी-रत्न' बनाए जाने लगे तो अपनी 'साहित्यिक-पूँजी' के आधार पर कुछ समझदार लेखक प्रवासी साहित्यकार बनकर अवतरित होने लगे हैं। इसमें निश्चय ही कुछ साहित्यकार ऐसे अवश्य हैं जो प्रवास में होने के कारण ही ऐसी रचनाएँ दे पाए हैं, जो उनके वहाँ न होने पर संभव न थीं। पर उन्हीं के साथ ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जो विदेश में रह तो अवश्य रहे हैं लेकिन उनकी संवेदना में ऐसा कुछ भी विशिष्ट नहीं है जो यह सिद्ध करे कि उनकी यह रचना प्रवास जनित पीड़ा और अनुभवों की देन है।

इसी के साथ ही साथ एक बात और गौर करने की है कि इस तरह की रचनाओं को उच्च कोटि की सिद्ध करने के लिए कुछ आलोचक, संपादक, समीक्षक भी मैदान में उतर आए हैं, ताकि उनकी दुकान भी कुछ 'एक्सपोर्ट क्वालिटी' की सिद्ध हो सके।

वस्तुत: 'प्रवासी-भारतीय' शब्द का एक स्पष्ट अर्थ-संदर्भ है। इसे जानना-समझना बहुत ज़रूरी है। यह शब्द पिछली शताब्दी में उन भारतीयों के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होता था, जिनके पुरखे 100-150 वर्ष पहले उपनिवेशवादियों द्वारा पराए देशों में ले जाकर बसा दिए गए थे बल्कि यह कहना ज़्यादा समीचीन होगा कि उन्हें बसने के लिए विवश कर दिया गया था। उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रहीं यह संतानें 'प्रवासी भारतीय' कहलाती हैं। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में महात्मा गांधी जी का ध्यान भी प्रवासी-भारतीयों की समस्याओं की ओर गया था। इसका एक कारण तो यही था कि अपने साउथ-अफ्रीका के प्रवास में इनकी समस्याओं से वे स्वयं भी साक्षात्कार कर चुके थे। इसी संबंध के कारण गिरिराज किशोर ने उन्हें अपने उपन्यास में 'पहला गिरमिटिया' कहा है।

कांग्रेस पार्टी में एक प्रवासी-विभाग भी था जिससे दीनबंधु सी.एफ.इंड्रयूज, बनारसी दास चतुर्वेदी, पं. तोताराम सनाढय, भवानी दयाल संयासी प्रभूति व्यक्ति जुड़े हुए थे। इन्हीं लोगों के निरंतर प्रयत्नों के कारण सन् 1916 में 'गिरमिट प्रथा' का अंत हुआ था। अब इन प्रवासी भारतीयों को भारत सरकार, एक नई संज्ञा प्रदान की है—'पीपल ऑफ इंडियन ओरिजन' अर्थात भारतीय मूल का वह व्यक्ति जो चार पीढ़ियों या इससे अधिक पीढ़ियों से भारत से बाहर रह रहा है। इस वर्गीकरण में वस्तुत: मॉरीशस, त्रिनिदाद, गयाना, सूरीनाम, फीजी जैसे देशों में रह रहे प्रवासी भारतीय ही आते हैं।

प्रवासी भारतीय (P.I.O.) के साथ ही साथ अब आप्रवासी एवं अनिवासी भारतीय शब्द भी विशिष्ट संदर्भ रखते हैं। सन् 1960 के बाद नई अमेरिकी नीति के अंतर्गत जब अनेक भारतीय अमेरिका में जा बसे तो वे लोग 'आप्रवासी भारतीय' कहलाए। उधर इनमें से अधिकांश लोगों ने अमेरिका या अन्य देशों की नागरिकता भी ले ली है और अपने नामों का भी कुछ-कुछ अमेरिकीकरण कर लिया है। ऐसे लोगों को भारत सरकार '(P.I.O.)' के तर्ज पर ही '(O.C.I.)' कहने लगी है। (O.C.I.) यानी Overseas Citizenship of India इसे एक प्रकार से दोहरी नागरिकता जैसी स्थिति के रूप में लिया जाने लगा है।

इसी क्रम में एक अन्य महत्वपूर्ण संज्ञा (NRI) अर्थात 'अनिवासी भारतीय' भी है। ये वे लोग हैं जो शिक्षा, व्यापार, सूचना-प्रौद्योगिकी से जुड़े रोज़गार या अन्य किसी भी प्रकार के कामकाजी कारणों से भारत-भूमि से दूर विदेशों में रह रहे हैं अर्थात वे भारतीय तो हैं लेकिन अल्पकाल या किसी निश्चित अवधि के लिए भारत से बाहर हैं तथा जिनके लौटने की आशा है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रवासी भारतीय, आप्रवासी भारतीय एवं अनिवासी भारतीय, ये समान सी लगने वाली तीनों अवधारणाएँ अपने आप में भिन्न अर्थ-संदर्भ सँजोए हुए हैं। पर साहित्यिक क्षेत्र में ये तीनों अवधारणाएँ गड-मड होकर 'प्रवासी भारतीय' के रूप में प्रचलित और प्रचारित की जाने लगी हैं तथा इन तीनों श्रेणियों के भारतीयों द्वारा लिखित साहित्य को 'प्रवासी-साहित्य' माना जाने लगा है। अर्थात 'प्रवासी-भारतीय' की स्पष्ट अवधारणा से जुड़े साहित्य के साथ-साथ, आप्रवासी एवं अनिवासी भारतीयों द्वारा रचित साहित्य को भी मुख्यधारा के साथ जोड़ दिया जाता है।

सामान्यत: विभिन्न संज्ञाओं का प्रयोग वस्तु या व्यक्तियों को एक-दूसरे से अलगाकर, विशिष्ट रूप में पहचान के लिए किया जाता है। अत: 'गिरमिट प्रथा' के अंतर्गत संतानों द्वारा लिखे साहित्य को 'प्रवासी-साहित्य' नाम देकर अलगाया या वर्गीकृत किया जाता है तो यह ज़्यादा तर्कसंगत और प्रासंगिक होता है। इस वर्ग में मॉरीशस के साहित्यकार संख्या और साहित्यिक श्रेष्ठता में सबसे आगे हैं। अभिमन्यु अनत का नाम सर्वत्र जाना जाता है। उसी तरह ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', सोमदत्त बखोरी, पूजानंद नेमा, रामदेव धुरंधर, लोचन विदेशी, भानुमती नागदान प्रभृति लेखकों के नाम प्रमुख हैं। फीजी के प्रवासी साहित्यकारों में पं. कमला प्रसाद मिश्र, जोगेंद्र सिंह कंवल, विवेकानंद शर्मा, सुब्रमनी, अमरजीत कौर आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। सूरीनाम के लेखकों में मुंशी रहमान खान, अमर सिंह रमण, हरिदेव सहतू, ज्ञान अधीन, श्रीनिवासी आदि के नाम लिये जा सकते हैं। यदि इन और इन जैसे ही अन्य लेखकों के नामों को शामिल करके 'प्रवासी-साहित्य' का वर्गीकरण, विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जाए तो कम-से-कम अर्थ की अतिव्याप्ति का संकट न रहेगा तथा 'प्रवासी-साहित्य' को हिंदी साहित्य के इतिहास में एक अलग और विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप में समुचित स्थान मिल सकेगा लेकिन यदि इस विशिष्ट प्रवृत्ति में विदेशों में रहकर लिखने वाले सभी लेखकों को शामिल करने का गोरखधंधा चलता रहा तो 'प्रवासी-साहित्य' अपना केंद्रीय एवं मूल अर्थ खो बैठेगा।

हमें यह भी सोचना होगा कि कहीं जाने-अनजाने हम प्रवासी-साहित्यकारों को लेकर हिंदी 'साहित्यिक-समाज' में एक ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग का निर्माण तो नहीं करते जा रहे हैं जो भारत से दूर रहकर साहित्य-सर्जन कर रहा है और इसीलिए हिंदी साहित्य के इतिहास में उसका योगदान विशिष्ट माना जाए। यदि ऐसा है तो उसका यह प्रवेश तात्कालिक मान्यता का लाभ तो दे सकता है लेकिन उसे स्थायित्व नहीं दे सकता। दुनिया के किसी भी कोने में लिखा गया, किसी भी भाषा का साहित्य ज़िन्दा तो अपने उस ताकत पर ही रहेगा कि उसमें 'साहित्य' कितना है। प्रवासी या गैर-प्रवासी होने भर से रचना की सृजनात्मक-संवेदना नहीं बदला करती है। यदि रचनाकार की सृजनात्मक-संवेदना महत्वपूर्ण है तो उसका 'प्रवासी' होना उसकी एक और विशिष्टता मानी जा सकती है। उदाहरण के लिए मैं मॉरीशस के कथाकार अभिमन्यु अनत के उपन्यास 'लाल पसीना' का नाम लेना चाहूँगा। अनत का यह उपन्यास पहले एक श्रेष्ठ उपन्यास है, औपन्यासिक कला के निकष पर खरा उतरता हुआ। इसमें मॉरीशस के प्रवासी भारतीयों के लोमहर्षक संघर्ष की महागाथा चित्रित है। मात्र प्रवासी-साहित्य होने के नाते महत्वपूर्ण होने की दरकार उसे नहीं है। वह अपने साहित्यिक गुणों के कारण ज़िन्दा रहेगा। संभवत: इसी कारण फ्रेंच भाषा में किया गया उसका अनुवाद लोकप्रिय हुआ। उधर यह लोकप्रियता उसे प्रवासी रचना होने के कारण नहीं मिली है।

मैं यहाँ यह भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि आप्रवासी या अनिवासी भारतीय लेखकों द्वारा रचित साहित्य दोयम दरजे का है या कम मूल्यवान है। यह साहित्य भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्ति का द्योतक है और हमारे सामने नए वैश्विक संदर्भों और उनके यथार्थ को उपस्थित करने में सक्षम है। मेरी चिंता और आपत्ति यह है कि इसे 'प्रवासी-साहित्य' की निश्चित अवधारणा से जोड़ने के बजाए इसके लिए किसी नए प्रकार के वर्गीकरण की नींव डाली जानी चाहिए ताकि इन लेखकों के वर्चस्व और महत्व को उचित परिप्रेक्ष्य में समझा जा सके। ज़रुरत इस बात की है कि इसे 'प्रवासी साहित्य' की अवधारणा से अलग करके देखा जाए। यदि 'भारतेतर-हिंदी-साहित्य' जैसी

कोई नई संज्ञा का प्रयोग करके इसका विश्लेषण-मूल्यांकन किया जाए तो ज़्यादा प्रासंगिक होगा। जैसे भारत में 'विभाजन का साहित्य' एक स्पष्ट अवधारणा है। इसके साथ जर्मनी के विभाजन या किसी अन्य प्रकार के विभाजन के साहित्य को नहीं जोड़ा जा सकता है। उसी तरह की एक संज्ञा 'डायस्पोरिक लिटरेचर' भी है जिसका फलक वैश्विक है और इसमें 'इंडियन डायस्पोरिक लिटरेचर' की भी अपनी एक धारा है।

इसी तरह हमें यह भी समझना होगा कि विदेश में लिखी जाने से ही कोई रचना प्रवासी या भारतेतर रचना नहीं हो जाएगी। यदि यह कोई आधार है तो फिर अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, निर्मल वर्मा प्रभृति अनेक लेखकों की अनेक रचनाएँ जो उनके विदेश प्रवास के दौरान रची गईं थीं तथा जिनके नीचे उस देश का नाम और तिथियाँ भी अंकित हैं तो क्या हम उन्हें भी प्रवासी या भारतेतर साहित्य के अंतर्गत समाहित करें?

वस्तुत: लेखक के प्रवासी होने या न होने से रचना भी प्रवासी होगी या नहीं यह निष्कर्ष ही गलत है। हमें तो यह देखना चाहिए कि क्या प्रवास की स्थितियों ने रचना की मूल संवेदना में कुछ ऐसा गुणात्मक परिवर्तन किया है जो प्रवास के बिना संभव नहीं था? वस्तुत: रचना में प्रवास की स्थितियाँ कितना विचलन लाती हैं इसकी खोज करना बहुत ज़रूरी है। यथार्थ की वह प्रतीति जो प्रवास द्वारा ही संभव हो सकी है तो उस यथार्थ-अनुभव को व्यक्त करने वाली रचना में 'प्रवास-तत्व' के महत्व को समझा जा सकता है।

पर समस्या मात्र 'प्रवास-तत्व' के महत्व को समझने भर की नहीं है। आज जिस तरह से 'प्रवासी-साहित्य' को मुहावरे की तरह उछाला जा रहा है, उसके पीछे के सरोकारों को भी समझना ज़रूरी है। कई बार गोष्ठियों में विदेश से पधारे हिंदी लेखकों की अभ्यर्थना कुछ इस अंदाज़ में की जाती है जैसे यदि वे हिंदी में न लिखते तो हिंदी भाषा विपन्न हो गई होती, हिंदी साहित्य समृद्ध होने से वंचित हो जाता। जैसे उन्होंने हिंदी में लिखकर हिंदी समाज पर बड़ा अहसान किया है।

आज के भूमंडलीकृत विश्व में लोगों का अपना देश छोड़ विदेश जाना, विदेश में जा बसना, नागरिकता बदल लेना, नई भाषा अपना लेना या फिर नई वेश-भूषा में सजने लगना अत्यंत स्वाभाविक है और ऐसा कर लेना उनके वश में भी है। लेकिन वे अपनी वंशगत और देशगत पहचान नहीं बदल सकते, वे अपनी संस्कृति और संस्कारों को भुला भले ही दें पर छोड़ नहीं सकते, उसी तरह अपनी मातृभाषा भी छोड़ नहीं सकते। क्योंकि वे जो भी हैं, वे अपनी मातृभूमि, मातृभाषा, संस्कृति और संस्कारों की बदौलत ही हैं। उनका देश उनकी पहचान है। वे किसी भी देश में रह लें लेकिन भारतीय या भारत-वंशी ही कहे जाएँगे। अत: हिंदी या फिर किसी अन्य मातृभाषा में सोचना-समझना उनकी स्वाभाविक तथा नैसर्गिक प्रवृत्ति है, किसी हद तक मजबूरी भी। इसलिए यदि वे हिंदी भाषा में लिखते हैं तो यह कोई अहसान या कृपा करने जैसी बात नहीं है। यह उनकी नियति है, उनकी नैसर्गिक आवश्यकता और विवशता भी है।

लेखक चाहे देश का हो या विदेश का, उसका सम्मान करना अच्छी बात है। उसके लेखन की सराहना की जानी चाहिए, विश्लेषण एवं मूल्यांकन भी किया जाना चाहिए लेकिन उसके लिए कसौटी अलग-अलग नहीं होनी चाहिए। क्योंकि वह साहित्य विदेश की भूमि पर बैठकर लिखा गया है इसलिए महान है, यह दृष्टिकोण निरर्थक है। हमें यह देखना भी ज़रूरी है कि यह साहित्य अंतरराष्ट्रीय परिवेश, परिस्थिति और यथार्थ के बहुआयामी-परिदृश्य को समझने में कितना मददगार है। यह साहित्य हमारी भाषा और संस्कृति की वैश्विक शक्ति और ऊर्जा को समझने का महत्वपूर्ण 'साधन' भी बन सकता है या नहीं। जब हम अपनी स्थानीयता से विलग होकर, अंतरराष्ट्रीय धरातल पर खड़े होते हैं तो सबसे पहले जो यक्ष-प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है वह है कि हमारी अस्मिता क्या है? जब हमारे सामने पहचान का संकट खड़ा होता है तो हमें जड़ों का ध्यान आता है और अहसास होता है कि उससे अलग जाकर कोई पहचान शेष नहीं बचेगी। हम त्रिशंकु की तरह एक निर्वात में जीने के लिए विवश हो जाएँगे और तब अपने अस्तित्व और पहचान का संकट प्रवासी लेखन की पहली शर्त बन जाता है।

अपने देश की यानी घर की याद के साथ-साथ स्थानीय एवं विजातीय के यथार्थ के साथ हमारी चेतना का द्वंद्व होने लगता है, सांस्कृतिक मूल्यों के सामने नितांत समसामयिक परिस्थितियों के संघात से जन्मी नई मानसिकता विकसित होने लगती है जब उस नई मानसिकता से जन्मी संवेदना, साहित्य में अभिव्यक्ति पाने लगती है तब प्रवासी-लेखन की उचित और नैसर्गिक भूमिका बन जाती है।

ऐसी संवेदना का निर्माण अपने देश अथच स्थानीय परिवेश में संभव नहीं हो सकता था। अत: अनुभव की, संवेदना की ऐसी विशिष्ट प्रतीति और प्रवृत्ति प्रवासी साहित्य का आधार होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए मॉरीशस के अभिमन्यु अनत की रचनाओं में उपनिवेशवादियों द्वारा आविष्कृत दूसरी प्रकार की 'दास-प्रथा' के शोषण-चक्र को समझा जा सकता है। अंग्रेज़ी भाषा में लिखित बी.एस. नयपॉल की रचनाओं में त्रिनिदाद के भारतीयों के अनुभव-संसार को जाना जा सकता है। निर्मल वर्मा द्वारा रचित 'चीड़ों पर चाँदनी', 'वेदिन' या 'लंदन की एक रात', जैसी रचनाओं में समाया हुआ अनुभव और उसकी अभिव्यक्ति यूरोप जाए बिना असंभव थी। उसे पढ़कर युद्धोत्तर यूरोप की त्रासदी को कुछ-कुछ जाना जा सकता है या फिर अति-विकसित यूरोपीय समाज के अंतर्विरोधों, विडंबनाओं, अलगाव और अकेलेपन की नियति को समझा जा सकता है। क्या इसी तरह हमारे अन्य अनेक प्रवासी भारतीय लेखकों की रचनाएँ अस्तित्व के, अस्मिता के गहरे संकटों को उभार पाती हैं? हमें इसे जानना और समझना होगा, इसकी गहरी जाँच-पड़ताल करनी होगी अन्यथा साहित्य की एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति धीरे-धीरे निरर्थक हो जाएगी। ज़रूरत इस बात की है कि हम व्यक्तिगत भावुकता और संलग्नता से ऊपर उठकर इस साहित्यिक-प्रवृत्ति का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करें अन्यथा प्रवासी-लेखन, प्रवासी-साहित्य और प्रवासी-दिवस जैसे शब्द जल्दी ही अपना संदर्भ और आकर्षण खो बैठेंगे। यदि प्रवास में लिखा गया यह साहित्य, साहित्यिक प्रतिमानों पर अपनी मूल-संवेदना और भाषिक रचाव के कारण महत्वपूर्ण है तो कोई कारण नहीं कि इसे महत्वपूर्ण न माना जाए। पर यदि प्रवासी-साहित्य के नाम से प्रचारित साहित्य हिंदी साहित्य की मुख्य धारा के साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकता तो वह शीघ्र ही प्रवाह से बाहर होकर विलीन हो जाएगा। उसके टिकाऊपन का कारण प्रवास में लिखे गए होने का ठप्पा नहीं होगा, वरन् मनुष्य मात्र की उन मूल-संवेदनाओं की सशक्त एवं मार्मिक अभिव्यक्ति होगी जो सार्वभौम, सार्वजनिक एवं सार्वकालिक हैं। मनुष्य मात्र की नियति से साक्षात्कार कराने वाली रचनाएँ ही कालजयी हो सकती हैं, फिर वे चाहे देश में लिखी गईं हो या विदेश में।

साहित्य अपनी मूल-चेतना में साहित्य ही होता है। उसे प्रवासी या विदेश में रचित साहित्य आदि के बाहरी प्रतिमानों से महिमामंडित करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे सोना, सोना होता है। उसका 'खरापन' देश-काल बदल जाने से परिवर्तित नहीं होता, उसी तरह कोई साहित्यिक रचना 'खरी' है तो वह अपना 'खरापन' स्वयं सिद्ध कर देगी। उसके लिए प्रवासी होना या न होना कतई भी ज़रूरी नहीं है।

नई दिल्ली, भारत
rituparna.suresh@gmail.com

15 हिंदी का प्रवासी साहित्य : दशा और दिशा

● डॉ. कमल किशोर गोयनका

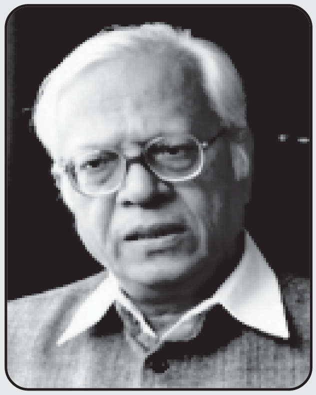

जन्म : 11 अक्टूबर, 1938, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से 1961 में एम.ए. (हिंदी), पीएचडी (1972)

• राँची विश्वविद्यालय, राँची से 1984 में डी.लिट. • दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग के अवकाश-प्राप्त प्राध्यापक हैं। उन्होंने वहाँ चालीस वर्ष अध्यापन किया। • 40 वर्ष से अधिक शिक्षण अनुसंधान, 41 वर्ष, बी.ए. (ऑनर्स), एम.ए., एम.फिल. आदि • शोध निर्देश का अनुभव 42 वर्ष • उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के साहित्य के सर्वोत्तम विद्वान शोधकर्ता माने जाते हैं। मुंशी प्रेमचंद पर उनकी अनेक पुस्तकें व लेख प्रकाशित हो चुके हैं। प्रवासी हिंदी साहित्य को एकत्रित करने, अध्ययन एवं विश्लेषण करने में उनकी अहम भूमिका रही। • साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित प्रेमचंद ग्रंथावली के संकलन एवं संपादन में उनका विशेष योगदान है। • उन्होंने हिंदी में हाइकु कविताएँ भी लिखी हैं।

सम्मान व पुरस्कार : हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा दो बार पुरस्कृत व सम्मानित, नथमल भुवालका पुरस्कार, प्रेमचंद संबंधी मौलिक कार्यों के लिए अनेक बार सम्मानित, साहित्य भूषण पुरस्कार, पं. राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार, भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार, स्व. विष्णु प्रभाकर पुरस्कार, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना पुरस्कार, भावरमल सिंघी सम्मान।

भारत के प्रवासी इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों का विशेष महत्व है। देश के भोजपुरी भाषी क्षेत्रों से हज़ारों भारतीय छल-कपट से मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम आदि देशों में मज़दूर बनाकर भेजे जा रहे थे। इन्हीं दशकों में गांधी जैसे अनेक भारतीय यूरोप, विशेषत: इंग्लैंड उच्च शिक्षा के लिए जा रहे थे और स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म, दर्शन और संस्कृति से दुनिया को परिचित कराने के लिए अमेरिका आदि देशों में जा रहे थे तथा राजस्थान से भी अनेकों राजस्थानी आजीविका एवं व्यापार के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में जा रहे थे। मेरे भी पूर्वज राजस्थान के मंडावा से निकलकर उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर में जाकर बस गए और अपने व्यापारिक उद्योग से समृद्धि तथा सामाजिक कर्तव्यों के पालन से यशस्वी बने। इस प्रकार प्रवास मानवीय समाज का ही शाश्वत सत्य नहीं है बल्कि वह अन्य जीवों का भी सत्य है परंतु जीवन के इस सत्य में प्रवास की व्यथा, संघर्ष, विछोह, विस्थापन, भिन्न परिवेश एवं संस्कृति में जीवित रहने की विवशता, मातृभूमि के प्रति ललक और समृद्धि की लालसा आदि अनेक प्रतिकूल और अप्रिय परिस्थितियों में रहने की विवशता भी रही है। यदि आप गांधी के इंग्लैंड एवं दक्षिण अफ्रीका के प्रवास कालीन संस्मरण पढ़ें तो आप प्रवासी जीवन के भयानक अनुभवों का साक्षात्कार कर सकते हैं परंतु हमें यह मानना होगा कि मनुष्य के प्रवास की प्रवृत्ति ने उसे नए-नए अनुभव दिए हैं, नई सभ्यताओं की रचना की है और ज्ञान-विज्ञान के अनुभवों का आदन-प्रदान किया है तथा समूहगत प्रवासों ने सभ्यताओं को नष्ट करने के साथ मनुष्यों को दास बनाया है।

यह सब इतिहास के विषय हैं लेकिन मुझे तो आपसे प्रवासी साहित्य की चर्चा करनी है। मेरा विषय है कि मैं आपको हिंदी के प्रवासी साहित्य की दशा और दिशा, उसके स्वरूप और समस्याओं के संबंध में महत्वपूर्ण तथ्यों को आपके सामने प्रस्तुत करूँ। देश के राजनीतिक और औद्योगिक पटल पर 'प्रवासी भारतीय' तथा 'डायस्पोरा' की चर्चा अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री काल से आरंभ होती है जब 9-11 जनवरी, 2003 को उन्होंने नई दिल्ली में पहले 'प्रवासी भारतीय दिवस' का उद्घाटन किया था। वाजपेयी की नियुक्ति पर डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने एक 'डायस्पोरा रिपोर्ट' तैयार की थी और उसी के आधार पर देश में प्रवासी दिवस मनाने की परंपरा शुरू हुई किंतु उससे प्रवासी भारतीय समाज के प्रति जागृति तो उत्पन्न हुई लेकिन साहित्य, संस्कृति, कला और भाषा की उपेक्षा ये प्रवासी दिवस सम्मेलन केवल आर्थिक विकास, पूँजी एवं उद्योग तक सीमित रह गए। इस प्रकार भारतीय प्रवासियों के जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा हमसे छूट गया।

महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवास-काल तथा 'इंडियन ओपिनियन' अखबार निकालने एवं सन् 1901 में मॉरीशस की यात्रा ने भारतीय प्रवासियों से संपर्क एवं उनकी समस्याओं के प्रति जागरण का वातावरण निर्मित किया। साहित्य में प्रेमचंद पहले लेखक थे जिन्होंने अमेरिका से लौटे एक भारतीय प्रवासी के मातृभूमि प्रेम पर 'यही मेरी मातृभूमि

है' कहानी की सन् 1908 में रचना की। इसके उपरांत पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रवासी भारतीयों के जीवन को देश के सम्मुख उजागर करने का कार्य किया। उन्होंने फीजी में 21 वर्ष रहे एक भारतीय के अनुभवों को शब्दबद्ध किया और वह 'फीजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। चतुर्वेदी जी ने सन् 1918 में 'प्रवासी भारतवासी' तथा 'फीजी में भारतीय' पुस्तकों की भी रचना की। इससे फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम आदि देशों में गए भारतीयों के शोषण और त्रासदी की ओर भारतीयों का ध्यान गया तथा पत्र-पत्रिकाओं में इन प्रवासी भारतीयों के जीवन पर लेख छपते रहे। संभवत: इसी से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने मॉरीशस में प्रवासी भारतीय के जीवन पर 'शूद्रा' कहानी लिखी जो 'चाँद' के नवंबर 1926 के अंक में प्रकाशित हुई। 'चाँद' का यह प्रवासी अंक था जिसमें यह कहानी प्रकाशित हुई थी। बनारसीदास चतुर्वेदी ने महात्मा गांधी तथा नेहरू से मिलकर प्रवासी विभाग खोलने का प्रयत्न भी किया था किंतु कांग्रेसियों की उसमें कोई रुचि न होने से असफल हो गया। बच्चन जब अपने शोध-कार्य के लिए इंग्लैंड गए तब उन्होंने वहाँ से लौटकर 'प्रवासी की डायरी' लिखी जो सन् 1962 में प्रकाशित हुई। इसके उपरांत मॉरीशस के अभिमन्यु अनत का प्रसिद्ध उपन्यास 'लाल पसीना' सन् 1977 में एक पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपा तथा सोमा वीरा एवं उषा प्रियवंदा अमेरिका पहुँचकर वहाँ के आप्रवासी जीवन पर कहानियाँ लिखकर भारत भेजती रहीं। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जब इंग्लैंड में भारत के उच्चायुक्त बने तो उन्होंने वहाँ प्रवासी हिंदी साहित्य के विकास के लिए ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया। डॉ. सिंघवी ने 28 जून, 1992 को अटल बिहारी वाजपेयी का एकल काव्य-पाठ कराया और वहाँ कवि-सम्मेलनों की परंपरा शुरू की। डॉ. सिंघवी ने ही 'डायस्पोरा रिपोर्ट' तैयार की और प्रवासी भारतीयों के साथ प्रवासी साहित्य एवं संस्कृति के प्रति नई चेतना का उदय हुआ। इंग्लैंड, सूरीनाम और न्यू यॉर्क में विश्व हिंदी सम्मेलन हुए तथा यह मेरा सौभाग्य था कि इन विश्व सम्मेलनों में मुझे भाग लेने एवं इनके प्रारूप को बनाने में भी थोड़ा सा योगदान देने का सुअवसर मिला। सूरीनाम के विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए मैंने 'विश्व हिंदी रचना' के नाम से एक ग्रंथ का संपादन किया जिसमें पहली बार हिंदी के प्रवासी साहित्य की एक झलक देने की कोशिश की गई। न्यू यॉर्क के सम्मेलन में प्रवासी साहित्य के प्रतिनिधि रूप का परिचय देने के लिए 'साक्षात्कार' पत्रिका का संपादन किया जिसका वहाँ लोकार्पण हुआ। इसके उपरांत 'शब्द योग', 'राजभाषा मंजूषा', 'बुमंद प्रथा' आदि पत्रिकाओं के प्रवासी साहित्य अंकों का संपादन किया और इधर मॉरीशस के प्रसिद्ध हिंदी लेखक अभिमन्यु अनत पर लगभग दस पत्रिकाओं के विशेषांक निकलवाकर हिंदी के प्रवासी साहित्य के प्रति देश में रुचि उत्पन्न करने के लिए कार्य किए। इन कार्यों का मूल उद्देश्य यही है कि भारतेतर देशों में प्रवासी एवं भारतवंशी हिंदी लेखकों ने अपने हिंदी भाषा एवं साहित्य प्रेम से हिंदी सर्जनात्मक साहित्य का जो छोटा सा किंतु विश्व में चारों ओर फैला हुआ आकाश निर्मित किया है, उसे विश्व के हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाए और हिंदी संसार को बताया जाए कि तूफ़ानों, आँधियों तथा भयंकर बाधाओं-प्रतिकूलताओं के बावजूद हमने भी हिंदी की एक छोटी सी दुनिया बनाई है। यह दुनिया प्रत्येक देश की अपनी है, स्थानीयता पर उस पर गहरा प्रभाव है परंतु उसकी आत्मा हिंदी की, स्वदेश की और भारतीयता की है।

''वह अनजान आप्रवासी / देश के अँधे इतिहास में न उसे देखा था / न तो गूँगे इतिहास ने / कभी सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें / न ही बहरे इतिहास ने सुना था उसके चीत्कारों को / जिसकी इस माटी पर बही थी पहली बूँद पसीने की / जिसने चट्टानों के बीच हरियाली उगाई थी / नंगी पीठों पर सहकर बाँसों की बौछार / बहा-बहाकर लाल पसीना / वह पहला गिरमिटिया इस माटी का बेटा/ जो मेरा भी अपना था, तेरा भी अपना।''

हिंदी में प्रवासी साहित्य की दो प्रमुख धाराएँ हैं—एक मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गयाना, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिदाद आदि देशों में गए भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की संतानों के द्वारा रचा हिंदी साहित्य तथा दूसरी धारा है अमेरिका, इंग्लैंड एवं यूरोप तथा मध्य एशिया में स्वेच्छा से गए हिंदी लेखकों का साहित्य। इन दो प्रकार के प्रवासी हिंदी लेखकों के इतिहास, परिवेश, शिक्षा, भाषा, संघर्ष,

आधुनिकता आदि सभी में बड़ा भारी अंतर है। मॉरीशस आदि देशों में अधिकांशतः पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार के अशिक्षित देहाती थे जो ज़मीन से सोना मिलने के प्रलोभन में, छल-कपट से शर्तबंदी मज़दूरों के रूप में हज़ारों मील दूर जहाज़ में भेड़-बकरियों की तरह भरकर भेजे गए। ये एक प्रकार से गोरे मालिकों के गुलाम थे। मॉरीशस के विद्वान डॉ. उदयनारायण गंगू ने लिखा है कि इन प्रवासी भारतीयों के साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया गया, छोटी-सी भूल पर कोड़े, बाँसों की मार पड़ती, फूस की झोपड़ी में रहते, रस्सी की एक खाट और भोजन पकाने को एक हांडी मिलती। कोठरी में कई लोग रहते और वह रोग का घर बन जाती लेकिन ये लोग अपने साथ 'रामचरितमानस', 'हनुमान चालीसा', 'आल्हा', 'सत्यनारायण की कथा', 'महाभारत', 'सुखसागर' आदि ग्रंथ ले गए तथा इन्होंने विपत्ति, शोषण और अमानवीयता की व्यथा को सहने तथा अपनी भाषा एवं संस्कृति की रक्षा का संकल्प किया। भोजपुरी इनकी बोलचाल की भाषा थी और बैठका में सत्संग, संगठन के साथ धर्म, भाषा-संस्कृति आदि को बनाए रखने की चेतना का विकास हुआ। इसी समय सन् 1935-1938 के वर्षों में मॉरीशस में 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका सामने आई जिसने 'हिंदू, हिंदी, हिंदुस्तानी' की चेतना को देश में फैलाने का प्रयत्न किया। मॉरीशस में अब तक भारत का अनेक धर्माचार्य, समाज-सुधारक तथा हिंदी-प्रेमी पहुँच रहा था और राजनीतिक आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ रहा था। मॉरीशस के अखबार 'हिंदुस्तानी' के 2 मार्च, 1913 में जो पहली कविता छपी वह 'होली' थी और जो पहला लेख छपा, वह था 'सत्य होली'। मॉरीशस के आरंभिक हिंदी काव्य के दो संकलन निकले हैं, 'मॉरीशस का आदि काव्य-कानन' जिसमें 1913 से 1930 तक की 110 कविताएँ हैं; दूसरा संकलन है 'मॉरीशस का मध्यकालीन काव्य-कानन' जिसमें 1935 से 1968 के बीच की 172 कविताएँ हैं जिनका संपादन वहीं के श्री प्रह्लाद रामशरण ने किये हैं। इन काव्य-संकलनों में मॉरीशस के हिंदू समाज का जीवन, जागरण, एकता, संगठन और भाषा-संस्कृति के प्रति अटूट प्रेम के दर्शन होते हैं। इस काल-खंड में ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', मुनीश्वरलाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी आदि अनेक कवियों का आविर्भाव होता है और ये कवि प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा के साथ स्वतंत्रता की नई चेतना को उत्पन्न करते हैं।

मॉरीशस के हिंदी प्रवासी साहित्य के इतिहास में 12 मार्च, 1968 का दिन महत्वपूर्ण है, जब मॉरीशस एक स्वतंत्र देश बना। हिंदी भाषा एवं साहित्य के विकास के लिए एक नई ऊर्जा मिली, नए-नए लेखक सामने आए, पुराने कवियों के निजी काव्य-संग्रह तथा सामूहिक काव्य-संकलन प्रकाशित हुए, कुछ नई हिंदी पत्रिकाओं का जन्म हुआ और अभिमन्यु अनत जैसे एक सशक्त हिंदी प्रवासी लेखक का आविर्भाव हुआ। अनत से पूर्व हरिनारायण सीता, कालीचरण, इंद्रदेव भोला, हेमराज सुंदर, पूजानंद नेमा, ठाकुरदत्त पांडेय आदि कई कवियों के काव्य-संग्रह छप चुके थे। अभिमन्यु अनत का पहला काव्य-संग्रह 'नागफ़नी में उलझी साँसें' सन् 1977 में प्रकाशित हुआ और उनके अब तक सात काव्य-संग्रह छप चुके हैं। अनत मॉरीशस के पहले कवि हैं जिनकी काव्यात्मकता में अतीत का खून और पसीना, शोषण और दमन तथा मौन किंतु चीखता इतिहास हाहाकार करता है तथा वर्तमान समाज, स्वतंत्र होने पर भी राजनीति एवं पश्चिमी सभ्यता से घायल हो चुका है, परंतु अनत का विश्वास है कि भारतीय प्रवासी मज़दूर अपने साथ 'गंगा की निर्मलता और हिमालय की महानता' लेकर आए थे, अन्यथा गोरे मालिकों के अत्याचार और पश्चिमी आँधी में खो गए होते। यहाँ मैं अनत की एक कविता उद्धृत करता हूँ जो प्रवासी गिरमिटिया मज़दूरों की त्रासदी का एक चित्र उपस्थित करती है:—

''वह अनजान आप्रवासी / देश के अँधे इतिहास में न उसे देखा था / न तो गूँगे इतिहास ने / कभी सुनाई उसकी पूरी कहानी हमें / न ही बहरे इतिहास ने सुना था उसके चीत्कारों को / जिसकी इस माटी पर बही थी पहली बूँद पसीने की / जिसने चट्टानों के बीच हरियाली उगाई थी / नंगी पीठों पर सहकर बाँसों की बौछार / बहा-बहाकर लाल पसीना / वह पहला गिरमिटिया इस माटी का बेटा/ जो मेरा भी अपना था, तेरा भी अपना।''

मॉरीशस के प्रवासी साहित्य के केंद्र में अभिमन्यु अनत ही हैं। वे मॉरीशस के प्रेमचंद हैं। उनका भी लक्ष्य है दासता एवं जड़ता से मुक्ति और मानवीय समाज की रचना। अनत ने 'वसंत' पत्रिका का 24 वर्षों तक संपादन किया, सृजनात्मक लेखन विभाग के अध्यक्ष रहे और उन्होंने लेखकों की एक पूरी पीढ़ी की रचना की और एक 'अभिमन्यु मंडल' को रूप दिया। अभिमन्यु अनत साहित्य का एक संपूर्ण युग हैं जैसे हमारे यहाँ भारतेंदु युग या

प्रेमचंद युग है। अनत की अब तक 70 से अधिक पुस्तकें छप चुकी हैं, 32 तो उपन्यास हैं, 8 कहानी-संग्रह, 5 नाटक, 7 कविता-संग्रह और शेष विधाओं की लगभग 30 पुस्तकें। अभिमन्यु अपनी अग्रज पीढ़ी के मधुकर, बखोरी, चिंतामणि, दीपचंद आदि के साथ चले और पूजानंद नेमा, मुकेश जीबोध, रामदेव धुरंधर, हेमराज सुंदर, जागासिंह, लोचन विदेशी, सुमति बुधन, साहेबा फ़र्ज़ली आदि की नई पीढ़ी को 'वसंत' पत्रिका में प्रकाशित करके तथा भारत में उनके प्रकाशित होने की सुविधाएँ उपलब्ध कराकर उन्हें प्रतिष्ठित एवं हिंदी-संसार का अंग बनने का अवसर प्रदान किया। अभिमन्यु अनत की कई ऐसी विशेषताएँ हैं जो हिंदी के प्रवासी संसार में कोई दूसरा हिंदी प्रवासी लेखक अर्जित नहीं कर सका। भारत में हिंदी के अधिकांश लेखकों से उनके निजी संबंध रहे, चाहे अमृतलाल नागर, दिनकर, धर्मवीर भारती हों या अज्ञेय, तथा उनके कई उपन्यास यहाँ की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए। उनके उपन्यास कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लगाए गए और सबसे बड़ी बात यह है कि अभिमन्यु लगभग विगत 55 वर्षों से हिंदी में रचना करते रहे हैं, मॉरीशस में हिंदी भाषा की लड़ाई लड़ते रहे हैं और मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम उनकी निर्भिकता के और अटल बिहारी वाजपेयी उनकी काव्य-चेतना के प्रशंसक रहे हैं। अभिमन्यु अनत के संबंध में यह कहना सर्वथा उचित है कि अपने पूर्वजों के गूंगे इतिहास और चीखती पीड़ा के गायक हैं और स्वतंत्र मॉरीशस की मानवीय पीड़ा के भी गायक हैं। वे अपने वर्तमान में अतीत और भविष्य को जीते हैं और वे लेखक के धर्म का पालन करते हैं। राष्ट्र के जागरण का, मानवीय चेतना के विकास का, स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र के सदुपयोग का, संस्कृति के मूल्यवान उपादनों की रक्षा तथा विधर्मी संस्कृति के निषेध का एवं आम आदमी के कल्याण का। वे एक चिंतित लेखक हैं, विद्रोही लेखक हैं और यह सब देश और जनता और पूरी मानवीयता के लिए है।

मॉरीशस एक छोटा द्वीप है, बारह-तेरह लाख जनसंख्या है, 200 के लगभग हिंदी लेखक हैं, यद्यपि हज़ारों छात्र हिंदी पढ़ते हैं और लगभग सात सौ हिंदी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, साहित्य में उपन्यास, कहानी तथा कविता अधिक लिखी गई हैं। किंतु नाटक, लघुकथा, यात्रा-वृतांत, जीवनी, पुस्तक-समीक्षा, आलोचना आदि अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। नाटक के क्षेत्र में मॉरीशस ने विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। अभिमन्यु अनत, आस्तानंद सदासिंह आदि ने कई नाटक लिखे तथा उनका मंचन कराया। वहाँ प्रत्येक वर्ष हिंदी नाटक प्रतियोगिता होती है और अनेक नाटक मंडलियाँ अपने नाटक प्रस्तुत करती हैं। मॉरीशस में महात्मा गांधी संस्थान , हिंदी स्पीकिंग यूनियन, हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस हिंदी अकादमी, विश्व हिंदी सचिवालय, आर्य समाज, रामायण सेंटर आदि कई संस्थाएँ हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए बराबर काम कर रही हैं लेकिन फ्रेंच, अंग्रेज़ी, क्रिओली आदि के परिचय के दबाव में हिंदी के वातावरण में कुछ कमी दिखाई देती हैं। मॉरीशस के बाद फीजी और सूरिनाम तथा त्रिनिडाड में भी हिंदी भाषा एवं साहित्य का अस्तित्व है और इन देशों का हिंदी साहित्य भी बराबर प्रकाशित होता रहा है। फीजी के कमलाप्रसाद मिश्र, डॉ. सुब्रमणी, विवेकानंद शर्मा आदि उल्लेखनीय हैं। फीजी के सर्जनात्मक साहित्य पर अभी विमलेश कांति वर्मा का संकलन आया है। सूरीनाम के प्रति भारतीयों का आकर्षण काफ़ी बाद में हुआ। बच्चूप्रसाद सिंह वहाँ राजदूत रहे और 1979 में पूर्व राज्यपाल एवं हिंदी विद्वान विष्णुकांत शास्त्री ने वहाँ की यात्रा की तो वहाँ के प्रवासी भारतीयों के जीवन, भाषा एवं संस्कृति के प्रति उत्सुकता पैदा हुई। सूरिनाम में 5-9 जून, 2003 को सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ तो मैं इसकी संचालन-समिति का सदस्य था और मैंने विश्व के प्रवासी एवं भारतवंशी हिंदी लेखकों का संकलन 'विश्व हिंदी रचना' का संपादन किया एवं सूरिनाम के राष्ट्रपति ने उसका लोकार्पण किया। इस अवसर पर डॉ. पुष्पिता जो वहाँ हिंदी की प्रोफ़ेसर थीं, ने 'कविता सूरिनाम' तथा 'कथा सूरिनाम' शीर्षक से दो ग्रंथ प्रकाशित किए। इधर पुष्पिता की एक और नई पुस्तक आई है 'सूरिनाम का सर्जनात्मक हिंदी साहित्य'। इन ग्रंथों से सूरिनाम के हिंदी साहित्य के संबंध में काफ़ी जानकारी मिलती है। त्रिनिदाद में हरिशंकर आदेश, सुरेश ऋतुपर्ण, प्रो. भूदेव शर्मा, प्रेम जनमेजय तथा प्रो. जगन्नाथ ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए जो कार्य किया है, वह महत्वपूर्ण है। हरिशंकर आदेश के लगभग 300 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, चार तो महाकाव्य ही हैं। प्रवासी भारतीयों में भारतीय संगीत, संस्कृति, भाषा और साहित्य के लिए आदेश का जो योगदान है, उसका दूसरा उदाहरण उपलब्ध नहीं है।

हिंदी के प्रवासी साहित्य के संबंध में मैं यहाँ अमेरिका और इंग्लैंड की स्थिति की भी चर्चा करूँगा। यह विषय बहुत ही व्यापक है और सभी देशों की चर्चा संभव नहीं है। पड़ोसी देशों में नेपाल में हिंदी के लेखक हैं, उनकी कृतियाँ भी छपी हैं, नार्वे में सुरेशचंद्र शुक्ल और असित जोशी हिंदी पत्रिकाएँ निकालते हैं तथा शुक्ल की तो कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जर्मनी में बहादुर सिंह तथा इंदु प्रकाश पांडेय हिंदी भाषा-साहित्य के लिए कई दशक दे चुके हैं। पांडेयजी की तो 12 पुस्तकें छप चुकी हैं। पुष्पिता अब नीदरलैंड में हैं और इधर उनकी दो पुस्तकें आई हैं। इटली में लक्ष्मीप्रसाद मिश्र, रूस में मदनलाल 'मधु', जापान में लक्ष्मीधर मालवीय, कृष्णदत्त पालीवाल, दक्षिण कोरिया में रमेश दिविक, आबूधावी में कृष्णबिहारी, ऑस्ट्रेलिया में रेखा राजवंशी आदि ने वहाँ रहते हुए हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए जो कार्य किया है, वह हिंदी के प्रवासी साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है।

हिंदी के प्रवासी साहित्य में मॉरीशस के बाद अमेरिका तथा इंग्लैंड का योगदान सबसे बड़ा है। अमेरिका में स्वामी विवेकानंद, हरदयाल आदि के कार्यों से हम परिचित हैं। हरदयाल ने 1913 में अमेरिका में 'गदर पार्टी' की स्थापना की जिसकी शताब्दी पर दिल्ली की एक संस्था समारोह कर रही है। इसके बाद वहाँ 'इंडिया लीग ऑफ़ अमेरिका' बनी और भारत के साथ संबंध आगे बढ़े। अमेरिका में अब लगभग 30 लाख भारतीय हैं और भारतीय विद्या भवन, चिंमय मिशन, अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी न्यास, विश्व हिंदी समिति आदि संस्थाएँ भारतीय संस्कृति, भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए कार्य कर रही हैं और 'विश्व-विवेक', 'सौरभ', 'विश्वा', 'हिंदी-जगत', 'विज्ञान प्रकाश' आदि हिंदी पत्रिकाएँ निकलती रही हैं। वहाँ प्रवासी हिंदी साहित्य के प्रकाशन और विकास में कुँवर चंद्रप्रकाश सिंह, डॉ. विजय मेहता, डॉ. भूदेव शर्मा, रामेश्वर अशांत, गुलाब खंडेलवाल, वेदप्रकाश 'बटुक', अंजना संधीर, सुधा ओम ढींगरा, रेणु गुप्ता 'राजवंशी', सुषम बेदी आदि ने निरंतर हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के लिए जो कार्य किए हैं, उनसे अमेरिका में हिंदी का वातावरण बना है तथा उनकी साहित्यिक रचनाओं ने अमेरिका के प्रवासी का एक विशिष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया है। वेदप्रकाश 'बटुक' के 21 कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अज्ञेय ने 'बटुक' के बारे में लिखा है कि उनमें दो जीवन-दृष्टियों और संस्कृतियों का तनाव है, स्वदेश का संवेदन है तथा अस्मिता की एक छटपटाहट भरी खोज है। उनकी आपातकाल पर दो काव्य-पुस्तकें छपी हैं 'कैदी भाई बंदी देश' तथा 'आपात-शतक'। गुलाब खंडेलवाल के 47 कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ. विजय मेहता के सात जिनमें 'सम्राट चंद्रगुप्त' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कवि का निष्कर्ष है कि चंद्रगुप्त ने एक राष्ट्र, एक नीति और एक ध्वज के अंतर्गत भारत को संगठित किया था। अंजना संधीर के आठ कविता-संग्रह हैं, उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'अमेरीका हड्डियों में जम जाता है'। अंजना ने 'प्रवासिनी के बोल' शीर्षक से एक पुस्तक संपादित की है जिसमें 81 प्रवासी महिलाओं की 324 कविताएँ हैं। सुधा ओम ढींगरा के छः कविता-संग्रह छपे हैं। एक कविता की पंक्तियाँ उद्धृत हैं जिसमें स्वदेश-परदेश दोनों विद्यमान हैं *'मैं रोई परदेश में / मेरे साथ रोई तंहाई / मेरा अकेलापन / मेरा एकांत / जो सिमट आया है / मेरे इर्द-गिर्द / न चाहते हुए भी।'*

अमेरिका में कविता एक प्रिय विधा है। अभी तक लगभग 50 कविता-संग्रह, व्यक्तिगत एवं सामूहिक, प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी और उपन्यास में प्रवासी भारतीय लेखिकाओं का योगदान अधिक है। सोमा वीरा, उषा प्रियवंदा, सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, रेणु गुप्ता 'राजवंशी', पुष्पा सक्सेना, इला प्रसाद, सुदर्शन प्रियदर्शनी आदि लेखिकाओं ने कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में लिखा है। सुषम बेदी के 2 कहानी-संग्रह तथा 6 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं और अपनी अमेरिकन कथावस्तु के कारण पाठकों ने उनकी सराहना की है। सुधा ओम ढींगरा के 2 कहानी-संग्रह और 2 उपन्यास छपे हैं तथा इनमें अमेरिका और भारत के जीवन का इंद्र है। रेणु गुप्ता 'राजवंशी' के 3 कहानी-संग्रह तथा 2 उपन्यास छपे हैं। रेणु ने लिखा है कि ''मेरा लेखन भारत-अमेरिका के परिवेश में पला-बढ़ा है। हमारे भारतीय अनुभव अमेरिकी अनुभवों से पोषित होकर नया रूप लेते हैं जो एक नवीन संस्कृति को जन्म देते हैं।'' सुदर्शन प्रियदर्शनी के 4 उपन्यास प्रकाशित हैं तथा उनकी कई कहानियाँ पत्रिकाओं में छपती रही हैं। अमेरिका के अन्य कथाकारों में अमरेंद्र कुमर, इला प्रसाद, रामेश्वर अशांत, पुष्पा सक्सेना आदि का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अमेरिका के हिंदी साहित्य में निबंध, आत्मकथा, संस्मरण आदि कुछ पुस्तकें मिलती हैं लेकिन कविता

और कथा ही वहाँ की लोकप्रिय विधाएँ हैं।

अमेरिका से जुड़े कनाडा में हिंदी भाषा और साहित्य की अपनी एक दुनिया बन चुकी है। वहाँ हिंदी तथा पंजाबी में अनेक प्रकार की गतिविधियाँ होती रहती हैं। कनाडा में कई हिंदी संस्थाएँ हैं 'हिंदी परिषद', 'हिंदी प्रचारिणी सभा', 'विश्व हिंदी परिषद', 'हिंदी साहित्य परिषद', 'नागरी प्रचारिणी सभा', 'सद्भावना हिंदी साहित्यिक संस्था' आदि संस्थाएँ हिंदी भाषा-साहित्य तथा हिंदू धर्म-संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए वर्षों से काम कर रही हैं। 'हिंदी प्रचारिणी सभा' कनाडा से 15 वर्षों से 'हिंदी चेतना का प्रकाशन कर रही है और इसका संपादन श्याम त्रिपाठी एवं सुधा ओम ढींगरा कर रहे हैं। मेरे विचार में प्रवासी हिंदी पत्रिकाओं में यह सर्वश्रेष्ठ है। इसके कई विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं और यह विश्व के अधिकांश देशों में जाती है। कनाडा से 'वसुधा' पत्रिका भी निकलती है जिसे स्नेह ठाकुर निकालती हैं। उनकी अब तक लगभग 17 पुस्तकें छप चुकी हैं। कनाडा में श्रीनाथ प्रसाद द्विवेदी ने भी हिंदी कविता के लिए काफ़ी काम किया है। इन सभी में 'हिंदी चेतना' त्रैमासिक पत्रिका ने कुछ ऐसे मानक स्थापित किए हैं जो दूसरी प्रवासी हिंदी पत्रिकाओं के लिए चुनौती बने हुए हैं। इसकी संपादिका सुधा ओम ढींगरा की सक्रियता, निष्ठा और हिंदी-प्रेम कई बार मुझे आश्चर्यचकित करता है।

यूरोपीय महाद्वीप में इंग्लैंड ही एकमात्र देश है जहाँ प्रवासी भारतीयों ने हिंदी भाषा, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं में उल्लेखनीय योगदान दिया है। ब्रिटिश दासता के समय अनेक भारतीयों ने इंग्लैंड की यात्राएँ कीं, शिक्षा, ट्रेनिंग और व्यापार के लिए तथा देश को स्वतंत्र करने के निमित्त गांधी और अन्य देशसेवकों को वहाँ जाने का अवसर मिला। अमेरिका की तुलना में इंग्लैंड निकट था और ब्रिटिश सत्ता के अधीन होने के कारण उससे संबंध के अवसर भी अधिक थे। बच्चन जब 1951 में अपने अध्ययन के लिए इंग्लैंड गए तो वहाँ 'हिंदी परिषद' की स्थापना हुई और प्रवासी भारतीयों के मन में अपने धर्म, संस्कृति, कला, भाषा, साहित्य आदि के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ। वहाँ 1962-63 में दो नाटक खेले गए और 'चेतक', 'प्रवासिनी' एवं 'अमरदीप' पत्रिकाएँ निकलीं। बच्चन जब इंग्लैंड से लौटे तो उन्होंने 'प्रवासी की डायरी' नाम पुस्तक में अपने प्रवास-काल के अनुभवों को शब्दबद्ध किया। इसके बाद कैंब्रिज एवं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों ने हिंदी शिक्षण आरंभ किया और बी.बी.सी की हिंदी सेवा शुरू हुई। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के उच्चायुक्त रूप में इंग्लैंड जाने पर हिंदी भाषा-साहित्य के उत्थान का नया युग आरंभ हुआ। डॉ. सिंघवी ने पदभार ग्रहण करने के बाद मुझे पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने दूतावास में हिंदी की दुर्दशा एवं हिंदी विरोधी वातावरण का उल्लेख किया था। डॉ. सिंघवी ने इस स्थिति को बदला और उनकी प्रेरणा से 'हिंदी समिति' यू.के. (1992), 'अहिंसम-भारतीय मैनचेस्टर संस्था' (1993), 'गीतांजलि' बहुभाषीय समुदाय, बर्मिंघम, 'कला-ज्योति', नॉर्थ लंदन (1995), 'भारतीय भाषा संगठन', न्यू यॉर्क (1999), 'हिंदी भाषा समिति, मैनचेस्टर (2000), 'कथा-यू.के.' (2000) आदि संस्थाओं की स्थापना हुई। लंदन में हुए छठे विश्व हिंदी सम्मेलन से हिंदी भाषा-साहित्य के प्रति भारतीयों का और भी आकर्षण बढ़ा। अब वहाँ से 'पूरवाई', 'प्रवासी : टुडे', 'लंदन टाइम्स' आदि प्रकाशित होते हैं। ये प्रवासी भारतीय वे हैं, जो स्वेच्छा से ब्रिटेन गए, उच्च शिक्षा प्राप्त थे, उच्च पदों पर रहे और उनके मन में हिंदी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं से प्रेम रहा। दो भिन्न संस्कृतियों के द्वंद्व तथा गोरों के सम्मुख हीनता-बोध के बावजूद अपने भारतीय-मन को सुरक्षित रखा और अपने अनुभवों एवं संवेदनाओं को अपनी भाषा में व्यक्त करते रहे। इंग्लैंड में अब हिंदी कवि-सम्मेलनों का आयोजन होता है, नेहरू सेंटर में गोष्ठियाँ और लोकार्पण होते हैं तथा वहाँ के हिंदी लेखक भारत आते हैं एवं भारत के वहाँ जाते हैं तथा उनकी पुस्तकें भारत में प्रकाशित होती हैं। दोनों देशों में हिंदी लेखकों के आने-जाने से प्रवासी हिंदी साहित्य के विकास में बड़ी मदद मिली है।

इंग्लैंड में प्रमुखत: हिंदी कविता और कहानी का सर्वाधिक विकास हुआ है। वहाँ के लगभग 20 ऐसे प्रवासी कवि हैं जिनकी काव्य-कृतियाँ प्रकाश में आई हैं और उन्होंने अपनी पहचान बनाई है। इनमें सत्येंद्र श्रीवास्तव एवं कीर्ति चौधरी तो लगभग चार दशकों से कविताएँ लिख रहे हैं। सत्येंद्र श्रीवास्तव वहाँ के सबसे अधिक विख्यात कवि हैं जिनके 5 हिंदी कविता-संग्रह तथा 4 अंग्रेज़ी कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीवास्तव लगभग आधी शताब्दी से इंग्लैंड में हैं तथा उनके पास अनुभूतियों का बड़ा व्यापक एवं धनीभूत संसार है। उन्होंने चर्चिल को चुनौती देते हुए एक कविता

लिखी है 'सर विंस्टन चर्चिल मेरी माँ को जानते थे' जो बहुत प्रसिद्ध हुई। इंग्लैंड में दिव्या माथुर, मोहन राणा, गौतम सचदेव, कृष्ण कुमार, उषाराजे सक्सेना, पद्‌मेश गुप्त, निखिल कौशिक, स्वर्ण तलवाड, शैल अग्रवाल, ओंकारनाथ श्रीवास्तव आदि के कई-कई काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन कवियों में निजी आत्मानुभूतियाँ हैं और प्रवास का कोई प्रभाव नहीं है किंतु अधिकांश में प्रवासी जीवन की संवेदनाएँ हैं, स्वदेश की स्मृति और परदेशी जीवन के रंग हैं। कहानी के क्षेत्र में यहाँ प्रवासी हिंदी लेखकों में व्यापकता है और संवेदनाओं का विस्तार है। इन कहानीकारों में कीर्ति चौधरी, उषाराजे सक्सेना, दिव्या माथुर, गौतम सचदेव, उषा वर्मा, तेजेंद्र शर्मा, शैल अग्रवाल, कादंबरी मेहरा, महेंद्र दवेसर आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। ये कहानियाँ इंग्लैंड के प्रवासी जीवन के साथ वहाँ के परंपरागत जीवन से भी हमारा साक्षात्कार कराती हैं और दो भिन्न संस्कृतियों के बीच पनपने वाले नए जीवन के यथार्थ पहलुओं के परिदृश्य को खोलती हैं। प्रवासी जीवन की वास्तविकता को जानने के लिए ये कहानियाँ ही सबसे अधिक प्रमाणिक सिद्ध होती हैं। उपन्यास की दृष्टि से नरेश भारतीय, भारतेंदु विमल, नीला पॉल आदि का उल्लेख किया जा सकता है। नाटक में अचला शर्मा के नाटक 'जड़ें', और 'पासपोर्ट' तथा सत्येंद्र श्रीवास्तव का 'शहीद ऊधमसिंह : उनका समय, उनकी क्रांति', 'बेगम समरू' तथा तेजेंद्र शर्मा का 'हनीमून' को विशेष ख्याति मिली। निबंध, आलोचना, संस्मरण में भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वेद मोहला ने अंग्रेज़ी माध्यम से हिंदी शिक्षण पर कई पुस्तकें प्रकाशित कराईं जो आज भी वहाँ लोकप्रिय हैं।

इस प्रकार ब्रिटेन में प्रवासी हिंदी साहित्य का एक मज़बूत आधार बन गया है। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने जो ज्योति जलाई थी, वह कई दिशाओं में फैल गई है और यूरोप के अन्य देशों में रहनेवाले प्रवासी भारतीयों को भी प्रभावित कर रही है। हिंदी भाषा और साहित्य अब एक वैश्विक रूप ले चुका है तथा अब हिंदी का सूर्यास्त नहीं होगा। हिंदी का प्रवासी साहित्य भारतेत्तर देशों को भारत से जोड़ने का एक सेतु बनता है, जिसके मूल में भारतवंशियों का स्वदेश-प्रेम, भाषा-प्रेम, संस्कृति-प्रेम के साथ उनकी आत्मीय संलग्नता, सहभागिता एवं सहयोग अटूट रूप में संबद्ध रहता है। यह सेतु विश्वव्यापी हिंदी साहित्यिक समाज की रचना करता है, भारतेत्तर देशों के हिंदी लेखक एवं हिंदी समाज भारत के हिंदी समाज से जुड़ते हैं, परस्पर निकट आते हैं और हिंदी विश्व को सबल एवं स्थायी बनाते हैं। हिंदी विश्व की यह एकात्मकता भारतीयता के रूप में हमारी पहचान का आधार बनती है और प्रवासी लेखकों द्वारा रचा हिंदी साहित्य विदेशों में भारतीयता एवं भारतीय सांस्कृतिक चेतना का संवाहक बनता है। प्रवासी भारतीय एवं भारतवंशी लेखकों ने हिंदी में अपना एक भरा-पूरा संसार बनाया है और उस संवेदनात्मक संसार, उसके आकार, मात्रा एवं स्तर में निरंतर वृद्धि हो रही है। यह प्रवासी साहित्य न तो हाशिए का साहित्य है, न आरक्षण का, न किसी खेमे बाज़ी का और न स्तरहीन रचनाओं का, यह एक नए संवेदन, एक नए सांस्कृतिक द्वंद्व, एक नए परिवेश और एक नए दृष्टिकोण का साहित्य है। इस प्रवासी हिंदी साहित्य ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है और यह 'प्रवासी हिंदी साहित्य' के वाक्यांश से एकदम स्पष्ट होती है। इसकी अलग पहचान इसकी विशिष्टता में है, जो इसकी संवेदना, भाव-भूमि, सरोकार, जीवन-मूल्यों, दृष्टिकोण तथा रूप-रचना में है। परदेश में रहना और परदेश में रहकर स्वदेश को देखने में दृष्टिकोण बदलता है, जीवनानुभव बदलते हैं, जीवन-संघर्ष बदलता है और जीवन जीने का तरीका बदलता है। व्यक्ति का शरीर परदेश में रहता है और आत्मा स्वदेश में, परंतु इससे जीवन में आमूलचूड़ परिवर्तन आता है। प्रवासी लेखक अनेक बार स्वदेश-परदेश के द्वंद्व में जीता है और नई-नई अनुभूतियों, तनावों और विसंगतियों से गुज़रता है तथा वह जब रचना करने बैठता है तो इन नए जीवन का भाव-बोध, नया दृष्टिकोण तथा नए जीवन-मूल्यों की रचना होती है। इस प्रकार हिंदी को एक नए प्रकार का साहित्य मिलता है, जो भारत में रहते हुए रचा नहीं जा सकता था। यह ठीक है कि प्रवासी लेखक में अपनी मातृभूमि और अपने देश का मनोभाव होता है परंतु विदेशी भूमि और वहाँ के जीवन के संस्पर्श से ही उसमें एक मौलिकता एवं विशिष्टता की चमक उत्पन्न होती है तथा एक नए जीवन का स्वप्न होता है। हिंदी का प्रवासी साहित्य इसी नए जीवन-स्वप्न, नए जीवन-संघर्ष और नए सरोकारों का साहित्य कहा जा सकता है।

वास्तव में, इसी रूप में, अपने प्रवासी साहित्य के रूप में ही उसकी अलग पहचान बनती है और इसी रूप में वह हिंदी की

मुख्य–धारा का अंग बन सकता है। अमेरिका के वेदप्रकाश ‘वटुक’, इंग्लैंड के सत्येंद्र श्रीवास्तव आदि लेखक इसे ‘प्रवासी साहित्य’ तथा ‘डायस्पोरा साहित्य’ कहने के पक्ष में नहीं हैं। उनका मत है, यह हिंदी साहित्य का ही विस्तार है और दोनों में कोई अंतर नहीं है, किंतु इससे सहमत होना संभव नहीं है। मॉरीशस–फीजी हो या अमेरिका–इंग्लैंड, सभी का इतिहास, परिवेश, प्रकृति, समाज, संस्कृति, धर्म, जीवन–मूल्य, परंपरा आदि सब भारत से भिन्न हैं अत: भारत एवं भारतेत्तर देशों के साहित्य में एकरूपता नहीं हो सकती। यहाँ तक कि मॉरीशस और अमेरिका का हिंदी साहित्य भी एक जैसा नहीं है। अभिमन्यु अनत ने लिखा है कि वहाँ के साहित्य में एक मॉरीशसीय अस्मिता है, और अमेरिका, इंग्लैंड, आबू धाबी के साहित्य में भी अपनी–अपनी विशिष्टता है। अत: इन विविध रूपों के बावजूद हिंदी के प्रवासी साहित्य ने हिंदी साहित्य में एक नई दिशा खोली है, एक नया साहित्यिक संसार दिया है और हिंदी पाठक एवं हिंदी विश्व को समृद्ध किया है। अभी इसे लंबी यात्रा तय करनी है, अत: प्रवासी लेखकों को आत्म–प्रशंसा से बचना चाहिए कि वे श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर रहे हैं। हिंदी संसार जिनमें प्रेमचंद, जैनेंद्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि देखना चाहता है और आशा करता है कि यदि यह यात्रा चलती रही तो हम निश्चय ही भविष्य में इसी कोटि के हिंदी लेखकों को पाकर गर्व का अनुभव करेंगे।

साभार : आधुनिक साहित्य – जुलाई–सितंबर, 2014

16 हिंद से बाहर हिंदी

● *श्री राकेश पांडेय*

हिंदी आज विश्व में अपने महत्व को रेखांकित कर रही है। हिंदी को समृद्ध करने में देश के विद्वानों के साथ-साथ अनेक विदेशी और प्रवासी भारतीयों की अहम भूमिका रही है। विदेशी विद्वानों का हिंदी के प्रति प्रेम का दीर्घ इतिहास रहा है। हिंदी को समृद्ध करने में ब्रिटेन के जॉन गिलक्रिस्ट, थॉमस डूएर ब्रूटेन, फ्रेडरिक पिंकाट, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, जॉन फ़र्गुसन, डॉ. मैकग्रैगर, फ्रांस के गार्सा द तासी, अमेरिका के सैमुएल हेनरी केलाग, प्रो. एंस्ट वेंडर, सारा कोहिम, इटली के एल.पी. तेस्सीतॉरी, जर्मनी के डॉ. ईनेस फोर्नेल, पोलैंड के प्रो. रिब्रस्तोफ़ ब्रिस्की, रूस से प्रो. चेलीशेव और वारान्निकोव, जापान के डॉ. तोमियो मिज़ोकामी और बेल्जियम के विद्वान फ़ादर कामिल बुल्के (जो स्वयं को विदेशी नहीं मानते थे) का योगदान महत्वपूर्ण है। इस प्रकार दूसरी ओर वे भारतवंशी हैं जो गिरमिटिया के रूप में लगभग 175 वर्ष पूर्व मॉरीशस, फीजी, त्रिनिदाद, गयाना और सूरीनाम पहुँचे थे। ये लोग विद्वान तो नहीं थे लेकिन अपने साथ रामायण, हनुमान चालीसा, आल्हा आदि ले गए थे। ये अपनी भावी पीढ़ियों के लिए विरासत के रूप में उन्हें संरक्षित भी करते रहे जिसके परिणामस्वरूप आज इन देशों में हिंदी और भारतीय लोक भाषाएँ लोकप्रिय और सुरक्षित हैं। इन देशों में हिंदी के भारतवंशी विद्वानों का आज उल्लेखनीय स्थान है जिसमें फीजी के पं. तोताराम सनाढ्य, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, मॉरीशस के राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', सोमदत्त बखोरी, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, अभिमन्यु अनत, अजामिल माताबदल, रामदेव धुरंधर, धनराज शंभु आदि प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

हिंदी को वर्तमान स्थिति में पहुँचाने के लिए इस ऐतिहासिक तथ्य को रेखांकित करना उचित रहेगा कि भारत में औपनिवेशिक काल के दौरान विदेशी विद्वानों ने भी अपना योगदान दिया था। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी को अपना तंत्र चलाने में भाषा को लेकर अनेक समस्याएँ होने लगी थीं क्योंकि भारत में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित थीं। उस समय मुगल शासन होने के कारण फ़ारसी ही राजकाज की भाषा थी जिसे न तो कंपनी के अधिकारी समझते थे और न ही आम जनता। ऐसी स्थिति में जॉन गिलक्रिस्ट ने देसी भाषाओं का समन्वय कर एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जिसे हिंदुस्तानी भाषा का नाम दिया गया। जॉन गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गाज़ीपुर में अफ़ीम की खेती से जुड़े कर्मचारियों के बीच में रहकर यह ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने 'डिक्शनरी ऑफ़ इंग्लिश एंड हिंदुस्तानी' की रचना की। इस कोश में तत्कालीन प्रचलित अरबी और फ़ारसी के अनेक शब्दों को स्थान दिया गया। इसके साथ ही उन्होंने 1796 में हिंदुस्तानी भाषा के व्याकरण पर भी एक पुस्तक प्रकाशित की। गिलक्रिस्ट का यह ग्रंथ तत्कालीन अंग्रेज़ों को हिंदी सिखाने के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। उनकी पहल पर भारतीय साहित्य के अनुवाद कार्य भी हुए। जॉन गिलक्रिस्ट की भाँति ही 'गार्सा द तासी' की विश्व में हिंदी के महत्व को रेखांकित करने में अहम भूमिका रही है। उनके द्वारा हिंदी साहित्य की रूपरेखा का निर्माण सदैव किया जाता है। फ्रांसीसी में लिखी गई उनकी पुस्तक 'हिंदुई और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य की प्रथम कड़ी मानी जाती रही जिसमें कि उन्होंने तुलसी, कबीर, जायसी, सूरदास सहित हिंदी और उर्दू के लगभग सात सौ से अधिक रचनाकारों का उल्लेख किया है।

बेल्जियम के विद्वान फ़ादर कामिल बुल्के के हिंदी प्रेम से सारा हिंदी-जगत परिचित है। वे 1935 में एक अध्यापक के रूप में भारत आए थे और यहीं रम गए। रामचरितमानस से इस कदर प्रभावित हुए कि उन्होंने 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' नामक शोध-प्रबंध लिखकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि ग्रहण की। उन्होंने 'अंग्रेज़ी-हिंदी कोश' बनाया, बाइबल का अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त 'टेक्निकल इंग्लिश हिंदी ग्लोसरी', 'नीलपंछी', 'रामकथा और तुलसीदास', 'मानस कौमुदी' और 'मुक्तिदाता' जैसी कृतियों की रचना कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। साथ ही वे हिंदी जगत के लिए प्रेरक भी बने।

भारत के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार जॉन ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' की रचना के समय गार्सा द तासी द्वारा लिखित विवरणों का भी उपयोग किया था। इसी प्रकार फ्रेडरिक पिंकाट का हिंदी कविता से लगाव था। वे ब्रज भाषा में भी लिखते थे। उन्होंने अपने समय के महत्वपूर्ण साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्रीधर पाठक आदि के साथ भी अपने

संबंध स्थापित किए। हिंदी के लिए वे औरों से विवाद भी ठान लेते थे। उन्होंने हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं का भी अध्ययन किया था। अनेक ग्रंथों के लेखन के साथ उनके 'हिंदी मैन्युअल' का उल्लेख करना भी आवश्यक है। इसी कड़ी में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन एक चर्चित नाम है। वे भारत में एक अंग्रेज़ अधिकारी के रूप में आए और हिंदी साहित्य से संबद्ध अनेक शोध-कार्य किए जिसके लिए तत्कालीन अंग्रेज़ी हुकूमत ने उन्हें 'फ़ादर ऑफ़ लैंग्वेजज़ ऑफ़ ओवर टाइम' की उपाधि से भी सम्मानित किया। अपने प्रशासनिक दायित्वों के साथ-साथ उन्होंने भारत की विभिन्न बोलियों पर भी कार्य किया है। इसी प्रकार विदेशी विद्वानों की एक लंबी शृंखला है। इन सभी की हिंदी को विश्व में स्थापित करने में एक अहम भूमिका रही है। यह परंपरा जापान के प्रो. के. दोई, प्रो. तोशियो तनाका, तोमियो मिज़ोकामी और रूस के वारान्निकोव, डॉ. ल्युदमीला ख़ख़लोवा और पोलैंड के प्रो. रिब्रस्ताफ़ ब्रिस्की द्वारा आज भी जारी है जिनके शोध कार्यों के आधार पर हिंदी में नित नए आयाम जुड़ रहे हैं। उल्लेखनीय है कि 2008 में जापान की टोक्यो युनिवर्सिटी में हिंदुस्तानी भाषा के शिक्षण के सौ वर्ष पूरे होने पर दो दिवसीय भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया था जिसमें पाकिस्तानी विद्वानों ने भी अपनी सहभागिता दी थी।

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी को अपना तंत्र चलाने में भाषा को लेकर अनेक समस्याएँ आने लगी थीं क्योंकि भारत में अनेक भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित थीं। उस समय मुगल शासन होने के कारण फ़ारसी ही राजकाज की भाषा थी जिसे न तो कंपनी के अधिकारी समझते थे और न ही आम जनता। ऐसी स्थिति में जॉन गिलक्रिस्ट ने देसी भाषाओं का समन्वय कर एक भाषा का निर्माण किया, जिसे हिंदुस्तानी भाषा का नाम दिया गया। जॉन गिलक्रिस्ट ने हिंदुस्तानी शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गाज़ीपुर में अफ़ीम की खेती से जुड़े कर्मचारियों के बीच में रहकर यह ज्ञान प्राप्त किया।

हिंदी के संदर्भ में यह निर्विवाद है कि विश्व में हिंदी को स्थापित करने में भारतवंशियों की भी अहम भूमिका रही है। भारतीय गिरमिटिया जिन-जिन देशों में ले जाए गए वहाँ पर भी भाषाई संकट था। ये लोग अधिसंख्य रूप में भोजपुरी और अवधी-भाषी थे। प्रवासित देशों में इन्हें सामाजिक समस्याएँ, सांस्कृतिक संकट और खेतों के मालिकों से संवेदनहीनता आदि से जूझना पड़ रहा था। ऐसे में, वहाँ पर भारत के विभिन्न भागों से लाए गए श्रमिकों की संपर्क भाषा अवधी और भोजपुरी स्थापित हुई जिसके कारण वहाँ अन्य भाषाएँ भी भोजपुरी और अवधी शैली में मिश्रित होने लगीं। इससे एक नई भाषा और हिंदी का निर्माण हुआ जो कि भारत की हिंदी से भिन्न थी। इस नई हिंदी को सूरीनाम के लोग 'सरनामी हिंदी' कहते हैं, फीजी के लोग 'फीजीबात' कहते हैं और दक्षिण अफ्रीकी हिंदी को 'नैताली' कहते हैं। मॉरीशस भारत के निकट था इसलिए वहाँ भोजपुरी और खड़ी बोली का अंतर आज तक विद्यमान है। इन भारतवंशी बाहुल्य देशों के कारण हिंदी का विश्व में गुणात्मक रूप से विस्तार हुआ। इस संदर्भ में, इन देशों के कुछ विद्वानों का ज़िक्र यहाँ आवश्यक है, जैसे कि सूरीनाम के मुंशी रहमान ख़ान मुस्लिम होते हुए भी सूरीनाम में रामायण पढ़ाया करते थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। प्राप्त जानकारी के अनुसार, वे रामलीला के इतने शौकीन थे कि कानपुर में रामलीला देखकर लौट रहे थे तो कुछ अरकटिया (गिरमिटिया मज़दूरों के दलाल) उन्हें फुसलाकर कलकत्ता ले गए और वहाँ से सूरीनाम पहुँचा दिया। उन्होंने अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर अनेक दोहों, चौपाइयों को लिपिबद्ध किया और सूरीनाम में रह रहे हिंदुओं को सुनाया और सिखाया; साथ ही मुसलमान भाइयों के लिए इसलामी कुंडलियों की रचना भी की। सूरीनाम में हिंदी-सेवा के लिए बाबू महातम सिंह का अतुलनीय योगदान है। उन्होंने समूचा जीवन हिंदी-सेवा को समर्पित कर दिया। इसी प्रकार पं. हरिदेव सहतू और डॉ. जीत नारायण जिनकी 'दाल भात चटनी' प्रसिद्ध पुस्तक है, भी उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त कवि सुरजन परोही, गीतकार-नाटककार अमर सिंह रमण, जन सुजन नारायण सिंह सुभाग, मार्तिन हरिदत्त लक्ष्मीन श्रीनिवासी सहित भारतवंशियों ने सूरीनाम में आज हिंदी को बचाए

रखा है। फीजी में पं. तोताराम सनाढ्य, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, कुँवर सिंह, जोगेंद्र सिंह कुँवर, पं. अमीचंद, डॉ. सुब्रमणी आदि उल्लेखनीय नाम हैं। डॉ. सुब्रमणी का 'डउका पुरान' इस बात का प्रमाण है कि वहाँ की हिंदी में किस प्रकार अवधी का प्रमुखता से प्रभाव है। इसी प्रकार मॉरीशस के ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर', सोमदत्त बखोरी, मुनीश्वरलाल चिंतामणि सहित अनेक साहित्यकारों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने हिंदी को एक अंतरराष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मॉरीशस के अभिमन्यु अनत इस बात के उदाहरण हैं कि उनके देश के लोग यह आरोप लगाते हैं कि वे मॉरीशस के लेखक न होकर, भारत के लेखक हैं। वे सदैव यही कहते हैं 'मैं हिंदी में लिखूँगा क्योंकि हिंदी मेरी धमनियों की भाषा है।' इसी प्रकार मॉरीशस से रामदेव धुरंधर, अजामिल माताबदल, बीरसेन जागासिंह, इंद्रदेव भोला, हेमराज सुंदर, राज हीरामन, सूरजप्रसाद मंगर, धनराज शंभु, धर्मवीर घूरा, राजेंद्र अरुण, राजरानी गोबीन, जयदत्त जीउत, खेर जगत सिंह, महेश रामजियावन, श्रीमती विनोदबाला अरुण, मोहनलाल मोहित, पूजानंद नेमा, चिंतामणि, प्रह्लाद रामशरण, सत्यदेव टेंगर, सुमति बुधन सहित अनेक नाम हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को मॉरीशस में निरंतर समृद्ध किया है।

भारतवंशियों के हिंदी प्रेम के विषय में एक बात उल्लेखनीय है कि ये लोग हिंदी को धर्म के साथ भी जोड़कर देखते हैं। भारतवंशियों की पीढ़ियाँ आज भी भारत के संदर्भ में उसी काल में जीती हैं जब उनके पूर्वज भारत से बंधक मज़दूरों के रूप में ले जाए गए थे। इसका स्पष्ट उदाहरण प्रवासी भारतीय दिवस के आयोजनों में दिखा। जब पत्रकारों ने कुछ आप्रवासी भारतीयों (एन.आर.आई.) के बच्चों से पूछा कि आप भारत में कहाँ घूमना पसंद करेंगे तो उन्होंने अपने परिचितों और रिश्तेदारों से डिस्कोटेक और पार्टियों में जाने की बात कही। ठीक इसके विपरीत, जब पत्रकारों ने भारतवंशी मूल के बच्चों से यही प्रश्न किया तो उन्होंने हरिद्वार, बनारस सहित अनेक धार्मिक स्थानों पर जाने की इच्छा प्रकट की। इस मानसिकता का प्रभाव भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य पर भी स्पष्ट झलकता है। जो कहानी मॉरीशस में रची जाती है, उसकी पृष्ठभूमि लंदन से बिल्कुल अलग होती है। ये सभी लोग हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। आप्रवासी भारतीयों का संदर्भ आने पर, हिंदी के उन साहित्यकारों का उल्लेख करना आवश्यक है जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद विदेशों (विशेष रूप से अमेरिका, कनाडा, यूरोप आदि) में जाकर बसे हैं। उन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ-साथ हिंदी में भी लिखने का प्रयास किया है। उनमें से कई लोग अच्छा लिख भी रहे हैं। तेजेंद्र शर्मा के अनुसार लंदन में 1990 से लेकर अब तक एक सौ से अधिक पुस्तकें हिंदी में छप चुकी हैं। अमेरिका में भी हिंदी लेखक सक्रिय हैं। ये लोग विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेखकीय योगदान के माध्यम से अमेरिका में हिंदी को लोकप्रिय बना रहे हैं। इटली, न्यू ज़ीलैंड, डेनमार्क, उज़्बेकिस्तान, दक्षिण अफ़्रीका जैसे देश में आप्रवासी भारतीय हिंदी लेखक हिंदी के प्रचार-प्रसार में निरंतर सक्रिय हैं।

हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित करने में हिंदी सिनेमा का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अनेक विद्वानों ने विदेशों में हिंदी-शिक्षण के लिए हिंदी फ़िल्मी गानों को माध्यम भी बनाया है जिसके लिए जापान के प्रो. तोमियो मिज़ोकामी का नाम सर्वविदित है। उन्होंने लगभग 300 फ़िल्मी गानों का हिंदी से जापानी में अनुवाद किया है। जब उन्होंने जापान में मुझे पुस्तक भेंट की तो मैं दंग रह गया। अमेरिका में डॉ. अंजना संधीर ने भी हिंदी-शिक्षण के लिए हिंदी फ़िल्मी गानों का उपयोग किया और फ़िल्मी गानों के आधार पर एक पुस्तक तैयार की। त्रिनिदाद के विषय में तो यह विख्यात है कि वहाँ पर 'सुहानी शाम ढल चुकी, तुम कब आओगे…' एक अघोषित राष्ट्रीय गान का स्थान ले चुका है। किसी भी सामूहिक आयोजन में इस गाने को अवश्य बजाया या गाया जाता है। इसी प्रकार फीजी में 'विलेज सिनेमाघर' में निरंतर भारतीय हिंदी फ़िल्मों को प्रदर्शित किया जाता रहता है। वहाँ पर एक बार स्थानीय कलाकारों ने 'अधूरा सपना' और 'घर परदेस' नाम से हिंदी फ़िल्म भी निर्मित की थी। चीन में भी हिंदी फ़िल्मों का स्पष्ट प्रभाव क्लब और रेस्तोराँ आदि में दिखाई दिया। हिंदी फ़िल्मी गानों की धुनों पर अतिथि नाचते हैं। चीन गुआंगझोऊ के बीजिंग लू बाज़ार में चीनी दुकानों पर खड़ी लड़कियाँ भारतीय ग्राहकों से हिंदी में बात करती और अपना सामान बेचती मिल जाएँगी। उन्होंने सुविधानुसार अपने नाम भी गीता, सीमा, सीता आदि रख लिए हैं।

भारतवंशी देशों में धार्मिक धारावाहिक सदा ही लोकप्रिय होते हैं और आजकल बहुत से समाचार चैनल सीधे प्रवासी भारतीयों के

घर तक पहुँचते हैं। अनेक देशों में हिंदी में समाचार-प्रसारण के अतिरिक्त स्थानीय रूप से निर्मित हिंदी धारावाहिकों का प्रसारण भी होने लगा है जिसमें मॉरीशस प्रमुख है। फीजी टीवी में 'झरोखा' और 'आईना' नाम से हिंदी कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। फीजी का एक अन्य चैनल एफ.बी.सी., टीवी 'वर्ल्ड ऑफ़ बॉलीवुड' शीर्षक से हिंदी गानों का प्रसारण करता है।

विदेशों में हिंदी प्रसार के क्षेत्र में रेडियो के योगदान को समुचित श्रेय कभी नहीं मिला है लेकिन सिनेमा के साथ-साथ हमें रेडियो को भी नज़र-अंदाज़ नहीं करना चाहिए। फीजी में हिंदी के 'सरगम', 'रेडियो नवतरंग', 'रेडियो बुला फीजी नमस्ते', 'रेडियो मिर्ची' और 'रेडियो फीजी' आदि हिंदी के प्रमुख रेडियो स्टेशन हैं जिन पर हिंदी के कार्यक्रम निरंतर प्रसारित होते रहते हैं। अमेरिका में डॉ. अंजना संधीर ने स्थानीय इंडियन रेडियो 'आर.बी.सी.' पर हिंदी गानों के माध्यम से 'आओ हिंदी सीखें' कार्यक्रम दो वर्ष तक प्रस्तुत किया। त्रिनिदाद में पाँच भारतीय रेडियो के प्रसारण की व्यवस्था की गई थी। त्रिनिदाद के विद्वान डॉ. कुमार महावीर के अनुसार, पाँच भारतीय रेडियो प्रसारण केंद्रों में '90.5 एफ.एम.' पर हिंदी भाषा के कार्यक्रम हैं। '91.1 एफ.एम.', '130 एफ.एम.' और '106 एफ.एम.' पर शिक्षा संबंधी कार्यक्रम प्रसारित होते थे जिनका प्रसारण दोबारा शुरू करने के विचार के बिना ही बंद कर दिया गया। 'स्वर मिलन 91.1' पर एक स्थानीय प्राथमिक/मौलिक विद्यालय के शिक्षक राजिन महाराज संयोजक और प्रसारणकर्ता थे। 1998 में हिंदी का कार्यक्रम 'संगीत 106' पर आठ महीनों तक प्रसारित किया गया और उसका संयोजन फैलिसिटी (प्राथमिक) हिंदू विद्यालय की अध्यापिका सखी शीसुरन ने किया। यह कार्यक्रम सोमवार से शुक्रवार एक बार 5.30 से 6.30 तक प्रसारित किया जाता था और इसका उद्‌देश्य रात के खाने के समय पूरे परिवार को एक साथ आकर्षित करना था। '103 एफ.एम.' पर हिंदी भाषा के कार्यक्रम को 'हिंदी सीखें' कहा जाता है। इसके निर्माता और प्रसारणकर्ता पंडित रंधीर महाराज थे। 1995 से कई सालों तक यह दिन में तीन बार 7:15 (सुबह), 10:15 (सुबह) और 4:30 (शाम) को पाँच मिनट के लिए प्रसारित किया जाता था। तत्पश्चात यह दिन में दो बार प्रसारित होने लगा और बाद में इसका प्रसारण बंद हो गया। रंधीर और राजिन दोनों ने प्रोफ़ेसर वी.आर. जगन्नाथन (जो कि यू.डब्ल्यू.आई. में हिंदी के व्याख्याता थे) के साथ मिलकर सेंट ऑगस्टाइन रेडियो 106 और 103 पर इस कार्यक्रम का प्रसारण किया था। हिंदी शिक्षा का कार्यक्रम हर रोज़ 90.5 पर तीन मिनट के लिए सुबह 9.30 और 10.30 बजे प्रसारित किया जाता है। इसी प्रकार बी.बी.सी. की हिंदी सेवा, अमेरिका से 'वॉयस ऑफ़ अमेरिका', डेनमार्क में 'सबरंग रेडियो' (जिसे श्री चाँद शुक्ला हरियाबादी चलाते हैं) प्रवासी भरतीयों में बहुत लोकप्रिय है। जर्मनी के 'रेडियो बर्लिन' की अंतरराष्ट्रीय सेवा में दो घंटे हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते रहे हैं। जापान, रूस, नेपाल, मॉरीशस, सूरीनाम, न्यूज़ीलैंड, ऑस्ट्रेलिया के सिडनी और मेल्बर्न आदि शहरों सहित अनेक देशों में रेडियो ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत से बाहर हिंदी की जड़ों को सुदृढ़ करने में समय-समय पर अनेक देशों के हिंदी प्रेमियों ने जो पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं उनका विश्व में हिंदी को पुष्पित और पल्लवित करने में एक महत्वपूर्ण योगदान है। इंग्लैंड में हिंदी पत्र 'हिंदोस्तान' को 1883 में कालाकाँकर नरेश ने अपनी शिक्षा के दौरान प्रकाशित किया था। इसे विदेश में प्रकाशित पहला हिंदी पत्र माना जाता है। साथ ही, गन्ने के खेतों में पनप रही हिंदी और लोकभाषाओं ने भारतवंशियों को इस कदर प्रेरित किया कि इन गिरमिटिया मज़दूरों ने साहित्यिक कृतियों और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ कर दिया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मॉरीशस में प्रकाशित हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' है और अन्य कई पत्र-पत्रिकाएँ जो समय-समय पर निकली और बंद हो गईं।'वसंत', 'आक्रोश', 'पंकज', 'रिमझिम', 'जनवाणी', 'इंद्रधनुष' आदि समकालीन पत्रिकाओं ने मॉरीशस में हिंदी की स्थिति को समृद्ध किया है। इसी प्रकार, सूरीनाम से 'सेतुबंध', 'शांतिदूत', 'जय फीजी' आदि उल्लेखनीय हैं। त्रिनिदाद से 'हिंदी निधि', 'ज्योति' आदि की हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रमुख भूमिका रही है। इसी प्रकार अमेरिका से 'अन्यथा', 'सौरभ', 'विश्व-विवेक', 'विश्व', 'हिंदी जगत', पत्रिकाओं के प्रमुख नाम हैं। ब्रिटेन में 'पुरवाई' पत्रिका ने हिंदी प्रचार में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। नॉर्वे से 'स्पाईल' (दर्पण) और 'शांतिदूत' नामक पत्रिकाएँ निकली हैं। बिखराव से पूर्व रूस की पत्रिकाएँ भारत में भी निरंतर पहुँचती थीं। इनमें प्रमुख थीं 'सोवियत भूमि', 'सोवियत दर्पण', और 'यूनोस्त

हिंदी'। जापान से 'ज्वालामुखी', बर्मा से 'प्राची कलश', 'नवजीवन', 'ब्रह्मभूमि', 'आर्य युवक', 'जागृति' मुख्य रूप से प्रकाशित हुई हैं। इसी प्रकार नेपाल से 'समाज', 'पंचायत', 'गोरखा पत्र', 'नव नेपाल', 'जनचेतना' और 'हिमालिनी' के योगदान ने हिंदी जगत को समृद्ध ही किया है। दक्षिण अफ्रीका से स्वयं गांधी जी चार भाषाओं (अंग्रेज़ी, तमिल, गुजराती और हिंदी) में 'इंडियन ओपीनियन' का प्रकाशन करते थे। कनाडा से 'भारती' और 'हिंदी चेतना' भी आप्रवासी भारतीयों में लोकप्रिय रही हैं। प्रवासी भारतीयों के लिए भारत से प्रकाशित होने वाली एकमात्र हिंदी पत्रिका 'प्रवासी संसार' है। इन पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त बहुत-सी पत्र-पत्रिकाएँ समय-समय पर निकलीं और बंद होती रही हैं लेकिन इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

हिंदी के संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि यह भारतीय राजनीति का अंग भी है। इसी कारण विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य विदेश मंत्रालय को दिया गया है। विदेश में हिंदी-शिक्षण के लिए विदेश मंत्रालय का अंग भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उपलब्ध तथ्यों के अनुसार कैंब्रिज में हिंदी 150 वर्षों से पढ़ाई जा रही है और पूर्वी यूरोप के कई देशों में लगभग 200 से अधिक वर्षों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन का कार्य हो रहा है। उदाहरणस्वरूप, हंगरी के एत्वोस लोरांद विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विभाग की स्थापना 1873 में हुई थी जहाँ लगभग पिछले 50 वर्षों में हिंदी पठन-पाठन का कार्य चल रहा है। आज विश्व के लगभग 600 से अधिक स्थानों पर हिंदी-शिक्षण का कार्य हो रहा है। श्रीलंका स्थित दूतावास के सहयोग से चलाई जा रही हिंदी की कक्षाओं में 250 से अधिक छात्र सदैव प्रवेश लेते हैं। भारत सरकार द्वारा आयोजित किए जाने वाले विश्व हिंदी सम्मलेन भी आज राजनीति का अंग बन चुके हैं।

विश्व के अनेक देशों में हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है। हिंदी को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए अलग-अलग देशों में वहाँ स्थानीय स्तर पर गठित भारतीय समुदाय के लोगों के समूह और बाद में उनके संस्थागत समूहों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मॉरीशस में यह कार्य गन्ने के खेतों से ही आरंभ हुआ। उत्तर प्रदेश और बिहार के गिरमिटिया श्रमिकों ने भारतीय गाँवों की भाँति बैठका लगाना शुरू किया और हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य आरंभ हुआ। बाद में अनेक हिंदी-सेवी संस्थाएँ प्रकाश में आईं जिनमें 'हिंदी प्रचारिणी सभा' और 'हिंदी स्पीकिंग यूनियन' अग्रणी हिंदी-सेवी संस्थाएँ हैं। इनके साथ ही 'सनातन धर्म सभा' और 'आर्य समाज' भी हिंदी के लिए अपने स्तर पर प्रयासरत हैं। वास्तव में, हिंदी भारतवंशियों के लिए उनके अस्तित्व का प्रतीक भी है। यहाँ सभी सरकारी कार्य फ्रेंच अथवा अंग्रेज़ी में ही होता है; बोलचाल में 'क्रियोल' का प्रयोग होता है। किंतु अब मॉरीशस की एयर होस्टेस से लेकर किसी कार्यालय या होटल के बैरे तक हिंदी में बोलते मिल जाएँगे। इसी प्रकार सूरीनाम में भी 'सूरीनाम हिंदी परिषद' हिंदी-प्रचार की प्रमुख संस्था है। उसके साथ ही वहाँ बाबू महातम सिंह का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपना सारा जीवन हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दिया। जितनी भी धार्मिक संस्थाएँ हैं (आर्य समाज, सनातन धर्म महासभा, सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था आदि) सभी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसे अनदेखा करना गलत होगा।

भारत से बाहर यदि कहीं सचमुच हिंदी की नींव मज़बूत है तो वह फीजी देश है जहाँ तीन घोषित राजभाषाओं में से एक हिंदी भी है। फीजी में 'हिंदी टीचर्स एसोसिएशन' और आर्य समाज मुख्य संस्थाएँ हैं जिनके माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया जाता है। इसी प्रकार त्रिनिदाद एवं टोबैगो में भी वहाँ की एक प्रमुख संस्था 'हिंदी निधि' है जो भारतीय दूतावास के साथ मिलकर पत्रिका भी निकालती है और हिंदी कार्यक्रम भी आयोजित करती है। इसके अतिरिक्त 'स्वाहा' संस्था और आर्य समाज भी कई स्थानों पर अपनी हिंदी-शिक्षण की गतिविधियाँ संचालित करते हैं। प्रो. हरिशंकर आदेश का नाम त्रिनिदाद में हिंदी-प्रचार के लिए लेना अनिवार्य है क्योंकि उन्होंने 1969 में 'भारतीय विद्या संस्थान' की स्थापना की और इसके माध्यम से हिंदी और भारतीय संगीत की शिक्षा निरंतर देते रहे हैं। गयाना में 'गयाना हिंदी प्रचार सभा' प्रमुख संस्था है जो अपने स्तर पर निरंतर हिंदी प्रचार के लिए प्रयास करती रहती है। इन भारतवंशी देशों के अतिरिक्त अमेरिका में 'विश्व हिंदी न्यास' और 'भारतीय विद्या भवन' प्रमुख हिंदी सेवी संस्थाएँ हैं। इसी प्रकार कनाडा में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्यक्रम आयोजित करती रहती है। ब्रिटेन में हिंदी प्रचार-प्रसार की अनेक संस्थाएँ हैं जिनमें प्रमुख संस्था यू.के. हिंदी समिति

लंदन, गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय बर्मिंघम, कथा यू.के. लंदन, भारतीय भाषा संगम यॉर्क, भारतीय विद्या भवन, कला निकेतन नॉटिंघम, चैपल, लेस्टर, ग्रेट ब्रिटेन हिंदी लेखक संघ आदि हैं।

लोक भाषाओं से मिलकर मॉरीशस में भोजपुरी, सूरीनाम में सरनामी, फीजी में फीजीबात और दक्षिण अफ्रीका में नैताली हिंदी बन जाती है। इसमें लोक साहित्य की रचना होती है। सूरीनाम के विख्यात कवि श्री हरिदेव सहतू की कविता इस प्रकार है—

'हम तोके का बोली, हम तोके का बोली
बोली बोली, भाषा बोली
अवधि कि भोजपुरी।'
अंत में
'अपन भाषा में एक बात बोली
तो हँस हम्मे बहुत है प्यार महतारी भाषा हमार, महतारी भाषा हमार सरनामी भाषा हमार, सरनामी भाषा हमार।'

इसी प्रकार गिरमिटिया मज़दूर के रूप में सन् 1898 में सूरीनाम पहुँचे मुंशी रहमान ख़ान वहाँ के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। काल और परिस्थितियों का प्रभाव भाषा और साहित्य पर भी पड़ता है। इस प्रभाव से मुंशी रहमान ख़ान भी अछूते नहीं रहे। उन्होंने हज़रत नबी मुहम्मद रसूलिल्लाह के जीवन-चरित को तुलसीदास की रामायण शैली में इस प्रकार रचा है—

'आदि अंत प्रभु का नहीं, नहिं कोई सिरजनहार।
मात पिता प्रभु के नहीं, नहिं कोई पालनहार।॥
जो कहिं नूर रसूल का, नहीं रचत रहमान।
तौ कुदरत रब अपनी, प्रकट न करत जहान॥
नूर की उत्पत्ति जस भई, है यह रब की शान।
है यह नूर रसूल का, कहूँ संक्षेप बखान॥
जिबरा ईल रसूल में, जौन भयउ संबाद।
उन दोनहुँ की वार्ता, करूँ यहाँ इरशाद॥'

उपर्युक्त दोहों में खड़ी बोली का प्रयोग अधिक है जबकि हरिदेव सहतू की कविता में अवधि और भोजपुरी अधिक है क्योंकि हरिदेव सहतू की कविता मुंशी रहमान खान के काल के बाद की है। इसीलिए भाषा अपने लोक रूप में अधिक जीवित है। मॉरीशस में भी भोजपुरी और अवधि-क्षेत्र के लोग अधिक गए थे। ऐसे में वहाँ एक नए समाज के साथ-साथ भाषा ने भी स्वरूप बदला। वहाँ की भोजपुरी को जिसे वे लोग हिंदी कहते हैं, उसमें क्रियोल के अनेक शब्द आ गए हैं। मॉरीशस में लिखी गई एक कविता के अंश इस प्रकार हैं—

'जंगल काट कियो मैदाना
खेत बनाए सहित सिवाना।
उपल बटोर सजाए सीमा खाकर दाल भात अरु पीमा।'

इन पंक्तियों में 'सीमा' का अर्थ रास्ता है और 'पीमा' का मिर्च। सभी शब्द क्रियोल भाषा के हैं जिनका प्रयोग भोजपुरी में किया गया है। इसी प्रकार आज मॉरीशस में वहाँ की हिंदी में अनेक शब्द क्रियोल भाषा से समाहित हो चुके हैं और वह नित नए प्रयोगों के साथ सामने आ रही है। भले ही हम उसे भोजपुरी कहें, अवधी कहें या जो भी कहें लेकिन वे लोग तो इसे हिंदी ही कहते हैं।

5123, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031
pravasisansar@gmail.com
साभार : भारतीय डायस्पोरा : विविध आयाम

17 प्रवासी साहित्य और चुनौतियाँ

• *मधु अरोड़ा*

जन्म : 4 जनवरी, 1958

शिक्षा : एम.ए., मुंबई विश्वविद्यालय

तीस वर्ष तक नीटी में कार्यरत रही।

अब तक क़रीब अठारह कहानियाँ लिखी हैं और वे भारत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं वागर्थ, परिकथा, पाखी, लमही, वर्तमान साहित्य, कथाबिंब, इंद्रप्रस्थ भारती, समकालीन सरोकार आदि में प्रकाशित हो चुकी हैं तथा विविध भारती व आकाशवाणी से प्रसारित भी हुई हैं।

'एक सच यह भी', सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 'बातें' (तेजेंद्र शर्मा के साक्षात्कार), शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र) का संपादन...'मन के कोने से' (साक्षात्कार संग्रह) यश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, से प्रकाशित, '...और दिन सार्थक हुआ' कहानी-संग्रह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 'तितलियों को उड़ते देखा है?' कविता-संग्रह, शिवना प्रकाशन, सीहोर, (म.प्र.) से प्रकाशित।

सन् 2005 में ओहायो, अमेरिका से निकलनेवाली पत्रिका क्षितिज़ द्वारा गणेश शंकर विद्यार्थी सम्मान से सम्मानित। 'रिश्तों की भुरभुरी ज़मीन' कहानी को उत्तम कहानी के तहत कथाबिंब पत्रिका द्वारा कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार–2012

दो दशकों से कथा यू के की मुंबई प्रतिनिधि के रूप में सक्रिय कार्यकर्ता।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ''साहित्य में जो मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है उसका निर्माण सामाजिक, राजनैतिक, वैचारिक आदि परिस्थितियों के अनुरूप होता है। दूसरी बात कि साहित्य की एक धारा हमारे सामने मौजूद होती है। इस धारा में समय-समय पर बदलाव दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं परिवर्तनों का सामंजस्य सामाजिक परिवर्तनों के साथ साहित्य में दिखाना होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यदि हिंदी के पाठकों की बात करें तो दो श्रेणियाँ दिखाई देती हैं : एक वे लोग जो लिखते हैं और दूसरों को पढ़ते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं, अपने गुट बना लेते हैं, दूसरों की आलोचना करते हैं, आत्म मुग्धता के शिकार हैं, ये लोग संख्या में कम हैं किंतु समझते हैं कि संपूर्ण हिंदी साहित्य का वर्तमान व भविष्य वे ही तय करते हैं। दूसरे वे पाठकगण हैं जिनके लिए तथाकथित साहित्य रचा जाता है; किंतु उनकी पसंद-नापसंद को महत्व नहीं दिया जाता है, एक आम पाठक साधारण भाषा में लिखा वह साहित्य पसंद करता है जो उसके मन की, उसके परिवेश की बात करता हो।'' दूसरे शब्दों में कहा जाए तो साहित्य की परंपरा जनता की चित्तप्रवृत्तियों से प्रभावित होती है और जनता की चित्तवृत्ति बहुत से साहित्येतर कारकों से निर्मित होती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रवासी हिंदी लेखन पर गौर करने की ज़रूरत है कि वहाँ जो लेखन हो रहा है क्या उसे मुख्यधारा के लेखन के समकक्ष रखा जा सकता है? प्रवासी लेखन पर बात करें, उससे पहले सवाल उठता है कि यह मुख्यधारा क्या है और क्या इसके तहत विधाओं के लेखन के लिए कोई मानदंड हैं जिनकी कसौटी पर लेखन को कसा जाए? दरअसल गत कुछ वर्षों से हिंदी साहित्य जगत में कई धाराएँ चल रही हैं और वे अपने पूरे उफ़ान पर हैं तथा उनके बीच दलित लेखन, स्त्री-लेखन, प्रगतिशील लेखन, आंचलिक लेखन, वामपंथी लेखन, दक्षिणपंथी लेखन पिस रहे हैं एवं उनमें एक नया लेखन और समाविष्ट हो गया—प्रवासी लेखन। 'अब' साहित्य में जो इतनी धाराएँ सामानांतर रूप से चल रही हैं तो एक बात सामने आ रही है कि यह लेखन न होकर जाति और लिंग आधारित लेखन हो गया है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो हम हिंदी वाले अपने आपको बाँटने की बड़ी भारी क्षमता रखते हैं। हमने ये चौखटें खुद बनाए हैं, अपनी अलग पहचान बनाने की चक्कर में।

इस हालत को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि लेखकों के आगे एक भ्रामक स्थिति पैदा हो गई है कि उनका लेखन किस श्रेणी के तहत रखा जाएगा। तो आप ही बताइए कि जब हम किसी धारा विशेष के तहत लेखन करेंगे तो वह सही अर्थों में लेखन नहीं होगा बल्कि वर्ग-विशेष को संतुष्ट करने का लेखन होगा। मेरी समझ से हम पहले खुद से संतुष्ट हो लें यह बहुत ज़रूरी होगा। मेरे नज़रिए से मुख्य धारा का मतलब है कि जो कहानियाँ मानवीय सरोकारों से जुड़ी हों जिनके लिखने का कुछ मकसद हो सिर्फ़ लिखने के लिए न लिखा जा रहा हो। जो कहानियाँ पाठक को सोचने के लिए विवश

करें, उनके दिलों-दिमाग को उद्वेलित करें जिन रचनाओं को पढ़कर सामाजिक बदलाव की सकारात्मक सोच उत्पन्न हो सके। ऐसी कहानियों को मैं इसके अंतर्गत मानने के हक में हूँ। चाहे वे कहानियाँ प्रवासी लेखकों की ही क्यों न हों।

प्रवासी लेखन को लेकर मैंने मुख्यधारा के लिए वरिष्ठ रचनाकारों, आलोचनाओं द्वारा निर्धारित मानदंडों को खँगाला पर ऐसा विशेष कुछ हाथ नहीं लगा। ऐसे में मुझे फेसबुक के अपने साहित्य के मित्र याद आ गए और वहाँ मुख्यधारा के मानदंडों के मुद्दों को उठाया। वहाँ से मुझे अपने सवाल का जवाब मिला पर वह भी स्पष्ट कुछ भी नहीं। विचार-विमर्श हुआ। मित्रों ने मुख्यधारा के नाम पर चल रहे भेद-भाव पर अपना आक्रोश जताया कि जिन लोगों ने रचनाकारों को खुद के सर्टिफ़िकेट से उन्हें मुख्यधारा का लेखक बनाने का जबरन ठप्पा लगाने का ठेका लिया है, उन्हें यह अधिकार किसने दिया है।

वहीं यू.ए.ई. के रचनाकार कृष्णबिहारी के अनुसार ''आज की तारीख में हिंदी में सामयिक लेखन जहाँ भी हो रहा है, वह हिंदी साहित्य ही नहीं बल्कि किसी भी भाषा की मुख्यधारा से जुड़ा लेखन है। प्रवासी लेखन नाम मिल जाने से या किसी के द्वारा कह दिए जाने से रचनाकार पर कोई अच्छा या बुरा असर नहीं पड़ता।'' वहीं भारत की चर्चित समीक्षक सरिता शर्मा कहती हैं, ''मुख्यधारा में होने लायक और उनमें होना दोनों अलग-अलग बातें हैं। इसमें भारतीय या प्रवासी का कोई खास भेद-भाव नहीं है। साथ ही साहित्य में राजनीति और किसी धारा में शामिल होने का जुगाड़ खतरनाक है।''

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए पुनीत बिसारिया तो ज़रा तल्ख होकर कहते हैं, ''हिंदी में हर ध्वजाधारी साहित्यकार की अपनी एक मुख्यधारा है। वास्तविकता तो यह है कि साहित्य की मुख्यधारा को कुछ लोगों ने अपनी ओर मोड़ लिया है और उनके विचारों से ही हम संचालित होने लगे हैं। साहित्य की पहली शर्त पठनीयता है जिस पर यदि ये खरे उतरते हैं तो इन्हें साहित्य की मुख्यधारा का अहंकार साहित्य कोटि से क्यों बहिष्कृत रखना चाहता है?'' मेरे इन मित्रों की बातचीत के आधार पर एक बात तो सामने आती है कि संवेदनाएँ सार्वभौमिक हैं। साहित्य में तो विचारधारा ही महत्वपूर्ण है। यदि मुख्यधारा का अस्तित्व या इसे साहित्य के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करना ही चाहें तो इसे 'कालजयी साहित्य' के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, बतौर एक मापदंड और कसौटी। हिंदी में अच्छा लिखा जा रहा है, यह सच है लेकिन फिर सवाल 'कालजयी' तक आकर रुक जाता है।

यू.एस.ए. की कथाकार सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी अखबार वाला पाठकों को निस्तब्ध कर देनेवाली कहानी है। यहाँ जीवन को केवल जीवन समझकर जिया जाता है, वह भी अपने लिए...केवल अपने लिए ठीक, स्वस्थ, भरपूर सुविधाओं से भरा-पूरा होना-जीने की अनिवार्य शर्त है। उसके बाहर सब मित्या है। सुदर्शन जी की यह कहानी बहुत ही मार्मिक है और पाठकों को विदेशों की वस्तुस्थिति से परिचित कराती है। वहाँ हर इनसान को खुद में ही बंद रहना होता है। न एक-दूसरे से बोलना न चालना। विदेशों की संवेदनहीनता को जिस प्रकार सुदर्शन जी ने दर्शाया है, वह सच में पठनीय है और यही संवेदनहीनता भारत में भी प्रवेश करती जा रही है।

अब जहाँ तक प्रवासी लेखन की बात है तो उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी, तेजेंद्र शर्मा के लेखन धाराओं के विवादों से परे मुख्यधारा के तहत गिना जाता है। इन्हें भारत के स्थापित रचनाकारों में गिना जाता है। मसलन, उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' जो मिल का पत्थर है। सुषमा बेदी का 'मैंने नाता तोड़ा' बहुचर्चित उपन्यास है। भारत में ही नहीं दुनिया भर में औरत के शरीर को लेकर उसे हर तरह से सहना पड़ा है। घर में अपने ही चाचा-मामा लोभ संवरण नहीं कर पाते। यह घर की कहानी है। अमेरिका में तो सौतेला बाप भी लड़की का दुश्मन होता है। घर-घर की कहानी यही है पर लोग छुपाते फिरते हैं। आप ही बताएँ कि क्या भारत के घरों में यह नहीं होता? तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ 'देह की कीमत', 'ढिबरी टाइट' उन्हें भारत के स्थापित रचनाकारों की श्रेणी में ला खड़ा करती हैं। इसलिए इन रचनाकारों के लेखन पर बात करने के बजाय भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य की उन रचनाओं को आपके सामने रखना

चाहूँगी जिन्हें सामाजिक साहित्यकारों की वजह से मुख्यधारा की कहानियों में शामिल करने पर विचार किया जा सकता है।

मुझे यह कहने में बिल्कुल संकोच नहीं है कि मैंने अपने इस पेपर में साहित्य रचनाओं के रचनाकारों के पूरे लेखन को नहीं पढ़ा है। व्यावहारिक रूप से यह संभव भी नहीं है। जिस प्रकार चावल गले या नहीं यह देखने के लिए दो-चार चावल उँगली से दबाकर देखे जाते हैं न कि भगौने के पूरे चावल। उसी प्रकार जो रचनाएँ अपने को सहजता से पढ़वा ले जाएँ जिनमें सामाजिक सरोकार हों, भाषा सरल हो, डिक्शनरी देखकर शब्दों का प्रयोग न किया गया हो, कठिन शब्दों का प्रयोग पाठक की एकाग्रता को भंग करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में मैंने अमेरिका, यू.के., कनाडा और मॉरीशस के रचनाकारों की कुछ कहानियाँ पढ़ीं।

यू.के. की रचनाकार उषा वर्मा की कहानी 'रौनी' रंगभेद के शिकार रौनी नामक बच्चे की कहानी है जहाँ वह पोस्टर अभिभावक के साथ दर-दर भटकने को अभिशप्त है। बाल मनोविज्ञान की यह कहानी उस बच्चे की मानसिक कहानी बयान करती है जहाँ वह अपने स्कूल की टीचर मि. ह्यूबर्ट की हैवानियत का शिकार होता रहता है। वह रौनी के साथ सेक्स करता है और साथ ही किसी को बताने पर उसे स्कूल से निकलवाने की धमकी भी देता है। उसका काला होना ही मानो उसका कसूर है और इसका आभास उसे कदम-दर-कदम कराया जाता है। यह कहानी भारत के परिवेश को व्यक्त नहीं करती ? क्या भारत में होमो सेक्सुअल नहीं हैं ? भारत में रंगभेद न सही पर जाति भेद के आधार पर इस तरह की हरकतें की जाती हैं। कारण अलग-अलग हो सकते हैं पर मानसिकता तो एक ही है।

इसी प्रकार यू.एस.ए. की कहानीकार सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'क्षितिज से परे' एक ऐसे दंपति की कहानी है जहाँ पत्नी सारंगी अपने पति सुलभ से शादी के चालीस साल बाद बच्चों के सैटल होने के बाद तलाक का फैसला लेती है। अपने अस्तित्व की तलाश में वह पति के सारे अत्याचार सहती रही और जब पानी सर से ऊपर हो गया तब उसने फैसला किया और महसूस किया कि सोच और समझ दोनों में वह अपने पति सुलभ से बहुत आगे निकल गई है। उसके अनुसार ''मेरी प्राथमिकताएँ बदल गई हैं... भावनात्मक स्तर पर मैं उनसे बहुत दूर निकल चुकी हूँ...क्षितिज से परे...मैं सचमुच सुलभ से 'रिलेट' नहीं कर सकती।'' इस कहानी को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि जहाँ भारत में शादी के 40 वर्ष बाद नारी ज़िंदगी जीने के लिए विवश होती है, भले ही उसे कितनी ही प्रताड़ना मिले। वह तलाक लेने के विषय में सोच नहीं पाती वहीं विदेशों में महिलाएँ उम्र के ढलते पड़ाव में भी तलाक लेने का साहस करती हैं।

लेस्टर की कथाकर नीना पॉल की कहानी 'आखिरी गीत' बाल मनोविज्ञान की कहानी है जहाँ पति कपिल और पत्नी अंजलि के बीच नीरज आ जाता है। नीरज और अंजलि के किन्हीं कमज़ोर क्षणों का संसर्ग सोनल के रूप में सामने आता है जिसके परिणामस्वरूप कपिल घर छोड़कर चले जाते हैं ताकि अंजलि नीरज के साथ रहे। बावजूद इसके वे अंजलि और बेटी सोनल से बहुत प्यार करते हैं। सोनल को यह गलतफहमी है कि पापा छोड़कर गए और वह अपने पिता कपिल से मिलना ही नहीं चाहती पर जब माँ के आग्रह पर वह अपने भाई चिराग के साथ अपने पिता के यहाँ छुट्टियाँ बिताने जाती है तो पता चलता है कि उसके पिता को फेफड़ों का कैंसर है और वे चंद महीनों के मेहमान हैं। तब वह अपने पिता की सारी इच्छाएँ पूरी करने की कोशिश करती है और यहाँ तक कि वह अपने पिता के लिखे आखिरी गीत को अपना पहला गीत बनाकर पिता के संगीत को आगे ले जाती है और इस तरह पिता को एक तरह से वह अनोखे रूप से श्रद्धांजलि देती है, साथ ही जब उसे पिता के घर छोड़ने का कारण पता चलता है तो वह अचानक कह बैठती है, ''आई डोंट बिलीव दिस। इट वज़ यू मॉम।'' बच्चे के मन की कशमकश से ओतप्रोत यह कहानी बाल-मन की कथा और विदेशों में पारिवारिक विघटन की कहानी कहती है।

यू.एस.ए. की कथाकार सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी अखबारवाला पाठकों को निस्तब्ध कर देनेवाली कहानी है। यहाँ जीवन को केवल जीवन समझकर जिया जाता है, वह भी अपने लिए...केवल अपने लिए ठीक, स्वस्थ, भरपूर सुविधाओं से भरा-पूरा होना-जीने की अनिवार्य शर्त है। उसके बाहर सब मिथ्या है। सुदर्शन जी की यह कहानी बहुत ही मार्मिक है और पाठकों को विदेशों की वस्तुस्थिति से परिचित कराती है। वहाँ हर इंसान को खुद में ही बंद रहना होता है। न एक-दूसरे से बोलना न चालना। विदेशों की संवेदनहीनता को जिस प्रकार सुदर्शन जी ने दरशाया है वह सच

में पठनीय है और यही संवेदनहीनता भारत में भी प्रवेश करती जा रही है।

मॉरीशस के कथाकार वेणीमाधव रामखेलावन की कहानी 'जय दुर्गे' एक ऐसे मज़दूर की दास्तान है जो ज़मींदार के अत्याचारों से पीड़ित है। भारत से ले जाए गए इन मज़दूरों के साथ जो अमानवीय व्यवहार किया जाता है उसकी दास्तान है यह कहानी, साथ ही ईश्वर के प्रति उस आस्था की कहानी जिनको ये मज़दूर अपने साथ ले जाते हैं, वहाँ भी पूजते हैं, जैसे भारत में देवी-देवताओं को पूजा जाता है। इनकी यह आस्था इस कहावत को चरितार्थ करती है कि मानो तो पत्थर भी देवता हैं और न मानो तो देवता भी पत्थर हैं। तो बात आस्था की है जिसके बल पर बिख्खू अपने बेटे बुधवा की मौत का बदला ज़मींदार को मारकर लेता है। मॉरीशस में भारतीय मज़दूरों पर किए जानेवाले अत्याचारों की मार्मिक कहानी है यह। यह कहानी पढ़ते समय मेरे ज़हेन में भारत में किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या की घटनाएँ लगातार आती रहीं, मन-मस्तिष्क को मँथती रहीं।

यू.एस.ए. के रचनाकार उमेश अग्निहोत्री की कहानी क्या हम दोस्त नहीं रह सकते, विजय और विजया की दोस्ती पति-पत्नी के रिश्ते में परवान चढ़ती है। पति-पत्नी बनते ही विजया विजय से दूर होती जाती है और सप्ताहांत 'गर्ल्स नाइट आउट' में गुज़ारना पसंद करती है। जब विजय विजया से इस दूरी का कारण पूछता है तो वह बेबाक रूप से उत्तर देती है, ''जब तुम दोस्त थे, तब तुम इतने पज़ेसिव नहीं थे जितने अब हो रहे हो। तुमने भी लड़कों से मिलवाया था, वे हैंडसम तो थे पर वे मेरी ज़िंदगी का रिमोट अपने हाथ में रखना चाहते थे।...मेरे 'मूवमेंट्स' को मैनेज करना चाहते थे।' कोई भी मुझे मेरी आज़ादी देने को तैयार नहीं था।...तुम मुझे अधिक संवेदनशील और उदार जान पड़े थे। मुझे मेरी आज़ादी देते थे। सोचने की वह आजादी अब भी दे पाओगे?'' स्त्री चाहे कहीं की भी हो वह पति के रूप में कभी नहीं चाहती। भारत की महिलाएँ भी अब पति की तरह खुद के लिए स्पेस माँगने लगी हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए कि वे अब वह स्पेस लेने लगी हैं तो अतिरेक नहीं होगा। हाँ यह भी सच है कि भारतीय परिवारों में गर्ल्स नाइट आउट शुरू नहीं हुआ है।

कनाडा की रचनाकार स्नेह ठाकुर की कहानी 'प्रथम डेट' एक अनूठी थीम के साथ अपनी बात कहती है। पति अनिल अपने ''फ्लर्ट स्वाभाव के कारण अपनी पत्नी निधि को छोड़कर अपनी से आधी उम्र की लड़की जूली के साथ रहने लगते हैं। ऐसे में निधि के जीवन में पियूष आते हैं और वे निधि को डेट के लिए आमंत्रित करते हैं। निधि को पेशोपेश की स्थिति से उसकी बेटी अदिति उबार लेती है। वह अपनी माँ को पियूष से मिलने के लिए सजाती है, सँवारती है। उस असमंजस की स्थिति से निकलने के बाद उसने पाया, 'दर्पण से झाँकती अपनी आँखों को देख मैं चौंक पड़ी, उनमें प्रथम डेट का भय नहीं था वरन् थी आशा की किरण।' इस कहानी की विशेषता यह लगी कि एक बेटी अपनी माँ को मानसिक रूप से तैयार करती है। निधि बगावत नहीं करती बल्कि निर्णय लेती है।

तो इन कहानियों को पढ़ते समय लगातार मन में यही उमड़ता-घुमड़ता रहा कि ये कहानियाँ कहीं से भी तो कमतर नहीं लगतीं। सिर्फ़ दूसरे देश में रहकर लिखे जाने मात्र से ही तो साहित्य विभाजित नहीं हो जाता। ये कहानियाँ पढ़ते समय यही भान होता रहा कि ये कहानियाँ कहीं से भी तो बेगानी नहीं लगतीं। हमारी और आसपास के परिवेश की ही तो हैं। मेरे मित्र ओम निश्चल का कहना है, ''यह बात ज़रूर है कि कोई भी लेखक हर समय श्रेष्ठ नहीं रच रहा होता। जैसे हर रचना कालजयी नहीं होती वैसे ही हर लेखक मुख्यधारा में नहीं रखा जा सकता। समय अपने लोगों को हाशिए में डालता जाता है। जो धारा के विरुद्ध जाकर रचते हैं वे ही टिक पाते हैं। मुहिम चलाकर या लामबंदी से कोई लेखक नहीं बनाया जा सकता।''

आगे वे कहते हैं कि सभी गाड़ियाँ राजधानी नहीं होतीं। यही हाल लेखकों का भी है। सभी शिखर पर नहीं होते। शिखर बनते-बिगड़ते रहते हैं। मुख्यधारा शब्दों का आतंक फैला है। इसकी जगह व्यापक धारा या व्यापकता के बारे में चर्चा होनी चाहिए। साथ ही यह बात समझ में नहीं आती कि साहित्य इतने टुकड़ों में क्यों बँटा है। साहित्य तो साहित्य है। पाठक को असमंजस की स्थिति में नहीं रखना चाहिए। अगर कृति में दम है तो वह अपनी धारा खुद बना लेती है। कमज़ोर कृतियों को ही किसी नाम के सहारे से आगे बढ़ाया जाता है और वह साहित्य में आरक्षण जैसा है। मुख्यधारा है ज़रूर और वह हमारे आसपास हवा-पानी की तरह मौजूद है पर हम उसे ठीक-ठीक पहचान नहीं पाते। वहीं हरीश नवल कहते हैं, हाँ सत्य है कि प्रवासी साहित्य हिंदी की मुख्यधारा का साहित्य ही है। हाँ, जैसे

भारत के सभी हिंदी लेखक मुख्यधारा में नहीं आते, वैसे ही हर प्रवासी लेखक मुख्यधारा में नहीं हो सकता। केवल लिखने से लेखक मुख्यधारा में नहीं आ सकते।

समय-सीमा को ध्यान में रखते हुए अपनी बात को इस प्रकार कह सकती हूँ कि साहित्य की मुख्यधारा मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर लिखा जा रहा सब कुछ है। विधा कुछ भी हो सकती है, भाषा कुछ भी हो सकती है और देश कोई भी हो सकता है। साहित्य को आप और हम कबीलों में बाँट नहीं सकते। समीक्षकों और आलोचकों का अपना महत्व है लेकिन उनकी भूमिका सिमित है। वे न साहित्य के निदेशक हैं न प्रवर्तक। कोई क्षमतावान रचनाकार ही कभी आकर्षित करता है, प्रभावित करता है और नई लीक भी बनता है। देखना है तो उनकी ओर देखिए आपको सारे उत्तर वहीं मिल जाएँगे। जैसे मधुमक्खियों को मधु संचय के लिए बड़ी मशक्कत करनी होती है। उसी तरह हम भी इस टोह में रहते हैं कि कहीं से कुछ ऐसा मिले जो जीवन की बेचैनियों को तरतीब दे। कम से कम मेरे लिए तो यही मुख्यधारा है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हमें यह तय करना होगा कि साहित्य की मुख्य धारा क्या है? क्यों केवल कुछ मठाधीशों, गुटबाजों और राजनितिक उठा-पटक के माध्यम से प्रकाशित हो जाने या स्थापित हो जाने वाले लेखक ही हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में आते हैं? क्यों केवल किसी खास वैचारिक चिंतन को लेकर चलने वाले लोग ही साहित्य की मुख्यधारा कहे जा सकते हैं? आज हिंदी साहित्य की तथाकथित मुख्यधारा के स्थापित मठाधीश-मठाधीश कैसे बने इनके इस तमगे का कोई इतिहास नहीं है। यह हमारे दिमाग की उपज है और हमें इन खेमों से बाहर रहकर सामाजिक सरोकारों की कहानियों को प्रश्रय देना होगा।

हाँ, प्रवासी साहित्य के नाम पर पाठकों के सामने अल्लम-बल्लम न परोसा जाए। विदेश में रहकर लेखन करने वाले रचनाकारों को अपने लेखन में सामाजिक सरोकार वहाँ के परिवेश को लाना होगा। सिर्फ़ सेक्स या पारिवारिक विघटन न दिखाकर बल्कि उन कारणों को भी दिखाएँ जिनसे ये परिस्थितियाँ पैदा हुईं और समाधान भी दिखाएँ। समाधान न दिखाकर दूसरे रास्ते पर चल देना तो कोई साहित्य न हुआ। रचनाकारों को खुद की रचनाओं को फ़िल्टर करना होगा और स्वस्थ रचनाएँ देनी होंगी जो पाठकों के लिए प्रेरणा बनें न कि सिरदर्द बनें।

रामावतार त्यागी का एक गीत, जो लेखकों के बीच के स्तर और अस्त्र दोनों को उधेड़ता सा लगता है, आपके समक्ष प्रस्तुत है और इसी के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ—

मैं भी कुछ लिखता हूँ
हाँ तुम भी लिखते हो
मेरे भी ग्राहक हैं
हाँ, तुम भी बिकते हो
होने को फिर भी कुछ अंतर तो होता है
पंडित के श्लोकों में, गणिका के मुजरे में।

कितनी शानदार आलोचना है यहाँ लेखन के स्तर को जाँचने, परखने के लिए। मुख्यधारा की भी चौहदियाँ प्रशस्ति होती रहती हैं, उनमें दाखिले की जगह होती है पर जो मुख्यधारा में शामिल किए जाने या होने की चिंता में ही दुबला हुआ जा रहा है ऐसे लेखक का कुछ नहीं किया जा सकता।

इस आलेख में समाविष्ट कहानियाँ—प्रवासी दुनिया से साभार।
फेसबुक पर साहित्यिक मित्रों के विचार।
साभार : प्रवासी संसार, वर्ष-10,
अंक-2 : जनवरी-मार्च, 2014
shagunji435@gmail.com

18 साहित्य–प्रवासी हिंदी साहित्य : एक विहंगम दृष्टि

● स्नेह ठाकुर

प्रवासी हिंदी साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने से पहले भारत में हिंदी की स्थिति पर एक विहंगम दृष्टि डालना न्यायोचित होगा।

भारत में हिंदी की स्थिति कुछ ऐसी हो गई है जैसी वहाँ के एक त्योहार 'करवाचौथ' में रानी की हो गई थी कि रानी गोली बन गई और गोली रानी। साल–दर–साल करवाचौथ में सुनाई गई एक प्रचलित कथा के अनुसार, रानी अपने अचेत राजा के शरीर से सुइयाँ निकाल रही थी पर अंतिम सुई से पहले उसे किसी कारणवश वहाँ से उठना पड़ा और नौकरानी ने वह अंतिम सुई राजा के शरीर से निकाल दी। उस सुई के निकलते ही राजा अचेतावस्था से चेतावस्था में आ उठ बैठा और अपने सामने बैठी नौकरानी को रानी समझ बैठा। इस प्रकार नौकरानी रानी बन गई और रानी नौकरानी। अंग्रेज़ी सिंहासनारूढ़ है और हिंदी जिसे उस सिंहासन पर विराजमान होना चाहिए था नहीं है।

पर इस कथा में एक पेचदार घुमाव भी है कि रानी ने एक वर्ष तक गहन तपस्या की और अगले करवाचौथ पर राजा को अपनी गलती का भान हो गया तथा उसने अपनी गलती सुधार कर रानी को उसके पद पर प्रतिष्ठापित कर दिया।

हिंदी की दशा भी उस रानी की तरह हो गई है कि वह अपने ही घर में रानी पद से च्युत हो गई है। रानी पद से वंचित कर, उसे द्वितीय स्थान पर प्रतिपादित कर दिया गया है। आज देश में अपनी भाषा के स्थान पर विदेशी भाषा का बोलबाला है।

जब उद्‌गम स्थान पर ही जलधारा क्षीण होने लगे तो उसके अस्तित्व की चिंता व उस पर प्रश्न स्वाभाविक हो जाते हैं। पर हिंदी की शाश्वतता कुछ ऐसी है कि उद्‌गम स्थान पर क्षीणतर होती जलधारा प्रवास में अपने पूर्वतर वृहद एकत्रित जल से परिपूर्ण मद–मस्त गति से अनेकों प्रवासी भारतीयों के हृदयों को आलोड़ित करती, प्रवास की भाषा से भी कुछ–कुछ समृद्ध होती प्रवाहित हो रही है।

यह आलोड़न, यह सतत प्रवाह 'करवाचौथ' की कथा की

शिक्षा–

➢ एम.ए. ➢ बी.एड.

संपादक-प्रकाशक 'वसुधा' हिंदी साहित्यिक पत्रिका (जनवरी 2004 से)

निर्देशिका–इंटरनेशनल आर.सी. यूनिवर्सिटी (कनडा चैप्टर)

कार्यकारिणी सदस्य–विश्व हिंदी परिषद (2000-2007)

आप अनेक संगठनों, समितियों, सभाओं आदि के कार्यकारिणी सदस्य रह चुकी हैं।

प्रकाशन–

अनमोल हास्य क्षण (नाटक-संग्रह), जीवन के रंग (काव्य-संग्रह), दर्दे-जुबाँ (उर्दू कविताओं का संग्रह), आज का पुरुष (कहानी-संग्रह), जीवन निधि (काव्य-संग्रह), आत्मा गुंजन (दार्शनिक और भक्ति की कविताओं का संग्रह), हास-परिहास (हास्य कविताओं का संग्रह), पूरब-पश्चिम (आप्रवासी संबंधित आलेख संग्रह), आज का समाज (लेख-संग्रह)

'इंटरनेशनल वीमेन एक्सलेन्स अवार्ड 2014'
'एडिटर्स चॉइस अवार्ड'
'साहित्य भारती सम्मान'
'विश्व हिंदी सेवा सम्मान'
'प्रवासी हिंदी सेवी सम्मान'
'नारी अस्मिता समिति सम्मान'

आप नाटक, काव्य, कहानी, निबंध, गीत, भजन, ग़ज़ल, उपन्यास, शोध-ग्रंथ आदि विधाओं में हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों में लेखनी चलाती हैं।

आपकी कुछ कृतियाँ उर्दू और पंजाबी भाषा में भी रचित हैं। आपकी रचनाएँ राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं जैसे 'सरिता', 'गृहशोभा', 'सुषमा', 'मुक्ता' आदि।

आपने अनेक चल-चित्रों में अभिनय भी किया है। साथ ही आप मान्यता प्राप्त दुभाषिया, अधिकृत अनुवादक और भाषांतरकार हैं।

भाँति हिंदी को उसके रानी पद पर प्रतिष्ठापित करने में अवश्यमेव सहायक सिद्ध होगा। ऐसी मेरी मान्यता है।

हम जब भारत में हिंदी की स्थिति पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं तो यह पाते हैं कि ऐसा भी नहीं है कि सभी भारतवासी हिंदी से विमुख हैं। नहीं, भारतीयों को अपनी भाषा से प्रेम अवश्य है। हाँ! प्रभुत्व पदों पर अंग्रेज़ीदाँ लोगों के पदासीन होने से अंग्रेज़ी का महत्व सीमा का अतिक्रमण कर रहा है।

भारत के जनमानस में हिंदी के प्रति जागृति की लहर दौड़नी आरंभ हो चुकी है। क्या हाल ही के 2014 के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के चुनाव संबंधी भाषण इसके साक्षी नहीं हैं? भारत में ऐसी मान्यता पल्लवित हुई है कि बहुमत से निर्वाचित प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी की अपार सफलता में उनके हिंदी में दिए गए भाषणों का भी एक बड़ा योगदान है। अधिकांश जनता द्वारा इस तथ्य की स्वीकारोक्ति जहाँ हिंदी प्रेमियों को आकाश में पींगें लेने को उत्साहित करती है, वहीं अंग्रेज़ी समर्थकों को यह सोचने पर अवश्य विवश कर देगी कि हिंदी की लहर को अब पनपने, उमड़ने से रोकना संभव न हो पाएगा क्योंकि उसकी उपादेयता की झलक उन्होंने देख ली है। हिंदी के विरुद्ध और अंग्रेज़ी के समर्थन में तर्क अब अपनी विशिष्टता खो चुके हैं अंग्रेज़ी के समर्थक और हिंदी प्रेमी दोनों ही इस दौरान इस तथ्य के साक्षी हुए हैं।

भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने चुनावोपरांत भी, प्रधानमंत्री पद ग्रहण करने के बाद भी, देश की भाषा का मान रखा और सार्क के नेताओं से हिंदी में बात की। जो विदेशी नेता हिंदी नहीं जानते थे उनके लिए दुभाषिया रखा जैसा कि उन सभी देशों का प्रचलन है जिनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं है।

यह हर्ष का विषय है कि जब प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने हिंदी में बात करने की पहल की तो नेपाल के प्रधानमंत्री माननीय श्री सुशील कोइराला जी ने भी उनसे हिंदी में बात की। इसी प्रकार पाकिस्तान के प्रधानमंत्री माननीय श्री नवाज़ शरीफ़ जी ने भी हिंदुस्तानी में बात की।

माननीय श्री नरेंद्र मोदी ने स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले से हिंदी में दिए गए एक घंटे से अधिक अपने भावात्मक आशु भाषण से जन-जन को आह्लादित कर दिया। उन्होंने पुन: यह सिद्ध कर दिया कि हिंदी का सम्मान राष्ट्र का सम्मान है।

माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने हिंदी के प्रति अपने इस व्यवहार से प्रमाणित कर दिया है कि उन्होंने केवल वोट भुनाने के लिए ही हिंदी का इस्तेमाल नहीं किया है वरन् वे हिंदी के प्रति गंभीर हैं, समर्पित हैं। अत: हिंदी की गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखने की आशा उनसे अपेक्षित है।

ऐसी स्थिति को देखते हुए यह आशा अनपेक्षित नहीं है कि अब हिंदी भारत व विदेश में भी अपने गरिमामय स्थान पर प्रतिस्थापित होगी ही होगी। यू.एन.ओ. के सभागार में, आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में संपन्न हुए समारोह में, जिसमें कनाडा से विशिष्ट अतिथि के रूप में सम्मिलित होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था, जिन सपनों को हमने अपनी पलकों पर सँजोया था, वे सच होते प्रतीत हो रहे हैं।

अब इस उम्मीद का पनपना स्वाभाविक है कि भारत के प्रधान मंत्री का सहयोग प्राप्त कर, श्रद्धालु, वफ़ादार, विश्वसनीय, ईमानदार हिंदी संरक्षक, हिंदी प्रेमी के साथ प्रवासी भारतीय तथा भारतवंशी मिलकर हिंदी को उसके पूर्वतर गरिमामय स्थान पर प्रतिष्ठापित करते हुए उसे यू.एन.ओ. की आधिकारिक भाषा बनाने में सफल होंगे, ऐसी मेरी मान्यता है।

यह सर्वविदित है कि जो अपनी मान-मर्यादा की रक्षा स्वयं नहीं करते, दूसरे भी उन्हें मान-मर्यादा नहीं देते। यदि हम अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा का सम्मान नहीं करेंगे तो दूसरे भी उसकी उपेक्षा करेंगे। अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा के प्रति हमारा सम्मान न केवल हममें स्वाभिमान जगाएगा वरन् उस स्थिति में दूसरे देश भी न केवल हमारी भाषा का सम्मान करेंगे बल्कि इस भाव के प्रति वे हमें भी अच्छी नज़र से आँकेंगे।

किसी भी भाषा का ज्ञान स्वयं में बुरा नहीं होता वरन् अच्छा ही होता है। ज्ञान-भंडार में जितनी ही वृद्धि हो उतनी ही कम है। ज्ञान समेटने में एक जीवन क्या अनेक जीवन कम पड़ जाएँगे। यह शाश्वत सत्य है। परंतु जब स्वभाषा और परभाषा का प्रश्न आता है तब यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि स्वभाषा, राष्ट्रभाषा को प्राथमिकता

दी जाए, प्रथम स्थान दिया जाए व परभाषा, विदेशी भाषा को समय व परिस्थितिनुसार जितना ग्रहण कर सकें करें।

अब बात आती है प्रवासी साहित्य पर तो मेरे विचार से साहित्य साहित्य होता है, चाहे वह किसी देश या काल का हो। साथ ही साहित्य देश और काल से परे भी होता है। जहाँ देश, काल का साहित्य पर प्रभाव अवश्यंभावी है, वहीं साहित्य कालातीत भी होता है, सार्वभौमिक भी होता है।

जहाँ सभी साहित्य कालजयी नहीं होते हैं वहीं साहित्य पर एक बात और यह लागू होती है कि साहित्य की अनेकानेक अनगिनत विचारधाराएँ हैं और उसके पाठक भी अनगिनत हैं। प्रत्येक पाठक की रुचि साहित्य के हर क्षेत्र में नहीं होती। जहाँ साहित्य की भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ हैं, वहीं पाठक की भी भिन्न-भिन्न रुचियाँ हैं। जो साहित्य एक पाठक को लुभाता है, आवश्यक नहीं कि वही दूसरे पाठकों को भी उसी प्रकार आनंदित कर आलोड़ित करे। अत: प्रवासी साहित्य को भी उसी दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। जहाँ वह कुछ पाठकों को अच्छा लगेगा, स्तरीय लगेगा या उच्च स्तरीय लगेगा वहीं कुछ को नहीं भी। इसका मापदंड पाठक व आलोचक—दोनों के द्वारा ही स्थापित होगा। और यह भी संभव है कि दोनों के दृष्टिकोण में अंतर हो। पाठक अपना मापदंड चुनें और आलोचक अपना। तथापि जहाँ तक साहित्यकार का प्रश्न है वह अपनी मन:स्थिति प्रकट करता है। साहित्यकार पर देश, काल की परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है और वह इन सबको स्वयं में पचाकर, अंतर में उनका विवेचन कर अपनी मनोदृष्टि से उन्हें प्रस्तुत करता है।

साहित्य साहित्यकार की दिमागी ऐय्याशी नहीं है। साहित्य में साहित्यकार की संपूर्ण विवेकधर्मिता, अनुभव, संवेदनशीलता, उसका संपूर्ण जीवन-यथार्थ प्रतिबिंबित होता है। साहित्य सुख-दुख, उत्थान-पतन, समस्या-समाधान की गाथा है। साहित्य साहित्यकार द्वारा अनुभूत सामाजिक कार्यकलापों, विचारधाराओं के मंथन से उत्पन्न हुए 'क्यों' और यथाशक्ति उसका समाधान 'इसलिए' ढूँढ़ने की प्रक्रिया है। 'क्यों' से आरंभ होकर संभवत: 'इसलिए' पर समाप्त होनेवाली वस्तु का नाम साहित्य है। प्रश्नों के जंगल काटकर उनके उत्तर, उनके समाधान की खेती करना, जीवन का यथार्थ, उसकी सार्थकता पहचानने के प्रयास की उपलब्धि ही साहित्यकार का लक्ष्य होना चाहिए। साहित्य जीवन से छनकर आता है, जीवन से प्राप्त होता है और जीवन साहित्य से गौरवान्वित होता है।

जीवन के यथार्थ का वर्णन, कल्पना के अश्व पर मुक्त गगन में विचरण, दोनों का मंगलमय सामंजस्य, धरा के किसी भी क्षेत्र को यथार्थवादी व साथ ही आह्लादकारी बना देता है। साहित्य विश्व के यथार्थ की व्याख्या करता है और जीवन को आनंद के उच्चतम शिखर; परमानंद तक पहुँचाने की क्षमता रखता है। किसी भी देश के महान साहित्यकारों के साहित्य ने ही उस देश को वह उच्चता प्रदान की है जिस पर वह आज शीर्षस्थ है। विश्व के निर्माण में हरेक देश के महान साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। उसके हास में, रुदन में, पीड़ा में, करुणा में, ज्ञान-विज्ञान में, उसकी हर अभिव्यक्ति में, विश्व-व्यापी ज्ञानमयी, संवेदनाओं को जगाने वाली, कल्याणकारी अनुभूति भरी हुई है जिसके प्रति हमें आभार की भावना से अभिभूत होना है न कि 'आभार' से 'आ' उपसर्ग निकालकर केवल उसे 'भार' बनाना है। व्यास और वाल्मीकि जैसे ऋषियों ने सकल विश्व को ऐसा विचार दान दिया जो न केवल भारत की अमूल्य थाती बना वरन् जिसके साहित्य ने विश्व को अनुगूंजित किया। साहित्य देश, काल की सीमा से परे है, यह प्रमाणित कर दिया।

बाह्य संसार में जो कुछ दृष्टिगत होता है, साहित्यकार उसे आत्मसात् कर, विचार और भावना की उस परत पर चढ़ा, उसे साहित्य के रूप में परोसता है। साहित्यकार उद्‌गाता है। सर्वोच्च साहित्य साहित्यकार की सोच, उसकी अनुभूति, उसकी भावना का वह समुच्चय रूप है जो एक मन से दूसरे मन, एक काल से दूसरे काल में व्यक्तियों की भावना और बुद्धि-विवेक को प्रभावित करता हुआ सतत् प्रवाहित होता रहता है, उनमें अपनी जीवंतता से जीवित रहता है। नव अर्जित ज्ञान पुराने ज्ञान को झुठला सकता है, नव आविष्कार पुराने आविष्कार की उपादेयता कम कर सकता है परंतु हृदय-स्पंदित भाव पुराने नहीं होते। हृदयग्राही भाव साहित्य को अमरत्व प्रदान करते हैं।

हृदय अंत: व बाह्य दो भाव-धाराओं से प्लावित होता है। अंत:स्थल से अनुभूत बाह्य भाव जब अंतरस्फूर्त हो बाहर निकलते

हैं तो बाहर की ओर जानेवाली भाव-धारा में विश्व के अंतिम छोर तक जाने की सामर्थ्य होती है। स्वयं की ओर आने वाले भावों को उनकी गहराई में पैठ तथा साथ ही उन्हें उनकी सूक्ष्मता में आत्मसात् कर, सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को भी इस विस्तार से दिखाना कि विस्तारित अवस्था में भी वह सूक्ष्म-तत्व सहस्त्राब्दियों पश्चात् भी विकृत न हो, पारंगत साहित्यकार की विशेषता है।

साहित्य में सौंदर्य-बोध भी आवश्यक है। जैसे का तैसा लिख देना अधिकांश पाठक-वर्ग को आकर्षित करने की क्षमता नहीं रखता। सत्य में जब सौंदर्य स्थापित होता है तब साहित्य का वह मंगलमय रूप कला का रूप धारण कर लेता है और तब वह आनंदस्वरूप साहित्य सत्यं-शिवं-सुंदरं रूप से जनमानस के हृदयों को आलोड़ित कर काल-कालांतर में अमर हो जाता है।

जैसे वीरों के लिए कहावत है कि वे अपना मस्तक सदा हथेली पर लिये घूमते हैं। वास्तव में, वैसे ही साहित्यकार भी अपनी उँगलियों के पोरों पर अपने मस्तक के सभी विचार धारण करते हैं और उन्हें अपनी कलम द्वारा समाज से परिचित कराते हैं। साहित्यकार तो बस यह देखता है कि उसका मस्तक यथार्थ रूप से उसकी कृति में उतरा है या नहीं। वह एक स्वस्थ विचाराधीन परिधि में सृजन करता है। उसके पास सबसे बड़ा शस्त्र उसकी कलम है—

एक अदद छोटी-सी
महज़ चार-छ: इंच की
न रूप की न रंग की
पर है बड़े काम की
क्या ही कमाल की
बिन मोल की, अमोल
यह कलम।

करती है पुरातन सुरक्षित
इतिहास के पन्नों पर
लिखती है भविष्य
मानव के मानस पर
महत्वहीन-सी दिखने वाली
नाचीज़, कुछ भी न लगने वाली, सब कुछ, सर्वोच्च
यह कलम।

इसकी सुई की नोंक-सी मुखाकृति
कर देती है बड़े-बड़ों का मुख बंद
कोरे कागज़ को रँगने वाली
श्वेत पर श्याम की लड़ियाँ पिरोने वाली
है बड़ी ही प्रभावशाली
चबाती है चने भारी-भरकमों से
बिन वज़न की, वज़नवाली
यह कलम।

है इसकी शक्ति अपरंपार
बना देती है राजा से रंक
और रंक से महान
बन जाती है किसी के लिए पतवार
और छोड़ देती है किसी को बीच मझधार
शक्तिहीन-सी लगने वाली, सशक्त
यह कलम।

कभी चढ़ाती है आसमान की ऊँचाइयों पर
विहंगमित गगन पक्षी-सी
पर कब गिरा दे धरा पर
डोर कटी पतंग-सी
छूने गहराइयाँ पाताल की
जानती है केवल यही
सामान्यता की प्रतिमूर्ति
पर हर दाँव-पेचों से भरी
यह कलम।

है यह ऐसा हथियार
नहीं इसका सानी कोई
कभी बन जाती है तलवार
करती है ऐसा वार
हो जाता है दुश्मन क्षत-विक्षत
पर दिखती नहीं एक भी रक्त-बूँद टपकती
कभी दागती है सीने पर गोली-सी
और कभी बन जाती है अणु बम

हिला देती है मानव–मन
दहला देती है धरती गगन
तुच्छ–सी दिखने वाली, महान
यह कलम।

गुलाब का उपवन है
तो काँटों का सघन वन है
साहित्य, कला की खान है
तो विज्ञान की जान है
अकिंचन का धन है
बुद्धिजीवियों की सम्पत्ति है
गंधहीन–सी महसूस होने वाली
सुगंधों से अभिभूत, सुवासित
पूँजीविहीन दैन्य–सी दिखने वाली
कुबेर की सकल पूँजी है
यह कलम।

कभी रुलाती है तो कभी हँसाती है
रोष के थपेड़ मार झंझावत लाती है
करुणा से कातर हो, ममता के अंक में छुपाती है
जीवन में षटरस का मज़ा चखाती है
स्वादहीन, बेस्वाद लगने वाली, स्वादों से परिपूर्ण
यह कलम।

है जितनी ही निर्मम
उतनी ही निर्मल
न किसी की सगी
और न किसी से दुश्मनी
करती नहीं है लगा–लिपटी
अपनी ही बात
कहती है निरपेक्ष
और तब बन जाती है वंदनीय
यह कलम,
आराध्य, पूजनीय यह कलम
आराध्य, पूजनीय यह कलम।

लेखक का सबसे बड़ा गुण संवेदनशीलता है, चाहे वह किसी भी देश का हो, किसी भी देश में हो या प्रवासी हो। दूसरों के सुख–दुख को अनुभूत करने की क्षमता और संप्रेषणीयता अच्छे लेखक की अनिवार्यता है। कोई भी साहित्य, कहीं का भी साहित्य, देशकाल की परिस्थितियों से बनता है, उससे अछूता नहीं रह सकता। विषयवस्तु पर सामाजिक, सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव अवश्यंभावी है। हर देश की समस्याएँ उसकी परिस्थितियों से, उसके वातावरण से उत्पन्न होती हैं। यद्यपि समस्याएँ सर्वदेशीय, सर्वकालिक हैं पर हर देश की समस्याओं का स्वरूप देशकाल की स्थितियाँ निर्धारित करती हैं। अत: उनमें केवल सामयिक सामाजिक अंतर होता है। साहित्य का ताना–बाना देशकाल की परिस्थितियों से ही बुना जाता है। उसका गठन उससे ही होता है। यह अपरिहार्य है। क्या देशकाल का प्रभाव पड़े बिना साहित्य लिखा जा सकता है!

आपका समाज, आपका रहन–सहन, आपकी आयु का विकास आपके व्यक्तित्व के विकास की एक ऐसी अवस्था है जो आपके व्यवहार में परिलक्षित होती है, होनी भी चाहिए। आप समाज से कटकर नहीं रह सकते। समाज का प्रभाव आप पर न पड़ना अस्वाभाविक है। आपके व्यक्तित्व के विकास की यह माँग है।

कोई भी साहित्यकार–गद्यकार या कवि, जब तक समाज में रहते हुए समाज की वर्तमान समस्याओं को परिलक्षित नहीं करेगा तब तक वह उस समाज का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में न वह समाज के साथ है और न समाज ही उसके साथ। समाज एक महासमुद्र की भाँति है जिसमें मानव–रूपी जलयान कभी अपनी अबाध गति से चलते रहते हैं तो कभी दिशाभ्रष्ट हो भटक जाते हैं। दिशाहीन होने पर स्थिरता से वहाँ खड़ा 'लाइट हाउस' उन्हें दिशा प्रदान करता है, विध्वंस होने से बचा लेता है। साहित्यकार भी समाज–रूपी समुद्र में स्थापित प्रकाश–स्तंभ है। समाज भी अपने साहित्यकार से दिशा–निर्देश की अपेक्षा रखता है। समाज की माँग है कि साहित्यकार तात्कालिक परिस्थितियों का आकलन कर, यथोचित मूल्यांकन कर, उससे ऊपर उठ, साहित्य का निर्माण करे।

हम पुन: इस प्रश्न पर पहुँचते हैं कि क्या साहित्य का वर्गीकरण न्यायोचित है? आवश्यक है? सरलीकरण के लिए वर्गीकरण करना

एक बात है किंतु उसे मज़बूती से एक खेमे में बाँधना अलग बात है।

यदि कोई क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, दलित आदि समस्याओं को अनुभूत कर, उससे अभिभूत हो, उन पर लिखता है तो वह दलित साहित्य माना जाएगा या केवल साहित्य? यदि कोई कवि नारी की संवेदनाओं को अनुभूत कर नारी विषयक कविता लिखता है तो क्या वह नारी साहित्य है या केवल साहित्य? साथ ही ऐसी स्थिति में शंकर जी की तरह अर्द्धनारीश्वर की स्थिति में पहुँचना महानता नहीं होगी क्या!

और यदि हम वर्गीकरण कर ही रहे हैं तो हम अपने को प्रवासी साहित्य, नारी साहित्य, दलित साहित्य आदि तक ही क्यों सीमित रखें, क्यों न क्षत्रिय साहित्य, ब्राह्मण साहित्य, वैश्य साहित्य, जातिभेद साहित्य, रंगभेद साहित्य आदि में विभाजित होते चले जाएँ!

इस रोचक मुद्दे को यहीं समाप्त करते हुए हम प्रवासी साहित्य पर अधिकतर लगाए गए 'नॉस्टेल्जिया' के आरोप पर आते हैं।

प्रवासी साहित्य पर आरोप लगाया जाता है 'नॉस्टेल्जिया' का विषाद, उदासी, खिन्नता, रोने-धोने का, भूतकाल को तरजीह देने का। प्रवासी साहित्य पर 'नॉस्टेल्जिया' का जो आरोप लगाया जाता है उन आरोपों के प्रति दो प्रश्न उभरते हैं—एक यह कि क्या ऐसी सोच वाले व्यक्तियों ने संपूर्ण प्रवासी साहित्य को पढ़ा है? और क्या ऐसे आलोचकों ने हर प्रवासी साहित्यकार की हर रचना में बस 'नॉस्टेल्जिया' ही पाया है? कुछ रचनाओं में यह संभव है और स्वाभाविक भी है। कोई भी साहित्यकार जिस देशकाल में पला-बढ़ा है उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता और यह प्रभाव उसके प्रवासी काल में तुलनात्मक प्रवृत्ति के रूप में यदा-कदा परिलक्षित होना स्वाभाविक है।

लेखक का सबसे बड़ा गुण संवेदनशीलता है, चाहे वह किसी भी देश का हो, किसी भी देश में हो या प्रवासी हो। दूसरों के सुख-दुख को अनुभूत करने की क्षमता और संप्रेषणीयता अच्छे लेखक की अनिवार्यता है। कोई भी साहित्य, कहीं का भी साहित्य, देशकाल की परिस्थितियों से बनता है, उससे अछूता नहीं रह सकता। विषयवस्तु पर सामाजिक, सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव अवश्यंभावी है। हर देश की समस्याएँ उसकी परिस्थितियों से, उसके वातावरण से उत्पन्न होती हैं। यद्यपि समस्याएँ सर्वदेशीय, सर्वकालिक हैं पर हर देश की समस्याओं का स्वरूप देशकाल की स्थितियाँ निर्धारित करती हैं। अतः उनमें केवल सामयिक सामाजिक अंतर होता है। साहित्य का ताना-बाना देशकाल की परिस्थितियों से ही बुना जाता है। उसका गठन उससे ही होता है। यह अपरिहार्य है। क्या देशकाल का प्रभाव पड़े बिना साहित्य लिखा जा सकता है!

एक और बात विचारने की है कि क्या प्रवासी साहित्यकार से यह अपेक्षा न्यायसंगत, तर्कसंगत है कि वह अपने पुराने अनुभवों को अपने जीवन की स्लेट से पूर्ण रूप से धो-पोंछ कर, सभी पुराने प्रसंगों, संदर्भों को मिटा कर प्रवासी साहित्य की रचना करे! यदा-कदा रचना की संदर्भित विषयवस्तु पर या तुलनात्मक विषयवस्तु पर 'नॉस्टेल्जिया' का प्रभाव तो दिखेगा ही। व्यक्ति उससे अपने को काटकर नहीं रह सकता। संस्कृति की जड़ें आपको पकड़ती हैं, जकड़ती हैं।

और फिर यदि प्रवासी साहित्य को 'नॉस्टेल्जिया' साहित्य की संज्ञा दी जाती है तो जब भारत में साहित्यकार अपने बचपन की बातें, अपने देश, काल की पुरानी बातें वर्णित करते हैं तो उन्हें क्या कह कर परिभाषित किया जाएगा? क्या उसे भी 'नॉस्टेल्जिया' साहित्य की श्रेणी में रखा जाएगा?

अब आती है बात भाषा की। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि साहित्य पर देश, काल की परिस्थितियों का प्रभाव अवश्यंभावी है, वहीं यह भी सत्य है कि साहित्य उस देश की भाषा के प्रभाव से भी अछूता नहीं रह पाता। प्रवासी साहित्यकार जहाँ तक संभव होता है (अपवाद संभव हैं) हिंदी का प्रयोग करता है, उसमें कभी-कभी आंचलिक भाषा की भी छौंक देता है

पर साथ ही साथ विशिष्ट परिस्थितियों में उस देश के कुछ विशेष शब्द जो हिंदी में नहीं हैं, उनका समावेश रचना की अनिवार्यता बन जाता है।

एक बात और है। किसी भी प्रवासी साहित्यकार की रचनाधर्मिता को उसकी संपूर्णता में ही देखा जाना चाहिए। अच्छे-से-अच्छे साहित्यकार की हर रचना कालजयी नहीं होती। साहित्यकार हर सृजन की प्रसव-पीड़ा शिद्दत से महसूस करता है पर वह यह भी जानता है कि हर प्रसव-पीड़ा का परिणाम एक जैसा नहीं होता। अत: प्रवासी साहित्यकार की एक-आध रचना पढ़कर उसे खारिज करना न्यायसंगत न होगा। संभवत: दुर्भाग्यवश कहीं आपके हाथ में उनकी कम वज़नी रचना न पड़ गई हो।

जहाँ कुछ बड़े महान साहित्यकारों की सृजनात्मकता 'पुलाव' की तरह है जिसके चावल का हर दाना एक जैसा है, वहीं सामान्यत: कुछ साहित्य थोड़ा खिचड़ी-सा भी होता है जहाँ चावल का कोई दाना थोड़ा कड़क तो कोई दाना थोड़ा नरम।

एक बार गोकुलेश्वर जी ने फ़िराक़ साहब के संदर्भ में कहा था कि एक बार वे अपने एक मित्र के पीछे जूता लेकर दौड़े जा रहे थे। पूछने पर कि माजरा क्या है, वे बोले, ''यह मेरे कम वज़नी शेर पर भी दाद पर दाद दिए जा रहा है।'' तो यदि फ़िराक साहब का कोई शेर कभी कम वज़नी हो सकता है तो प्रवासी साहित्य में भी कभी हलकापन आ सकता है।

हाँ! यह भी न्यायोचित न होगा कि आप बारंबार साहित्यकार को 'संशय-लाभ' देकर स्वयं को यंत्रणा का भागी बनाते रहें।

बस न्यायाधीश की कुरसी पर बैठ, प्रवासी साहित्य पर निर्णय देने में अत्यधिक जल्दबाज़ी न कर, कुछ धैर्यपूर्वक उसका यथोचित मूल्यांकन ही प्रवासी साहित्य का न्यायोचित प्राप्य है।

प्रवासी साहित्य की एक समस्या यह भी है कि वह भारत में या विश्व के विभिन्न कोनों में पहुँच नहीं रहा है, उपलब्ध नहीं हो रहा है। प्रवासी साहित्य की सीमित उपलब्धता के कारण उस पर सीमित प्रतिक्रिया ही संभव हो सकती है, जो हो रही है।

कहा जाता है कि प्रवासी साहित्य भारतीय साहित्य की तरह समृद्ध नहीं है। एक स्तर पर यह सच हो सकता है पर साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि भारतीय साहित्य के समय का अंतराल प्रवासी साहित्य की तुलना में अति विस्तृत है। अत: इस विस्तार को दृष्टि में रखते हुए दोनों साहित्यों की समृद्धि की परस्पर तुलना स्वयं में तर्कसंगत नहीं है।

प्रवासियों द्वारा लिखे साहित्य का निरपेक्ष भाव से अध्ययन-मनन हो, किसी विशेष विचारधारा के अधीन होकर नहीं और उस स्थिति में प्रवासी साहित्य का मूल्यांकन हो, तभी मूल्यांकन सार्थक होगा।

भारत के राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणव मुखर्जी ने स्वतंत्रता दिवस के अपने वक्तव्य में 'सिद्धिर्भवति कर्मजा' उक्ति का उद्धरण दिया। अत: हिंदी के उत्थान के प्रति भी यदि हम सभी हिंदी प्रेमी-भारतीय, प्रवासी भारतीय एवं भारतवंशी इस धारणा को लेकर चलते हुए प्रगति-पथ पर बढ़ें कि 'सफलता कर्म से ही उत्पन्न होती है' तो उन्नति का शिखर कैसे न मिलेगा!

कनाडा
sneh.thakore@rogers.com
http://www.Vasudha1.webs.com

19 मॉरीशस में हिंदी सर्वोत्कृष्ट साहित्य सृजन

• *श्री इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ*

हिंदी प्रेमी पूर्वज

भारत के बाहर ऐसे अनेक देश हैं, जैसे मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनिदाद जहाँ भारतीय मूल के लोग गिरमिटिया मज़दूर के रूप में खेतों में काम करने के लिए लाए गए थे। वे बेचारे दुखों के मारे थे, इस प्रलोभन के चंगुल में फँस गए कि वहाँ जाने से उन्हें सुखी जीवन यापन की हर सुविधा उपलब्ध होगी और उन देशों में जाने के लिए अपनी मंजूरी दे दी। वे प्राय: उन गरीब इलाकों के थे जहाँ पढ़ाई-लिखाई की सुविधाएँ न थीं या तो लोग कम पढ़े-लिखे थे। वे यहाँ धर्म-प्रचार, भाषा-प्रचार व संस्कृति के प्रसार के उद्देश्य से नहीं आए थे। बस उन्हें तो जीविकोपार्जन की धुन लगी थी। पर यहाँ आने पर उनकी सारी सुखद परिकल्पनाएँ चूर-चूर हो गईं जब गोरे मालिकों द्वारा दारुण यातनाएँ मिलीं, सोने के बदले कोड़ों की मार लगी। 'सोनवा के खातिर भइली मिरिच देशवा गलि गइलैन सोनवा सरीर' उनके हृदय की करुण वंदना उनके शब्दों में उद्‌भाषित होती है।

हमारे बहुसंख्यक पूर्वज बिहार से आए थे। अल्पसंख्यक भारतीय महाराष्ट्र, बंगाल, उड़िसा, मद्रास, आंध्र प्रदेश के प्रांतों से। भोजपुरी-भाषी बिहारियों के संपर्क में आने से भोजपुरी जनसंपर्क की भाषा बन गई। भोजपुरी-भाषी हिंदी प्रेमी थे। भोजपुरी और हिंदी तो बहनें हैं। हिंदी भोजपुरी में एक-दूसरे शब्दों का बाहुल्य हैं। क्रियात्मक प्रयोग के भेद को हटा दिया जाए तो भोजपुरी हिंदी में बहुत अंतर नहीं होगा। अतएव जिन्हें देवनागरी आती थी भाषा-प्रचार को ध्यान में रखकर शाम व रात के समय बैठकाओं में हिंदी पढ़ाने लगे। वे फ़कहरा, वर्तनी, पहाड़ा, बारहखड़ी, वर्णमाला का ज्ञान अर्जित करते थे। बच्चे ही क्या? बड़े-बूढ़े भी पढ़ते थे।

उस समय पढ़ाने की कोई वैज्ञानिक शिक्षण विधि नहीं थी। शिक्षा आरंभ करने से पहले धार्मिक प्रवृत्ति को प्रमुखता देते थे।

माता व गुरु के पाँव पूजते थे। पढ़ाई का प्रारंभ ईश-वंदना से होता था, यथा ''राम गति देहू सुमती, सर सर सर सर सनझा कारी...।''

- मॉरीशस के वरिष्ठ बहुआयामी साहित्यकार, कवि, कथाकार, निबंधकार, नाटककार, इतिहासकार तथा संपादक के रूप में आप सुप्रसिद्ध हैं।
- मॉरीशस हिंदी लेखक संघ के मान्य प्रधान तथा महामंत्री भी रह चुके हैं और विद्या भवन के संस्थापक तथा संचालक भी।
- 'बाल-सखा' पत्रिका के प्रधान संपादक थे।
- 'प्रकाश' शीर्षक से पाक्षिक रेडियो कार्यक्रम चलाते हैं और इससे पूर्व 'गीत गरिमा' शीर्षक से गीत-संगीत से भरपूर साप्ताहिक कार्यक्रम चलाते थे।
- सरकारी स्कूल में डीप्यूटी हेडटीचर थे।
- भारत, फ़ीजी, नोर्वे तथा कनाडा की 15 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।
- आप हिंदी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, भोजपुरी और क्रियोल भाषाओं में लिखते हैं। क्रियोल और भोजपुरी में लिखे इनके कई नाटकों का मंचन भी हुआ है।
- संप्रति सेवानिवृत्त हो चुके हैं, लेकिन अब भी सक्रिय लेखन कर रहे हैं।
- विदेशों में हिंदी तथा आर्य समाज और हिंदी विश्व संदर्भ में ग्रंथों के लिए, आपको अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई और भारत में प्रकाशित 'हिंदी विश्व गौरव ग्रंथ' में आप को स्थान मिला है।
- सन् 2010 में आप क्रियोली में मंचित राष्ट्रीय स्तर पर श्रेष्ठ नाटककार घोषित हुए।
- समाज सेवा तथा हिंदी सेवा के लिए मॉरीशस सरकार तथा सनातन धर्म टेंम्पल्स फेडेरेशन, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य सभा व हिंदी सेवा संस्थान द्वारा आपको सम्मानित किया गया।
- हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित निबंध संग्रह प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार स्वरुप आपको पं. उमा शंकर गिरजानंद पुरस्कार प्राप्त हुआ था और 2009 में आपको लिखे तथा मंचित नाटक के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मंत्रालय द्वारा अवॉर्ड प्राप्त हुआ।

पाठों में स्वर-व्यंजन तथा मात्राएँ सिखाई जाती थीं। वर्णमाला की पहचान हो जाने पर वे धीरे-धीरे शब्द एवं वाक्यों को पढ़ने में समर्थ हो जाते थे। भोजपुरी शिक्षा का माध्यम था। सब लोग भोजपुरी समझते थे तो समझाने में कठिनाई नहीं होती थी। धीरे-धीरे वे हिंदी पुस्तकें पढ़ने लगे थे। इस तरह से हिंदी के विकास में भोजपुरी का अच्छा योगदान रहा। पर हिंदी के विद्वान बनने की प्रक्रिया लंबी रही। आज जब मॉरीशस में हिंदी संरचना का इतना शीघ्र विकास हुआ और उच्च कोटि की सृजनात्मक साहित्यिक रचनाएँ होने लगी हैं तो कुछ आश्चर्य सा लगता ही है, पर इसके पीछे बड़े त्याग और साहित्य-साधना की प्रक्रिया रही है।

हिंदी प्रचार में रामायण का योगदान

हमारे पूर्वज अर्द्धशिक्षित थे पर धर्मनिष्ठ और भाषानुरागी थे। स्थान-स्थान पर कथा-वार्त्ता होती थी, हनुमान चालीसा का पाठ होता था। वे रामायण गान किया करते थे जैसे कि रामचरितमानस के दोहे, चौपाइयाँ उन्हें कंठस्थ थीं और इतने भाव-विभोर होकर गाते थे कि क्या कहा जाए? झाल-ढोलक, साज़ों की मधुर झंकार से वातावरण मोहक हो जाता था। इस माध्यम से हिंदू धर्म, संस्कृति तथा भाषा मुखरित हो जाती थी और हिंदी के प्रति उनका अनुराग बढ़ता जाता था। रामायण मंडलियाँ स्थापित होती गईं और रामायण सत्संग व रामायण गान दिनोंदिन लोकप्रिय होते गए तथा उनका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि आज हमारे देश में सैकड़ों रामायण मंडलियाँ हैं एवं रामायण गान व रामायण गान प्रतियोगिताएँ आयोजित होती रहती हैं तथा विजेताओं को मॉरीशस सरकार के संस्कृति मंत्रालय की ओर से भारत में जाकर रामायण गान करने का अवसर दिया जाता है। रामायण पर आधारित कई नाटक खेले जाते हैं, जिनमें कलाकारों को भाग लेने का मौका मिलता है। इस प्रकार हिंदी के प्रचार में रामायण का महत्वपूर्ण सहयोग मिला है।

हिंदी फ़िल्मों का प्रभाव

मॉरीशस में अथवा अन्य देशों में हिंदी को लोकप्रिय बनाने में हिंदी फ़िल्मों का योगदान नकारा नहीं जा सकता। सन् 2013 में हिंदी फ़िल्मों का शताब्दी वर्ष मनाया गया तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि हिंदी फ़िल्में हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने में पूरी एक शताब्दी से अपना निरंतर सहयोग दे रही है। खुद भारत के लोगों ने हिंदी फ़िल्मों से प्रभावित होकर हिंदी सीखी। भारत के अनेक प्रांतों के लोग हिंदी फ़िल्मों में काम करते हैं और शुद्धोच्चारण के साथ हिंदी बोलते हैं। कई लोग हिंदी फ़िल्मों के डायलॉग समझने व खुद डायलॉग बोलने के लिए हिंदी सीखते हैं। हिंदी फ़िल्मी गानों की लोकप्रियता अवर्णनीय है। दुनिया के प्राय: सभी देशों के प्रसारण केंद्रों से हिंदी गाने प्रसारित होते हैं। गायकों के नाम सभी के होठों पर रहते हैं। बहुत से ऐसे संगीत प्रेमी हैं जो अपने प्रिय गायकों की नकल करते हैं और ऐसे बहुत से गीत-लेखन शौकीन हैं जो उन फ़िल्मी गीतों के बोल व तर्ज़ के अनुसार रचना करते हैं। आज तो टेलीविज़न के माध्यम से भी घर बैठे बाल-बच्चे, युवा, वृद्ध सब हिंदी फ़िल्मों, सीरियलों के संवाद तथा गीतों का आनंद उठाते हैं जिनमें धार्मिक, सांस्कृतिक वार्ताएँ भी सम्मिलित हैं। कई क्रिश्चयन हैं जो श्रेष्ठ हिंदी गायक हैं। यहाँ मैं एक प्रसंग जोड़ना चाहता हूँ। सन् 1994 में मॉरीशस में चौथे विश्व सम्मेलन में भाग लेने भारत से आए हुए प्रतिनिधि, 'माधुरी' पत्रिका के संपादक श्री अरविंद कुमार ने अपने भाषण में यह बात कही—

''सिनेमा आज की सदी का सबसे सशक्त संचार माध्यम है। सिनेमा के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का जो द्वार खुलता है वह साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं से भी कहीं अधिक आगे है।''

''मैं यहाँ (मॉरीशस) आकर देखता हूँ कि भारत को दूसरे देशों से जोड़ने वाली जो चीज़ है और उन लोगों से जोड़ने वाली जो चीज़ प्रवासी होकर के यहाँ के विदेशों में आ गई, वह हिंदी फ़िल्में हैं। यहाँ मुझे पंकज मल्लिक के गाने सुनने को मिले, सहगल के गाने सुनने को मिले, घरों में लता के गाने सुनने को मिले, सुरैया के गीत मैंने यहाँ सुने, नौशाद यहाँ थे, शंकर जयकिशन यहाँ थे। ये सब गीत जो हमारी फ़िल्मों के गीत हैं, दूसरे देशों के लोगों को, भारतीयों को एक भावनात्मक स्तर पर जोड़ देते हैं। जो बात बहुत सारी पत्रिकाओं में नहीं कही जा सकती, जो बड़े-बड़े लेखों में नहीं कही जा सकती उसे हम काफ़ी प्रभावशाली ढंग से गीतों

के माध्यम से, फ़िल्मों के माध्यम से कह सकते हैं। ये गीत/फ़िल्में एक ऐसी संचार-व्यवस्था है जो निश्चय ही आदमी को आदमी से जोड़ती है। इसीलिए मौजूदा परिवेश में इनकी प्रासंगिकता विश्वव्यापी है।''

मॉरीशस में पहली हिंदी फ़िल्म 'बंबई मोहिनी' सन् 1936 में प्रदर्शित की गई थी। उसके बाद 'वीर अभिमन्यु'। भारत में बनी पहली मूक फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र' और पहली बोलती फ़िल्म 'आलम आरा' भी प्रदर्शित हुई थी।

हिंदी संस्थाओं का हिंदी प्रचार

आर्य सभा और हिंदी प्रचारिणी सभा

आर्य सभा और हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना से मॉरीशस में खड़ी बोली का प्रचलन हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती का 'सत्यार्थ प्रकाश' खड़ी बोली के प्रारंभिक काल का ग्रंथ है जिसकी लोकप्रियता विश्व भर में है और जिसका अध्ययन कर बहुत से विद्वान खड़ी बोली हिंदी में पारंगत हुए। मॉरीशस में भी 'सत्यार्थ प्रकाश' आर्य जगत में खड़ी बोली के प्रचार का मूलाधार बना।

मॉरीशस में सन् 1906 में संस्थापित आर्य समाज ने वैदिक धर्म व वैदिक विद्या का प्रचार तो किया ही साथ-साथ हिंदी बोलने, हिंदी पढ़ने-लिखने पर विशेष ध्यान दिया। आर्य समाज हिंदी को आर्य भाषा कहता है। आर्य प्रचारक पं. काशीनाथ किष्टो गाँव-गाँव, शहर-शहर जाकर हिंदी प्रचार करते थे, आर्य समाज शाखा स्थापित करवाते थे और हिंदी पाठशालाएँ खुलवाते थे। लड़कियों को पाठशालाओं में पढ़ने के लिए भेजा जाने लगा। इससे पहले लड़कियों को पढ़ने नहीं दिया जाता था।

आर्य सभा द्वारा हिंदी पत्र 'आर्य पत्रिका' सन् 1911 में निकलने लगा। भारत से विद्या विनोद से विद्या वाचस्पति तथा शास्त्रीय परीक्षाओं का आयोजन हुआ। अब तो आर्य सभा द्वारा डी.ए.वी. कॉलेज भी चलता है, जहाँ हिंदी पढ़ाई अनिवार्य है।

सन् 1926 में स्थापित हिंदी प्रचारिणी सभा ने हिंदी पढ़ाई और साहित्यिक हिंदी परीक्षाओं के आयोजन के लिए बहुत महत्वपूर्ण कार्य किए। प्रयाग, इलाहाबाद की साहित्यिक परीक्षाओं जैसे परिचय, प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा का आयोजन होने लगा और ज़ोर-शोर से छात्रगण इन परीक्षाओं में भाग लेने के लिए तैयारी करने लगे। सभा द्वारा व्याकरण-सम्मत शुद्ध हिंदी के पठन तथा लेखन के लिए उल्लेखनीय कार्य हुए। छात्रों, पाठकों, शिक्षकों में हिंदी साहित्य अध्ययन के लिए रुझान उत्पन्न हुआ। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त वे विविध साहित्यिक विधाएँ जैसे कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, जीवनी, इतिहास की पुस्तकें बड़े चाव से पढ़ने लगे और तो और लेखन की ओर भी उनकी अभिरुचि बढ़ी तथा लेखन क्षेत्र में पदार्पण किया। सभा द्वारा 'दुर्गा' और 'नव जीवन' साहित्यिक पत्रिकाएँ निकलती थीं जिनमें लिखते रहने से उनकी लेखन क्षमता बढ़ी और कई लेखक, कवि उत्पन्न होने लगे।

हिंदी लेखक संघ : एक साहित्यिक हिंदी संस्था

मॉरीशस में आर्य सभा एक धार्मिक हिंदी संस्था है और हिंदी प्रचारिणी सभा हिंदी प्रचारक संस्था। सन् 1961 से पूर्व कोई विशेष साहित्यिक हिंदी संस्था नहीं थी। हिंदी की साहित्यिक पढ़ाई हो रही थी। उभरते लेखकों में साहित्यिक रचनाएँ करने की ललक जगी थी। वे भारतीय लेखकों, कवियों की रचनाओं से अवगत हो गए थे और चाहते थे कि वे भी अपनी अर्जित प्रतिभा को रचनाओं में व्यक्त करें। इस ओर कवि श्री मुनीश्वरलाल चिंतामणि का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने देश के लेखकों/लेखिकाओं को साहित्य सृजन के लिए एक मंच पर लाने के उद्देश्य से 'हिंदी लेखक संघ' की नींव डालने के लिए शनिवार 9 दिसंबर, 1961 को एक बैठक लगाई और उसी रोज़ नेओ कॉलेज, राजधानी पोर्ट लुई में उसकी स्थापना हुई। आचार्य बालमुकुंद द्विवेदी मान्य प्रधान, पं. धर्मवीर घूरा प्रधान, श्री मुनीश्वरलाल चिंतामणि महामंत्री और श्री हनुमान दुबे गिरधारी कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए।

लेखक संघ ने साहित्योत्थान के लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र बनाया और अपने उद्देश्य निर्धारित किए जैसे हिंदी साहित्य के विकास के लिए पुस्तकों-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, संगोष्ठियों, कवि सम्मेलनों, नाटक मंचन, पुस्तक प्रदर्शिनी, लेखन तथा पठन साहित्यिक प्रतियोगिताओं, पुस्तक लोकार्पण समारोह आदि का आयोजन किया और लेखकों के मार्गदर्शन के लिए लेखन कार्यशालाएँ

आयोजित की गईं।

संघ ने अब तक बीस पुस्तकें प्रकाशित की हैं। 'बाल सखा' शीर्षक से बाल पत्रिका निकालता है और 'प्रकाश' शीर्षक से पाक्षिक रेडियो कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, पं. धर्मवीर घूरा और इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ लेखक संघ के जाने-माने कार्यकर्ता माने जाते हैं।

सन् 2011 में संघ ने अपनी स्थापना की 50वीं वर्षगाँठ मनाई थी और अब भी साहित्य सृजन में सक्रिय है।

हिंदी शिक्षण प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर तक

मॉरीशस में अनेक स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं द्वारा हिंदी की पढ़ाई होती रही है जैसे कि आर्य सभा और हिंदी प्रचारिणी सभा। आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा प्राथमिक स्तर से माध्यमिक स्तर तक की पढ़ाई तथा परीक्षाएँ आयोजित करती हैं। सरकार की ओर से इसकी कोई व्यवस्था नहीं थी। भारत से आए एक जाँच कमीशन में महाराज कुँवर सिंह ने मातृभाषा को सरकारी शिक्षा पद्धति में भारतीय भाषाओं को सम्मिलित करने का सुझाव दिया था। एक अंग्रेज राज्यपाल ने सन् 1856 में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का सुझाव दिया था पर उसे कार्यान्वित नहीं किया गया था।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में सरकारी प्राथमिक स्कूलों में सुबह-शाम हिंदी का शिक्षण शुरू हो गया था। पढ़ाई का समय सीमित था। सप्ताह में एक या दो घंटे तक ही पढ़ाई होती थी और अध्यापक को साढ़े बारह रुपए का वेतन मिलता था। सन् 1935 में स्कूलों में इस तरह से हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था कर दी गई थी।

मॉरीशस देश का शासन भारतीय वंशजों के अधिकार में आने पर भारतीय भाषाओं के शिक्षण का भाग्योदय हुआ। तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने भारतीय भाषाओं के शिक्षण निमित अभूतपूर्व कार्य किया। भारत से बहुभाषी शिक्षाविद प्रो. रामप्रकाश को बुलाकर उनके निर्देशन में हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, तमिल, तेलुगु की शिक्षण व्यवस्था करवाई। पहले अध्यापकों को प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रशिक्षण दिया गया और 15 मार्च, 1954 से प्रतिदिन सरकारी स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी और बाद में अन्य भारतीय भाषाएँ भी। सन् 1976 में मॉरीशस में जब द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया तो हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था माध्यमिक स्तर (एच.एस.सी.) तक की गई थी और सन् 1993 में जब यहाँ चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ तब हिंदी विश्वविद्यालय तक पहुँच गई। निष्कर्ष यह निकला कि आयोजनों तथा प्रस्तावों का अनुमोदन सकारात्मक रहा।

सिनेमा आज की सदी का सबसे सशक्त संचार माध्यम है। सिनेमा के द्वारा राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का जो द्वार खुलता है वह साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं से भी कहीं अधिक आगे है।

मॉरीशस में पहली हिंदी फ़िल्म 'बंबई मोहिनी' सन् 1936 में प्रदर्शित की गई थी। उसके बाद 'वीर अभिमन्यु'। भारत में बनी पहली मूक फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र' और पहली बोलती फ़िल्म 'आलम आरा' भी प्रदर्शित हुई थी।

महात्मा गांधी संस्थान में उच्च स्तर पर हिंदी शिक्षण की व्यवस्था की गई। सन् 1988 में जहाँ हिंदी का एक डिप्लोमा कोर्स चलाया जाने लगा, वहाँ सन् 1990 में पहली बार मॉरीशस विश्वविद्यालय के स्नातक शिक्षाक्रम में हिंदी को स्थान प्राप्त हुआ।

मॉरीशस की हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ

किसी भी भाषा में या किसी भी देश में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होना बहुत महत्वपूर्ण बात है। भाषा, संस्कृति, धर्म तथा राजनीति के उत्थान में इनका अपना विशिष्ट योगदान रहता है। प्रवासों में इंग्लैंड वह पहला देश है जहाँ 'हिंदोस्तान' शीर्षक से पहला हिंदी पत्र जो काला-कांकर नरेश के संपादन में सन् 1883 में निकला था। मॉरीशस में सर्वाधिक कुल 53 हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं पर उनमें अधिकांश बंद हो गईं। वर्तमान में ये 10 पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं—आर्योदय, वसंत, पंकज, बाल सखा, आक्रोश, रिमझिम, इंद्रधनुष,

सुमन, विश्व हिंदी समाचार और विश्व हिंदी पत्रिका। मॉरीशस में पहला हिंदी पत्र 'हिंदुस्तानी' शीर्षक से सन् 1909 में मणिलाल डॉक्टर द्वारा निकला था।

यह भी मानने वाली बात है कि लेखकों, कवियों के प्रादुर्भाव में पत्र-पत्रिकाओं का भारी योगदान रहता है। भारत के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जैसे साहित्यकार का लेखन क्षेत्र में पदार्पण पत्रिका के माध्यम से ही हुआ था और मॉरीशस के जितने लेखक कवि हुए पहले-पहल वे पत्रिकाओं में ही लिखा करते थे।

मॉरीशस का हिंदी साहित्य

भारत के बाहर के देशों में मॉरीशस वह देश है जहाँ हिंदी के समृद्ध और सर्वोत्कृष्ट साहित्य का सृजन हुआ है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, इतिहास, जीवनी, साक्षात्कार सभी विधाओं में सशक्त साहित्य का सृजन हुआ जिसे भारत के साहित्यकार व समीक्षक मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं। नीचे हम भारतीय साहित्यकारों के विचार प्रस्तुत कर रहे हैं।

सन् 1961 में हिंदी लेखक संघ की स्थापना के अवसर पर आचार्य बालमुकुंद द्विवेदी ने भविष्यवाणी की थी, ''आज मॉरीशस में हिंदी का शैशवकाल है। देखना भविष्य में यहाँ के लेखक-कवि भारत के लेखकों, कवियों के टक्कर की रचनाएँ लिखने में सक्षम होंगे।'' आज उनकी भविष्यवाणी पर संदेह नहीं किया जा सकता।

डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में ''भारत के बाहर मॉरीशस एकमात्र देश है, जहाँ के भारतीयों का अपना श्रेष्ठ हिंदी साहित्य है।''

डॉ. लता (प्राध्यापक, मारवाड़ी कॉलेज, बिहार) ने कहा ''मॉरीशस के साहित्यकारों की कृतियों में साहित्य, संस्कृति और धर्म विषयक सभी प्रकार की रचनाएँ हैं जिनमें मॉरीशस के जीवन-मूल्यों का भी पता चलता है। इन्हीं प्रवासी भारतीयों द्वारा हिंदी साहित्य का सर्वाधिक सृजन हुआ है। यह साहित्य हिंदी की अंतरराष्ट्रीय भूमिका के प्रति सजग है। यह अपने परिवेश के प्रति भी प्रतिबद्ध है।''

ऊपर कथित विचारों का आकलन करते हुए मॉरीशस के साहित्यकार डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि ने यहाँ के रचनाकारों की लेखन प्रवृत्ति पर लिखा है, ''रचनाकारों के कथ्य के अंतर्गत मुख्यत: ये विशेषताएँ पाई जाती हैं, मानव-मूल्यों एवं नैतिक विचारों पर ज़ोर, आप्रवासियों की व्यथा-कथा का चित्रण, समाज सुधार, देशोद्धार, भाषा, धर्म एवं संस्कृति, प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति तथा देश की स्वाधीनता की माँग।''

हमारी मिट्टी की गंध, मज़दूरों की यातनाएँ, शोषण, स्वतंत्रता आंदोलन खूब अभिव्यक्त हुए हैं। हमारे लेखकों ने अपनी रचनाओं में रूढ़िगत मान्यताओं के प्रति विद्रोह, सामाजिक विषमता पर तीक्ष्ण व्यंग्य, बौद्धिकता एवं यथार्थ के प्रति आग्रह, नारी उत्थान एवं नारी जगत के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति की। उदाहरण प्रस्तुत है—

अभिमन्यु अनत—पीठ पर कोड़े से अंकित/मालिक का लाल हस्ताक्षर/आँखों में/प्रस्तुत ज्वालामुखी का धुंधलका।

मुनीश्वरलाल चिंतामणि—आज जले जगत की राख जगी है। निर्धन जनों के तन-मन/जल उठे हैं/दुख के अनल से/देश का दर्दनाक इतिहास।

इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ—मज़दूरों की बेबस आँखों में/चोट खाए हुए दिलों पर लिखा गया था/खून-पसीने की स्याही से/देश का दर्दनाक इतिहास।

मॉरीशस के प्रमुख लेखक-कवि

डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि ने मॉरीशस में हिंदी साहित्य का शोधपरक गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने मॉरीशस के हिंदी के विकास-क्रम को तीन भागों में विभक्त किया, जो इस प्रकार हैं—

1. प्रारंभिक काल (1834-1900 तक)
2. मध्य काल (1900-1935 तक)
3. आधुनिक काल (1935 से अब तक)

इन तीन कालों में हिंदी की रचनाएँ हुई हैं। अनेक लेखक, कवि, साहित्यकार, संपादक, समीक्षक उत्पन्न हुए हैं। प्रारंभिक काल में कुछ ही हस्ताक्षर सामने आए। पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज', प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल, श्री जयनारायण रॉय, श्री सूर्यमंगर भगत, ब्रजेंद्र कुमार भगत मध्यकाल के लेखकों/कवियों में थे।

बाद के वरिष्ठ लेखकों/कवियों में ये नाम आते हैं—

सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनत, मुनीश्वरलाल चिंतामणि,

वेणीमाधव रामखेलावन, दीपचंद बिहारी, धर्मवीर घूरा, प्रह्लाद रामशरण, रामदेव धुरंधर, इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ, जनार्दन कालीचरण, विष्णुदत्त मधु, बीरसेन जागासिंह, बलवंतसिंह नौबतसिंह, डॉ. हेमराज सुंदर, राज हीरामन, केशवदत्त चिंतामणि, सूर्यदेव सिबोरत और लेखिकाएँ।

मॉरीशस की पहली कवयित्रियों में सुश्री भानुमती नागदान, श्रीमती कल्पना लालजी, श्रीमती सीता रामयाद, श्रीमती बिद्वंती अजोध्या-तिलक आदि के नाम प्रमुख हैं।

विश्व हिंदी सचिवालय और विश्व हिंदी साहित्य

मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना विश्व हिंदी जगत में मॉरीशस देश को सर्वसम्मान एवं अपूर्व उपलब्धि प्राप्त है। पूछा जाए भारत में नहीं मॉरीशस में क्यों? मॉरीशस में गांधी आगमन का शताब्दी समारोह (1 नवंबर, 2001) मनाने की प्रथा है। मौके पर मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की नींव डालने के लिए भारत के मानव संसाधन विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा महासागर विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी पधारे हुए थे। शिलान्यास के अवसर पर उन्होंने याद दिलाया ''लंदन में छठे विश्व हिंदी सम्मेलन, 1999 में दोनों देशों (भारत और मॉरीशस) ने विश्व हिंदी सचिवालय को मुहर लगा दी। मेरा सौभाग्य है कि मैं हिंदी के विश्व मंदिर को आधारशिला रख रहा हूँ।''

सन् 2008 से अविरल कार्यरत विश्व हिंदी सचिवालय विशेषकर हिंदी पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा उनके माध्यम से विश्व हिंदी साहित्य दर्पण की तरह दुनिया के उन सभी देशों में हिंदी गतिविधियों को जोड़ रहा है और सेतु के निर्माण में कोई कसर नहीं छोड़ रहा है।

पत्रिका प्रकाशन के अतिरिक्त समन्वयिक अर्थात अनेक देशों के रचनाकारों की रचनाओं को सम्मिलित पुस्तकों में प्रकाशित करें तो और भी बढ़िया बात होगी। विश्व हिंदी साहित्य से पाठक शीघ्रता से अवगत हो सकेंगे।

शेंफेल रोड, रिव्येर जी रॉंपार,
मॉरीशस

20 हिंदी देश से परदेश तक

• *श्री गोवर्धन यादव*

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है। यह अभिव्यक्ति आम जन की अस्मिता से लेकर राष्ट्र के आगत भविष्य निर्माण के लिए भी हो सकती है इसीलिए भाषा का प्रश्न केवल भाषा तक ही सीमित नहीं होता। हम जो सोचते हैं अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करते हैं और यह अभिव्यक्ति हमारी पहचान बनाती है। हमने अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई हिंदी के माध्यम से जीती है। आमजन की भाषा की राष्ट्रीय गरिमा को प्रतिष्ठित करना एवं उसे कायम रखना है।

भाषा का निर्माण टकसाल में न होकर सड़क पर होता है, चौपालों में होता है, गाँव के गलियारों में होता है और उसका शिल्पी देश का आम जन है, भाषा की समृद्धि एवं संपन्नता जन-जन की भाषा के प्रति सजगता, सक्रियता तथा जागरूकता पर निर्भर करती है। भाषा के विनाश एवं विकास में वही एकमात्र ज़िम्मेदार है।

भारत के कोने-कोने में बोली जाने एवं समझी जानेवाली हिंदी ही एकमात्र भाषा है। सरल और वैज्ञानिक लिपि में लिखी जाने के कारण हिंदी भाषा अत्यंत सुव्यवस्थित, संपन्न और लोकप्रिय है। भारत के अधिकांश भागों में प्रयोग किए जाने के कारण हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी एक प्रदेश के लोगों को दूसरे प्रदेशों के लोगों से जोड़ती है, एवं संपर्क स्थापित करती है और राष्ट्रीय एकता का भाव जगाती है। हिंदी की इसी विशिष्टता के कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने 14 सितंबर, 1949 को देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी को, संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया तथा 26 जनवरी, 1950 को संविधान में इसका प्रावधान किया।

हिंदी भाषा की एक नहीं, अनेक खूबियाँ हैं

(1) हिंदी एक सशक्त और सरल भाषा है, (2) हिंदी देवनागरी लिपि में ध्वनि-प्रतीकों (स्वर-व्यंजन) का क्रम वैज्ञानिक है, (3) इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न है, (4) इसमें केवल उच्चरित ध्वनियाँ ही लिखी जाती हैं, (5) जिस रूप में यह

जन्म : 17-7-1944 को मुलताई (जिला) बैतुल म.प्र. में

शिक्षा : स्नातक

कृतियाँ : महुआ के वृक्ष (कहानी संग्रह) सतलुज प्रकाशन पंचकुला (हरियाणा), तीस बरस घाटी (कहानी संग्रह) वैभव प्रकाशन रायपुर (छ.ग.), अपना-अपना आसमान (कहानी संग्रह) शीघ्र प्रकाश्य, एक लघुकथा संग्रह, शीघ्र प्रकाश्य।

- तीन दशक पूर्व कविताओं के माध्यम से साहित्य-जगत में प्रवेश
- देश की स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का अनवरत प्रकाशन
- आकाशवाणी से रचनाओं का प्रकाशन
- करीब पच्चीस कृतियों पर समीक्षाएँ

सम्मान : सारस्वत सम्मान, भारती रत्न, सारस्वत सम्मान, लघुकथा गौरव सम्मान, कमल सरोवर दुष्यंतकुमार सम्मान, सृजन सम्मान, सृजन श्री सम्मान, विद्यावाचस्पति सम्मान, हिंदी भाषा भूषण सम्मान, विशिष्ठ हिंदी सेवी सम्मान, कथा किरीट सम्मान, तृतीय अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन बैंकाक (थाईलैंड) में सृजन सम्मान, डॉ. महाराज जैन कृष्ण स्मृति सम्मान, मॉरीशस यात्रा (23-29 मई, 2014) कला एवं संस्कृति मंत्री श्री मुखेश्वर मुखी द्वारा सम्मानित, सृजन-साक्षी सम्मान (जून 2014), राष्ट्रीय शिखर सम्मान, तुलसी साहित्य अकादमी भोपाल द्वारा सम्मानित।

विशेष उपलब्धियाँ : **(1)** औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग के सरकारी कामकाज में हिंदी के प्रगामी प्रयोग से संबंधित विषयों तथा गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित नीति में सलाह देने के लिए वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, उद्योग भवन नई दिल्ली में सदस्य नामांकित। **(2)** केंद्रीय हिंदी निदेशालय (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) नई दिल्ली द्वारा कहानी संग्रह महुआ के वृक्ष तथा तीस बरस घाटी की खरीद की गई।

संप्रति : सेवानिवृत पोस्टमास्टर

बोली जाती है, उसी रूप में लिखी भी जाती है, (6) हिंदी जर्मनी की तरह अपने ही प्रत्ययों से नवीन शब्दों का निर्माण कर लेती है, (7) हिंदी ने कृदंत क्रियाओं को अधिक ग्रहण किया है, क्योंकि ये बहुत सरल एवं स्पष्ट होती हैं, (8) हिंदी की संज्ञा-विभक्तियाँ सिर्फ पाँच-सात ही हैं, (9) हिंदी के सर्वनाम अपने हैं, (10) हिंदी में विशेषण के साथ अलग-अलग विभक्ति लगाने की ज़रूरत नहीं होती, (11) हिंदी के अपने अव्यय हैं।

स्वाधीन भारत की नींव को सुदृढ़ करने के लिए गांधी जी ने जितने काम किए, उनमें हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का काम भी प्रमुख है, लेकिन गांधी जी की भाषिक मान्यताओं पर विमर्श करने से पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि क्या गांधी जी से पूर्व हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए लोगों ने आवाज़ उठाई थी? हाँ, गांधी जी से पूर्व हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिशें की गई थीं। प्रख्यात फ्रांसीसी विद्वान गार्सांद तासी ने सन् 1852 में फ्रांस में अपने भाषण में हिंदुओं-हिंदुस्तानी को हिंदुस्तान की लोक या सर्वदेशीय भाषा के रूप में रखा था। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कोश हिंदुस्तान जाब्सन में जिसका प्रकाशन सन् 1886 में लंदन में किया गया था, हिंदुस्तानी को सभी भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रभाषा माना गया, फिर तो ग्रियर्सन जैसे अनेक लोग हिंदी के सार्वदेशिक रूप को लेकर आगे आए।

स्वदेशी लोगों में सबसे पहले राजा राममोहन रॉय ने एक भाषण में संकेत दिया था कि श्री पेठे, जो मुंबई के कॉलेज में अध्यापक थे, ने मराठी में राष्ट्रभाषा नाम की पुस्तक सन् 1864 में लिखी जिसमें हिंदी को भारत की आवश्यक भाषा के रूप में स्वीकार किया। बंगाल के महान धार्मिक नेता केशवचंद्र ने अपने सुलभ समाचार नामक पत्र में भारत की एकता के लिए हिंदी अपनाने की पूरी वकालत की थी। यही नहीं, श्री सेन ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में सक्रिय सहयोग भी दिया। वैदिक धर्म के अनन्य प्रचारक और विद्वान स्वामी दयानंद सरस्वती ने, जो पहले संस्कृत में ही प्रचार करते थे, 48 वर्ष की अवस्था में उन्हीं सेन के कहने से हिंदी सीखी और उसी में सारा कार्य करने लगे। गुजराती के लल्लुजीलाल ने हिंदी के प्रथम व्यवस्थित ग्रंथ प्रेमसागर की रचना की। 1870 के आसपास मराठी विद्वान हरिगोपाल पांडे ने भाषा तत्त्व-दीपिका संज्ञक हिंदी व्याकरण लिखा, प्रख्यात बँगला साहित्यकार बंकिमचंद्र चटर्जी ने बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यिक-पत्र 'बंग दर्शन' में 1817 में एक आलेख लिखा, जिसमें राष्ट्रभाषा हिंदी के बारे में अपने विचार दृढ़ता से व्यक्त किए। बंगाली शिक्षाविद भूदेव मुखर्जी ने प्रशासन से टक्कर लेकर बिहार की कचहरियों में नागरी तथा कैथिलिपियों को प्रवेश दिलाया और आचार-प्रबंध नामक अपनी पुस्तक में हिंदी के सभी भारतीय भाषाओं की एकता का साधन-सूत्र बतलाया।

सन् 1900 तक आते-आते अनेक बंगाली, व मराठी, गुजराती, हिंदी समर्थकों और प्रचारकों की भीड़ खड़ी हो गई, जिसमें योगेंद्रनाथ बसु अमृतलाल चक्रवर्ती, सदाशिवराव, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सेठ गोविंददास आदि प्रमुख हैं। इन प्रयासों से बल पाकर जब राष्ट्रनायक जैसे महिमंड व्यक्तित्व के धनी गांधी जी ने हिंदी भाषा के प्रश्न को राजनैतिक दृष्टि से सामने रखा और उन्हीं के प्रयासों से जब इसे संविधान में राष्ट्रभाषा का पद मिला तो यह मान लिया गया कि वे इस क्षेत्र के अपूर्व नेता हैं।

भारतीय भाषा समस्या के विषय पर गांधी जी के विचार बड़े निर्मल, वस्तुनिष्ठ और पूरी तरह व्यवहारिक हैं। वैसे भी उनके विचार प्रांजल और पारदर्शी होते हैं, जिन स्रोतों से उनके भाषा विषयक विचार उपलब्ध होते हैं, उनमें उनके लेखों का प्रमुख स्थान है, जो यंग इंडिया, हरिजन-सेवक, हरिजन बंधु आदि में प्रकाशित हैं? इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी सामग्री इंडियन होमरूल जैसी पुस्तकों और तत्कालीन विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गए उनके पत्रों से मिली है। गांधी जी ने भाषा विषय में सबसे पहले अपने विचार 1909 में अपनी पुस्तक हिंद-स्वराज और होमरूल के 18वें परिच्छेद में यों व्यक्त किए हैं, ''हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को हिंदी का एवं कुछ पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहनेवाले हिंदुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए, सारे हिंदुस्तान के लिए तो हिंदी होनी ही चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपियाँ जानना ज़रूरी है। ऐसा होने पर हम अपने आपस

के व्यवहार से अंग्रेज़ी को बाहर कर सकेंगे।''

गांधी जी की इन भाषिक मान्यताओं के पीछे लोक-संग्रहक संतुलन का भाव प्रमुख है। लोकभाव को अक्षत और अक्षुण्य रखते हुए उसके लिए वे कारगर तरीका अपनाने की बात कहते हैं, वह यह कि ''भारत की प्रत्येक जाति का निवासी पहले तो अपने को ठीक से समझे, अपने जातीय संस्कार की भाषा को समझे, फिर दूसरे की भाषा का ज्ञान भी रखे, फिर सामाजिक या राष्ट्रीय संपर्क के लिए हिंदी से भी अवगत हों।''

भड़ौच स्थित गुजरात शिक्षा परिषद में सभापति पद से व्याख्यान देते हुए उन्होंने 'राष्ट्रभाषा की अवधारणा' पर विस्तार से प्रकाश डाला। अगर गहरे पैठकर हम सोचें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अंग्रेज़ी राजभाषा नहीं बन सकती और न ही उसे बनाना चाहिए ? इसे ठीक से समझने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि किसी भाषा में राष्ट्रभाषा बनने के लिए क्या-क्या बातें आवश्यक हैं, ऐसी पाँच बातें हैं, जो राष्ट्रभाषा के लिए आवश्यक हैं।

1. सरकारी अधिकारियों के लिए उसका सीखना आसान होना चाहिए।
2. वह भारत के धार्मिक-आर्थिक अथवा राजनीतिक विचार-विनिमय का माध्यम बनने के योग्य होनी चाहिए।
3. वह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जानी चाहिए।
4. समूचे देश के लोगों के लिए उसका सीखना सरल होना चाहिए।
5. इस भाषा का चुनाव करते समय अस्थायी भाव अथवा क्षणिक हितों का ख्याल नहीं रखा जाना चाहिए।

(1) हिंदी एक सशक्त और सरल भाषा है, (2) हिंदी देवनागरी लिपि में ध्वनि-प्रतीकों (स्वर-व्यंजन) का क्रम वैज्ञानिक है, (3) इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न है, (4) इसमें केवल उच्चारित ध्वनियाँ ही लिखी जाती हैं, (5) जिस रूप में यह बोली जाती है, उसी रूप में लिखी भी जाती है, (6) हिंदी जर्मनी की तरह अपने ही प्रत्ययों से नवीन शब्दों का निर्माण कर लेती है, (7) हिंदी ने क्रदंत क्रियाओं को अधिक ग्रहण किया है, क्योंकि ये बहुत सरल एवं स्पष्ट होती हैं, (8) हिंदी की संज्ञा-विभक्तियाँ सिर्फ़ पाँच-सात ही हैं, (9) हिंदी के सर्वनाम अपने हैं, (10) हिंदी में विशेषण के साथ अलग-अलग विभक्ति लगाने की ज़रूरत नहीं होती

उन्होंने इन गुणों की दृष्टि से अंग्रेज़ी को शून्य बताया और हिंदी को परिपूर्ण माना। इसीलिए हिंदी राष्ट्रभाषा के पद पर योग्य ठहरती है। आजीवन वे इस बात को लिखते और भाषण देते रहे, यह उन्हीं का कृतित्व प्रसाद है कि सन् 1949 में कंस्टीट्यूएंट असेंबली में हिंदी को राजभाषा की पदवी दी गई।

गांधी जी के अलावा हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के समर्थक, देश के मूर्धन्य विद्वानों एवं नेताओं में पुरुषोत्तमदास टंडन, सेठ गोविंददास, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, वीर सावरकर, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, बंकिमचंद्र चटर्जी, विनोबा भावे, डॉ. सुनीतिकुमार आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

भारतीय नेताओं ने आंदोलन के लिए हिंदी को अपनाया और उसका समर्थन किया, क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि हिंदी ही वह भाषा है जिसके बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है और उसे भारत की अधिकांश जनता समझ सकती है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का समर्थन हिंदीतर प्रदेशों के जननायकों, समाज सुधारकों तथा विद्वानों द्वारा किया गया, बंगाल के राजा राममोहन राय, केशवचंद्र, बंकिमचंद्र, शारदाशरण मित्र, गुजरात के स्वामी दयानंद सरस्वती, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक आदि ने जनभाषा के रूप में हिंदी का समर्थन किया। उन्नीसवीं सदी के अंत तक हिंदी का पक्ष सबल बन चुका था। उत्तर भारत के विद्वानों, साहित्यकारों और नेताओं ने भी हिंदी का दृढ़ता से समर्थन किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय से हिंदी में साहित्य निर्माण का कार्य तो होने लगा, किंतु उसके सम्यक प्रचार में कई बाधाएँ थीं।

महात्मा गांधी की प्रेरणा से हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1918 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास की स्थापना हुई। गांधी जी की इस संकल्पना के लगभग 11 वर्ष पूर्व ही मद्रास (अब चेन्नई) में एक तमिलभाषी मनीषी ने हिंदी प्रचार की नींव डाली। यह मनीषी कोई और नहीं, तमिल के सुविख्यात महाकवि सुब्रह्मण्यम् भारती जी थे। सर्वप्रथम भारती जी ने अपने संपादन में निकलने वाली पत्रिका इंडिया के 15 दिसंबर, 1906 के अंक में तमिलभाषियों से हिंदी सीखने की अपील की थी, महाकवि ने न केवल समूचे तमिलनाडु वासियों के प्रतिनिधि के रूप में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी थी, बल्कि राष्ट्रीय एकता के भविष्यद्रष्टा के रूप में भी उन्होंने हिंदी का पुरजोर समर्थन किया था। भारती जी के ही नेतृत्व में 1908 में सर्वप्रथम चेन्नई के तिरुवेल्लीकेणि (ट्रिप्लिकेन) में हिंदी वर्गों के संचालन का श्रीगणेश हुआ था, इस घटना के दस वर्ष के बाद गांधी जी की संकल्पनाओं के अनुरूप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की नींव पड़ी। इस कार्य हेतु गांधी जी ने अपने सुपुत्र देवदास गांधी को चेन्नई भेजा था।

गांधी जी की प्रेरणा से हिंदी प्रचार समिति की स्थापना दिनांक 4 जुलाई, 1936 को वर्धा में महात्मा गांधी के निवास स्थान पर इस समिति की पहली साधारण बैठक हुई, इसमें कुल 21 सदस्य थे। इस बैठक में जिन पदाधिकारियों का चुनाव हुआ, उनमें डॉ. राजेंद्र प्रसादजी को अध्यक्ष, सेठ जमनालाल बजाज को उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष, श्री मोटूरी सत्यनारायण को मंत्री, श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल को संयुक्त मंत्री, बनाया गया। हिंदी प्रचार समिति के कार्य गांधी जी की देखरेख में चले, इसीलिए उसका मुख्य कार्यालय वर्धा में रखा गया।

हिंदी प्रचार समिति राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रही थी। अत: हिंदी की जगह राष्ट्रभाषा शब्द लेने का प्रस्ताव पारित हुआ। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की दो बैठकें 12-04-1942 तथा 21-06-1942 को हुईं, इन दोनों बैठकों में महात्मा गांधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, काका कालेलकर तथा श्रीमन्ननारायण उपस्थित थे। दिनांक 12-07-1942 को सेवाग्राम में गांधी जी की कुटी में नवगठित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पहली बैठक हुई। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। समिति के इस बैठक में मंत्री पद के लिए भदंत आनंद कौसल्यायन को और सहायक मंत्री के लिए श्री रामेश्वरदयाल दुबे को चुना गया।

सन् 1956 में मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल बनी। राजधानी बनने के साथ ही मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल ने अपना कार्य शुरू किया। इससे पूर्व इंदौर-मऊ में यह समिति कार्यरत थी। किंतु भारत के 2 प्रतिशत अंग्रेज़ीपरस्त वर्तमान शासक इन सबको दरकिनार कर अंग्रेज़ी भाषा का 98 प्रतिशत जनता पर अंग्रेज़ी थोपने का प्रयास करते रहे हैं। इस प्रकार देश पर विदेशी भाषा थोपने वाले अंग्रेज़ी-परस्त नेताओं का निर्णय कितना खोखला था, यह इस बात से प्रमाणित हो जाता है कि राष्ट्रभाषा हिंदी को पीछे ढकेलने वाली साज़िशों के बावजूद हिंदी भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी लोकप्रिय हो रही है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि भारत के लगभग 170 स्वयंसेवी संगठन हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन निष्ठा के साथ एवं अधिक सुनियोजित ढंग से कर रहे हैं। जहाँ तक विश्वभाषा के रूप में हिंदी की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा का प्रश्न है, शंकरदयाल सिंह के निम्नांकित शब्द इसे भली भाँति स्पष्ट करते हैं—जिस भाषा की पढ़ाई विश्व के 136 विश्वविद्यालयों में हो रही हो, 50 से अधिक देश जिस भाषा का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में कर रहे हों तथा जिसके बोलनेवालों की संख्या 70 करोड़ के लगभग पहुँच चुकी हो, वह भाषा अंतरराष्ट्रीय न कही जाएगी तो क्या कहा जाएगी।

इस संबंध में वास्तविकता यह है कि गुटनिपेक्ष राष्ट्रों का मुखिया भारत, संसार की उभरती अर्थ-शक्ति भारत, परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र भारत, संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक भारत एवं संसार के सबसे बड़े बाज़ारों में एक भारत से निकटता बढ़ाने के लिए विश्व का हर देश लालायित है। यही कारण है कि विश्व के अनेक देश अपने यहाँ हिंदी शिक्षण की उच्चस्तरीय व्यवस्था कर रहे हैं, इन देशों में अमेरीका, रूस, इंग्लैंड, फ्रांस, चीन, जापान, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा जैसे विश्व के प्रभावशाली देश भी शामिल हैं, इतना ही नहीं प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था विश्व में बड़े व्यापक स्तर पर की है। वे हिंदी की सुरक्षा, प्रतिष्ठा एवं

प्रचार के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं।

संसार में कुल मिलाकर लगभग 2800 भाषाएँ हैं। इनमें 13 ऐसी भाषाएँ हैं, जिनके बोलने वालों की संख्या 8 करोड़ से अधिक है। ताजा आँकड़ों के अनुसार संसार की भाषाओं में, हिंदी भाषा को द्वितीय स्थान प्राप्त है। भारत के बाहर बर्मा, श्रीलंका, फिजी, मलाया, दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका में भी हिंदी बोलने वालों की संख्या ज़्यादा है। एशिया महादेश की भाषाओं में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो अपने देश के बाहर भी बोली और लिखी जाती है, क्योंकि यह एक जीवित और सशक्त भाषा है।

ताज़ा आँकड़ों के अनुसार भारत में हिंदी जानने वालों की संख्या सौ करोड़ है। भारत के बाहर पाकिस्तान, इज़राइल, ओमान, इक्वाडोर, फिजी, इराक, बांगलादेश, ग्रीस, ग्वालेमाटा, म्याँमार, यमन, त्रिनिदाद, सऊदी अरब, पेरू, रूस, कतर, मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, इंग्लैंड आदि में बोली जाती है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता मिलने जा रही है, वर्तमान में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, चीनी, रूसी एवं स्पेनिस भाषाओं को राष्ट्रसंघ की मान्यता प्राप्त है।

संसार में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसे विदेशियों ने सर्वप्रथम विश्वपटल पर रखा, हिंदी के शोधार्थी डॉ. जुइजिपियोतैस्सी तोरी ने फ्लोरेंस विश्वविद्यालय इटली में रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण के तुलनात्मक अध्ययन का 1911 में शुभारंभ किया। भारत की संस्कृति ने उन पर इतना असर डाला कि स्वदेश इटली छोड़कर जीवन पर्यंत बीकानेर में रहे। साम्यवादी देशों में तुलसीकृत रामचरितमानस की लोकप्रियता देख, स्टॉलिन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अकादमीशियन अलकसई वरान्निकोव द्वारा रूसी भाषा में पद्दानुवाद कराया, जिसमें साढ़े दस वर्ष लगे। तुलसीभक्त बेल्जियम में जन्में फादर रेवरेंड कामिल बुल्के, जिन्होंने हिंदी के कारण भारत की नागरिकता ली। तुलसी की काव्यकृति हनुमानचालीसा का रोमानियन भाषा में, बुकारेस्ट में प्रो. जार्ज अंका ने डॉ. यतींद्र तिवारी के सहयोग से अनुवाद किया।

अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। यथा—पेनस्टेटयेल, लायोला, शिकागो, वाशिंगटन, ड्यूक, आयोवा, ओरेगान, मिशिगन, कोलंबिया, हवाई इलिनाय, अलवामा, यूनिवर्सिटी ऑफ बर्जिनिया, यूनिवर्सिटी ऑफ मीनेसोटा, फ्लोरिडा, वैदिक वि.वि. सिराक्यूज, कैलिफोर्निया वि.वि., वर्कले यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास, रटगर्स, एमरी, नार्थ केरोलाइना स्टेट, एनवाययू इंडियाना, यूसीएलए, मेनीटावा, लाट्रोव तथा केलगेरी विश्वविद्यालय आदि, जहाँ हिंदी की शिक्षा दी जाती है।

आधुनिक चीन में हिंदी की विधिवत शुरुआत सन् 1942 में यूनान प्रांत पूर्वी भाषा और साहित्य कॉलेज में हिंदी विभाग की स्थापना के साथ हुई। यह वह समय था जब सारा संसार द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में था। ऐसी स्थिति में अपनी सुरक्षा के लिए हिंदी विभाग एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होता रहा, तीन वर्षों बाद सन् 1945 में हिंदी विभाग यूनान प्रांत से स्थांतरित होकर छोंगछिन में आ गया और साल भर बाद हिंदी चीन की राजधानी में स्थित पीकिंग वि.वि. के विदेशी भाषापीठ में आसीन हुई एवं तबसे यहीं फलती-फूलती रही। यहाँ हिंदी के अलावा संस्कृत, पालि और उर्दू भाषा साहित्य का अध्ययन-अध्यापन होता है, 1949 से 1959 तक का समय विकास की दृष्टि से बेहतरीन रहा। बाद के वर्षों में काफ़ी शिथिल पड़ा। 1960-1979 तक का समय चीनी जनता और समाज के कठिनाइयों भरे दिन थे, हिंदी विभाग सिकुड़कर छोटा हो गया।

1980-1999 का यह दौर परिवर्तन का दौर रहा। हिंदी की मशाल को प्रज्वलित करने में तीन प्राध्यापकों का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता, वे हैं प्रो. यीनह्युवैन, प्रो. लियो आनवू और प्रो. चिनतिंनहान। इन तीनों विद्वानों ने अपनी लगन, कर्मठता और आदर्श के बल पर हिंदी के लिए जितना कार्य किया, वह प्रेरणादायक है।

जापान में विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के दो प्रमुख केंद्र हैं, तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फारेन स्टडीज़ एवं ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज़, इन दोनों ही वि.वि. में सन् 1011-1021 से ही हिंदुस्तानी भाषा के रूप में हिंदी-उर्दू की पढ़ाई का सिलसिला प्रारंभ हो गया था। इसकी नींव डालने वाले विद्वान श्री.प्रो. रेइची गामो तथा प्रो. एइजो सावा हैं। 1911 में डिग्रीकोर्स

ऑफ हिंदुस्तानी ऐंड तमिल शुरू हो गया था। सन् 1909 से 1914 के मध्य प्रसिद्ध सेनानी मोहम्मद बरकतउल्ला इस विश्वविद्यालय में हिंदुस्तानी भाषा के विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किए गए। ये दोनों वि.वि. सरकारी विश्वविद्यालय हैं, जहाँ 4 वर्षीय पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। आरंभ में प्रो. देई ने तोक्यो में तथा प्रो. एइजो स्ववा ने ओकासा में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की नींव डाली। ये विद्वान प्रोफेसर हिंदी के साथ ही उर्दू भी पढ़ाते थे। सन् 2003 में सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रो. तोसियो तनाका को विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित किया गया।

टोक्यो और ओसाका के राष्ट्रीय वि.वि. के अतिरिक्त अन्य कई गैर सरकारी वि.वि. और शिक्षा संस्थान भी हैं, जहाँ वैकल्पिक विषय के रूप में प्रारंभिक और माध्यमिक कक्षाओं तक हिंदी पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था है। ताकुशोक वि.वि. के प्रो. हेदेआकि इशिदा, सोनोदा वीमेन्स यूनिवर्सिटी के प्रो. उचिदा अराकि और ताइगेन हशिमोतो, तोमाया कोकुसाई वि.वि. के प्रो. शिगोओ अराकि एवं मिताका शहर में स्थित एशिया-अफ्रीका भाषा के प्रो. योइचि युकिशिता का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है।

मॉरीशस में भारतीय मज़दूरों के आगमन के साथ ही इस भूमि पर हिंदी का प्रवेश हुआ। जिन मज़दूरों को भारत के भोजपुर इलाके से यहाँ लाया गया था, गिरमिटिया कहलाए। वे अपने साथ झोली में रामचरितमानस, हनुमानचालिसा, महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथ लेकर आए, इन्हें विरासत में समृद्ध साहित्य, धर्म और संस्कृति का ज्ञान था। अपनी ज़मीन से उजड़े-उखड़े इन मज़दूरों को नई ज़मीन, यातना शिविर में अपने को जीवित रखने, स्थापित करने और अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए भोजपुरी और हिंदी का सहारा ही सबसे बड़ा अवलंबन था। मज़दूरी की क्रूर नियति से दुखी और हताश ये मज़दूर, कभी विरहा, कभी कजरी तो कभी हनुमानचालीसा की पंक्तियों से अपनी आंतरिक शक्ति बचा रखने और रात में रामचरितमानस का पाठ उनकी थकान मिटाकर हौसला बढ़ाते। कई अवरोधों के बावजूद बैठकें चलतीं और भाषा के साथ संस्कृति और धर्म को गति देते रहे। हिंदू महासभा, आर्यसभा, हिंदी प्रचारिणी सभा तथा अन्य संस्थानों के सहयोग तथा पंडित विष्णुदयाल और डॉ. शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में भारतीय संस्कृति और इसकी वाहक हिंदी अपनी उत्कृष्टता पाने में सफल हुई। आज महात्मा गांधी संस्थान और इंदिरा गांधी सांस्कृतिक केंद्र, भाषा प्रचार और सांस्कृतिक गतिविधियों को विस्तार दे रहे हैं। भारत सरकार के सहयोग से अब हिंदी स्पीकिंग यूनियन तथा रवींद्रनाथ टैगोर संस्थान भी इस सांस्कृतिक अभियान में जुड़ गए हैं तथा हिंदी सचिवालय की स्थापना में नया आयाम मिला है।

थाईलैंड में हिंदी अध्ययन-अध्यापन का कार्यक्रम सबसे पहले थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम से शुरू हुआ, जिसकी स्थापना सन् 1943 में स्वामी सत्यानंदपुरीजी ने की थी। आचार्य डॉ. करुणा कुसलासायजी पहले थाई विद्वान थे, जो हिंदी पढ़ने भारत आए थे। महात्मा गांधी से सारनाथ में मिले और जब वे लौटे तो थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम में ही हिंदी पढ़ाना शुरू किया और बैंकाक के भारतीय दूतावास में नौकरी शुरू की।

सन् 1989 में सिल्पाकोव वि.वि. के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग में एम.ए. संस्कृत पाठ्यक्रम बनाया गया। उस समय आचार्य डॉ. चमलोडा शारफेदनूक हिंदी शिक्षक थे। सन् 1966 में शिलपाकोन वि.वि. के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के संस्कृत अध्यापन केंद्र की, भारतीय आगंतुक डॉ. सत्यव्रत शास्त्री के द्वारा स्थापना की गई। 1993 में थमसात विश्वविद्यालय में थाईलैंड के भारतीय व्यापारियों के सहयोग से भारत अध्ययन केंद्र की स्थापना हुई। डॉ. करुणा कुशलासाय, डॉ. चिरफद प्राकन्विध्या एवं आचार्य डॉ. चंलोंग शरफदनूक तीनों ने हिंदी कक्षाएँ चलाईं।

इस तरह हम देखते हैं कि संपूर्ण विश्व में हिंदी अपना स्थान बना चुकी है। भारत में, दुर्योग से वह राष्ट्रभाषा तो नहीं बन पाई, लेकिन विश्वभाषा होने का गौरव और दर्जा तो उसे पहले से ही मिल चुका है।

103, कावेरीनगर
छिंदवाडा-480001
(म.प्र.)
goverdhanyadav44@gmail.com

21 हिंदी का वैश्विक साहित्य

• डॉ. श्याम नारायण कुंदन

यह अपने आप में महत्वपूर्ण है कि अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, स्पेनिश और अरबी जैसी औपनिवेशिक मानसिकता वाली भाषाओं के बीच हिंदी ने अपने लिए एक अलग ही मुकाम हासिल किया है। यह उक्त भाषाओं से इतर वैज्ञानिकता और अपनी सरलता के कारण दुनिया भर में फैल रही है। हिंदी साहित्य आज वैश्विक धरातल पर रचा जा रहा है। यहाँ हम हिंदी के इसी वैश्विक साहित्य का आकलन प्रस्तुत करेंगे।

भारत के बाहर दो प्रकार के लोगों द्वारा हिंदी साहित्य रचा जा रहा है। पहला अप्रवासी भारतीयों द्वारा, दूसरा विदेशियों द्वारा।

विदित हो कि भारत एक प्राचीन और विशाल देश है। यह अपने अथाह ज्ञान के कारण दुनिया में धर्म-गुरु के नाम से जाना जाता है। इसलिए प्राचीन काल से ही यहाँ विदेशियों का आगमन होता रहा है। इतिहास गवाह है कि बौद्ध धर्म की भूमि होने के कारण प्राचीन और पूर्व मध्यकाल में जापान, चीन और मध्य एशिया के देशों से अनगिनत भ्रमणकारी भारत आए। उनमें से बहुतों ने वापस जाकर हिंदी में रचनाएँ भी कीं। मध्य काल में आक्रमणों के कारण साहित्य-सृजन की यह गति काफ़ी बढ़ गई। उदाहरण के रूप में अलबरूनी एक प्रख्यात इतिहासकार एवं साहित्यकार था जिसने काफ़ी रचनाएँ कीं। उपनिवेश के काल में भी यह प्रक्रिया चलती रही। इस काल में इंग्लैंड, जर्मनी, स्पेन आदि देशों के साथ भारत का गहरा सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुआ। गार्सा द तासी एक फ्रांसीसी विद्वान थे। जार्ज ग्रियर्सन ब्रिटेन के थे। इन दोनों ही विद्वानों का हिंदी साहित्य के लिए योगदान अविस्मरणीय है। इन दोनों ने हिंदी साहित्य का इतिहास ही लिख डाला। इसी तरह यूरोप के अन्य देशों में भी हिंदी की रचनाएँ होती रही हैं और आज भी हो रही हैं।

अगर इन रचनाकारों की रचनाओं का आकलन किया जाए तो एक बात साफ़ नज़र आती है कि इनमें से अधिकांश रचनाकार भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित थे और इनकी रचनाएँ भी इसी अतिशय प्रेम की देन हैं। यह अलग बात है कि उनका अधिकतर कार्य 'अनुवाद' और 'भाषाकोश' निर्माण के क्षेत्र में रहा है। आज ये कार्य ही वहाँ हिंदी साहित्य के लिए आधार हैं।

भारत के बाहर अप्रवासी भारतीयों द्वारा सबसे अधिक रचना हुई है। अप्रवासी भारतीयों को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वे अप्रवासी जो मजबूरी में मॉरीशस, फ़ीजी, त्रिनिदाद, गयाना आदि देशों में गए तथा दूसरे वे अप्रवासी जो अपनी मरज़ी से नौकरी या बेहतर जीवन की तलाश में विदेशों में गए और वहीं बस गए। प्रथम प्रकार के अप्रवासियों द्वारा रचित हिंदी साहित्य पीड़ा का साहित्य है। इनकी रचनाओं में अपने देश की विषम स्थिति के साथ-साथ अपनी मातृभूमि भारत के लिए छटपटाहट भी दिखाई देती है।

इन देशों में मॉरीशस का हिंदी साहित्य काफ़ी समृद्ध है। यहाँ हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में परिपक्व रचनाएँ दिखाई देती

जन्म : 1975 में गाज़ीपुर (यू.पी.) ज़िले के मिर्चा नामक गाँव में हुआ।

शिक्षा : काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा में बी.ए. (1996) और एम.ए. (1998)

लगभग 5 सालों तक प्रतियोगिता परीक्षाओं (आई.ए.एस.) हेतु पारंपरिक शिक्षा से दूर रहे पर इन परीक्षाओं में अनवरत असफलता के बाद फिर शिक्षा की तरफ़ लौट आए।

हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में नंद दुलारे वाजपेयी की छायावादी विषयक आलोचना विषय पर शोध कर एम.फिल. की डिग्री प्राप्त की (2005)।

हिंदी भाषा का वैश्विक संदर्भ विषय पर वृहद् शोध प्रबंध लिखकर डॉक्टरेट (पीएचडी) की डिग्री प्राप्त की (2011)।

उक्त पारंपरिक शिक्षा के अलावा बी.एच.यू. से भरतनाट्यम में डिप्लोमा, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद से हिंदी पत्रकारिता डिप्लोमा, एवं हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय से योग सर्टिफ़िकेट जैसे कोर्स भी किए। नेट (यूजीसी) की परीक्षा उत्तीर्ण की (2013)।

लगभग तीन दर्जन कहानियाँ देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ छिटपुट आलेख और कविताएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

दो कहानी-संग्रह 'साइबर लव' एवं 'कुजात' संजय प्रकाशन, दिल्ली में प्रकाशन हेतु विचाराधीन हैं।

संप्रति : कांफ़्लुएंस वर्ल्ड स्कूल, रुद्रपुर, उत्तराखंड में हिंदी विषय का अध्यापन।

हैं। खासकर कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में जो साहित्यिक रचनाएँ हुई हैं, वे किसी भी तरह भारत में रचित रचनाओं से कमतर नहीं हैं। अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर एवं श्री सोमदत्त बखोरी यहाँ के प्रमुख रचनाकारों में हैं। अभिमन्यु अनत ने कविता, कहानी, उपन्यास के अतिरिक्त अन्य विधाओं में भी रचनाएँ की हैं। ये मॉरीशस के प्रेमचंद हैं। इनके साहित्य में मॉरीशस अपनी संपूर्णता में अभिव्यक्त हुआ है। 'लाल पसीना' नामक उपन्यास इनकी अक्षयकीर्ति का आधार है। इस उपन्यास में मॉरीशस की तीन पीढ़ियों का ज़िक्र मिलता है। श्री सोमदत्त बखोरी नए, पुराने रचनाकारों के लिए पुल का काम करते हैं।

यहाँ की प्रथम कविता 'होली' है जो 2 मार्च, 1913 ई. में 'हिंदुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। तब से लेकर आज तक कविता-लेखन का यह प्रयास अनवरत जारी है। 1922 ई. में प्रकाशित 'अनबोलती चिड़िया' को प्रथम कहानी माना गया है। उपन्यास विधा की ही तरह यहाँ की कहानी विधा भी काफ़ी समृद्ध है। सन् 1913 ई. में 'हिंदुस्तानी' पत्रिका में प्रकाशित 'सत्य होली' यहाँ का प्रथम निबंध है। यहाँ अभी निबंध विधा का अच्छा विकास नहीं हुआ है। संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृत्तांत, डायरी आदि विधाओं में भी काफ़ी कम रचनाएँ हुई हैं। यहाँ की पत्रकारिता 'हिंदुस्तानी' पत्रिका से शुरू होकर आज तक जारी है। वर्तमान में 'वसंत' यहाँ की मुख्य पत्रिका है।

फ़ीजी में भी हिंदी साहित्य के लेखन का वही कारण रहा जो मॉरीशस में रहा। यहाँ भी शर्तबंदी के रूप में मज़दूर भारत से लाए गए और उन पर भी मॉरीशस की तरह बेइंतहा जुल्म ढाए गए। मॉरीशस की तरह यहाँ विभिन्न विधाओं में रचनाएँ नहीं हुई हैं पर यहाँ 'लोकगीत' परंपरा काफ़ी समृद्ध है। यहाँ कविता-लेखन भी काफ़ी हुआ है। यहाँ स्वतंत्र काव्य-संग्रहों का अभाव है। यहाँ के प्रमुख कवियों में पं. कमला प्रसाद, बाबू हरनाम सिंह, ज्ञानीदास, महावीर मित्र, सलीम बख्स आदि के नाम प्रमुख हैं। 'फ़ीजी समाचार' और 'शांतिदूत' यहाँ की प्रमुख पत्रिकाएँ हैं।

सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना तथा टोबैगो का हिंदी साहित्य मॉरीशस तथा फ़ीजी के हिंदी साहित्य की तरह समृद्ध नहीं है। कारण, यहाँ की युवा पीढ़ी में हिंदी के प्रति कोई खास लगाव नहीं है। ये हिंदी के विपरीत यहाँ की मूल भाषा में रचनाएँ करना अधिक पसंद करते हैं। रहमान सूरी, श्रीनिवासी, जीतनारायण, अमर रमण सिंह आदि सूरीनाम के कुछ गिने-चुने कवि हैं। कविता के अलावा यहाँ अन्य विधाओं का अभाव है। प्रो. हरिशंकर आदेश सूरीनाम के प्रमुख साहित्यकार हैं। 'कोहेनूर अखबार' यहाँ का प्रमुख पत्र है, जो फिलहाल बंद है। 'ज्योति' नामक पत्रिका अभी भी निकल रही है। गयाना में पं. रामलाल, पं. हरिप्रसाद, पं. कूपचंद, आर. बूटी सिंह आदि रचनारत हैं परंतु ये साहित्यकार कम, गीतकार अधिक हैं। 'ज्ञानदा' यहाँ की प्रमुख पत्रिका है।

भारत के बाहर अप्रवासी भारतीयों द्वारा सबसे अधिक रचना हुई है। अप्रवासी भारतीयों को अध्ययन की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वे अप्रवासी जो मजबूरी में मॉरीशस, फ़ीजी, त्रिनिदाद, गयाना आदि देशों में गए तथा दूसरे वे अप्रवासी जो अपनी मरज़ी से नौकरी या बेहतर जीवन की तलाश में विदेशों में गए और वहीं बस गए। प्रथम प्रकार के अप्रवासियों द्वारा रचित हिंदी साहित्य पीड़ा का साहित्य है। इनकी रचनाओं में अपने देश की विषम स्थिति के साथ-साथ अपनी मातृभूमि भारत के लिए छटपटाहट भी दिखाई देती है।

दक्षिण अफ्रीका में अप्रवासी भारतीयों का आगमन उसी दौर (1860) में हुआ जिस दौर में मॉरीशस और फ़ीजी आदि देशों में हुआ। यहाँ भी उक्त देशों की भाँति गुलाम देश भारत के वासी होने के कारण भारतीयों को तरह-तरह से सताया जाता था। इसका विस्तृत विवरण स्वामी शंकरानंद की पुस्तक 'प्रवासी की आत्मकथा' में मिलता है। विदित हो कि शंकरानंद यहाँ हिंदी के उद्धारकों में से हैं जिन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और पत्रिका भी निकाली। 'इंडियन ओपिनियन' यहाँ का प्रमुख समाचार-पत्र था जिसमें हिंदी का भी एक भाग होता था। कालांतर में 'हिंदी' नाम से एक और पत्रिका निकली। यहाँ हिंदी साहित्य का उस तरह विकास नहीं हो पाया है, जैसे मॉरीशस आदि देशों में हुआ है।

उक्त पहले प्रकार के अप्रवासियों के अलावा दूसरे प्रकार के

वे अप्रवासी हैं जो विश्व के विभिन्न देशों में रोज़ी-रोटी की तलाश में गए और वहीं बस गए। अमेरिका, डेनमार्क, फ़िनलैंड, नॉर्वे, स्वीडन, इटली, ब्रिटेन आदि जैसे कुछ प्रमुख देशों में इस प्रकार के अप्रवासी बड़ी संख्या में हैं। इनके द्वारा लिखा गया हिंदी साहित्य उक्त पहले प्रकार के अप्रवासियों द्वारा लिखे गए हिंदी साहित्य से भिन्न है। जहाँ उक्त देशों के साहित्य में गरीब अप्रवासियों की आर्थिक मजबूरियाँ, गोरों द्वारा सताए जाने का मामला प्रमुख था, वहीं इन देशों के साहित्य में संस्कृति और सभ्यता के विपरीत घोर भौतिकतावादी संस्कृति में अपने आप में फिट न बैठ पाने का जद्दोजहद चिह्नित है। अमेरिका के ही साहित्य को लीजिए। यहाँ पिछले कुछ दशकों में भारी मात्रा में रचनाएँ हुई हैं। सुषम बेदी, उषा प्रियंवदा, रेणु राजवंशी गुप्ता, अंजना संधीर यहाँ के कुछ नए-पुराने रचनाकार हैं। उषा प्रियंवदा कहानीकार के साथ-साथ अच्छी उपन्यासकार भी हैं। सुषम बेदी कहानीकार और उपन्यासकार दोनों हैं। रेणु राजवंशी गुप्ता अच्छी कवयित्री हैं। यहाँ ग़ज़ल-लेखन की अच्छी परंपरा है। यहाँ के लगभग समस्त हिंदी साहित्य में देश से बिछुड़ने की पीड़ा, अपने संस्कार, आस्था, विश्वास के परे एक अलग दुनिया में सामंजस्य न बिठा पाने की पीड़ा जैसे विषय प्रमुख हैं। यहाँ के कुछ प्रमुख पुराने रचनाकारों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर रचनाकार नए हैं इसलिए उनकी रचनाओं में उतनी परिपक्वता नहीं दिखाई देती। भाषा बहुत सीधी और अभिधात्मक होती है।

अमरीका के अलावा इस महाद्वीप के एक अन्य देश कनाडा में भी हिंदी साहित्य ज़ोरों से लिखा जा रहा है। कई पत्रिकाएँ भी यहाँ से निकल रही हैं। इससे हिंदी के विकास के लिए रास्ता साफ़ हो रहा है। यहाँ कविता विधा की तुलना में अन्य विधाओं पर काम अभी कम हुआ है। मुझे डाक से आदरणीय रत्नाकर नराले द्वारा भेजा गया काव्योत्पल नामक एक कविता संग्रह प्राप्त हुआ है जिसकी अधिकतर रचनाएँ बड़ी सतही किस्म की हैं। रत्नाकर नराले, हरिशंकर आदेश, संदीप आदि यहाँ के प्रमुख रचनाकार हैं।

यूरोप महाद्वीप में इंग्लैंड एक अकेला देश है जहाँ हिंदी की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ हो रही हैं। तेजेंद्र शर्मा, अचला शर्मा, सत्येंद्र श्रीवास्तव, उषा वर्मा, दिव्या माथुर, उषा राजे सक्सेना, गौतम सचदेव, मोहन राजा आदि यहाँ के प्रमुख रचनाकार हैं। यहाँ की कविता काफ़ी परिपक्व है। उषा राजे सक्सेना, तेजेंद्र शर्मा आदि ने अच्छी कविताएँ लिखी हैं। इन्होंने कहानी-संग्रह भी निकाला है। यहाँ ग़ज़ल की अच्छी परंपरा विकसित हो रही है। 'पुरवाई' यहाँ की प्रमुख समकालीन पत्रिका है। अन्य विधाओं की रचनाओं का यहाँ अभाव है।

इंग्लैंड के अलावा इस महाद्वीप में स्कैन्डिनेवियाई देशों में भी छिटपुट रूप में रचनाएँ हो रही हैं। अर्चना पैन्यूली डेनमार्क की प्रमुख रचनाकार हैं। इन्होंने कविता, कहानी तथा उपन्यास विधा में अच्छा काम किया है। मोहनकांत गौतम नीदरलैंड में रचनारत हैं। नॉर्वे में पूर्णिमा चावला, हरचरण चावला, अमित जोशी आदि ने हिंदी के लिए मंच तैयार किया है। अन्य यूरोपीय देशों यथा रूस, बेल्जियम, फ्रांस, रोमानिया, चेक, इटली आदि देशों में भी हिंदी के लिए समुचित मंच तैयार हो रहा है।

ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में अभी हिंदी केवल प्रचार-प्रसार तक सीमित है। आशा है भविष्य में वहाँ भी हिंदी में रचनाएँ होंगी। एशिया महाद्वीप के कुछ प्रमुख देशों यथा जापान, चीन, संयुक्त अरब अमीरात आदि देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार द्वारा हिंदी साहित्य लेखन के लिए उचित माहौल तैयार किया जा रहा है।

खाड़ी के देशों में भी हिंदी साहित्य सृजन के लिए उचित वातावरण का निर्माण किया जा रहा है। शारजाह से पूर्णिमा वर्मन 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' नामक दो प्रसिद्ध इंटरनेट की पत्रिकाएँ निकालती हैं। यु.ए.ई. के कृष्ण बिहारी ने हिंदी में अनगिनत कहानियाँ लिखी हैं। कांता भाटिया ने भी हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

भारत के पड़ोसी देशों में अभी हिंदी के लिए उचित वातावरण का निर्माण करना बाकी है। पाकिस्तान, बांग्लादेश में अभी हिंदी साहित्य का अभाव है। नेपाल, भूटान, बर्मा आदि देशों में हिंदी साहित्य के लिए उचित वातावरण का निर्माण हो चुका है। नेपाल में तो हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा विद्यमान है। यहाँ हिंदी की विभिन्न विधाओं में प्राचीन काल से ही रचनाएँ हो रही हैं। लालदास, जगत मंगल, सर्वश्री धुस्वा सायमि, गोपाल सिंह नेपाली यहाँ के प्रमुख रचनाकार हैं। कविता के अलावा यहाँ उपन्यास, निबंध, आलोचना आदि के क्षेत्र में अच्छा कार्य हुआ है।

इससे पता चलता है कि विश्व में हिंदी साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है।

C/o. श्री कुलवंत सिंह
79-आइडिया कॉलोनी, लालपुर
रुद्रपुर, उधमसिंह नगर, उत्तराखंड
shyam.kundan@gmail.com

22 हिंदी और यूरोपीय साहित्य में अंतरसंबंध

• डॉ. मृदुल जोशी

आधुनिक युग सूचना, संचार क्रांति तथा प्रौद्योगिकी का युग है। भूमंडलीकरण की अवधारणा एवं विश्वग्राम की संकल्पना का आधार 'संचार' तथा 'अनुवाद' है। विश्व के श्रेष्ठ साहित्य के बीच का आदान-प्रदान अनुवाद के माध्यम से ही संभव है। विभिन्न समाजों की अलग-अलग संस्कृतियाँ साहित्य के माध्यम से स्वरित होती हैं और अनुवाद द्वारा दूसरी भाषा में सहज ही अंतरित हो जाती हैं। वास्तविकता यह है कि अनुवाद दो भाषाओं का न होकर दो संस्कृतियों का होता है। फलतः अनुवाद दो भाषाओं के बीच का हस्तांतरण न होकर दो संस्कृतियों के आदान-प्रदान का सशक्त सेतु है। आज विश्व विख्यात यूरोपीय साहित्य के हिंदी में तथा हिंदी के कालजयी साहित्य की अन्य यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद की महती आवश्यकता है एवं हमें इस दिशा में और भी उत्साहवर्द्धक प्रयत्न करने की ज़रूरत है।

यूरोपीय साहित्य और यूरोप की धरती से हिंदी लेखकों का संबंध अत्यंत प्राचीन है। हिंदी साहित्य पर यूरोपीय साहित्य का प्रभाव और यूरोपीय साहित्य पर हिंदी के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। यूरोप के अनेक विद्वान ऐसे हुए हैं जो केवल हिंदी के लिए ही समर्पित रहे। बेल्जियम के फ़ादर कामिल बुल्के के हिंदी के बहुमूल्य योगदान को कौन नहीं जानता? इनका समूचा जीवन हिंदी के लिए समर्पित रहा और 'रामकथा' पर इनका शोध मील का पत्थर बना। यही नहीं इनके द्वारा विनिर्मित 'अंग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश' सर्वमान्य और श्रेष्ठ शब्दकोशों में शामिल है। उनका यह वक्तव्य अविस्मरणीय है, ''मुझे लगता है कि ईसा, हिंदी और तुलसीदास—ये वास्तव में मेरी साधना के तीन प्रमुख घटक हैं और मेरे लिए इन तीन घटकों में कोई विरोध नहीं है बल्कि गहरा संबंध है।'' बेल्जियम में ही लगभग 125 वर्षों से संस्कृत के अध्ययन के साथ गेंट विश्वविद्यालय के 'भारत विद्या विभाग' में हिंदी का उच्चतर अध्ययन हो रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास के सर्वप्रथम लेखक के रूप में फ्रेंच विद्वान गार्सें दे तासी का नाम आता है जिन्होंने 'इस्त्वार दे ला लितेराचियर एंदुई-एंदुस्तानी' ग्रंथ का प्रणयन किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के क्रम में एक अन्य विद्वान सर जॉर्ज ग्रियर्सन का नाम है जिनका महत्वपूर्ण ग्रंथ 'द मॉर्डन वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान' हिंदी लेखकों को कालक्रमानुसार व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है।

चेक गणराज्य के भारत में राजदूत रहे ओदोनेल स्मेकल के हिंदी प्रेम को कौन नहीं जानता? इनके अनेक काव्य-संग्रह 'तेरे दान किए गीत', 'मेरी प्रीत तेरे गीत', 'स्वाति बूंद', 'नमो नमो भारत माता', 'अविराम', 'कलम को लेकर चल', 'मधुमिलन क्षेत्र', 'हमारा हरित नीम' इत्यादि इनका भारत और भारत की संस्कृति के प्रति प्रेम को प्रदर्शित करते हुए इन्हें एक हिंदी कवि के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। डॉ. हरिवंशराय बच्चन, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', डॉ. निर्मल वर्मा, डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी इत्यादि हिंदी के अनेक विद्वान लेखक यूरोप आए और यहाँ की संस्कृति एवं साहित्य से प्रभावित हुए। यही नहीं इनके द्वारा यूरोपीय देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए भी कार्य किया गया। आज विश्व बाज़ार में सबसे बड़े उपभोक्ता वर्ग की भाषा हिंदी को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य लेखन में पाश्चात्य विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। जहाँ पाश्चात्य कवि लेखक इलियट व कॉलरिज की रचनाओं में भारतीय दर्शन का प्रभाव है तो वहीं प्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की रचनाओं में वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, कीट्स का प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रयोगवाद व नई कविता के प्रणेता अज्ञेय की रचनाओं में सुप्रसिद्ध अस्तित्ववादी चिंतक काल यास्पर्स सहित प्रख्यात कवि ब्राउनिंग हेवलॉक, एलिस, बर्टराण्ड रसेल, डी.एच. लॉरेंस सदृश अनेक महान कलमकारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'अज्ञेय' के यात्रावृत्तांतों के संकलन 'एक बूँद सहसा उछली' में पाश्चात्य और पौर्वात्य जीवन-दर्शन का तुलनात्मक रूप झलकता है। अपने यूरोपीय प्रवास काल में अनेक लेखकों, कवियों, साहित्यकारों के परिचय से मिली साहित्यिक-सांस्कृतिक संवेदनाएँ इस यात्रावृत्तांत में प्रकट हुई हैं। इसी प्रकार 'प्राची और प्रतीची' नामक निबंध द्वारा उन्होंने पूर्व-पश्चिम के जीवन में प्रचलित शाश्वत प्रश्नों को सूक्ष्म रूप से

तुलनात्मक धरातल पर भारतीय पाठकों के समक्ष रखा है।

पाश्चात्य की 'रोमांटिसिज्म' की विचारधारा हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का रूप धारण करके प्रकट हुई है जिसके प्रभाव क्षेत्र में सुमित्रानंद पंत ही नहीं प्रसाद, निराला सदृश अनेक कवि आए हैं। इसी प्रकार 20वीं शताब्दी में प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक आंद्रे ब्रेतों के सुरीरयालिज़म को जो एक आंदोलन के रूप में इंग्लैंड में हर्बट रीड के द्वारा भी परिपोषित हुआ। भारत में सन् 1943 के आसपास प्रयोगवादी हिंदी कविताओं और कहानियों में 'अतियथार्थवाद' के नाम से जाना गया और हिंदी लेखन में इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिया। यही नहीं विविध साहित्यिक विचारधाराएँ, प्रतीकवाद, बिंबवाद, अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद, आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद—सबकी सब पश्चिम की देन है। आलोचना के क्षेत्र में भी एदोल्फ तेन, अलेक्जेंडर बाउम गार्टन, विको, कांट, सुसान लेंगर, जॉर्ज सांतायना, लुकास इत्यादि विद्वानों के विचार-सिद्धांतों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

नॉर्वे में असित जोशी 'शांती दूत' त्रैमासिक हिंदी पत्रिका व सुरेशचंद्र शुक्ल 'स्पाइल' (हिंदी नार्विजन) पत्रिका निकालते हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रवासी भारतीयों के हिंदी साहित्य प्रेम को 'विश्व हिंदी रचना' नामक अपने ग्रंथ में समेटा है। इनका स्पष्ट मानना है, ''विश्व हिंदी रचना के प्रकाशन ने हिंदी में सर्जनात्मक साहित्य का छोटा-सा किंतु विश्व में चारों ओर फैला हुआ आकाश-निर्मित किया है, उसे विश्व के हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाए और हिंदी संसार को बताया जाए कि तूफानों-आँधियों एवं भयंकर बाधाओं के बावजूद हमने भी हिंदी की एक छोटी सी दुनिया बनाई है। यह दुनिया प्रत्येक देश की अपनी है परंतु उसकी आत्मा हिंदी और भारतीयता की है।''

यूरोप में रह रहे प्रवासी भारतीयों का हिंदी प्रेम व हिंदी साहित्य में उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। इन्होंने अनवरत लेखन व विदेशी धरती पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं के सफल संपादन के माध्यम से हिंदी के कोश में अभिवृद्धि की है। प्रवासी हिंदी साहित्य वास्तव में एक साहित्यिक सेतु है जो अपनी मातृभूमि से तथा भारतीयों को प्रवास में गए अपने भाई-बहनों से जोड़ता है। इन प्रवासी भारतीयों ने दो संस्कृतियों के बीच रहनेवाले तनावों और विसंगतियों को शब्द दिए हैं। ये बेहतर भौतिक जीवन जीने के लिए विदेश आए। इन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए कविता, कहानी, नाटक, निबंध, संस्मरण इत्यादि विधाओं का चयन किया है। इन्होंने अपने-अपने पृथक काव्य-संग्रह, कथा-संग्रह भी प्रकाशित कराए हैं।

राधाकांत भारती की 'ब्रिटेन में हिंदी रचनाकार' व उषा राजे सक्सेना की 'ब्रिटेन में हिंदी' यहाँ की हिंदी और हिंदी साहित्य के विकास तथा उसके इतिहास को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती हैं। विद्वान पिंकॉट, डॉ. एल.एफ.रुनाल्ड हर्नली, डॉ. ग्रियर्सन इत्यादि विद्वानों ने ब्रिटेन में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न की तो बाद में अनेक संस्थाओं, पत्रिकाओं यथा हिंदी परिषद लंदन, हिंदी समिति यू.के., कला ज्योति नॉर्थ लंदन, गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय बर्मिंघम, भारतीय भाषा संगम, यार्क, हिंदी भाषा समिति मेनचेस्टर तथा साउथ लंदन गिल्ड ऑफ़ हिंदी विमेन राइटर्स नामक संस्थाएँ हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रही हैं। 'प्रवासिनी', 'अमरदीप', 'पुरवाई', 'लंदन', 'टाइम्स' नामक पत्रिकाओं में उषा राजे सक्सेना, दिव्या माथुर, उषा वर्मा, पद्मेश गुप्त, मोहन राणा, अचला शर्मा सदृश 50 से ज़्यादा नए-पुराने कवि-कथाकार लिख रहे हैं।

नॉर्वे में असित जोशी 'शांती दूत' त्रैमासिक हिंदी पत्रिका व सुरेशचंद्र शुक्ल 'स्पाइल' (हिंदी नार्विजन) पत्रिका निकालते हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने प्रवासी भारतीयों के हिंदी साहित्य प्रेम को 'विश्व हिंदी रचना' नामक अपने ग्रंथ में समेटा है। इनका स्पष्ट मानना है, ''विश्व हिंदी रचना के प्रकाशन ने हिंदी में सर्जनात्मक साहित्य का छोटा-सा किंतु विश्व में चारों ओर फैला हुआ आकाश-निर्मित किया है। उसे विश्व के हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाए और हिंदी संसार को बताया जाए कि तूफ़ानों, आँधियों एवं भयंकर बाधाओं के बावजूद हमने भी हिंदी की एक छोटी-सी दुनिया बनाई है। यह दुनिया प्रत्येक देश की अपनी है

परंतु उसकी आत्मा हिंदी और भारतीयता की है।''

अब तक हिंदी साहित्य की सशक्त कृतियों का विविध भाषाओं में अनुवाद हुआ है जिनमें क्नुत क्रिस्तियान सेन द्वारा प्रेमचंद की अनेक कहानियों का नार्वेजियन भाषा, रोमानिया की श्री निकोलाया ज्येर्बा द्वारा हिंदी के कतिपय निबंधों का, दनिल एंका द्वारा प्रेमचंद की 22 कहानियों व कुछ उपन्यासों का रोमानियन भाषा में, हंगरी की डॉ. ऐवा अरादि द्वारा प्रेमचंद की कृतियों, डॉ. बंगा इमरै द्वारा मीरा के पदों का हंगेरियन भाषा में अनुवाद हुआ है। वेनिस विश्वविद्यालय की मारियोल्ला ऑफ़रीदी ने प्रेमचंद के 'गोदान' व कुँवर नारायण की 'आत्मजयी', डॉ. चेचीलिया कोस्सियो ने फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' का इतावली भाषा में अनुवाद किया है। डॉ. मारग्रेट गात्स्लाफ़ ने यशपाल, प्रेमचंद और कृष्ण चंदर की कहानियों का डच भाषा में अनुवाद किया है तो फिनलैंड की बर्तिल तिक्कनेन ने क्लो से कातुर्नेन के साथ मिलकर 'गोदान' का फीनिश भाषा में अनुवाद किया है। फ्रांस की वॉदवील ने रामचरितमानस, सूरसागर, पद्मावत, ढोला-मारुरा दूहा, कबीर की रचनाओं का फ्रेंच में अनुवाद किया है। पोलैंड की श्री पास्नोव्स्की ने मैला आँचल व मारिया क्षिश्तोफ़ वृस्की ने लक्ष्मी नारायण लाल व सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटकों का अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त पोलिश में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, जैनेंद्र, कृष्ण चंदर, फणीश्वरनाथ 'रेणु', उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी की रचनाओं का अनुवाद हुआ है। डॉ. ओदोनेल स्मेकल ने प्रेमचंद के 'गोदान' व 'जंगल के फूल' का चेक भाषाओं में अनुवाद किया। डॉ. वीनंद कलावर्त ने हिंदी के भक्तिरस साहित्य के कुछ अंशों का डच और अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है। ब्रिटेन में रामचरितमानस के आठ हिंदी अनुवाद हो चुके हैं और यहाँ स्थापित अंतरराष्ट्रीय समिति व्यक्तिगत स्तर पर हिंदी सम्मेलन आयोजित कर चुकी है। जर्मनी में बी.बी.सी. की तर्ज़ पर 'दोएचे वेले' प्रसारण केंद्र से कार्यक्रम प्रसारित होता है। ये विदेशी विद्वान हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति और साहित्य को समझना चाहते हैं।

रूसी भाषा में रेणु, प्रेमचंद, निराला, दिनकर, पंत, बच्चन, रघुवीर सहाय, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, नरेश मेहता, धुमिल की कृतियों का अनुवाद हुआ है। विदेशों में जिन विदेशी भाषाओं के साथ हिंदी के शब्दकोश प्रकाशित हुए उनमें अंग्रेज़ी, जर्मन, हंगेरियन, उज़्बेकी, थाई इत्यादि प्रमुख हैं। लेकिन अभी भी विदेशी धरती के साहित्य के हिंदी में अनुवाद की अपार संभावनाएँ हैं और हिंदी की अनेक महान कृतियों के पारस्परिक अनुवाद की आवश्यकता है। अनुवाद के क्षेत्र में साहित्य के नूतन सृजन की नित्य नवीन संभावनाओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। साहित्य में पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा हम यूरोपीय-हिंदी साहित्य के अंतरसंबंधों को दृढ़ीभूत कर सकते हैं। मनुष्य की प्रकृति नित्य नवल सृजन का आनंद लेना चाहती है क्योंकि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में मैं कहूँ तो—

पुरातनता का यह निर्मोक न सहन कर सकती प्रकृति पल एक।
नित्य नूतनता का आनंद किए है परिवर्तन में टेक॥

पारस्परिक भाषा अनुवाद के द्वारा हम विश्व साहित्य के विपुल भंडार को प्राप्त करते हुए ज्ञान व सृजन के इस आनंद को बनाए रख सकते हैं।

साभार : आधारशिला-42 : अक्टूबर-नवम्बर 2014

23 दक्षिण पूर्व एशिया में हिंदी के विकास का परिप्रेक्ष्य और तत्रजनित रामकाव्य का तुलनात्मक परिदृश्य

● *डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी*

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हिंदी के विकास का स्वरूप बहुआयामी है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी एक इंडो-आर्यन भाषा है तथापि उसके विकास का क्षेत्र व्यापक और प्रभाव अंतरराष्ट्रीय है। संस्कृत से प्रादुर्भूत हिंदी के उत्कर्ष की यात्रा पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से होती हुई हिंदी तक मिलती है इसलिए देवनागरी लिपि में लिखी जाने के कारण इसकी शब्द संपदा भी काफ़ी समृद्ध है।

हिंदी को वैश्विक पृष्ठभूमि में देखने से एक ओर जहाँ वह यूरोप और अमेरिका सहित फ्रांस, इटली, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, नार्वे, डेनमार्क, स्विट्ज़रलैंड, पोलैंड, चेक, जर्मन, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी आदि पश्चिमी देशों में फैली हुई है, वहीं दूसरी ओर वह चीन, जापान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्री लंका, सिंगापुर, फ़िलीपींस, म्याँमार, लाओस, वियतनाम, मलेशिया, बर्मा, थाईलैंड, इंडोनेशिया आदि देशों में भी अपनी जड़ें जमा रही हैं। इन देशों में भारतीय संस्कृति का विकास और हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है।

गौरतलब है कि भाषा वैज्ञानिकों ने दक्षिण पूर्व एशियाई परिवार की भाषा को 'आस्ट्रिक' परिवार की श्रेणी में रखा है और इसी नाम से संबोधित किया है। इसके अंतर्गत तीन भाषा समूहों का विकास मिलता है—प्रथमशः मानख्मेर या ख्मेर, जिसके अंतर्गत बर्मा, स्थ्या और निकोबार द्वीप समूह तक भाषा परिवार फैला हुआ है। इस समूह का दूसरा भाषा परिवार है मुंडा। यह भारत के पूर्वी पहाड़ी भाग, बिहार एवं मध्य प्रदेश के कुछ भागों में, उड़ीसा, मद्रास एवं पश्चिम बंगाल के हिस्सों में प्रचलित है। इस परिवार की मुख्य भाषाएँ मान-ख्मेर, मुंडा और बंगाली हैं। मानख्मेर में साहित्य मिलता है लेकिन और भाषाएँ मौखिक रूप में अधिक व्यवहृत होती हैं। फ़ादर कामिल बुल्के ने अपने अध्ययन में ख्मेर साहित्य के महत्व का प्रतिपादन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि इस भाषा के साहित्य में राम काव्य परंपरा के विकास की संभावना इसलिए बलवती हुई कि ख्मेर साम्राज्य की स्थापना उन भारतीय प्रवासियों द्वारा हुई जो व्यापार के लिए दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में गए हुए थे।

औपनिवेशिक संबंध के कारण भी हिंदी का सीधा संबंध वृहत्तर भारत के देशों के साथ रहा जिनके माध्यम से दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में भारतीयों का आवागमन बढ़ा और बना रहा। वहाँ की संस्कृति पर परस्पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक प्रक्रिया बन गया था। यही नहीं कुछ धर्मों के प्रचार-प्रसार के कारण भी हिंदी साहित्य और संस्कृति का प्रभाव जहाँ संपूर्ण आसियान क्षेत्र पर पड़ा, वहीं उन देशों पर भी पड़ा जो धार्मिक दृष्टि से स्वतंत्र थे। प्रभाव के आधार पर देखें तो भारतीय समाज, संस्कृति और हिंदी के विकास का कारण उन देशों में **रामायण** और **महाभारत** सहित भारत के धर्मग्रंथों और वहाँ की भाषाओं को माना जाना यथेष्ट होगा। राम और कृष्ण के नायक रूप का महत्व इन ग्रंथों के माध्यम से आमजन के बीच में देखा जाने लगा, फलतः दो संस्कृतियों में संबंध और दृढ़ता सांस्कृतिक उत्थान की दिशा में बढ़ने लगा।

इन देशों में राम-कृष्ण के देवत्व का प्रसार-प्रचार हुआ ही, वाल्मीकि रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों की उपयोगिता के साथ हिंदी में लिखित सभी प्रकार के उच्चादर्शों पर केंद्रित साहित्य की महत्ता की प्रतिष्ठापना भी हुई। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि मलेशिया, इंडोनेशिया आदि देशों में नैतिक अवधारणाओं के विकसित होने में इन ग्रंथों की वजह से उल्लेखनीय प्रगति हुई। राम-कृष्ण पर केंद्रित चरित्र-निर्माण में सहायक भावना के संवर्द्धन के लिए रामकथा के पात्रों को केंद्र में रखकर साहित्य सृजन शुरू हुआ, जिसमें कविता, गीत, नाट्य साहित्य आदि रूपों को विशेष बढ़ावा मिला।

बौद्ध धर्म और रामायण के प्रचार-प्रसार से भारत की पालि और हिंदी का विस्तार थाईलैंड, बर्मा और ख्मेर में भी हुआ। ब्रिटिश उपनिवेशकाल में मिश्रित संस्कृति के प्रभाव से बहुभाषी प्रथा विकसित हुई जिसका प्रभाव सिंगापुर पर भी पड़ा।

''दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीयों के आवागमन के साथ हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए उल्लेखनीय श्रेय रामकथा को दिया जाना उचित होगा जिससे जावा, सुमात्रा, मलय, इंडोनेशिया, मलेशिया, सिंगापूर आदि क्षेत्रों में रामकथा के

अनेक रूपों का विकास हुआ।'' इन भाषाओं में राम साहित्य की रचना का सूत्रपात भारतीय भाषाओं के विकास का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुआ। फ़ादर कामिल बुल्के ने लिखा है हिंदेशिया में रामकथा प्राचीनकाल से विदित है। इसका प्रमाण नवीं शताब्दी के एक शिव मंदिर के शिलालेख से मिलता है। बाद में जावा तथा मलय में एक विस्तृत राम साहित्य की रचना की गई, जिसमें रामकथा के दो भिन्न रूप मिलते हैं—

1. जावा के प्राचीन रामायण का रूप, जो कि वाल्मीकीय कथा के अधिक निकट है तथा
2. अर्वाचीन रामकथा, जिसमें वाल्मीकि से बहुत भिन्नता पाई जाती है।

इसकी सामान्य विशेषता यह है कि इसमें राम भक्ति का भाव नहीं आया है। जावा के प्राचीनतम रामायण के रचयिता शैव थे तथा जिन दो मंदिरों में रामकथा की विस्तृत शिला-चित्र-माला है, वे भी शिव मंदिर हैं। **(रामकथा पृष्ठ 209)**

रामकथाओं का प्रारंभिक आधार वाल्मीकि रामायण रहा है। वाल्मीकि रामायण का रचना काल 300 ई. पूर्व माना जाता है किंतु रामकथा विषयक आख्यान काव्य की परंपरा 600 ई.पू. मानी जाती है। महर्षि वाल्मीकि के रामायण के राम के कथानक की प्रमाणिकता मानी जाने लगी थी, फलत: इस साहित्य का प्रभाव निश्चित रूप से न केवल भारतवर्ष में अन्य रामकाव्यों पर पड़ा होगा अपितु भारतेतर देशों में भारतीयों के आने-जाने से पड़ा होगा। इस दृष्टि से ही आसियान देशों में हिंदेशिया के प्राचीन साहित्य के 'रामायण ककविन' (जावा) का महत्व सर्वोपरि है। इसका रचनाकाल दसवीं शताब्दी माना गया है जिसके पहले अभिषेक नाटक (300-400 ई.), 'रावण वध' और 'भट्टिकाव्य' (500-700 ई.), 'उत्तर रामचरित' (700-800) तथा तिब्बती खोतानी रामायण (800-900 ई.) आदि की रचना की जा चुकी थी।

आधुनिकतम खोजों के आधार पर डॉ. कामिल बुल्के ने लिखा है कि 'रामायण ककविन' के रचनाकार का नाम योगीश्वर बताया गया है जबकि इसके रचनाकार योगीश्वर नहीं थे। 'रामायण ककविन' का रचयिता अभी भी अज्ञात ही है। डच अनुवाद से पता चलता है कि इसका मुख्य आधार भट्टि-काव्य (500-700 ई.) है ग्यारहवें अध्याय में भट्टि-काव्य के कथानक की जितनी विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, वे सब 'रामायण ककविन' में भी पाई जाती हैं। प्रारंभिक बारह सर्गों में विभाजन भट्टि-काव्य में भी हुआ है। अंतर है तो यह, कि भट्टि-काव्य का नौवाँ अध्याय रामायण ककविन के नौवें तथा दसवें अध्याय में विभक्त किया गया है। युद्ध के वर्णन में 'रामायण ककविन' अधिक विस्तार में जाता है, जिसमें भट्टि-काव्य के 22 सर्गों की सामग्री 26 सर्गों में दी गई है। दोनों रचनाओं में युद्ध खंड की कथा तक का वर्णन किया गया है। अभिषेक नाटक तथा महानाटक के वृत्तांत के अनुसार रावण सीता को निरुत्साहित करने के लिए राम तथा लक्ष्मण दोनों का मायामय शीर्ष दिखलाता है। गुणभद्र में एक पत्र का उल्लेख हुआ है, जिसे राम हनुमान के द्वारा सीता के पास भेज देते हैं। 'रामायण ककविन' में सीता अभिज्ञान हेतु चुड़ामणि के अतिरिक्त एक पत्र भी हनुमान को देती हैं। फिर भी पत्र की कल्पना इतनी स्वाभाविक है कि इसके कारण गुणभद्र का प्रभाव मानना आवश्यक हो जाता है। ककविन की दो अन्य विशेषताएँ अंयत्र नहीं मिलती हैं। शबरी राम से अपनी कथा सुनाती हुई कहती है कि विष्णु ने वाराहावतार में मेरी माला खा ली थी और मर गए थे, तब मैंने उनकी लाश खाई थी, जिसके फलस्वरूप मेरा मुँह काला हो गया था, अनंतर वह राम से अनुरोध करती है, वे उसका मुख पोंछकर उसको शुद्ध करें। इसके अतिरिक्त इंद्रजीत की सात पत्नियों का उल्लेख है, जो अपने पति की ओर से युद्ध करती हैं और रणभूमि में मारी जाती हैं। रामायण ककविन की एक अंतिम विशेषता यह है कि मित्रता का उपेक्षाकृत महत्वपूर्ण स्थान है।'' **(वही, पृष्ठ 201)**

रामायण ककविन की परंपरा के अनुक्रम में नाटकों के माध्यम से राम कथा के विकास का स्वरूप सामने आता है। जावा और सुमात्रा में राम कथा पर आधृत नाट्य रूपों में रामायण के चरित्रों द्वारा अभिनय किया जाता है। इन नाटकों का कथा विधान सेरत कांड (1500 -1600 ई.) और रामकेलिंग (1500 1600 ई.) के परिप्रेक्ष्य में मिलता है। बाली का वयांगवोंग नामक नाटकों का पूरा वर्ग (जिसमें अभिनेता मुखौटा नहीं पहनते) केवल रामायण का दृश्य ही प्रस्तुत करता है। रामकथा का यह रूप हिंदेशिया, हिंद, चीन, स्याम और ब्रह्मदेश तक फैला मिलता है। **(वही, पृष्ठ 211)**

मलयन रामकथा के अर्वाचीन रूप भी मिलते हैं जिनमें 'हिकायत सेरिराम' के अलग-अलग साहित्यिक पाठों का उल्लेख मिलता है।

इन पाठों का उल्लेख डॉ. बुल्के ने किया है—

1. राफल्स मलय हस्तलिपि का पाठ इसके कथानक में प्रारंभ में रावण का पूर्वचरित्र दिया गया है, जो अन्य पाठों में नहीं मिलता है। इस कथा की एक अन्य हस्तलिपि 1963 ई. में मिली। इसमें रावण के पूर्वचरित्र (अत्याचार, तपस्या) के विषय में अतिरिक्त सामग्री है और हनुमान की जन्मकथा है, जो महाशिव पुराण के कथानक से साम्य रखती है।
2. हिकायत महाराज रावण पाठ का कथानक सेरीराम से बहुत मिलता-जुलता है।
3. श्री राम (डब्ल्यू. ई. मैक्सवेल द्वारा संपादित) पाठ, इसमें हनुमान के जन्म से लेकर लंका में राम की विजय तक की कथा 'हिकायत सेरीराम' के आधार पर दी गई है। हिकायत सेरीराम में रावण के जन्म से लेकर सीता के त्याग-सम्मिलन तक की कथा चित्रित है।

सेरीराम के कथानक को रावण चरित, और राम का जन्म, सीता का जन्म तथा विवाह, राम का वनवास, सीता का हरण, युद्ध, सीता त्याग तथा राम-सीता संकलन शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है।

सेरीराम से भिन्न जावा का सरत कांड है। इसमें 'नबी आदम' की कथा के बाद जावा के प्राचीन राजाओं की वंशावली का वर्णन है, जिसके अंतर्गत देवताओं की पौराणिक कहानियों का चित्रण है।

हिकायत सेरीराम के संबंध में समीक्षकों ने अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है हिंदेशिया के प्राचीन रामकथा के मुख्य आधार के विषय में संदेह की गुंजाइश नहीं होती है किंतु सेरीराम का मूल स्रोत निर्धारित करना असंभव सा प्रतीत होता है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि सेरीनाम में, जो वाल्मीकि से भिन्न बहुसंख्यक प्रसंग मिलते हैं, उनका आधार प्रायः भारतीय ही है। जैनी तथा बंगाली रामायण कृतिवास रामकथाओं का प्रभाव निर्विवाद है। उड़िया राम साहित्य (रघुनाथ विलास) रंगनाथ रामायण (1200, 1300) तथा कंब रामायण (1100, 1200) भारत से पूर्वी तट की रचनाओं का प्रभाव भी सेरीराम पर पड़ा है। सेरीराम के अनेक प्रसंग आनंद रामायण, कथा सरित्सागर, मैरावण चरित अथवा कन्नड़ का तोरवे रामायण (1500, 1600) में विद्यमान है। सेरीराम, रामायण ककविन तथा मुसलमानी धर्म का जो परस्पर प्रभाव पड़ा है, वह एक प्रकार से अनिवार्य ही था। **(रामकथा, पृष्ठ 215)** इनके अलावा हिंदू धार्मिक ग्रंथों में वर्णित कथानकों से आयातित राम कथाओं का प्रभाव भी इन रामायणों पर पड़ना संभावित था। भगवत पुराण, हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण (300-400 ई.) स्कंद पुराण (800-900) आदि से निश्चित रूप से प्रभाव ग्रहण किया जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इन भाषाओं का परीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आसियान देशों में थाईलैंड, बर्मा, मलेशिया, इंडोनेशिया, म्याँमार, फिलीपींस, सिंगापुर, लाओस, वियतनाम आदि देशों में से थाई भाषा पर यदि किसी भाषा का प्रभाव पड़ा तो संस्कृत की दाय भाषा होने के कारण हिंदी का नाम पड़ा। औपनिवेशिक संबंध के कारण भी हिंदी का सीधा संबंध वृहत्तर भारत के देशों के साथ रहा, जिनके माध्यम से दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में भारतीयों का आवागमन बढ़ा और बना रहा। वहाँ की संस्कृति पर परस्पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक प्रक्रिया बन गया था, यही नहीं कुछ धर्मो के प्रचार-प्रसार के कारण भी हिंदी साहित्य और संस्कृति का प्रभाव जहाँ संपूर्ण आसियान क्षेत्र पर पड़ा, वहीं उन देशों पर भी पड़ा जो धार्मिक दृष्टि से स्वतंत्र थे।

कंबोडिया के रामकीर्ति और स्याम देश के (रामकियेन) चरित काव्यों पर रामचरितमानस (1574) का प्रभाव भी संभावित है क्योंकि इन काव्यों का रचनाकाल (1500-1600 ई.) आसपास के वर्ष ही हैं और अब तक भारतीय व्यापारियों का आवागमन पूर्ववर्ती समयों से ज़्यादा होने लगा था, जिसके कारण इन धर्मग्रंथों को अपने साथ ले जाना उनकी आस्था का एक हिस्सा रहा होगा। मानस की

अनेक चौपाइयों में रामकथा के लिए, रामकीर्ति, हरिहर कथा, रघुपति गुन गाहा, राम जस, हरि जस, हरि कीरति, गुन गाथा और गुन गाहा आदि शब्दों के अनुरूप रामकीर्ति या रामकियेन (रामकीर्ति) के उच्चारण अंतर से समानार्थी शब्द एवं वर्ण मैत्री के परिचायक हैं।

1. तेहि कर बिमल विवेक बिलोचन। बरनऊँ रामचरित भवलोचन॥
   हरिहर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद् मंगल देनी।
   (बाल, दोहा 2 के बाद)
2. कारन चहहूँ **रघुपति गुन गाहा**। लघुमति मोरी चरित अवगाहा।।
   (बाल, दोहा 7 के बाद)
3. भनिति भदेस वास्तु कबि बरनी। **रामकथा** जग मंगल करनी।।
   स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
   गिरा ग्राम्य सिय **राम जस**, गावहिं सुनहिं सुजान।। दो. 7
   (बाल, दोहा 10 ख)
4. बुध बरनहिं **हरिजस** अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी।।
   मुनिन्ह प्रथम **हरि कीरति** गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई।।
   (बाल, दोहा 12 के बाद)
5. जो प्राकृत कबि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
   (बाल, दोहा 13 के बाद)

गोस्वामी जी की मान्यता भी है कि हरि कीरत, राम जसु का गान कवि-कोबिद इस विचार से करते हैं कि हरिजस जान से ही, कवि को दुख से मुक्ति मिल सकती है "कवि कोबिद अस हृदयँ बिचारि, हरि जस कलि मल हरनी।" और अच्छे कवियों का काम है कि वे यत्र-तत्र सर्वत्र राम कीर्ति का गान करते हुए हर जगह की शोभा में वृद्धि करते रहें—

वैसेहीं सुकबि कबित कुछ कहहीं, उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

वस्तुतः यदि भारत में 'रामकथा', 'हरिलीला', 'रामयश', आदि रूपों में विख्यात है तो दक्षिण-पूर्व एशिया अथवा आसियान देशों में रामकथा 'रामकियेन' (अर्थात रामकीर्ति) के नाम से स्याम देश में मिलती है। आसियान देशों में रामकथा का प्रचार-प्रसार बौद्ध धर्म के समानांतर ही माना जाना चाहिए क्योंकि बौद्ध धर्म से पहले हिंदू धर्म का भी व्यापक प्रचार-प्रसार दक्षिण-पूर्व एशिया में हो रहा था, इसके साक्ष्य मिलते हैं। ख्मेर राजाओं ने तो हिंदू धर्म से उस क्षेत्र की स्थापत्य कला और वास्तु शिल्प को प्रमुखता से जोड़ दिया था, जिसके परिणामस्वरूप ही रामकियेन के नाम से रामकथा के विकास का सूत्र जुड़ता गया।

गौरतलब तथ्य यह है कि ख्मेर सभ्यता एक महत्वपूर्ण सभ्यता के रूप में जानी जाती है। इतिहासकारों का मानना है कि इस सभ्यता के विकासकाल प्रथम शताब्दी से ही भारतीय व्यापारियों का आना-जाना हिंदी-चीन तक था जिसके फलस्वरूप अपनी संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य भी इन्हीं व्यापारियों ने उस क्षेत्र में शुरू कर दिया था। आकाशदीप कहानी में जयशंकर प्रसाद ने जिस चंपा द्वीप को चंपा राज्य के रूप में प्रस्तुत किया है, उसकी स्थापना भी 7वीं शताब्दी तक हो चुकी थी जिसके प्रमाण तत्कालीन शिलालेखों में मिलते हैं। हिंद चीन में ही **वाल्मीकि रामायण** का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ था। **राजा प्रकाश धर्म** सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के समय के वाल्मीकि मंदिर में वाल्मीकि की एक मूर्ति मिली थी। इस मंदिर के शिलालेख में श्लोकोत्पत्ति तथा वाल्मीकि के विष्णु अवतार होने का उल्लेख मिलता है—

यस्य श्लोकात समुत्पन्धनं श्लोकं ब्रहाणाभिपुज (ति)।।
विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुष्स्यात्मरुपिणः।।

भारतीयों ने भी प्रथम शताब्दी में दक्षिण कंबोडिया में ख्मेर जाति के बीच में फूनान राज्य स्थापित किया था। छठवीं शताब्दी में एक अधीनस्थ राजा ने फूनान के विरुद्ध विद्रोह करके उत्तर में कंबूज राज्य की स्थापना कर ली, जो 14वीं शताब्दी तक संवर्द्धित हुआ। वहाँ सैकड़ों मंदिर थे, जिन्हें आक्रमणकारियों ने ध्वस्त कर दिया था। अनुमानतः ये मंदिर 9वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी के मध्य निर्मित किए गए थे। वहाँ की सर्वाधिक पुरानी राजधानी अंगरकोरवाट के एक विशाल मंदिर में रामायण, महाभारत तथा हरिवंश कथाओं पर आधारित अनेक शैलचित्र अंकित मिलते हैं, जिन पर जावा की कला का प्रभाव है। इसका भी उल्लेख मिलता है कि 12वीं शताब्दी में अंगरकोरवाट युद्ध हुआ था जिसमें अंगरकोरवाट स्य्हाहर और मंदिर नष्ट कर दिए गए थे लेखिन जयवर्मन द्वितीय नामक शासक ने पचास वर्षों में उसे पुनः हूबहू स्थापित कर लिया।

खमेर राजा हिंदू धर्म को मानने वाले थे। सूर्यवर्मन द्वितीय हिंदुओं के भगवान विष्णु का अवतार स्वयं को ही मानता था, जबकि उनका बौद्ध दोनों ही देव तुल्य हैं और पूज्य हैं, फिर भी विष्णु की पूजा का चलन बुद्ध की पूजा के चलन से पहले था। अत: दोनों ने धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया था। खमेर शासक हाथी को हिंदू धर्म का प्रतीक मानते थे क्योंकि कृषि की उन्नति में इन हाथियों का बड़ा योगदान था। इन राजाओं ने कृषि के विकास की ओर ध्यान दिया और इनका राज्य समृद्ध हो गया। हरियाली, पर्यावरण पर भी इनका ध्यान गया। **(इंटरनेट) 1431** ई. में पड़ोसी देश थाईलैंड ने इस पर आक्रमण कर दिया और राज्य नष्ट कर दिया। यहाँ का समृद्ध नगर अंगरकोरवाट और स्थापत्य नष्ट कर दिए गए। फलत: राजधानी समाप्तप्राय हो गई, जिसे बाद में फ्रांसीसी हरियाली प्रिय और प्रकृतिवादी हेनरी माउहोत ने पुन: तैयार किया।

खमेर साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना रामकीर्ति है, जिसका खमेर भाषा में उच्चारण रेआमकेर अथवा रिमायके है। इस कृति का रचयिता अज्ञात बताया जाता है। इस कृति की प्राचीनतम हस्तलिपि 17वीं शताब्दी में मिलती हैं किंतु अपूर्ण है। इसका कथानक विश्वामित्र के यज्ञ से प्रारंभ होता है। तदुपरांत सीता त्याग से लेकर लवकुश युद्ध तक वर्णन छ: सर्गों में मिलता है। रामाकियेन (स्याम देश कि रामायण) से तुलना करने पर कहा जा सकता है कि सर्ग 80 रामकीर्ति का अंतिम सर्ग नहीं है। रामकीर्ति के फ्रेंच अनुवाद से उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ निरुपित की गई हैं:-

1. लेखक कोई धार्मिक बौद्ध है, जो राम को रामायण का अवतार मानते हुए भी, उनको बोधिसत्व की उपाधि देता है तथा कई स्थलों पर बौद्ध शब्दावली का उपयोग करता है।
2. यद्यपि रामकीर्ति पर सेरीराम की गहरी छाप है, फिर भी लेखक ने वाल्मीकि रामायण तथा सेरीराम की काथाओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है; फलस्वरूप सेरीराम की अपेक्षा रामकीर्ति वाल्मीकि रामायण के अधिक निकट है। सेरीराम में दशरथ की केवल दो रानियों का उल्लेख है। रामकीर्ति में तीनों के नाम वाल्मीकि के अनुसार ही दिए गए हैं। रामकीर्ति में रावण सीता-स्वयंवर उपस्थित नहीं होता लेकिन सेरीराम के अनुसार रावण भी इसमें आया था, सेरीराम में राम स्वेच्छा से वन के लिए प्रस्थान करते हैं, जबकि रामकीर्ति में कैकेयी (कैकसी) के अनुरोध से राम को वन भेजा जाता है। सेरीराम में लक्ष्मण द्वारा शुपर्णखा के पुत्र के वध का वृत्तांत मिलता है, जिसका उल्लेख रामकीर्ति में नहीं है। खमेर रचना में सीता जनक की दत्तक पुत्री मानी जाती हैं तथा राम द्वारा परित्यक्ता होकर वाल्मीकि आश्रम में निवास करती हैं। सेरीराम में सीता महारेसिकली की दतक पुत्री मानी जाती हैं तथा त्याग के बाद वाल्मीकि के यहाँ रहती हैं। सेरीराम में हनुमान राम के पुत्र माने जाते हैं, किंतु रामकीर्ति के अनुसार वे अंजना और वायु की संतान हैं। **(रामकथा, पृष्ठ 217)**

स्याम देश में भी रामकथा का वर्णन रामकियेन (रामकीर्ति) के नाम से प्रचलित है। स्याम में प्राचीनकाल से ही नाटकों में रामकथा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारंभिक नाटकों के दो वर्ग (खोन, हिंदी भाषा के खोल का पर्याय जिसमें अभिनेता चेहरा लगा लेते हैं) भाषा का एक मात्र विषय रामकथा ही था जबकि एक तीसरा वर्ग (नाग अर्थात छाया नाटक) प्रमुखतया रामकथा के दृश्य प्रस्तुत करता था। अठारहवीं शताब्दी में नाटकों के एक नवीन रूप का प्रचलन हुआ (वेयुक रोग), जिसका कथानक राम कियेन पर आधारित था। 18वीं सदी के रामकथा विषयक नाट्य साहित्य की कुछ सामग्री सुरक्षित है। यहाँ रामाकियेन की प्राचीन हस्तलिपियाँ 17वीं शताब्दी की हैं। इस रामायण के दो भिन्न संस्करण 18वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में निकाले गए हैं, तथा इसका एक तीसरा संस्करण नाटक के रूप में 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुआ था, बेंकॉक के बिड़ला ओरियंटल सीरिज में रामकियेन का नाग्रेजी संक्षेप रामकीर्ति के नाम से प्रकाशित किया गया है।

वस्तुत: जिस प्रकार भारत में वाल्मीकि कृत रामायण के तर्ज पर तुलसीकृत रामायण या राधेश्याम रामायण आदि नाम राम के आख्यान के पर्याय रूप में चल पड़े हैं, उसी प्रकार 18-19वीं शताब्दी में खमेर, इंडोनेशिया, मलेशिया, स्याम, वर्मा आदि आशियाँ देशों में रामकथा काव्य के लिए रामकियेन शब्द चल पड़ा था और कई कवियों द्वारा इस दौरान रामकियेन नाम के रामकाव्य लिखे गए। श्याम देश में रामकियेन के कथानकों की निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं जो उन्हें अन्य देशों के रामाकियेन से अलगाते हैं।

1. रामाकियेन के सभी पात्र स्याम देश के निवासी ही हैं तथा रामायण का घटनास्थल भी स्याम देश में ही माना गया है।
2. इसका आधार ख्मेर देश की ख्मेर भाषा का रामकीर्ति है। रामकीर्ति की भाँति रामकियेन भी सेरीराम की अपेक्षा वाल्मीकि कथा के अधिक निकट है। रामकीर्ति तथा वाल्मीकि रामायण की तुलना करते हुए रामकीर्ति की जितनी विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, वे प्राय: सब रामकियेन में विद्यमान हैं। अंतर है तो सिर्फ़ यह कि रामकियेन में हनुमान को अंजना तथा शिव का पुत्र माना गया है तथा लक्ष्मण द्वारा शुपर्णखा के पुत्र के वध का वर्णन है। रामकियेन का एक अन्य प्रसंग राम-सीता का पूर्वानुराग न वाल्मीकि रामायण में मिलता है, और न रामकीर्ति में, किंतु कतिपय बातों में रामकियेन रामकीर्ति की अपेक्षा वाल्मीकीय कथा के अधिक निकट हैं।
3. रामकीर्ति की तरह रामकियेन बहुत सी बातों में"'रामायण सेरीराम पर आधारित है। रामकियेन पर ख्मेर सेरीराम का सीधा प्रभाव है। यथा अहिरावण का पाताल ले जाना।
4. रामकीर्ति वाल्मीकि रामायण तथा सेरीराम के अतिरिक्त रामकियेन का कोई और आधार ग्रंथ रहा है, यह कहना संभव नहीं है क्योंकि अभी तक रामकीर्ति की पूरी हस्तलिपि नहीं मिली है।
5. रामकियेन में विभीषण-मंदोदरी के विवाह का वर्णन मिलता है और यह प्रसंग सेरीराम तथा रामकीर्ति में नहीं आया है जबकि अनेक रामकथाओं में इसका उल्लेख हुआ है।

स्याम देश के उत्तर पूर्वी प्रांतों लाओस में लाओ भाषा बोली जाती है। लाओ साहित्य में पंचतंत्र में दशरथ द्वारा अंधमुनि पुत्र वध तथा राम के पास विभीषण की शरणागति का उल्लेख मिलता है। 16वीं शती में राम जातक की रचना लाओ भाषा में ही हुई है। रामकियेन कि भाँति इस भाषा में सभी जातक कथाओं का घटनास्थल स्याम देश ही माना गया है। इसमें पूर्वार्द्ध में राम के केवल एक भाई लक्ष्मण तथा एक बहन शांता का उल्लेख मिलता है। उत्तरार्द्ध में वाल्मीकीय रामायण के समस्त कथानक रामकियेन से मिलते-जुलते रूप में प्रस्तुत हैं। बर्मा में रामकथा का अद्यतन रूप मिलता है। बर्मा में किसी राजा ने 1767 ई. में स्याम की राजधानी अयुतिया को नष्ट कर दिया था। इस विजय के बाद राजा बहुत से बंदियों को अपने साथ ले गया था, जो बर्मा में श्याम के राम नाटक का अभिनय करने लगे। श्याम की रामकथा के आधार पर यूँ तो 1800 ई. में राम यामन की रचना हुई थी, जो बर्मा का सबसे महत्वपूर्ण काव्य माना गाया है। वर्तमान में राम नाटक जिसे बर्मा की भाषा में यामष्वे कहा जाता है, अत्यधिक लोकप्रिय है। इस नाटक के सभी अभिनेता मुखौटा लगाते हैं और अभिनय के दिन मुखौटे की पूजा भी होती है। स्याम के रामकियेन पर निर्भर होने के बावजूद कथानक में यदा-कदा मौलिकता पाई जाती है। सीताहरण कथानक यहाँ पर बहुत महत्वपूर्ण है। इस नाटक में शुपर्णखा (नाम गांबी) मृग का रूप धारण करके राम को दूर ले जाती है और राम से आहत किए जाने पर राक्षसी रूप में प्रकट हो जाती है। राम की सहायता के लिए जाने के पूर्व लक्ष्मण कुटि के चारों तरफ़ रेखाएँ खींचकर कुटिया को सुरक्षित कर देते हैं, जो कथा हिंदेशिया तथा भारत आदि देशों में भी प्रचलित है।

निष्कर्षत: यह कहना युक्तिसंगत है कि आसियान देशों में हिंदी के विकास के स्फुट रूप मिलते हैं, फिर भी भाषा वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर हिंदी का प्रचार-प्रसार स्याम, मलेशिया, बर्मा, इंडोनेशिया, सिंगापुर, थाईलैंड आदि देशों में जिस गति से हुआ है, उस गति में दूसरे देशों में नहीं हुआ। वाल्मीकि रामायण सहित भारतीय भाषा में लिखित अन्य रामायणों के प्रभाव के कारण भी दक्षिण-पूर्व एशिया में हिंदी का विकास हुआ। मलय, स्या, बर्मा, इंडोनेशिया आदि देशों में बौद्ध धर्म के साथ पाली तथा राम कथा के साथ संस्कृत और हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ जिसकी वजह से अनेक तत्सम शब्दों के रूप अपनी ध्यात्मक्ता तथा अर्थवत्ता दोनों दृष्टियों से उन देशों की भाषा में घुल-मिल गए हैं और इसी का परिणाम है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी बोलनेवालों की संख्या चीनी मंदारिन और अंग्रेज़ी की अपेक्षा सर्वाधिक हो गई है। पश्चमी देशों की भाँति दक्षिण-पूर्व एशिया में भी और विदेश मंत्रालय का दायित्व बनता है कि हिंदी पीठों की स्थापना अधिकाधिक विश्वविद्यालयों शिक्षालयों में करना सुनिश्चित करें ताकि वृहत्तर भारत का प्राचीन स्वरूप पुन: अपना स्थान पा सके। इन आसियान देशों की संस्कृति की विरासत भारत की सांस्कृतिक विरासत है, जिसको जागृत, संस्थापित करना हमारे देश का महत्वपूर्ण दायित्व है। विश्व बाज़ार की बढ़ती होड़ और भारतीय संस्कृति तथा भाषा

के विकास के माध्यम से हिंदी को विश्व भाषा के रूप में विकसित करने का प्रयास आज की अनिवार्यता बन गई है।

संदर्भ

1. गगनांचल, विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक, 12 जुलाई, 2012, भारतीय साहित्य सांस्कृतिक परिषद, आजाद भवन, नई दिल्ली
2. (संचयन) डॉ. नीरज श्रीवास्तव, दक्षिण-पूर्व एशिया सामग्री, इंटरनेट 2014, महालक्ष्मी कंप्यूटर, अनूपपुर
3. भाषा विज्ञान, डॉ. राजमणि शर्मा, 1983, महाशक्ति साहित्य मंदिर, चौखंबा, वाराणसी
4. रामकथा,फादर कामिल बुल्के, 2012, हिंदी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
5. रामचरितमानस, तुलसीदास, गुटका, 2010, गीता प्रेस गोरखपुर
6. विश्व भाषा हिंदी, राज केसर बानी (संपादक), राष्ट्रीय हिंदी सेवी संघ, रेसीडेंसी एरिया, इंदौर 452001
7. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, 1996, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
8. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 1968, काशी नारी प्रचारिणी, बनारस।

नागपुर (महाराष्ट्र)

yagyaontiwari@yahoo.co.in

24 मॉरीशस में हिंदी बाल साहित्य द्वारा हिंदी भाषा का विकास

• श्री धनराज शंभु

शैक्षणिक उपलब्धियाँ : साहित्य रत्न, कोविद, जी.सी.ई. ए.लेवल, टीचर्ज सर्टिफिकेट, डिप्लोमा इन मानेजमेंट

पद : शिक्षा अधिकारी

संस्था–

• हिंदी प्रचारिणी सभा महासचिव,

• सरकारी हिंदी शिक्षक संघ सचीव,

• हिंदी स्पीकिंग यूनियन कांउसिल सदस्य

प्रकाशन– एहसास, प्रतिक्षा एक नई सुबह की और चेतना जाग उठी, अभिलाषा, अरमान, तरंगिनी।

सम्मेलनों कार्यशालाओं में भाग लेना, आलेख पढ़ना, कार्यशाला का संचालन करना, नाटक मंचन देश-विदेश में, रेडियो टीवी पर कार्यक्रम की प्रस्तुति।

सम्मान–श्रेष्ठ नाटककार, वर्धा सरस्वती, काव्यश्री, माननीय नागरिकता, श्रेष्ठ लेखक आदि।

भाषा और साहित्य का अटूट संबंध है। भाषा को जीवित रखने के लिए साहित्य की आवश्यकता होती है। साहित्य को विस्तार देने और जीवंत रखने में भी भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थात भाषा और साहित्य को अलग नहीं किया जा सकता है। साहित्य की रचना कई विधाओं में होती है जो हर उम्र के व्यक्ति व पाठकों को ध्यान में रखकर होती है। इतने क्षेत्रों में निरंतर कलम चलाने के बाद भी एक क्षेत्र ऐसा है जिसमें कम ही लिखा गया है। हालाँकि भारत तथा अन्य देशों में सौ साल पहले से बाल साहित्य की रचना होती रही है फिर भी अन्य विधाओं की तुलना में वह कम ही पाई जाती है।

> ''बालक कोरे-कोरे कागज़ है,
> बालक ईश्वर का रूप है
> बालक भविष्य का चिह्न है,
> बालक देश का कर्णधार है
> बालक सर्वांगीण रूप से स्वस्थ
> हो तो स्वस्थ समाज होगा।''

इन पंक्तियों को ध्यान में रखकर हमें स्मरण होना चाहिए कि हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। तब और अब में काफ़ी अंतर हो गया है। बालकों की पसंद-नापसंद, भावनाएँ तथा इच्छाएँ बदल चुकी हैं। उनकी मानसिकता एवं भावनाओं को समझते हुए आज के बाल साहित्य की रचना होनी चाहिए। 'बाल सखा' के संपादक लल्ली प्रसाद पांडेय ने कहा था कि बाल साहित्य में नएपन को जन्म दें, रचनाकार अपने स्वर बदलें और आज की पुकार सुनें। आज समय पहले जैसा नहीं रहा जब हम घर बैठे ही बच्चों को कल्पना की दुनिया में सैर कराते थे। हमें मात्र आज को ध्यान में रखकर नहीं लिखना है बल्कि भावी पीढ़ी और भविष्य की स्थिति को ध्यान में रखकर रचना करनी चाहिए। लगभग पंद्रह-बीस सालों से सूचना एवं प्रौद्योगिकी ने इस देश में क्रांति मचा दी है। अंतरजाल और अन्य उपकरणों ने बालकों को उम्र से पहले ही बड़ा और चतुर बना दिया है। इनसे जहाँ एक ओर लाभ की गुंजाइश है तो दूसरी ओर हानिकारक चिह्न भी नज़र आते हैं। आधुनिक समाज के सामने एक नई चुनौती दृष्टिगोचर होने लगी है जिसके प्रति बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

हमारे बच्चे हमारी लेखन-कला का केंद्र हैं। हम उन्हीं को लक्ष्य बनाकर अधिकतर लिखते हैं। आज उनकी दुनिया बदल चुकी है। ज्ञान से कहीं ज़्यादा विज्ञान के क्षेत्र में अग्रसर हो रहे हैं। आज बच्चे पौराणिक कथाओं में ध्यान नहीं देते। दृश्य-साधनों द्वारा पोकेमोन, शक्तिमान तथा अन्य भूत-प्रेत की फ़िल्मों ने बालकों के दिमाग को जकड़ लिया है। अश्लीलता, तंत्र-मंत्र, आतंक तथा अहिंसा जैसे तत्वों ने बालकों के दिमाग को बिगाड़ने का प्रयास किया है। अभिभावक भी इस क्षेत्र में कम ही ध्यान दे रहे हैं कि उनके बच्चों के बसते में पाठ्य-सामग्री के रूप में क्या है। यह तो मानी हुई बात है कि बालकों का ही नहीं बल्कि हर व्यक्ति का परम मित्र पुस्तक है। आज यह बात उन बालकों के दिमाग में अंकित करने का समय आ गया है।

मॉरीशस में बाल साहित्य का श्रीगणेश मौखिक रूप में माना जा सकता है। जब 1907 में मणिलाल डॉक्टर का आगमन हुआ

और उनके सहयोग से जगह-जगह पर बैठकाओं की स्थापना होने लगी तभी से यह प्रारंभ हो गया। कक्षा प्रारंभ करने से पहले या घर जाने की छुट्टी से पहले मौखिक रूप में गुरु जी द्वारा स्वरचित कविताएँ, प्रार्थनाएँ तथा अन्य रचनाएँ सुनाकर यह प्रक्रिया पूरी की जाती थी। आगे चलकर भारत से कुछ मेधावी लोगों के सहयोग से 'चंदा मामा', 'पराग' जैसी पत्रिकाएँ मँगाई जाने लगी लेकिन दुर्भाग्य से वे बच्चों तक पहुँच नहीं पाती थीं। उस ज़माने में छोटी लोरियाँ भी सिखाई जाती थीं जैसे—

आरे कोको जारे कोको नदिया पीती बेर
सोजा बाबा सोजा हो रही है देर
XXX XXX XXX
आरे आव पारे आवड नदिया किनारे आव
आके बबुआ के मुँह में छुटुक

अन्य अनेक उत्सव एवं त्योहार के गीत भी गाते थे। तभी से कक्षा के लिए या वार्षिकोत्सव के अवसर पर बाल कविताएँ, बाल गीत, बाल कहानियाँ और बाल नाटिकाओं को लिखने का प्रयास किया जाता था। प्रकाशन की असुविधा एवं सीमित संख्या को देखते हुए रचनाएँ प्रकाशित नहीं हो पाती थीं। कभी-कभार एकाध पत्रिका या पत्र में नज़र आ जाते थे। ठोस रूप से बाल साहित्य की रचना 'नवीन हिंदी' पाठ्य-पुस्तकों (कक्षा एक से छः तक) में गीत, लोरी, कविता, कहानी, लोककथा आदि के रूप में होने लगी। ये पाठ्य-पुस्तकें प्रो. रामप्रकाश के नेतृत्व में तैयार की गई थी जिन्हें मॉरीशस में हिंदी शिक्षण के उन्नयन के लिए, भारत सरकार द्वारा प्रशिक्षण महाविद्यालय में नियुक्त किया गया था। बालक बड़े ही चाव से पढ़ते, यहाँ तक कि उन रचनाओं को कंठस्थ करके हर अवसर पर सुनाते थे। 1955-1956 के बाद 1959 में प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल का बालोपयोगी कहानी संग्रह 'व्यवहार प्रकाश' नाम से प्रकाशित हुआ। 1981 में प्रो. कामता कमलेश ने भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों को संग्रहित कर 'मॉरीशस की बाल हिंदी कहानियाँ' नाम से पुस्तक प्रकाशित करवाई। इस पुस्तक में स्थानीय लेखकों में अभिमन्यु अनत, प्रह्लाद रामशरण, सोनालाल नेमधारी, सत्येंद्र ओम भोला, हीरालाल लीलाधर, सत्यदेव प्रीतम, चंपावती बम्मा, शीला रामनाथ, बिद्वंती अजोध्या तथा दीपचंद बिहारी आदि थे।

हिंदी लेखक संघ ने इस क्षेत्र में काफ़ी काम किया है। इनके संपादक मंडल की ओर से 'बाल सखा' का पाक्षिक प्रकाशन 1965 से प्रारंभ हुआ। इस प्रकाशन से काफ़ी लोगों को प्रोत्साहन मिला। श्री भुवनेश्वर सोनू ने 'लाफ़ोंतेन' की चौबीस कहानियों का सचित्र प्रकाशन 'लाफ़ोंतेन की परी कथाएँ' शीर्षक से 1978 में करवाया। इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ द्वारा लिखित कई पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ जो छात्रोपयोगी सिद्ध हुईं। उनकी पुस्तकें 'आज की हिंदी' और 'आधुनिक हिंदी' हैं।

डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणी की भी कई पुस्तकें सामने आईं। वे हैं—'बाल कविता माल', 'देश के फूल' आदि। इनके अलावा ब्रजेंद्रकुमार भगत, प्रह्लाद रामशरण, ठाकुरदत्त पांडेय आदि लोगों की रचनाएँ बाल-साहित्य में जुड़ गईं।

कुछ पत्रिकाओं में भी बाल साहित्य की रचनाएँ छपती रहीं, जिनमें 'बालसखा', 'वसंत', 'आर्योदय', 'कांग्रेस', 'जनता', 'मुक्ता', 'रिमझिम', 'सुमन' आदि उल्लेखनीय हैं। श्री प्रह्लाद रामशरण जी ने बाल साहित्य पर ज़ोर देते हुए 1995 में 'बौने का बरदान' और 1998 में 'मॉरीशस की लोक कथाएँ' का प्रकाशन करवाया। अनत, डॉ. जागासिंह तथा बाद में कई संपादकों ने महात्मा गांधी संस्थान से 'रिमझिम' पत्रिका के साथ 'मॉरीशस की पाँच कहानियाँ' का प्रकाशन करवाया। 1999 में हिंदी प्रचारिणी सभा ने इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया और वरिष्ठ हिंदी शिक्षक एवं निरीक्षक श्री लक्ष्मी प्रसाद मंगरु की बाल पुस्तक 'मूली लौट आयी' और श्री यंतुदेव बुधु की रचना 'बस चली गई' का प्रकाशन ही नहीं बल्कि पूरे देश की बैठकाओं में और वर्षांत के अवसर पर भेंट स्वरूप वितरण भी किया। श्री केशवदत्त चिंतामणि ने भी सन् 2001 में 'मॉरीशस की बाल कहानियाँ' पुस्तक में 14 लोक कथाओं का प्रकाशन किया।

इस सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए भारतीय मूल के प्रो. सुरेश ऋतुर्पण ने फ्रेंच लेखक 'बेनाँदें दे सेंपियर' की लिखी हुई मॉरीशसीय पृष्ठभूमि पर आधारित रचना 'पोल ए वियरजीनी' उपन्यास रंगीन चित्र-कथा के रूप में हिंदी, फ्रेंच और अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में

छपवाया। इन रचनाओं को भी हिंदी प्रचारिणी सभा ने खरीदकर बाल छात्रों को भेंट स्वरूप प्रदान किया। इसका लोकार्पण 2002 को भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में किया गया था। सन् 2010 में इंद्रदेव भोला ने 'मॉरीशस की पच्चीस कहानियाँ', 'बच्चे कितने अच्छे' शीर्षक पुस्तकें छपवाईं। यह कहना अनुचित न होगा कि हिंदी लेखक संघ तथा इंद्रदेव भोला ने बाल रचनाओं में अपना पूरा-पूरा योगदान दिया है।

श्रव्य-साधनों की ओर ध्यान दिया जाए तो यह कहा जा सकता है कि मॉरीशस का राष्ट्रीय रेडियो स्टेशन जो पहले एम.बी.एस. और अब एम.बी.सी. नाम से प्रसिद्ध है, बच्चों के लिए कुछ कार्यक्रम हिंदी भाषा में अवश्य प्रस्तुत करता है। इन कार्यक्रमों में लोरी, छोटी कहानियाँ आदि प्रस्तुत होती थीं। इनसे जहाँ एक ओर बालकों का मनोरंजन होता था, वहीं वे हिंदी भाषा से परिचित भी होते थे। आज भी यह सिलसिला चल रहा है। हम कह सकते हैं कि पहले मोबाइल, इंटरनेट या फ़ोन न होने के कारण कार्यक्रम एकतरफ़ा होते थे और बच्चों की प्रतिक्रिया का पता नहीं चलता था पर आज बच्चों को हिंदी में बात करते हुए सुनकर मन प्रसन्न हो जाता है। रेडियो या टीवी पर गीतों की फ़रमाईश, कविता तथा कहानी वाचन, नाटिकाओं के प्रदर्शन भी बच्चों की हिंदी भाषा में निखार लाते हैं।

1975 से टी.वी. पर बच्चों के लिए छोटे-बड़े कार्यक्रम चलते रहते हैं। कभी कॉमिक्स के रूप में तो कभी यथार्थ रूप में बालकों के लिए फ़िल्में बनती और प्रदर्शित होती हैं। कई देशों की बाल फ़िल्मों का हिंदी रूपांतर स्थानीय टी.वी. पर प्रसारित किया जाता है। उदाहरणार्थ 'जंगल बुक', 'स्टोन बॉय', 'छोटा चेतन', 'पींक पीजन', इसके अतिरिक्त हिंदी फ़िल्मों में 'तारे ज़मीन पर', 'मासूम' तथा धार्मिक फ़िल्मों में 'भक्त हनुमान', 'रामायण', 'महाभारत', 'श्री गणेश', 'भक्त प्रह्लाद', 'ध्रुव' आदि उल्लेखनीय हैं। जहाँ एक ओर फ़िल्म प्रदर्शन की बात है वहीं दूसरी ओर बच्चों के जीवंत कार्यक्रम भी चलते हैं। कई बार सीधे प्रसारण होते हैं तो कभी रिकॉर्ड भी होते हैं। बच्चों के स्तर पर अंत्याक्षरी, प्रश्नोत्तरी, वाद-विवाद, कहानी-कथन, गायन-वादन-नृत्य आदि का खुलकर प्रदर्शन होता है। त्योहारों के अवसर पर बच्चों के लिए अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन एवं प्रसारण होता है। इस प्रकार श्रव्य-दृश्य उपकरणों द्वारा हिंदी भाषा का खूब प्रयोग हो रहा है।

कला एवं संस्कृति मंत्रालय की ओर से भी बाल शिक्षा तथा बाल पुस्तकों की रचना को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। भाषा के विकास में सरकारी स्तर पर भी काफ़ी कार्य किए जा रहे हैं। जहाँ कला एवं संस्कृति मंत्रालय बाल-नाटिका मंचन की ओर छात्रों को प्रोत्साहित कर रहा है तो दूसरी ओर शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्रालय की ओर से पूर्व प्राथमिक कक्षा से ही हिंदी-पठन के लिए आवश्यक दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग पर कार्यशाला, सेमिनार तथा अन्य अनेक प्रकार के आयोजनों द्वारा भाषा की नींव को मज़बूत बनाया जा रहा है। तीसरी-चौथी कक्षा के छात्रों के लिए संवर्धन कार्यक्रम (Enhancement program) के माध्यम से छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए गीत, नाटक, योगासन, नृत्य-वादन, खेल-कूद आदि को हिंदी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करवाकर हिंदी भाषा के प्रचार के साथ ही सुदृढ़ीकरण पर भी ध्यान दे रहा है। ऐसा कार्य देश के 306 पाठशालाओं में लगभग 75000 बच्चों के लिए किया जा रहा है।

सरकारी स्तर से हटकर यदि देखा जाए तो मॉरीशस की निजी संस्थाओं द्वारा भी बाल साहित्य द्वारा भाषा के विकास के लिए काफ़ी कार्य हो रहे हैं। इन संस्थानों में आर्य सभा मॉरीशस, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा, हिंदी स्पीकिंग यूनियन, सनातन धर्म टेंपल्स फेडेरेशन, एम.बी.सी., महात्मा गांधी संस्थान, हिंदी लेखक संघ, भारतीय उच्चायोग, विश्व हिंदी सचिवालय आदि उल्लेखनीय हैं। आर्य सभा मॉरीशस विशेषत: धार्मिक क्षेत्र में कार्य कर रही है ताकि बालक चरित्र-निर्माण के साथ-साथ मंत्रोच्चारण, संध्या आदि के माध्यम से भाषा पर अधिकार भी जमा सकें। हिंदी प्रचारिणी सभा बैठकाओं में शिक्षा-प्रचार कार्य के साथ कविता-वाचन प्रतियोगिताओं का आयोजन एवं पुरस्कार प्रदान कर छात्रों का साहस बढ़ाती है। आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा भी शिक्षण में योगदान देकर बालकों को नई-दिशा प्रदान कर रही है। हिंदी स्पीकिंग यूनियन तो कई विधाओं में अपने आयोजनों द्वारा कार्य में बल दे रहा है। उसका क्षेत्रफल काफ़ी व्यापक भी है। वह पूर्व-प्राथमिक से लेकर माध्यमिक हिंदी से ग़ैर हिंदी प्रदेश में भी हिंदी भाषा के

विकास में सराहनीय कार्य कर रहा है। सनातन धर्म टेंपल्स फेडेरेशन भी धार्मिक दृष्टिकोण से रामायण, हनुमान चालिसा, होली गीत तथा अन्य गान प्रतियोगिताओं के आयोजन द्वारा हिंदी भाषा में नई जागृति पैदा कर रहा है।

एम.बी.सी. का अपना एक अलग ही स्थान है। मीडिया के क्षेत्र में अंतरजाल के माध्यम से वह सिर्फ़ स्वदेश तक सीमित न रहकर विश्व के कोने-कोने में यहाँ के बच्चों की अनुभूतियों कलाओं तथा विद्वत्ता को विस्तृत कर रही है। कहा जा सकता है कि अपने विस्तृत फलक पर वह सराहनीय कार्य कर रही है।

> **यही कहा जा सकता है कि मॉरीशस में हिंदी भाषा का प्रयोग हर क्षेत्र और हर स्तर पर किया जाने लगा है। बाल-साहित्य की रचना तथा उसके उपयोग से बालकों की नींव मज़बूत होगी और भविष्य में इस छोटे से टापू के माध्यम से पूरे विश्व में इस दिशा में प्रगति हो सकती है। बाल-साहित्य की ज्योति को जलाए रखने में ही हमारी भलाई होगी। आज के नए पौधे ही कल के नागरिक होंगे और देश की भाषा एवं संस्कृति के कर्णधार बनेंगे।**

महात्मा गांधी संस्थान भला इस कार्य में पीछे कैसे रह सकता है। वह तो शिक्षकों, पाठ्य-पुस्तकों, बाल फ़िल्मों आदि के निर्माण से छात्रों में हिंदी भाषा के प्रति विश्वास दिलाने का कार्य कर रहा है। इसके महत्वपूर्ण कार्य से अन्य आयोजकों एवं शुभचिंतकों को भी प्रोत्साहन मिल जाता है। हिंदी लेखक संघ ने तो काफ़ी अच्छा काम किया है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। भारतीय उच्चायोग का योगदान निराला है। छात्रों की हिंदी-पकड़, सृजनात्मक लेखन कार्यशाला, फ़िल्मोत्सव का आयोजन, पत्रिकाओं का वितरण, प्रतियोगिताओं का आयोजन तथा अन्य अनेक योगदान देना है। विश्व हिंदी सचिवालय का स्थान भी बड़ा ही निराला है। उसका संपर्क तो विश्व स्तर पर है। यहाँ के छात्रों का सही मार्गदर्शन करने के लिए प्रतियोगिताओं का आयोजन, संचार और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यशाला का आयोजन कर रहा है। सभी पाठक आशा बाँधकर भविष्य की ओर दृष्टि गढ़ाए हुए हैं।

निष्कर्षत : यही कहा जा सकता है कि मॉरीशस में हिंदी भाषा का प्रयोग हर क्षेत्र और हर स्तर पर किया जाने लगा है। बाल-साहित्य की रचना तथा उसके उपयोग से बालकों में भाषा ज्ञान की नींव मज़बूत होगी और भविष्य में इस छोटे से टापू के माध्यम से पूरे विश्व में इस दिशा में प्रगति हो सकती है। बाल-साहित्य की ज्योति को जलाए रखने में ही हमारी भलाई होगी। आज के नए पौधे ही कल के नागरिक होंगे और देश की भाषा एवं संस्कृति के कर्णधार बनेंगे।

जीतन मार्ग, काँतोरेल, सें जुलिएँ दोत्माँ, मॉरीशस **संदर्भ ग्रंथ—**

1. मॉरीशस हिंदी साहित्य का परिचय—डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि
2. बच्चे कितने अच्छे इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ
3. विदेशों में हिंदी तथा मॉरीशस हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि
4. अंतरजाल

v.sembhoo@gmail.com

25 देश में हिंदी, विदेश में हिंदी

● *कुमार परिमलेंदु सिन्हा*

जन्म स्थान : लौरिया, पश्चिम चंपारण, बिहार

जन्म तिथि : 21 सितंबर, 1965

पटना विश्व से स्नातकोत्तर तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के जूनियर रिसर्च फेलो।

देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, ई-पत्रिकाओं में कविताएँ तथा साहित्यिक, सांस्कृतिक, बैंकिंग एवं आर्थिक विषयों पर आलेख प्रकाशित। 'उदास रातों का सफर' (कविता-संग्रह) तथा नई कविता में इतिहास-बोध (आलोचना) प्रकाशनाधीन।

संप्रति : भारतीय रिजर्व बैंक में अधिकारी के रूप में कार्यरत

भाषा किसी भी राष्ट्र और समाज की आत्मा होती है जिसमें वह देश, वह समाज संवाद करता है। भाषा और संस्कृति उस राष्ट्र और समाज की पहचान होती है उसकी अस्मिता की वाहिका होती हैं। भाषा ही देश और समाज को एकसूत्र में पिरोती है। जिस देश और समाज की अपनी भाषा नहीं होती, वह अपनी पहचान बनाने में एक हद तक विफल रहता है। जिस भाषा में हम स्वप्न देखते हैं या जिस भाषा में अपना दुख व्यक्त करते हैं वही हमारी अपनी भाषा होती है। उसी भाषा में व्यक्त की गई संवेदनाएँ हमारे अंतर्मन को गहराई से छू सकती हैं...इससे हमारा लगाव और जुड़ाव इस कदर होता है कि हम भले ही किसी दूसरी भाषा का जामा पहन लें लेकिन इसे खुद से अलग नहीं कर सकते।

भारत की सभ्यता और संस्कृति की मूल पहचान विविधता में एकता की गहरी जड़ों से है। विभिन्न संस्कृतियों, अलग-अलग पहनावे, अनेक धर्मों, संप्रदायों, विविध प्रकार की विचारधाराओं, विभिन्न प्रकार के खान-पान और भौगोलिक विविधताओं के बावजूद एक ऐसी चेतना है जो हमें एकसूत्र में पिरोती है और वह है, भारतीय होने का भाव। हमारी ऐतिहासिक विरासत एक है, हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं में कहीं-न-कहीं कुछ ऐसा है जो हमें जोड़ता है।

देश में हिंदी

विभिन्न संस्कृतियों और विविध भाषाओं के संगम से भारत की जो एक व्यापक तस्वीर बनती है उसमें एक सौ बीस करोड़ भारतीयों के सपने, उनकी सोच, उनके संघर्ष, उनके सुख-दुख और उनके हौसलों की झलक मिलती है। मिली-जुली व्यापक सोच वाली यह चेतना ही उस भारत की असली पहचान है और हम कह सकते हैं कि हिंदी स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में तथा स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत की वह प्राचीन भारतीय मनीषा एवं आधुनिक सांस्कृतिक-सामाजिक चेतना को जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप में उभरकर सामने आई है। यदि आज हिंदी भारत की राजभाषा के साथ ही पूरे भारत में एक प्रमुख संपर्क भाषा के रूप में अपना स्थान बनाने में एक हद तक सफल हुई है तो इसके पीछे हिंदी की सर्वग्राह्यता, संप्रेषणीयता तथा अन्य भाषाओं के शब्दों को सहज ही आत्मसात कर लेने की क्षमता तथा संस्कृत और उर्दू दोनों की शक्ति का इसमें समन्वयन है। जिस तरह हमारी सभ्यता ने हज़ारों सावन और हज़ारों पतझड़ देखे हैं, ठीक उसी तरह हिंदी भी उस शिशु के समान है जिसने अपनी माता के गर्भ में ही हर तरह के मौसम देखने शुरू कर दिए थे। हिंदी की यह माता थी संस्कृत भाषा जिसके क्लिष्ट स्वरूप और अरबी, फ़ारसी जैसी विदेशी तथा पाली, प्राकृत जैसी देशी भाषाओं के मिश्रण ने हिंदी को अस्तित्व प्रदान किया।

सातवीं शताब्दी (ई.पू.) से दसवीं शताब्दी (ई.पू.) के बीच संस्कृत भाषा के अपभ्रंश के रूप में उत्पन्न हिंदी अभी अपनी माँ के गर्भ में ही थी जिस दौरान पाली और प्राकृत जैसी भाषाओं का प्रभाव अपने चरम पर था। यह वही समय था जब बौद्ध धर्म पूर्णत: परिपक्व हो चुका था और पाली व प्राकृत जैसी आसान भाषाओं में इसका व्यापक प्रसार हो रहा था।

देखा जाए तो पुरातन हिंदी का अपभ्रंश के रूप में जन्म 400

ई. से 550 ई. में हुआ जब वल्लभी के शासक धारसेन ने अपने अभिलेख में अपभ्रंश साहित्य का वर्णन किया। हमारे पास प्राप्त प्रमाणों में 933 ई. की 'श्रावकचर' नामक पुस्तक ही अपभ्रंश हिंदी का पहला उदाहरण है। परंतु हिंदी के वास्तविक जन्मदाता तो अमीर खुसरो ही थे जिन्होंने 1283 में खड़ी बोली हिंदी को जन्म देते हुए इस शिशु का नामकरण हिंदवी किया।

इस हिंदी का जन्म मात्र एक भाषा का जन्म न होकर भारत के मध्यकालीन इतिहास का प्रारंभ भी है जिसमें भारतीय संस्कृति के साथ अरबी व फ़ारसी संस्कृतियों का अद्‌भुत संगम नज़र आता है। तुर्कों और मुगलों के प्रभाव में पल्लवित होती हिंदी को उनकी नफासत विरासत में मिली। वहीं दूसरी ओर इस समय भक्ति आंदोलन और अन्य समाज-सुधार आंदोलन भी काफ़ी क्रियाशील हो चुके थे, जिन्होंने कबीर (1398- 1518 ई.), रामानंद (1450 ई.), बनारसीदास (1601 ई.), तुलसीदास (1532-1623 ई.) जैसे प्रकांड विद्वानों को जन्म दिया।

अंग्रेज़ी शासन काल में प्रशासन एवं अकादमिक बिरादरी दोनों की तरफ़ से किए गए अनेक अकादमिक प्रयासों ने हिंदी को एक नया आधुनिक स्वरूप दिया तथा इस दिशा में जहाँ एक ओर भाषावैज्ञानिक शोध, साहित्येतिहास-लेखन के नए द्वार खुले वहीं हिंदी साहित्य में एक नई उभरती हुई भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना, समाज सुधार आंदोलनों, पुनर्जागरण की भावना, राष्ट्रीयता की चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन की भावना से प्रेरित साहित्य लेखन का दौर शुरू हुआ। इस दौर में लिखी जा रही किताबों, उपन्यासों, ग्रंथों, काव्यों के साथ-साथ संवाद के माध्यम के रूप में हिंदी सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक चेतना का माध्यम बन रही थी। 1826 ई. में 'उद्‌दंत मार्तंड' नामक पहला हिंदी का समाचार तत्कालीन बुद्धिजीवियों का प्रेरणा-स्रोत बन चुका था। अब हिंदी में आधुनिकता का समावेश हो रहा था।

अंग्रेज़ों के शासन में जहाँ हिंदी को आधुनिकता की एक अभिनव चेतना मिली, वहीं हिंदी उस साम्राज्यवादी और शोषक व्यवस्था के विरोध और स्वतंत्र भारत के स्वप्न का प्रभावी माध्यम भी बनती रही। तमाम हिंदी समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने देश के बुद्धिजीवियों में स्वतंत्रता की लहर दौड़ाई। स्वतंत्र भारत के कर्णधारों ने जो स्वतंत्रता का स्वप्न देखा, उसमें स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हमेशा हिंदी को ही देखा। हिंदी में संस्कृत की संपन्न विरासत के साथ ही तुर्की, अरबी, फ़ारसी, पुर्तगाली तथा अंग्रेज़ी के अनेक शब्द शामिल हैं। भारतीय महाद्वीप में विभिन्न संस्कृतियों के मिलन से उपजी सांस्कृतिक एकता को यदि भाषा के स्तर पर देखा जाए तो हिंदी और उर्दू इसके सही उदाहरण हैं। हिंदी, भाषाई विविधता का एक ऐसा स्वरूप है जिसने वर्तमान में अपनी व्यापकता में कितनी ही बोलियों और भाषाओं को संजोया है।

हिंदी के इस स्वरूप के पीछे भारतीय स्वाधीनता संग्राम की वह मूल भावना भी है जिसने पूरे भारतवर्ष में हिंदी को एक राष्ट्रीय छवि प्रदान की। राष्ट्रीयता के प्रमुख सूत्र के रूप में राष्ट्रभाषा और जनभाषा का प्रथम स्थान है। आज़ादी की लड़ाई के दौर में सभी श्रेष्ठ नेताओं ने इसके मर्म को समझा था। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती (सत्यार्थ प्रकाश), भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, देवकीनंदन खत्री आदि के प्रयासों ने हिंदी को भारतीय जनमानस में संवाद के एक सशक्त माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया। महात्मा गांधी, नेता जी सुभाषचंद्र बोस, सरदार वल्लभ भाई पटेल, राजगोपालाचारी, भीमराव अंबेडकर, काका कालेलकर, के. कामराज, सुनीति कुमार चटर्जी, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी आदि श्रेष्ठ नेता अहिंदी भाषी थे लेकिन आज़ादी के सूत्र रूप में वे हिंदी के ही पक्षधर थे। संविधान निर्माण के समय प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर और सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने हिंदी को प्रतिष्ठित करने के सराहनीय प्रयास किए।

प्रत्येक विधा में हिंदी में लिखा जा रहा उसका विपुल साहित्य स्तरीय होने के साथ ही लोकप्रियता में भी पीछे नहीं है। आज बाज़ार, मीडिया, सिनेमा, मनोरंजन, विज्ञापन या बैंकिंग कोई भी क्षेत्र हो, हिंदी ने अपनी ज़रूरत महसूस कराई है।

इसके बावजूद आज प्रौद्योगिकी, विज्ञान, चिकित्सा, प्रबंधन, वित्त, इंजीनियरिंग की शिक्षा तथा अनुसंधान संबंधी कार्यों में हिंदी की गैरमौजूदगी और न्यायालय, उच्च्व स्तरीय प्रशासन, नीति निर्माण एवं योजना निर्माण से जुड़ी संस्थाओं में हिंदी की अनुपस्थिति हमारी चिंता और चिंतन का विषय है। सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में इंटरनेट पर आज हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की सामग्री अति

सीमित है तो हिंदी में प्रभावशाली सर्च इंजनों का अभाव है। विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थानों में कार्यरत विषय विशेषज्ञ अपने आलेख, शोधपत्र अथवा पुस्तकें अंग्रेज़ी में लिखते हैं। इसके अतिरिक्त हिंदी में विज्ञान लेखन का मानकीकरण, शोधपरक विषयों के लेखन के लिए डेटा एकत्रीकरण, शोधपत्रों और आलेखों का प्रस्तुतीकरण एवं प्रकाशन आदि पर भी बहुत कम काम हुआ है।

इसके साथ यह भी एक सत्य है कि जब तक सरकार द्वारा विज्ञान विषयों में उच्च शिक्षा, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी जैसे व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की पढ़ाई हिंदी माध्यम में नहीं होती, ऐसे विषयों को हिंदी में पढ़ाए जाने के लिए हिंदी की भाषिक क्षमता और तकनीकी शब्दावली पर ईमानदारी से काम नहीं होता है, हिंदी को सही मायने में जब तक रोज़ी-रोटी से नहीं जोड़ा जाता, नौकरियों, प्रतियोगी परीक्षाओं में हिंदी को उचित स्थान नहीं दिया जाता तब तक हिंदी में ऐसे लेखन की बात करना बहुत सार्थक प्रतीत नहीं होता। एक तरह से कहें तो आज भी हमारे पास विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अपनी भाषा नहीं है। यदि विज्ञान और तकनीक को, प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन को हमारे जनमानस की संवेदना का हिस्सा बनाना है तो हमें भारतीय भाषाओं की और हिंदी की महत्ता को समझना ही पड़ेगा। ज्ञान और चिंतन की सहज भाषा सदा अपनी ही होती है। इसीलिए आज इस क्षेत्र में बहुत सारे कार्य किए जाने तथा इंटरनेट पर, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल्स, इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकों तथा इलेक्ट्रॉनिक लेखों में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग की आवश्यकता है। आज हिंदी में ब्लॉग लेखन एक नई और सशक्त विधा के रूप में उभरा है। आज 'समालोचन', 'सृजनगाथा' जैसी बहुत सारी स्तरीय हिंदी की ई-पत्रिकाओं और अनुभूति डॉट कॉम, कविता कोश जैसे साहित्य संग्रह की वेबसाइटों ने हिंदी साहित्य-सर्जना को एक नया आयाम, नई दृष्टि और नई ताज़गी प्रदान की है।

हिंदी आज जिस मुकाम पर खड़ी है उसकी सीमाएँ भारत की सीमाओं से बाहर निकलकर दूर देशों के अनेक अनजान क्षितिजों का स्पर्श करती हैं। ग्लोबल संदर्भों ने वैश्विक चेतना के स्तर पर हिंदी को भी एक नई पहचान दी है। आज की हिंदी में भारतीय मूल के समर्पित हिंदी लेखकों-रचनाकारों के साथ ही विदेशी मूल के अनेक हिंदी सेवी, हिंदी के प्राध्यापक, विश्व की विभिन्न भाषाओं में हिंदी साहित्य के अनुवादक, कवि तथा उपन्यासकार के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान देकर हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं।

हिंदी भाषा के साहित्य में पिछली एक सदी में बड़ी तेज़ी से विकास हुआ है। आज हिंदी साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना तथा चिंतनपरक साहित्य के क्षेत्र में अत्यंत गुणात्मक काम हुआ है और यही कारण है कि आज हिंदी का साहित्य विश्व की किसी भी भाषा के श्रेष्ठ साहित्य के समकक्ष रखा जा सकता है। प्रेमचंद, निराला, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, रामचंद्र शुक्ल, राहुल सांस्कृत्यायन, अज्ञेय, मुक्तिबोध, हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह 'दिनकर', गोपाल सिंह नेपाली, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, कुँवरनारायण, नामवर सिंह, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, मोहन राकेश, दुष्यंत कुमार, केदारनाथ सिंह, शमशेरबहादुर सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, श्रीकांत वर्मा से लेकर अनामिका, ज्ञानेंद्रपति, उदय प्रकाश, संजीव, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, आलोक धन्वा, पवन करण और कृष्णमोहन झा तक एक लंबी फेहरिस्त है, हिंदी की सर्जना को समृद्ध करने वाले लोगों की। इसके अलावा आज के नवोदित कवियों, नवोदित कहानीकारों और नए आलोचकों के स्तरीय सर्जनात्मक साहित्य और विपुल मात्रा में किए जा रहे विशिष्ट लेखन ने जहाँ देश में हिंदी को समृद्ध किया है, वहीं विश्व-पटल पर भी हिंदी को महत्वपूर्ण भाषा के रूप में स्थापित होने में मदद की है। हिंदी में हो रही सर्जना और सामाजिक-आर्थिक ज़रूरतों से उत्पन्न पारस्परिक संवादात्मकता की इस प्रक्रिया ने हिंदी को वैश्विक संवाद और संवेदना के सांस्कृतिक विनिमय का एक सशक्त माध्यम बना दिया है। 27 सितंबर, 2014 को

संयुक्त राष्ट्र संघ में और 28 सितंबर, 2014 को न्यू यॉर्क के मैडिसन स्क्वायर में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के हिंदी में किए गए संबोधन पर विश्व की उत्साहजनक प्रतिक्रिया इसका अच्छा उदाहरण है।

आज वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय परिदृश्य में जो विशाल विश्व बाज़ार विकसित हुए हैं, उसमें भारत का विशेष स्थान है। इतने बड़े उपभोक्ता बाज़ार को अपने अनुकूल बनाने के लिए आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपनी उत्पाद-सामग्री के प्रचार के लिए हिंदी का सहारा लेना ज़रूरी हो रहा है। हिंदी फ़िल्मों और हिंदी इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने अपनी वैश्विक उपस्थिति से हिंदी के प्रचार-प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी की अंतरराष्ट्रीय भूमिका की यही वह महत्वपूर्ण आधारशिला है जिस पर खड़ी होकर हिंदी विश्व के अनेक देशों में अंतरराष्ट्रीय संपर्क की भाषा के रूप में अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार हो रही है।

विदेश में हिंदी

बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में हिंदी का अंतरराष्ट्रीय विकास बहुत तेज़ी से हुआ है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाज़ार के क्षेत्र में हिंदी की माँग जिस तेज़ी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों से 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफएम' सहित अनेक देश हिंदी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिंदी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिंदी भाषा और इसमें निहित भारत की सांस्कृतिक धरोहर इतनी सुदृढ़ और समृद्ध है कि इस ओर अधिक प्रयत्न न किए जाने पर भी विकास की गति बहुत तेज़ है। ध्यान, योग आसन और आयुर्वेद विषयों के साथ-साथ इनसे संबंधित हिंदी शब्दों का भी विश्व की दूसरी भाषाओं में विलय हो रहा है। भारतीय संगीत (चाहे वह शास्त्रीय हो या आधुनिक) हस्तकला, भोजन और वस्त्रों की विदेशी माँग जैसी आज है, पहले कभी नहीं थी। विश्व के अनेक देशों में योग, ध्यान और आयुर्वेद के केंद्र खुल गए हैं जो दुनिया भर के लोगों को भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित करते हैं। भारतीय संस्कृति के इन विशिष्टताओं को पाने के लिए हिंदी ही सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है।

मॉरीशस, सूरीनाम, फ़ीजी, त्रिनिदाद, गयाना और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में जहाँ लगभग डेढ़ सौ वर्षों से हिंदी विद्यमान है, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से ये सारे देश एक लघु भारत की तरह ही हैं। इन देशों में पर्याप्त मात्रा में रचनात्मक साहित्य का सृजन हो रहा है। यहाँ के क्षेत्रीय हिंदी भाषा रचनाकारों ने हिंदी साहित्य का संवर्धन किया है। वहीं अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, इटली, रूस, स्वीडन, नार्वे, हॉलैंड, पोलैंड, जर्मनी, सऊदी अरब आदि देशों में भी पर्याप्त मात्रा में हिंदी भाषी जन निवास कर रहे हैं। हिंदी से इन देशों का संबंध भी कई वर्षों से है।

हिंदी के दूर देश के बेटे

हिंदी आज जिस मुकाम पर खड़ी है, उसकी सीमाएँ भारत की सीमाओं से बाहर निकलकर दूर देशों के अनेक अनजान क्षितिजों का स्पर्श करती हैं। ग्लोबल संदर्भों ने वैश्विक चेतना के स्तर पर हिंदी को भी एक नई पहचान दी है। आज की हिंदी में भारतीय मूल के समर्पित हिंदी लेखकों-रचनाकारों के साथ ही विदेशी मूल के अनेक हिंदी सेवी, हिंदी के प्राध्यापक, विश्व की विभिन्न भाषाओं में हिंदी साहित्य के अनुवादक, कवि तथा उपन्यासकार के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान देकर हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। दूर देश के इन हिंदी के बेटों के मन में रचा-बसा हिंदी के प्रति यह प्रेम और सृजन का यह नया संसार एक ओर हिंदी को वैश्विक स्वरूप प्रदान करने में योगदान कर रहा है तो दूसरी ओर हिंदी के सर्जनात्मक स्वरूप को नई समृद्धि और नया आयाम भी प्रदान कर रहा है। हिंदी के इन समर्पित सेवियों में चेकोस्लोवाकिया के ओदोलेन स्मेकल और ब्रिटेन के रूपर्ट स्नैल से लेकर बुल्गारिया के डॉ. फ़ादर कामिल बुल्के और हंगरी की मारिया न्येंजेशी तक लंबी फ़ेहरिस्त है। इनकी कविताओं में भारत की संस्कृति, भारत का

गाँव, भारत के लोग, यहाँ की परंपराओं की स्मृतियाँ रागात्मक रूप में व्यक्त होती हैं तो दूसरी ओर इनमें वैश्विक स्तर पर सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में हो रहे बदलावों को भी संजीदगी के साथ सामने रखने की कोशिश महसूस की जा सकती है।

हिंदी साहित्य को अनुवाद के माध्यम से विश्व की अनेक भाषाओं के पाठकों के सामने रखने के साथ ही उत्कृष्ट कविताओं तथा उपन्यासों का सृजन कर इन रचनाकारों ने हिंदी को सही मायने में एक ग्लोबल संदर्भ और वैश्विक चेतना प्रदान की है। भारत के दो सांस्कृतिक प्रतीक चरित्र राम और कृष्ण के जीवन से जुड़े कथात्मक तत्व ने इन रचनाकारों के अंतर्मन को सबसे अधिक छुआ है। फ़ादर कामिल बुल्के और ओदोलेन स्मेकल ने जहाँ राम के चरित्र के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त करते हुए अपनी रागात्मक अनुभूतियाँ व्यक्त की हैं, वहीं लंदन के रूपर्ट स्नैल के ब्रजभाषा में लिखे गए मधुर छंदों में कृष्ण और ब्रज की सारी मधुरिमा अत्यंत कोमलता से व्यक्त हुई हैं। चेकोस्लोवाकिया के डॉ. ओदोलेन स्मेकल तथा रूस के प्रो. वर्रान्निकोव की कविताएँ और हंगरी के प्रो. टुमरै बैघा के महाकवि घनानंद पर केंद्रित ग्रंथ सनेह को मारग हिंदी कविता और हिंदी आलोचना को एक नया आस्वाद प्रदान करते हैं तो जापान के साईजी माकीतो द्वारा वर्षों तक शांति निकेतन में रहकर हिंदी में रची गई अनेक महत्वपूर्ण कृतियों से हिंदी साहित्य निश्चित रूप से समृद्ध हुआ है। नेपाल के साहित्यकार धूस्वां सायमि ने तीन हज़ार से ज़्यादा हिंदी कविताएँ लिखी हैं तो केदारनाथ मान के भी तीन-चार काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मॉरीशस के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार अभिमन्यु अनत के उपन्यास, जहाँ हिंदी उपन्यास की कलात्मक सर्जनात्मकता को नई आभा प्रदान करते हैं तो डॉ. ओदोलेन के प्रसिद्ध काव्य संग्रह हमारा हरित नीम में भारतीय संस्कृति के अनछुए पहलुओं के प्रति एक विदेशी कलाकार की स्निग्ध आत्मीयता को सहज ही महसूस किया जा सकता है।

भारत के साथ पोलैंड, हंगरी, ब्रिटेन, रूस, उज़्बेकिस्तान, ताजिकिस्तान और इटली आदि अनेक देशों के बहुत पहले से ही सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। हमारे बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान की परंपरा बहुत पुरानी है। विश्व के अनेक देशों में भारतीय धर्म, संस्कृति, दर्शन, परंपरा और भाषाओं के प्रति गहरी अभिरुचि रही है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में भारत-विद्या, प्राच्य विद्या और भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए अलग से विभाग खुले हुए हैं जहाँ हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन के लिए अनेक प्राध्यापकों की सेवाएँ ली जाती रही हैं। यहीं पर हिंदी अध्ययन, पठन-पाठन के साथ ही हिंदी साहित्यिक कृतियों का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद और हिंदी में सर्जनात्मक लेखन का एक विशिष्ट स्वरूप निर्मित होता रहा है।

वहीं, प्राचीन काल से ही मॉरीशस, फ़ीजी, सूरीनाम तथा नेपाल आदि अनेक देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक-भावनात्मक संबंध रहे हैं। भारत से इन देशों में गए प्रवासियों का मन जहाँ भारत की संस्कृति, परंपरा तथा लोकजीवन से आत्मीयता से जुड़ा रहा, वहीं इन देशों की संस्कृति, चिंतन-परंपराओं तथा भाषा और साहित्य पर भारतीय धर्म, संस्कृति, दर्शन, परंपरा और भाषाओं पर गहरा असर पड़ा। यहाँ की सोंधी मिट्टी, हरेभरे वनों, लहराती नदियों और विशाल नीले समुद्र की लहरों में बिखरी लोकजीवन की मिठास तथा संस्कृति और परंपराओं के इंद्रधनुषी रंगों में घुलकर हिंदी में सर्जनात्मक लेखन का एक अनूठा स्वरूप निर्मित होता रहा है। भारतीय जीवन और संस्कृति तथा इन देशों की प्राचीन संस्कृतियों और परंपराओं की घुली-मिली संवेदनाओं का वहन करनेवाला यह विपुल सर्जनात्मक लेखन हिंदी को एक अलग पहचान देता है जिसकी आत्मीयता, सहजता, स्निग्धता और जीवंतता को सहज ही महसूस किया जा सकता है। दूर देश में साधनारत हिंदी के इन अनजान बेटों ने हिंदी के रचनात्मक विकास में जो अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उसने हिंदी को समृद्ध किया है। आइए, इनमें से कुछ लोगों के बारे में जानने की कोशिश करें।

डॉ. तात्याना रुत्कोव्स्का

डॉ. तात्याना रुत्कोव्स्का पोलैंड के वारसा विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा एवं साहित्य प्राध्यापिका के रूप में हिंदी की सेवा करती रही हैं। डॉ. रुत्कोव्स्का ने कबीर साहित्य का पोलिश भाषा में अनुवाद किया। कविता के साथ-साथ आधुनिक हिंदी विधाओं

के अध्ययन में भी डॉ. रुत्कोव्स्का की गहरी अभिरुचि रही है। उन्होंने हिंदी की अनेक कहानियों का भी पोलिश भाषा में सर्जनात्मक अनुवाद किया है।

प्रो. दानूता स्ताशिक

प्रो. दानूता स्ताशिक हिंदी विभाग, वारसा विश्वविद्यालय की अध्यक्षा हैं तथा उनकी अनेक पुस्तकें एवं लेख पोलिश तथा अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित हैं। प्रो. स्ताशिक के शोध का क्षेत्र विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद का हिंदी साहित्य रहा है तथा प्रवासी हिंदी लेखन पर भी उन्होंने अच्छा काम किया है। सन् 1980 में डॉ. दानूता स्ताशिक ने 'आधुनिक हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक टकराव-इंग्लैंड, कनाडा तथा अमेरिका में भारतीय 'विषय पर पीएचडी की उपाधि के लिए शोध प्रबंध लिखा। प्रो. दानूता स्ताशिक ने रामकाव्य की परंपरा पर भी महत्वपूर्ण काम किया है। रामचरितमानस पर पोलिश भाषा में प्रकाशित उनकी पुस्तक रामकाव्य के सर्जनात्मक स्वरूप को रोचक शैली में विवेचित करती है।

प्रो. मारिया क्रिश्तोफर ब्रिस्की

पोलैंड में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहित करने में प्रो. मारिया क्रिश्तोफर ब्रिस्की की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रो. ब्रिस्की लंबे समय तक वारसा के प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज़) के निदेशक पद पर रहे हैं। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण लेख 'भारतीय लोक नाटक' के माध्यम से पोलिश भाषियों को भारतीय लोक नाट्य की परंपराओं तथा विशिष्ट नाट्य शैलियों से परिचित कराया। ब्रिस्की ने कई प्रसिद्ध हिंदी नाटकों का भी अनुवाद किया है। इनमें लक्ष्मीनारायण लाल का 'तोता-मैना' और सर्वेश्वरदयाल का 'बकरी' प्रमुख हैं।

श्री युत्युष पार्नोव्स्की

हिंदी से पोलिश भाषा में अनुवाद की दृष्टि से श्री युत्युष पार्नोव्स्की ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। मध्यकालीन कवियों में पार्नोव्स्की ने कबीर और तुलसी की रचनाओं का अनुवाद किया है। कबीर-वाणी और रामचरितमानस का अनुवाद पोलिश भाषा में संक्षिप्त रूप में उपलब्ध है। प्रसिद्ध कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य का पार्नोव्स्की ने पोलिश में अनुवाद किया है। भाषा पर स्थानीय प्रभाव की दृष्टि से फणीश्वरनाथ रेणु अनुवाद के लिए चुनौतीपूर्ण रहे हैं। युत्युष पार्नोव्स्की ने रेणु साहित्य का पोलिश भाषा में बहुत अच्छा अनुवाद किया है।

प्रो. ल्युदमीला विक्तोरव्ना ख़ख़लोवा

प्रो. ल्युदमीला विक्तोरव्ना ख़ख़लोवा मास्को स्टेट विश्व-विद्यालय के एशियाई और अफ़्रीकी अध्ययन संस्थान में भारतीय दर्शनशास्त्र विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। उन्होंने हिंदी तथा भारतीय भाषाओं और भारतीय संस्कृति पर रूसी तथा अंग्रेज़ी में अनेक लेख लिखे हैं। डॉ. ख़ख़लोवा ने रूस में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ. ख़ख़लोवा को रूसी भाषा के अलावा अंग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू एवं पंजाबी भाषा में ज्ञान प्राप्त है।

डॉ. एवा अरादि

डॉ. एवा अरादि ने 1976 में भारतीय विद्या भवन, बंबई से हिंदी में स्नातक की उपाधि तथा 1979 में बुडापेस्ट से हिंदी साहित्य में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। डॉ. अरादि ने हिंदी साहित्य से संबंधित विविध विषयों पर अनेक लेख लिखे हैं तथा प्रेमचंद की कई कहानियों का हंगेरियन भाषा में अनुवाद भी किया है।

प्रो. दोनोतेल्ला दोल्चीनी

प्रो. दोनोतेल्ला दोल्चीनी मिलान विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा और भारतीय संस्कृति की प्रोफ़ेसर हैं। उन्होंने 1970 में वेनिस विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा और साहित्य में डिग्री प्राप्त की। प्रो. दोल्चीनी विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संगठनों से जुड़ी हुई हैं और हिंदी भाषा के विकास के लिए उन्होंने उल्लेखनीय योगदान दिया है।

डॉ. फ्रेंचेस्का ऑर्सिनी

डॉ. फ्रेंचेस्का ऑर्सिनी लंदन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ़

ओरिएंटल ऐंड अफ्रीकन स्टडीज़ (सोआस) में दक्षिण एशियाई भाषा एवं संस्कृति में व्याख्याता हैं और उत्तर भारत के साहित्य (हिंदी एवं उर्दू) की विशेषज्ञ हैं। उनकी रुचि के अन्य विषय हैं— दलित लेखन, समसामयिक हिंदी साहित्य, स्त्री विमर्श आदि।

श्रीमती मगलेना स्लूसारेनिक

श्रीमती मगलेना स्लूसारेनिक हिंदी भाषा की व्याख्याता हैं। उन्होंने समकालीन हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अनेक शोध-पत्र प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कसप' पर लेख प्रकाशित किया है। उन्होंने अनेक लेखों का पोलिश भाषा में भी अनुवाद किया है।

डॉ. गेनादी शलौंपेर

डॉ. गेनादी शलौंपेर ने 1977 में ताशकंद स्टेट विश्वविद्यालय से भारतीय दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया तथा 2003 में जेरूसलम में हिब्रू विश्वविद्यालय से हिंदी भाषा विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। डॉ. शलौंपेर ने भारतीय दर्शन और हिंदी साहित्य पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं तथा हिंदी की अनेक श्रेष्ठ रचनाकारों की पुस्तकों का उन्होंने रूसी भाषा में अनुवाद भी किया है।

डॉ. उल्फत मुखीबोवा

डॉ. उल्फत मुखीबोवा ने ओरिएंटल अध्ययन संस्थान ताशकंद से हिंदी में एम.ए. करने के पश्चात डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। भारतीय साहित्य और हिंदी भाषा पर डॉ. मुखीबोवा के अनेक लेख और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें भक्ति और सूफ़ी साहित्य पर लिखी उनकी पुस्तकें उल्लेखनीय हैं।

प्रो. मुमताज उस्मानोव

प्रो. मुमताज उस्मानोव ताजिक स्टेट नेशनल विश्वविद्यालय में हिंदी और उर्दू विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने भारतीय भाषाओं, साहित्य, इतिहास तथा संस्कृति पर 80 से भी अधिक लेख लिखे हैं तथा अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और सेमिनारों में भाग लिया है।

प्रो. हर्मन वैन

प्रो. हर्मन वैन ऑल्फन टैक्सास विश्वविद्यालय में एशियाई अध्ययन के प्रोफेसर हैं। प्रोफेसर ऑल्फन टैक्सास विश्वविद्यालय में सभी स्तरों पर हिंदी और उर्दू भाषा का अध्यापन कार्य करते हैं। उनकी अनुसंधान परियोजनाओं में हिंदी और उर्दू व्याकरण शामिल है।

इस प्रकार, आज भारत के बाहर हिंदी सर्जना को सही मायने में विश्व स्तर पर व्यापक क्षितिज प्रदान करने वाले इन रचनाकारों के साहित्य का नए सिरे से मूल्यांकन और उनके प्रति समुचित सम्मान व्यक्त करने की ज़रूरत है। इनकी रचनाओं को हम अपने हिंदी पाठ्यक्रमों में रखकर, उन्हें हिंदी सर्जना की मुख्यधारा में सही और सच्चा स्थान प्रदान कर अपनी भावी पीढ़ी को यह बता सकते हैं कि हिंदी में भारत के बाहर दूर देशों में रहने वाले उसके अनजान बेटे भी निरंतर लिखते-पढ़ते रहे हैं।

श्री धुस्वाँ सायमी

नेपाल के ख्यातिप्राप्त एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री धुस्वाँ सायमी नेपाल के अग्रगण्य हिंदी साहित्यकारों में हैं। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की संवेदना तथा संस्कृति की मधुरिमा के साथ ही सामाजिक-राजनीतिक शोषण और सामान्य मनुष्य के जीवन संघर्षों की चेतना की अत्यंत ओजस्वी स्वरों में अभिव्यक्ति हुई है। इन्होंने हिंदी भाषा के साहित्य सृजन में अतुल्य योगदान दिया है। धुस्वाँ सायमी जी के व्यक्तित्व में साहित्य और संस्कृति के तत्व अपने उज्ज्वल रूप में समाहित थे। उन्होंने बनारस से प्रकाशित युगवाणी से अपनी साहित्य यात्रा शुरू की थी। 'मैं दासी मैं सराय' (1974), 'रेत की दरार' (1975) एवं 'जलजला' (1976) उनके प्रकाशित हिंदी उपन्यास हैं। 'कविता का जंगल' तथा 'शब्दों का आकाश' उनके सुप्रसिद्ध हिंदी कविता संग्रह हैं। धुस्वाँ सायमी जी ने हिंदी के अलावा नेपाली और नेवारी भाषा में भी रचनाएँ लिखी हैं। 'गन्की' उनकी मातृभाषा नेवारी का एक प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका हिंदी में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। हिंदी के इस समर्पित बेटे का निधन 17 दिसंबर, 1908 को काठमांडु में हो गया।

श्री राज हीरामन

राज हीरामन मॉरीशस के हिंदी काव्य-साहित्य के एक प्रतिनिधि कवि हैं। उनका जन्म 11 जनवरी, 1953 को मॉरीशस के उत्तर प्रांत में स्थित त्रियोले गाँव में हुआ। ढाई साल में उनके पिता का देहांत हो गया। उनकी माँ परिवार के पालन-पोषण के लिए मज़दूरी करती थी। राज हीरामन अपने परिवार के दस बच्चों में सबसे छोटे हैं। स्कूली पढ़ाई के बाद उन्होंने भी मज़दूरी का काम किया। फिर पुलिस कॉन्स्टेबल बने। दो सालों के बाद वे हिंदी के अध्यापक बने। 'जनता' हिंदी साप्ताहिक समाचार में हिंदी सीखी तब वे 1976 में 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' मुंबई में पत्रकारिता का प्रशिक्षण लेने गए। लौटकर स्थानीय मॉरीशस ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन के रेडियो व टेलीविजन में 22 वर्षों तक काम किया। 1978 में स्कूल छोड़कर वे महात्मा गांधी संस्थान के सृजनात्मक लेखन विभाग से जुड़े। उन्होंने बीच में हिंदी पाठ्य लेखन विभाग में काम किया। उन्होंने माध्यमिक कॉलेज में हिंदी और हिंदुत्व जैसे विषय पढ़ाए।

श्री ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'

मॉरीशस के पहले प्रमुख कवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' हैं। 2 सितंबर, 1916 को मोंताँय लोंग में जन्में 'मधुकर' मॉरीशस के राष्ट्रकवि हैं। मधुकर जी की तीस से अधिक काव्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी प्रथम काव्य कृति 'मधुपर्क' का प्रकाशन 1942 ई. में हुआ। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं—मधुबन, मधुकरी, मधुकलश, मधुमास, गुंजन, रसवंती, हमारा देश, इत्यादि। मॉरीशस के राष्ट्रपिता शिवसागर रामगुलाम के साथ मॉरीशस के स्वतंत्रता संग्राम के शिरकत करने के कारण इनकी कविताओं में स्वतंत्रता आंदोलन की झलक दिखाई पड़ती है। मधुकर जी की कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

रे साथी कदम बढ़ाता चल
देश-देश में गूँज उठा है स्वतंत्रता का नारा।
बहती है मानव के मानस अविरल अमृत धारा,
आज गुलामी के बंधन को तोड़-फोड़ के चल।

'मधुकर' की कविताओं में हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य प्रेम दिखाई देता है। हिंदी की प्रशस्ति में उन्होंने 'हिंदी गान' शीर्षक काव्य कृति का प्रणयन किया है।

मॉरीशस की आज़ादी के पूर्व 'कवि सम्मेलन', विष्णु दयाल कृत 'कविता कली', पंडित हरिप्रसाद रिसाल मिश्र कृत 'छंदवाटिका', जयरूद्ध दोसिया कृत 'सुधा कलश' एवं सोमदत्त बखोरी कृत 'मुझे कुछ कहना है' जैसी काव्य कृतियों का प्रकाशन हुआ।

12 मार्च, 1968 को मॉरीशस ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्त हुआ। स्वाधीन राष्ट्र के नागरिकों के दिलों में नवोल्लास फूटा। आज़ादी के बाद मॉरीशस की हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। आज़ादी के पाने का उल्लास हरिनारायण सीता कृत 'प्रभात', जनार्दन कालीचरण कृत 'प्रथम रश्मि' और रामरतन रिसाल मिश्र कृत 'बिखरे सुमन' प्रभृति रचनाओं में परिलक्षित होता है। मॉरीशस की स्वातंत्र्योतर हिंदी कविता पर विचार करते हुए मुनीश्वरलाल चिंतामणि लिखते हैं—"सन् 1968 से मॉरीशस की हिंदी कविता स्वतंत्रता के वातावरण में फल-फूल रही है। स्वतंत्रता अपने साथ बेकारी और निर्धनता की समस्याएँ लाई। आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनता के लिए कविता की संघर्ष चेतना को काव्य में स्थान मिला।"

मॉरीशस में हिंदी में कविता लिखने वालों की संख्या शताधिक है। प्रमुख हिंदी कवियों की रचनाओं के आधार पर हम मॉरीशस की हिंदी कविता के स्वरूप को उद्घाटित करना चाहेंगे।

श्री अभिमन्यु अनत

जिस रचनाकार ने मॉरीशस में हिंदी कविता तथा हिंदी उपन्यास लेखन को एक नया क्षितिज प्रदान किया है, वे हैं मॉरीशस के महान कथा-शिल्पी, भावुक कवि अभिमन्यु अनत। अभिमन्यु अनत का जन्म 9 अगस्त, 1937 ई. को त्रिओले में हुआ था। अब तक अनत के चार कविता संकलन प्रकाशित हो चुके हैं—'कैक्टस के दाँत', 'नागफनी में उलझी साँसें', 'एक डायरी बयान' तथा 'गुलमोहर खौल उठा'। अभिमन्यु अनत अपने देश की नैसर्गिक सुषमा से भाव विभोर नहीं होते बल्कि मानसिक त्रासदी से उद्वेलित होते हैं। अपनी कविता में वे अपने समाज पर होनेवाले अत्याचार और शोषण के खिलाफ़ प्रश्नवाचक मुद्रा में खड़े हो जाते हैं। अभिमन्यु अनत की कविताओं में सामाजिक सरोकार अपने ओजस्वी रूप में

विद्यमान है। शोषण, दमन और अत्याचार के खिलाफ़ कवि की आवाज़ बुलंद होती रही है। बेरोज़गारी की समस्या पर भी अनत की दृष्टि गई है। समसामयिक व्यवस्था पर कवि का भावुक हृदय चिंतित है—

जिस दिन सूरज को
मज़दूरों की ओर से गवाही देनी थी
उस दिन सुबह नहीं हुई
सुना गया कि
मालिक के यहाँ की पार्टी में
सूरज ने ज़्यादा पी ली थी।

अनत की कविताओं में मॉरीशस के श्रमजीवियों की वेदना उभरती है। 'लक्ष्मी का प्रश्न' शीर्षक कविता में अनत प्रश्नवाचक मुद्रा में खड़े हो जाते हैं—

अनपढ़ लक्ष्मी पर इतना
ज़रूर पूछती रही
पसीने की कीमत जब इतनी
महंगी होती है
तो मज़दूर उसे इतने सस्ते
क्यों बेच देता है।

श्री अनत द्वारा संपादित कविता संकलन हैं—मॉरीशस की हिंदी कविता तथा मॉरीशस के नौ हिंदी कवि। उनके उपन्यासों में मॉरीशस का समकालीन जीवन, संस्कृति और परंपराओं के विभिन्न इंद्रधनुषी रंग अत्यंत संवेद्य रूप में व्यक्त हुए हैं।

श्री सोमदत्त बखोरी

आप मॉरीशस की हिंदी कविता के अत्यंत सशक्त हस्ताक्षर हैं। आपका जन्म मॉरीशस के मोंताँय लोंग नामक गाँव में 1921 ई. में हुआ था। भारत सरकार द्वारा 'विश्व हिंदी पुरस्कार' से सम्मानित बखोरी के चार काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं—मुझे कुछ कहना है, बीच में बहती धारा, नशे की खोज, साँप भी सँपेरा भी।

सोमदत्त बखोरी की कविताओं में वैविध्य के स्वर हैं। एक तरफ वे मॉरीशस की इंद्रधनुषी छटा पर मुग्ध होते हैं तो दूसरी ओर मॉरीशस की ज़िंदगी की विसंगतियों पर मर्मांतक व्यंग्य करते हैं। अपनी कविता 'शक्कर की रोटी' में बखोरी ज़िंदगी की विसंगतियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—

पर मैंने कुछ और ही देखा
देखा कि धरती माँ की लाज बचाने को
खून-पसीने के ताने-बाने से
हरी साड़ी की बुनाई हो रही है।
कवि को युगद्रष्टा कहा जाता है।

बखोरी के अंदर का द्रष्टा तृतीय विश्वयुद्ध के आसन्न संकट को देख लेता है। कवि का हृदय मानवता के वास्तविक दुश्मनों की सहज ही पहचान कर लेता है—

तीसरे महायुद्ध के हैं तीन मोरचे
गरीबी, बीमारी, अज्ञानता
लड़ते हैं इसमें सिपाही
कदम-कदम पर हवलदार से
मारे जाते हैं इसमें आदमी
अव्यवस्था की तलवार से।

श्री हरिनारायण सीता

हरिनारायण सीता अपनी संवेदनशील कविताओं के लिए जाने जाते हैं। उनकी कविताएँ 'प्रवासी स्वर', 'मॉरीशस की हिंदी कविता' तथा 'मॉरीशस के नौ हिंदी कवि' प्रभृति संपादित संकलनों में भी संकलित हैं। उनकी कविताओं में परंपरा और आधुनिकता का विलक्षण समन्वय है। उनकी 'चक्रव्यूह' कविता में महाभारत के कथानक को आधुनिक संदर्भ में व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। 'इतिहास क्या साक्षी है' कविता में आप्रवासी भारतीयों की वेदना का गूँगा इतिहास छिपा हुआ है।

श्री पूजानंद नेमा

श्री पूजानंद नेमा का जन्म 24 नवंबर, 1943 को मॉरीशस के

दक्षिण प्रांत के ला फ़्लोरा गाँव में हुआ था। उनका कविता संग्रह 'चुप्पी की आवाज़' 1995 में नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। उन्होंने 'आकाशगंगा' नामक काव्य संग्रह का संपादन भी किया है। उनकी कविताएँ अपनी एक अलग पहचान का अहसास देती हुई प्रतीत होती हैं। कवि देश की आज़ादी के प्रति ज़्यादा संवेदनशील हैं। कवि के अनुसार आज़ादी वह संवेदना है, जो मनुष्य को एक नई सोच और नई चेतना प्रदान करता है। 'जो गैरहाज़िर है' कविता में आज़ादी के अस्तित्व के प्रति कवि का चिंतन द्रष्टव्य है—

आज़ादी चेहरों का तबादला नहीं
गुलामों की एजेंसी भी नहीं
वायदे नहीं, नारे नहीं
आज़ादी चंद दिलों की सुहागरात भी नहीं
जिसे वेश्या भी मना लेती है।

श्री हेमराज सुंदर

श्री हेमराज सुंदर मॉरीशस की हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी काव्य यात्रा की शुरुआत 'आक्रोश' से हुई। 'चेतना' और 'चुनौती' उनके प्रकाशित कविता संकलन हैं। उनकी कविताओं में युवाओं की कुंठा, निराशा और बेबसी के स्वर मिलते हैं। साथ ही मिलती है एक नए विहान की आशाओं से भरी अभिनव चेतना। इनकी कविता में आस्थावादी स्वर अत्यंत तीव्रता से व्यक्त होता है—

मेरे शरीर की नदी में
अभी बाढ़ की संभावना है
बदलेगी हवा-सच कहता हूँ।

अपनी कविता 'प्रजा' में हेमराज ने प्रजातंत्र का जीवंत रूपक खींचा है। आकाश विधानसभा है, समय संविधान है। चमकता तारा उम्मीदवार है। जीतकर जमने वाला नेता है और जो खंडित हुआ वह प्रजा है। अपनी 'दो-दो की दास्तान' कविता में हेमराज ने लुप्तप्राय पक्षी डोडो को याद करने के बहाने औपनिवेशिक शोषण पर मर्मांतक व्यंग्य किया है।

श्री मुकेश जीबोध

ग़ज़ल की ताज़गी और संवाद की ताज़ातरीन भाषा के लिए अपनी पहचान स्थापित करने वाले मुकेश जीबोध उन युवा रचनाकारों में हैं, जिनकी कविताओं पर भारत के नए कवियों की संवेदनशीलता और शिल्प की झलक सहज ही दिखती है। मुकेश जीबोध को मॉरीशस में हिंदी ग़ज़ल का प्रवर्तक माना जा सकता है। उनकी ग़ज़लों का तेवर दुष्यंत कुमार की याद दिला देता है। उनकी ग़ज़ल की कुछ पंक्तियाँ देखने लायक हैं—

क्या सोच के मैंने शीशे का मकान बनाया
बंधु हर आदमी ने है हाथ में पत्थर उठाया
लोगों ने मिलकर हमारे खिलाफ़ की है साजिश
इन दिनों फासलों से चलता है अपना साया।

पं. विवेकानंद शर्मा

पं. विवेकानंद शर्मा फ़ीजी के सुप्रसिद्ध कवि हैं। इनकी कविता में राष्ट्रीयता, मानवीय मूल्यों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के अनेक रंग अपनी पूरी संवेद्यता से व्यक्त हुए हैं। इनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं, जिनमें 'जब मानवता कराह उठी', 'प्रशांत की लहरें', 'प्रधानमंत्री रातूमारा', 'गुलाब के फूल', 'फ़ीजी में सनातन धर्म के सौ साल का इतिहास' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाएँ 'विश्वकोश भारतीय संस्कृति', 'अनजान क्षितिज की ओर', 'प्रशांत की लहरें' आदि साहित्य जगत में सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं।

राजभाषा कक्ष
भारतीय रिज़र्व बैंक, पटना, भारत
kpsinha@rbi.org.in

वैश्विक हिंदी के विविध आयाम व कुछ विचार बिंदु

26 बहुभाषिकता : संदर्भ सिमटती दूरियाँ सूचना क्रांति में

● *डॉ. ओम विकास*

1. उद्भव दूरियों से

मानव जाति का विशिष्ट गुण है—कई स्पष्ट ध्वनियों का उच्चारण करने और इन ध्वनियों के मेल से शब्द बनाकर संकल्पना विशेष को इंगित करने की क्षमता। ध्वनि को रूप दिया, लिपि का विकास हुआ। सार्थक शब्द समूह वाक्य (वाक्/वार्ता के योग्य) कहलाए। शब्द और वाक्यों से भाषा बनी। एक-दूसरे को समझना आसान हो इसलिए नियम बनाए जो भाषा के व्याकरण में समाए हैं। हज़ारों वर्ष पहले आज जो भू-भाग है, उतना ही था लेकिन मनुष्य बहुत थोड़े थे, सो दूर-दूर बसे थे। आपस में बहुत कम मिलते-जुलते थे। दूरियों के कारण मानव समुदायों की कई अलग-अलग भाषाएँ बनीं।

प्रबल बुद्धि के सहारे नई खोजें कीं, आने-जाने की गति बढ़ी, मेल-जोल बढ़ा। चतुर समुदायों में दूसरे समुदायों को अधीन करने की प्रवृत्ति बढ़ी। दूरियाँ सिमटने लगीं, मेल-जोल के लिए दो, तीन, चार भाषाओं की जानकारी उपयोगी बनने लगी। दूरियों ने ***बहुभाषिकता*** को जन्म दिया। सिमटती दूरियों ने बहुभाषिकता की ***प्रासंगिकता*** को बढ़ा दिया। इंटरनेट ने दूरी और समय दोनों को सूक्ष्मतर बना दिया। इनमें अलगाव की पहचान हम और आप नहीं कर पाते। सभी कुछ पास है, इसी समय है, ऐसा अनुभव होता है। भारत के एक गाँव में माता-पिता, ऑस्ट्रेलिया के बड़े शहर में रह रहे पुत्र से इंटरनेट के माध्यम से सामान्य रूप से बात कर सकते हैं, एक-दूसरे की शक्ल भी देख सकते हैं। यहाँ तो एक भाषा से काम चल गया। दो व्यापारी भी इसी प्रकार बात करके व्यापार बढ़ा सकते हैं। यहाँ समुदायों के अनुसार दो या अधिक भाषाओं की जानकारी उपयोगी होगी।

बहुभाषिकता विरासत में मिली। 'एक विश्व' का उदय हुआ। बहुभाषिकता का सह-अस्तित्व प्रासंगिक बनने लगा। आज के संदर्भ में इसे अधिक से अधिक सार्थक और मानवोपयोगी बनने की आवश्यकता है। 'विविधता में एकता' भला विचार है लेकिन यह अनुपालन में सुगम नहीं, चुनौती है। सुधीजन विचार-विमर्श कर आचार संहिता का प्रारूप तैयार कर सकते हैं।

जन्म : 1 अगस्त, 1947 को उत्तर प्रदेश के ब्रह्मपुरी ग्राम में।

शिक्षा : इलेक्ट्रिकल-इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियरिंग में बी.तेक., एम.टेक. आई.आई.टी. कानपुर।

कंप्यूटर साइंस एवं इंजीनियरिंग में पीएचडी।

प्रकाशन : हिंदी में विज्ञान विषयक कई लेख प्रकाशित हुए हैं। इन्फोर्मेशन टेक्नोलोजी की प्रथम शब्दावली बनाई, कंप्यूटर पर हिंदी में प्रथम पुस्तक 'कंप्यूटर से बातचीत' लिखी। अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय जर्नल/शोध पत्रिकाओं और कोंफरेंस संगोष्ठियों में शोधपत्र, टेक्नोलॉजी एनालिसिस रिपोर्ट और लोक भाषा में भी तकनीकी लेख प्रकाशित किए हैं।

कार्य : ABV-IIITM ग्वालियर (डीम्ड यूनिवर्सिटी) के निदेशक, आई.आई.टी. में प्राध्यापक, केंद्रीय सूचना-संचार मंत्रालय में वरिष्ठ निदेशक और जापान में भारतीय दूतावास में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सलाहकार रहे। सरकार में रहकर भारतीय भाषाओं में तकनीकी विकास मिशन परियोजना की संकल्पना की, दो दशक तक संयोजन किया। सभी भारतीय भाषाओं को ध्वन्यात्मक समानता के आधार पर कोड, कोडांतरण, लिप्यंतरण, फ़ॉन्ट, शब्द संसाधन, अक्षर पहचान (ओ.सी.आर.), स्पीच प्रोसेसिंग, अनुवाद आदि तकनीकी विकास किए गए। 'विश्व भारत @ tdil' अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक Language Technology जर्नल का 5 वर्ष तक संपादन किया। लोक विज्ञान परिषद के संस्थापक सचिव रहे। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में, हिंदी में प्रथम डिप्लोमा इन कंप्यूटर एप्लीकेशन (DCA) पाठ्यक्रम को सरकारी अनुदान से प्रारंभ कराने, भाषाई तकनीकी टूल्स को ओपेन डोमेन में डलवाने और CBSE के IT (इन्फोर्मेशन टैक्नोलोजी), IP (इंफोर्मेटिक्स प्रेक्टिस), CS (कंप्यूटर साइंस), वोकेशनल इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी के पाठ्यक्रमों में हिंदी और भारतीय भाषाओं में कम्प्यूटिंग के ज्ञानअभ्यास का समावेश कराने का श्रेय डॉ. ओम विकास को जाता है।

संप्रति : अंतरराष्ट्रीय पत्रिका विज्ञान प्रकाश भारत में संपादक हैं।

सम्मान/पुरस्कार : लोक भाषा में तकनीकी शिक्षा और कंप्यूटर तकनीकी के विकास के संदर्भ में आपके विशिष्ट योगदान के लिए आत्माराम पुरस्कार, विशिष्ट पदक, इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार, विज्ञान भूषण, वास्विक इंडस्ट्रियल रिसर्च पुरस्कार, विज्ञान शिरोमणि, हिंदी सेवी सम्मान, विश्व हिंदी सम्मान (न्यू यार्क) आदि से सम्मानित किए गए।

दूरियों ने बहुभाषिकता को जन्म दिया। सिमटती दूरियों ने बहुभाषिकता को प्रासंगिक बना दिया है।

2. विसंगतियाँ सूचना क्रांति से

2.1 भाषाई प्रभुत्ववाद

श्रुति से लेखन की परंपरा प्रारंभ हुई। शक्ति का मशीनीकरण हुआ, नव नवीन उद्योग धंधे शुरू हुए। वाष्प इंजन, विद्युत और कंप्यूटर के आविष्कार ने औद्योगिक क्रांति को फैलाया, उत्पादकता बढ़ी, गुणवत्ता बढ़ी। सुगमता, सुविधा, सुलभता से जीवन स्तर बेहतर होने लगा। तदनंतर सूचना क्रांति से 21वीं सदी की 'ज्ञान शताब्दी' में प्रवेश हुआ। लक्षित ज्ञान-पोषित समाज में ज्ञान परक सेवाओं का विकास महत्वपूर्ण होगा। किसी भी भाषा में ज्ञान को कंप्यूटर-माध्यम में रखने, एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने, विविध संदर्भों का विश्लेषण प्रस्तुत करने आदि के लिए उपयुक्त टेक्नोलॉजी का विकास आवश्यक है, जैसे कोडन विधि, कंटेंट तैयार करने का फ़ॉर्मेट (HTML, XML, RDF), लेखन/प्रदर्शन विधि, शब्द खोज, संकल्पनात्मक खोज, भाषांतरण, संक्षिप्तीकरण, मशीनी अनुवाद, कृत्रिम बोध, लेखन बोध, वाक् बोध इत्यादि। कंप्यूटर का आविष्कार, विकास और प्रचार-प्रसार अंग्रेज़ी बहुल पश्चिमी देशों में हुआ। दूसरी भाषाओं में अंग्रेज़ी की अनुकृति करके कंप्यूटर को अपनाने के प्रयास हुए। कहीं अधिक सफल रहे और कहीं परामुखापेक्षी बने रहे।

जहाँ एक ओर औद्योगिक क्रांति में वातावरण में प्रदूषण फैला, वहीं दूसरी ओर सूचना क्रांति में कतिपय भाषाएँ प्रबल बनीं और अन्य कई भाषाएँ विलुप्ति के कगार पर पहुँच गईं। संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट के अनुसार बीसवीं सदी के प्रारंभ (1900) में लगभग 10,000 विश्व-भाषाएँ थीं, सदी के अंत (1999) तक 6,700 (दो तिहाई) विश्व-भाषाएँ रह गईं (एशिया में 33% और पेसिफिक में 19%)। प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत विश्व-भाषाओं का लोप होता गया। UN अध्ययन के अनुसार चार यूरोपियन भाषाओं (इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश) में 80% से अधिक पुस्तकों का अनुवाद हुआ। भाषाई प्रभुत्ववाद मूल संस्कृति के दामन को मलीन-जीर्ण करने लगा। सृजन करने की वृत्ति दबती गई, मात्र उपभोक्ता बनकर रह गए।

अनुमान है कि भारत में 1652 बोलियाँ हैं। 22 संविधान स्वीकृत भाषाएँ हैं। ये हैं—हिंदी, मराठी, संस्कृत, नेपाली, कोंकणी, पंजाबी, सिंधी, उर्दू, कश्मीरी, डोंगरी, गुजराती, बंगाली, असमिया, बोडो, संथाली, उड़िया, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, मणिपुरी, मैथिली। हिंदी देवनागरी लिपि में राजभाषा है। भारत के दो तिहाई लोग हिंदी बोल लेते हैं, समझ लेते हैं। हिंदी राष्ट्रभाषा है, लोकभाषा भी। लेकिन सरकारी कामकाज में हिंदी और प्रदेश की भाषाओं का प्रयोग होता है। केंद्र के अधीन मंत्रालयों, कार्यालयों और न्यायपालिकाओं में अंग्रेज़ी का प्रयोग मूल संदर्भ में होता है, तदनंतर हिंदी अनुवाद संलग्न रखने का प्रावधान है।

2.2 सांस्कृतिक तिरोभाव

भाषा के लोप का तात्पर्य है, उस भाषाई समाज का शोध नवाचार और परंपरागत ज्ञान का तिरोभाव होना, लोप होना। ज्ञान वैविध्य का ह्रास और तकनीकी विकास की उपलब्धियाँ 21वीं सदी की विसंगतियों को चुनौती देने लगी हैं।

ऋग्वेद की एक ऋचा का भावांतर सृजनात्मक लक्ष्य की ओर इस प्रकार प्रेरित करता है—

हम हैं दिव्य शक्ति के स्वामी,
बनें अग्रणी नहिं अनुगामी।
अपने ही अनुभव के बल पर,
नए सृजन आधार बनाएँ।।

सृजनात्मकता में दिव्यता है, आनंद है, समृद्धि है। आर्थिक विकास में भी समाज की सृजनात्मक प्रवृत्ति की महत्वपूर्ण भूमिका है।

आजकल 300 विश्व भाषाएँ बोली और लिखी जाती हैं। कई भाषाएँ लिपिबद्ध नहीं हैं। यूरोपरीय संघ के देशों की भाषाएँ अलग-अलग हैं, 11 भिन्न भाषाएँ हैं। जापान में भाषा एक है लेकिन लिपियाँ तीन—हीरागाना, कतकना, कांजी। रोमन के संक्षेपाक्षर का प्रयोग भी प्रचलन में है। सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हीरागाना है, जापान-चीन के पुराने रिश्तों और व्यापार के कारण कांजी का भी प्रयोग है, आधुनिक विज्ञान-प्रौद्योगिकी को आत्मसात करने के उद्देश्य से कातकाना में लिप्यंतरण प्रचलन में है।

2.3 संप्रेषण अवरोध

श्रुति प्रधान समाज में ज्ञान का आदान-प्रदान व्यक्ति-व्यक्ति के बीच था और अब ज्ञान का आदान-प्रदान मशीन जैसे किसी माध्यम से होता है। व्यक्ति-माध्यम-व्यक्ति। सूचना क्रांति में प्रभावी माध्यम कंप्यूटर है। सूचना को किसी कोडिंग स्कीम में कोडित करके रखते हैं। अंग्रेज़ी के लिए ASCI कोड है। भारतीय भाषाओं के लिए ISCII कोड बनाया गया था। ये आठ-बिट (एक बाइट) कोड हैं। सभी विश्वभाषाओं के लिए एक ही कोड हो, इस उद्देश्य से 16 बिट का UNICODE प्रचलन में आया। कई भाषाओं के लिए यूनीकोड ठीक से नहीं बने, वर्तनी में एकरूपता नहीं रही, फ़ॉन्ट नहीं हैं, या एक- दो बहुत सीमित हैं, प्रोप्राइटरी फ़ॉन्ट हैं, ओपन टाइप नहीं, फ़ॉन्ट सपोर्ट प्रिंटर ड्राइवर सभी प्रिंटरों पर नहीं, की-बोर्ड में भी एकरूपता नहीं, लिप्यंतरण स्कीम में एकरूपता नहीं इत्यादि कमियों से कंप्यूटर में और इंटरनेट पर इन भाषाओं का प्रयोग बढ़ नहीं पा रहा है, अवरुद्ध है। इसके कारण ये भाषाएँ हाशिए पर खिसकती जा रही हैं, विलुप्ति के कगार पर हैं। सामाजिक अस्मिता दाँव पर लगी है।

सूचना क्रांति से कई भाषाएँ विलुप्ति के कगार पर पहुँच गईं। भाषा के लोप का तात्पर्य है, उस भाषाई समाज के परंपरागत ज्ञान और नवाचार का लोप होना। भाषा के अनुकूल तकनीकी विकास से ही बहुभाषिकता सार्थक है।

3. प्रासंगिकता विश्वव्यापी वेब से

3.1 वैश्विक संवाद की राह पर

विश्वव्यापी वेब (WWW: World Wide Web) ने हर एक को, हर एक से, हर समय, हर जगह, कंप्यूटर से जोड़ दिया है। 1970 के दशक में विभिन्न कंप्यूटरों को जोड़ने के लिए ARPANET बना जिसने जल्दी ही इंटरनेट का रूप लिया। फ़ाइल ट्रांसफ़र की क्षमता थी। 1990 के दशक में वेब ने सभी को जोड़ दिया, आपस में VoIP (वॉइस ऑन इंटरनेट प्रोटोकॉल) से तत्काल वार्ता कर सकते हैं।

कंप्यूटरों को सर्किट से स्थायी तौर पर नहीं जोड़ा बल्कि डाटा को निश्चित बाइट संख्या के पैकेट में विभाजित कर स्रोत कंप्यूटर से गंतव्य कंप्यूटर तक राउटर से होकर सुलभ पथों से भेजा गया। इससे समय की बचत हुई और कंप्यूटर संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सका। टिम वर्नर्स ली ने WWW विश्वव्यापी वेब की अवधारणा दी। W3C कंसोर्शियम ने प्रोटोकॉल, कंटेंट निर्माण विधि, इंटरफ़ेस, विकलांगों को सुविधा आदि के लिए मानक बनाए। UNICODE कंसोर्शियम के द्वारा बनाए गए प्रस्तावित यूनीकोड को मान्यता मिली। HTML, XML मानक कंटेंट तैयार करने के लिए बने। अर्थगत खोज संभव बनाने के लिए कल्पायन (सिमटिक वेब) बनाने के प्रयास जारी हैं।

टिम ऑ रेली ने 2004 में Web 2.0 की अवधारणा दी। इससे सोशल नेटवर्किंग अर्थात् सामाजिक मेलजोल बढ़ने लगा। कतिपय सोशल नेटवर्किंग साइट हैं—Facebook, My Space, Netlog, Flicker, Twitter, Linkedln, Orkut ब्लॉग (Blog) व्यक्ति/ग्रुप की वेबसाइट हैं जिस पर पाठक अपनी टिप्पणी (कमेंट) भी प्रश्नोत्तर/विमर्श मोड में दे सकते हैं। कंटेंट प्रकार के आधार पर वीडियो (Vlog), ऑडियो (Pod Casting), संगीत (MP3 Blog), फ़ोटोग्राफ़ (Photo log), कला (Art blog) प्रचलन में हैं। मेल-जोल में दूषित वात्ताओं से सामाजिक विकृतियाँ बढ़ने के भी आसार नज़र आते हैं। वेबकारों ने सभी भाषाओं, मान्यताओं, और मानव-क्षमता को ध्यान में रखकर मानक बनाए। आप अपनी भाषा के बारे में खोजकर बताइए, मानकों में क्या-क्या सुधार किए जाने की आवश्यकता है। आप अपना मानक भी चर्चा के लिए प्रस्तावित कर सकते हैं। भाषा की संरचना और प्रयुक्ति के आधार पर प्रस्तावित मानक के पक्ष में बताना होगा।

3.2 रोष पिछड़ने पर

वेब को ज्ञान जगत कह सकते हैं। यहाँ भी औपनिवेशिक प्रवृत्ति प्रबल है। इंग्लिश, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश इन चार भाषाओं में 80% अनुवाद होते हैं। अधिकांश जानकारी 3-4 भाषाओं में है। अप्रत्यक्ष रूप से इनका प्रभुत्व है। इन भाषाओं में ही लेख बढ़ रहे हैं। पाठक बढ़ रहे हैं। इंग्लिश का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है और अन्य भाषाई समुदायों का सांस्कृतिक तिरोभाव भी। रोमन (इंग्लिश) में कंटेंट को UTF-8 अर्थात् 8 बिट में कोडित करते हैं। अन्य लिपियों में 16 बिट UNICODE में कोडित करते हैं। इस प्रकार दूनी मेमोरी लगती है। डोमेन नेम रोमन में है। वर्ड प्रोसेसिंग में इनपुट और डिस्प्ले करने में कठिनाई आती है। खोज (सर्च), व्याकरणिक जाँच, वर्तनी जाँच, वेब सेवाओं के समायोजन की सुविधाएँ अन्य भाषाओं

में बहुत कम हैं। भारतीय भाषाओं में तो नगण्य हैं।

अपनी भाषा के विलोप होने की आशंका अनेक समुदायों में होने लगी है। प्रतिक्रिया और आक्रोश के स्वर भी गूँजने लगे हैं। भाषाई अस्मिता आलोड़ित होने लगी है। राजनीतिक मान्यता के लिए आंदोलन होने लगे हैं। वेब पर उपस्थिति के लिए अपने फ़ॉन्ट, अपनी कोडिंग स्कीम में कंटेंट डाले जाने लगे हैं। धीरे-धीरे मानवीकरण की राह पकड़कर आपसी मेल-जोल को बढ़ावा देने लगे हैं। बहुलिपि के संदर्भ में रोमन से अपनी लिपि में अनुलिप्यण कर इनपुट करते हैं। अपनी भाषा से अन्य भाषाओं के बीच जगह बनाने के लिए और अन्य भाषाओं में अनुवाद करके ज्ञान भंडार को समृद्ध बनाने की दृष्टि से ट्रांसलेशन/अनुवाद प्रणालियाँ विकसित की जाने लगी हैं। रशियन-इंग्लिश अनुवाद प्रणाली का विकास रणनीतिक दृष्टि से किया गया। भाषाई अस्मिता, व्यापार और प्रशासन की सुगमता की दृष्टि से ऑन द फ़्लाई (तत्काल ऑनलाइन) मशीनी अनुवाद प्रणालियों का विकास किया जा रहा है।

वेब जगत प्रयोगवादी है। इंग्लिश का प्रभुत्व प्रबल है। प्रतिवर्ष 2 प्रतिशत विश्व-भाषाओं का लोप होता जा रहा है और उन भाषाओं में निहित ज्ञान-विज्ञान-नवाचार का भी लोप। इस चिंता से कई देश लोकीकरण (लोकलाइज़ेशन) को प्राथमिकता देने लगे हैं, ओपन सॉफ़्टवेयर भी प्रचलन में आने लगा है।

4. भारतीय बहुभाषिकता—तकनीकी पक्ष

4.1. सूचना क्रांति में ठहरते कदम

सूचना क्रांति जीवन के हर पहलू, आर्थिक प्रगति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करने लगी है। 1971 में IBM PC की संरचना ओपन होने से कंप्यूटर का उत्पादन बढ़ा, कीमत घटी, आकार घटा, उत्तरोत्तर संसाधन क्षमता बढ़ी। कंप्यूटर परिवार और ऑफ़िस का अभिन्न अंग बन गया। 1994 में वेब के आने से सूचना क्रांति प्रबल वेग से समाज में रमने लगी। रोटी-कपड़ा-मकान के साथ 'बैंड बिड्स' भी मूलभूत आवश्यकता हो गई। ऑप्टीकल फ़ाइबर से चित्रादि सूचना का आदान-प्रदान अधिक मात्रा में संभव हुआ।

चित्र संप्रेषण के लिए बहुत अधिक मेमोरी बाइट चाहिए। लेख को कोडित कर कम मेमोरी में संप्रेषित कर सकते हैं। अब तक स्वीकृत 18 भारतीय भाषाओं के लिए मानक लिपि कोडन स्कीम UNICODE में हैं। अन्य को भी जोड़े जाने के प्रयास चल रहे हैं। कोडन स्कीम के साथ वर्तनी नॉर्मलाइज़ेशन की भी व्यवस्था आवश्यक है। उदाहरण के लिए अ + ि = अि = इ, अ + ु = अु = उ एक ही मान दें। इनपुट पद्धति भी बताई जाए। निष्क्रिय को इनपुट करने के लिए न ि ष ् क ् र ि य। प्रदर्शन (डिस्प्ले) में प्रिंटर पर इन फ़ॉन्ट और नॉर्मलाइज़ेशन के ड्राइवर को लोड नहीं किया तो प्रिंट सही नहीं होगा। शब्द टूटे हुए बेतरतीब होंगे।

भारत में 1652 बोलियाँ हैं। संविधान स्वीकृत भाषाएँ पहले 18 थीं और अब 22 हैं। जनजातियों की भी अपनी भाषाएँ हैं। उनकी लिपियाँ रोमन, देवनागरी या अन्य लिपियाँ हैं। भारतीय भाषाओं को कंप्यूटरों पर प्रयोग्य बनाने के प्रयास 1975 से प्रारंभ हुए। लेखक 1978 से इस प्रयोजन हेतु जुड़ा रहा। 1990 के दशक में TDIL (टेक्नोलॉजी डेवलपमेंट फ़ॉर इंडियन लेंग्वेजेज़) अर्थात् भारतीय भाषाओं के लिए तकनीकी विकास मिशन भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिकी विभाग में प्रारंभ हुआ। पहले इनपुट, आउटपुट और प्रोग्रामिंग के लिए प्रोजेक्ट शुरू किए गए। टेक्नोलॉजी अनूकुलन की नीति अपनाई गई। INSCRIPT की-बोर्ड और ISCII 8-बिट कोडन स्कीम के मानक बनाए गए। ध्यातव्य है कि UNICODE के विकास में लिपि की वर्णमाला और प्रचलित रूपिमों को कोडित किया गया है, दो लिपियों के बीच किसी भी समानता को प्रमुखता नहीं दी गई है। केवल भारतीय लिपियों के UNICODE पेजों में ध्वन्यात्मक वर्णों व क्रम की समानता है जो एक लिपि से दूसरी लिपि में तत्काल लिप्यंतरण करने में महत्वपूर्ण सुविधा है। केवल भारतीय भाषा कोड पेजों में लिपि व्याकरण के आधार पर सीमित कोड संख्या से 20 गुणे अक्षर (Syllable) कोडित करने की सुविधा है। यह ISCII के आधार पर बने। 1983 में लेखक ने सर्पोटो (जापान) में UNICODE की बैठक में इसे प्रस्तावित किया था। यूनीकोड कंसोर्शियम ने मान लिया। QUERTY की-बोर्ड कुंजीयन क्षमता के आधार पर श्रेष्ठ नहीं है लेकिन प्रचलन की जड़ता से परिष्कृत की-बोर्ड बाज़ार में आ न सके। INSCRIPT की-बोर्ड बहु लिपिक है। व्यंजन वर्ण दाहिनी ओर तथा स्वर व मात्रा बाईं ओर हैं। ध्वनि साम्यता और प्रयोग आवृत्ति को भी ध्यान में रखा गया है। बहु-लिपि टच टाइपिंग के

लिए श्रेष्ठ की-बोर्ड है। इस दिशा में प्रगति बढ़ी तो सभी भारतीय भाषाओं के लिए तकनीकी के विकास के लिए रिसोर्स सेंटर शुरू किए गए। कोर्पस, कंटेंट रचना, OCR, अनुवाद प्रणाली, डिक्शनरी, वर्डनेट, वर्तनी जाँच, व्याकरण जाँच, स्पीच-से-टैक्स और टैक्स-से-स्पीच आदि के विकास पर बल दिया गया।

2005 से कंसोर्शियम बनाकर प्रमुख बहुभाषिक प्रौद्योगिकी टेक्नोलॉजी का विकास किया जाने लगा। ये हैं—मशीनी अनुवाद, मानव कंप्यूटर इंटरफ़ेस (HCI) और बहुभाषिक सूचना पुनः प्राप्ति (CLIR) सभी संविधान स्वीकृत 22 भाषाओं के लिए ओपन फ़ॉन्ट, फ़ॉन्ट परिवर्तक, कोर्पस, डिक्शनरी, बेसिक मशीन ट्रांसलेशन अक्षर पहचान, टेक्स्ट से स्पीच, स्पीच से टेक्स्ट सॉफ़्टवेयर पर भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी विभाग ने उपलब्ध कराए हैं। ये ओपन डोमेन में हैं, मुफ़्त हैं। इसके अतिरिक्त माइक्रोसोफ़्ट, याहू, गूगल ने भी कुछ भारतीय भाषाओं में सुविधाएँ प्रदान की हैं। हिंदी में सुविधा सभी पर है। हाँ, इन सबमें सुधार की बहुत गुंजाइश है। डोमेन नेम भारतीय लिपियों में दिए जाने पर काम हो रहा है। भारत ओपरेटिंग सिस्टम सोल्यूशंस (BOSS) में ओपन सोर्स सॉफ़्टवेयर मुक्त मिल रहा है। यह स्कूलों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इस पर वर्ड प्रोसेसर-स्प्रैडशीट-प्रेज़ेंटेशन ऑफिस सॉफ़्टवेयर ऑन स्क्रीन की-बोर्ड आदि सुविधाएँ हैं। यह डेवियन लाइनक्स (LINUX) पर आधारित भारतीय भाषाओं में काम करने की सुविधा प्रदान करनेवाला निःशुल्क ऑपरेटिंग सिस्टम है। माइक्रोसोफ़्ट विंडोज़ की सभी सुविधाएँ हैं। इसकी (PDF) फोर्मेट और विंडोज़ फोर्मेट को आपस में बदल सकते हैं। इसे कोई भी आसानी से लोड कर सकता है। प्रयोग-सुगम GUI इंटरफ़ेस है।

भारतीय भाषाओं के लिए तकनीकी विकास को तीन चरणों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

1975-1995	अनुकूलन तकनीकी विकास (Adaptive Technology Development) —हार्डवेयर-सॉफ़्टवेयर में भाषा के अनुकूल परिवर्तन/इंटरफ़ेस
1990-2000	बेसिक तकनीकी विकास (Basic Technology Development) टूल्स, प्रति-संगतता, लोकीकरण, भाषा-रिसोर्स
2000-2010	सहयोगात्मक तकनीकी विकास (Collaborative Technology Development) कंस्पेर्शियम मोड में मशीनी अनुवाद, बहुभाषिक सूचना खोज आदि प्रोडक्ट

प्रस्तावित लक्ष्य है—

2010-2025	संज्ञानिक तकनीकी विकास (Cognitive Systems Technology Development) बोधपरक प्रणालियाँ जो सुन, बोल, देख-समझकर अनुभव के आधार पर निर्णय ले सकें, सुझाव दे सकें। इंफोर्मेशन संग्रह से ज्ञान (Knowledge) और प्रज्ञा (Wisdom) का सार निकाल सकें।

4.2. डिजिटल डिवाइड किंवा डिजिटल यूनाइट

सूचना व संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के सूचकांक कुछ इस प्रकार हैं—

	टेलीफ़ोन	मोबाइल	कंप्यूटर	PPP
विकसित देश	50-70%	30-60%	30-60%	100 Unit
विकासशील देश	20-30%	04-7%	0.5-2%	5-10 Unit
अविकसित देशों में	PPP (Purchasing Power Parity) क्रय शक्ति एक यूनिट से बहुत कम है। ITC सूचकांक काफ़ी कम है।			

अपनी लिपि में इंटरनेट प्रयोक्ता

2005 में प्रोफेसर योशिको मिकामी द्वारा किए गए एक सर्वे के अनुसार लैटिन वर्णमाला प्रयोग करने वाले देश 39 प्रतिशत विश्व जनसंख्या में, 84 प्रतिशत इंटरनेट का प्रयोग करते हैं।

हाजी प्रयोक्ता (चीन, जापान, कोरिया), 22 प्रतिशत विश्व जनसंख्या में, 13 प्रतिशत इंटरनेट प्रयोग करते हैं। अरबी लिपि प्रयोक्ता 9 प्रतिशत विश्व जनसंख्या में, 1.2 प्रतिशत इंटरनेट का प्रयोग करते हैं।

ब्राह्मी जनित लिपियों में प्रयोक्ता (भारत और दक्षिण पूर्व एशिया में) 22 प्रतिशत विश्व जनसंख्या में केवल 0.3 प्रतिशत इंटरनेट का प्रयोग करते हैं।

65 प्रतिशत से अधिक कंटेंट इंटरनेट पर इंग्लिश में हैं।

यूनेस्को UNESCO के अनुसार, ''बहुभाषिकता और सूचना की सब तक पहुँच'' की चुनौतियाँ हैं—

- वैश्विक सूचना की पहुँच सब तक सर्वसुलभ, कम कीमत पर हो।
- हार्डवेयर, सॉफ़्टवेयर, वेब, इंटरनेट सभी के लिए सुगम हो।
- सार्वजनिक वेबसाइट और इंटरनेट डिवाइस पर्याप्त संख्या में हों।
- कई भाषाओं में इंटरनेट पर काम करना आसान हो।
- स्थानीय भाषाओं में कंटेंट तैयार करने और इसे इंटरनेट पर लोड करने की सुविधा हो।
- विविध भाषा प्रयोक्ताओं के लिए सॉफ़्टवेयर डिज़ाइन करने की सुविधा हो।

उल्लेखनीय भाषा वैविध्य—

- स्वनिम (Phoneme): रूपिम (Grapheme) अनुपात (1:1, 1:M, M:1, M:M) M = अनेक
- शरीरांग, मुखाकृति और इशारों की भाषाएँ अलग-अलग हैं
- वर्णमाला, चित्रमाला, रैखिक, मिश्रित लिपियाँ
- लेखन शैली भेद : बाएँ से दाएँ, दाएँ से बाएँ, ऊपर से नीचे, मिश्रित शैली

डिजिटल डिवाइड : दृष्टि-भेद?

सूचना क्रांति से डिजिटल डिवाइड की विसंगति विकसित और विकासशील देशों की दृष्टि में अलग-अलग है।

दृष्टिकोण	विकसित देश	विकासशील देश
क्यों?	बड़े बाज़ार की चाह	आर्थिक विकास में पिछड़ने का भय
कार्य नीति	बहु प्रकार की बहुत सूचना का फैलाव	लोकीकरण की चिंता
परिणाम	इंग्लिश भाषा का प्रयोग और पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव बढ़ा	स्थानीय भाषाओं और संस्कृति के संरक्षण की चिंता
तकनीकी विकास	IPR केंद्रित (IPR बौद्धिक संपदा अधिकार)	ओपन सोर्स टेक्नोलॉजी की माँग
उपभोक्ता स्वभाव	पुराना बदलकर नया लो	पुराने को ठीक करा कर काम निकालो
कम कीमत का पी.सी. कंप्यूटर	$ 400	$ 40 से कम
तुलनात्मक क्रय शक्ति	100 यूनिट	10 यूनिट से कम
क्योंकि PPP(15:1) GNP(75:1)	34360 (USA) 24260 (USA)	2400 (भारत) 460 (भारत)
नीति बिंदु	• डिजिटल डिवाइड • सूचना एक्सेस • केंद्रित नियंत्रण	• डिजिटल यूनाइट • ज्ञान सर्वसुलभ हो • विकेंद्रित ज्ञान नेटवर्क

क्रय शक्ति के अनुपात में ICT की व्याप्ति सघन अथवा विरल है। इसलिए कम कीमत के, भाषा के अनुकूल उपकरण उपलब्ध कराए जाएँ। ओपन सोर्स टेक्नोलॉजी को आधार बनाने से स्थानिक प्रतिभा को प्रभावी योगदान करने का अवसर मिलेगा। लोकीकरण पर बल दिया जाए जिससे संस्कृति को बचाया जा सके, सृजनात्मकता को मुखरित होने का अवसर मिले। शिक्षा में 'कंप्यूटिंग से क्रिएटिविटी' का लक्ष्य हो।

43 यूनीकोड से फोनीकोड

भारतीय भाषाएँ ध्वन्यात्मक (Phonetic) हैं। सभी भारतीय भाषाओं के लिए वर्णक्रम साम्य ISCII राष्ट्रीय कोड बनाया गया है। इस 8-बिट कोड में अंग्रेज़ी और एक भारतीय भाषा समाहित थी तथा भाषा बदल ALT कुंजी से। लगभग 15 बड़ी IT कंपनियों के संयुक्त प्रयास से विश्व भाषाओं के लिए 16 बिट यूनीकोड कोड बनाया गया। इसमें भाषा-बदल की ज़रूरत ही नहीं। लेकिन यह लिपि पर आधारित है, जो-जो रूपिम आकृतियाँ अलग से प्रयोग में आती हैं, उन्हें कोड में जगह दी गई है।

यूनीकोड (UNICODE) में IPA (इंटरनेशनल फ़ोनेटिक एल्फ़ावेट) के संप्रतीक अलग-अलग पेजों में हैं, किसी विशेष क्रम में नहीं हैं। पर्याप्त भी नहीं हैं। इसलिए प्रस्तावित है फ़ोनीकोड (Phonicode)। इसकी मूल प्रेरणा ध्वन्यात्मक नागरी लिपि से मिली। 'जैसा सुनो वैसा लिखो', 'जैसा लिखा वैसा बोला' सिद्धांत नागरी लेखन में है। ध्वनि उच्चारण में उच्चारण का स्थान और उच्चारण की विधि मुख्य हैं। उच्चारण के स्थान (Place of Articulation) (P) के अनुसार कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य, ओष्ठ्य 5 ध्वनि के प्रकार माने गए हैं। उच्चारण की विधि (Manner of Articulation) (M) के अनुसार गले से वायु और विवर फैलाव के कम-अधिक होने के आधार पर अथवा नाक से वायु-निस्सरण के अनुसार 6 ध्वनि प्रकार माने गए—(अल्प प्राण - अघोष) / (अप्र - अघ), (महाप्राण - अघोष) / (मप्र - अघ), (अल्पप्राण - घोष) / (अप्र - घ), (महाप्राण - घोष) / मप्र - घ), नासिक्य, अलिजिह्वा। इन ध्वनियों को व्यंजन कहा गया। व्यंजनों को स्वर ध्वनियों से मोडवुलेट कर सकते हैं। उच्चारण स्थान के आधार पर 5 प्रकार की स्वर ध्वनियाँ हैं। स्वर ध्वनियाँ ह्रस्व, दीर्घ हो सकती हैं। स्वर ध्वनियों के परस्पर योग से व्युत्पन्न स्वर ध्वनियाँ 4 + 4 बनेंगी। 'अ' की स्वर ध्वनि को आदि स्वर और 'उ' की स्वर ध्वनि को मध्य स्वर और 'म' की व्यंजन ध्वनि को अंत व्यंजन मानें तो (अ - उ - म) ध्वनि संयोग सभी ध्वनियों का द्योतक है, अर्थगत होने पर सभी संकल्पनाओं (Concepts) का।

पाणिनी सारणी (Panini Table)

P = (P1, P2, P3, P4, P5), M = (M1, M2, M3, M4, M5, M6)

				व्यंजन				स्वर					स्वरांत
		अप्र-अघ	मप्र-अघ	अप्र-घ	मप्र-घ	नासिक्य	अलि जिह्वा	व्युत्पन्न	व्युत्पन्न	व्युत्पन्न	मूल	मूल	
		M1	M2	M3	M4	M5	M6	व्यंजन स्वर	दीर्घ	ह्रस्व	ह्रस्व	दीर्घ	मात्रा
कंठ	P1	क	ख	ग	घ	ङ	ह	-	-	-	अ	आ	- ा
तालु	P2	च	छ	ज	झ	ञ	श	य (इ+अ)	ऐ	ए (अ+इ)	इ	ई	ि ी
मूर्ध	P3	ट	ठ	ड	ढ	ण	ष	र (ऋ+अ)	-	-	ऋ	ॠ	ृ ॄ
दंत	P4	त	थ	द	ध	न	स	ल (ऌ+अ)	-	-	ऌ	ॡ	--
ओष्ठ	P5	प	फ	ब	भ	म	-	व (उ+अ)	औ	ओ (अ+उ)	उ	ऊ	ु ू ो ौ

व्यंजन के तीन उच्चारण भेद मान लें जिनमें अंतर समझना मानव कानों से संभव है। इसी प्रकार मूल स्वर और व्युत्पन्न स्वर (ए, ओ) के तीन उच्चारण भेद अल्प, ह्रस्व, दीर्घ मान सकते हैं, इन्हें सुनकर अंतर समझ सकते हैं। संयुक्त 'स्वर+अ' व्युत्पन्न ध्वनियाँ व्यंजन की भाँति हैं। इस प्रकार पहचानी जाने वाली स्वनिम/अक्षर ध्वनियों को नागरी लिपि के रूपिमों से प्रदर्शित कर सकते हैं।

अल्प नासिक्य ध्वनि को अनुस्वार ं का रूपिम और अल्प अलिजिह्वा ध्वनि को विसर्ग ः का रूपिम दिया गया है। इन्हें स्वर श्रेणी में रखा गया है। स्वनिम-रूपिम का 1:1 (एक प्रति एक) निरूपण नागरी लिपि की विशेषता है। स्वर-स्वर, व्यंजन-स्वर, व्यंजन-व्यंजन-स्वर संयोजन से जो स्वतंत्र ध्वनियाँ व्युत्पन्न होती हैं, उन्हें अक्षर (Syllable) कहते हैं। अक्षर का अंत किसी स्वर से होता है। यह स्वर तीन रूपों में हो सकता है—स्वर, स्वर-अनुस्वार, स्वर-विसर्ग। हलंत को व्यंजन के साथ स्वरहीन योग मान सकते हैं। अक्षरांत को नए रूपिम मात्रा से दिखाते हैं। व्यंजन को हलंत के साथ दिखाते हैं, जैसे—क्, ग्, च्...म्, ह्... इन्हें शुद्ध व्यंजन भी कह सकते हैं।

वर्ण	=	< स्वर, व्यंजन >
अक्षर	=	< स्वर, व्यंजन * स्वर, >
A*	=	< A/AA/AAA/...> पुनरावृत्ति दर्शाता है
स्वर	=	< मूल स्वर (अल्प, ह्रस्व, दीर्घ), व्युत्पन्न स्वर (अल्प, ह्रस्व, दीर्घ) >
अंकारांत व्यंजन	=	< क···म···ह···य···व >
संयुक्ताक्षर	=	< क्व···क्ष···ज्ञ···प्र···श्र >
स्वरांत/मात्रा	=	< ा, ि···ु ौ ं, ः >
(ह्रस्व) मूल स्वर	=	< अ, इ, उ, ऋ, लृ >
अल्प स्वर	=	< अॅ, एॅ, ऑ,··· >
दीर्घ स्वर	=	< आ, ई, ऊ, ऐ, ओ >
व्युत्पन्न स्वर	=	< ए, ऐ, ओ, औ > ···

ध्वनियों को और गहराई से भेद करके निरूपण हेतु अलग-अलग रूपिम संप्रतीक भी दिए जा सकते हैं। संस्कृत में यह भेद किया जाता है, जिससे उच्चारण शुद्ध रहे।

इन ध्वनियों को कोडित करने के लिए व्यंजनों के लिए

$(25+4+4)\times 3 = 87 \Rightarrow 90$ कोड प्वॉइंट

स्वरों के लिए

$(5+1)\times 3+2 = 20$ कोड प्वॉइंट

कोडन सुविधा एवं व्यावहारिकता की दृष्टि से व्यंजन भेद दो प्रकार के ही लेते हैं, तो

(व्यंजन-स्वर) अक्षर $= (29\times 2) \times 20 = 1160$

(द्विव्यंजन-स्वर) अक्षर $= 2\times[(29\times 29) \times 20] = 33640$

इनमें से अधिक-से-अधिक लगभग 10 प्रतिशत अर्थात् 3400 व्यावहारिक होंगे।

(त्रि व्यंजन-स्वर) अक्षर $= (29\times 29\times 29)\times 20 = 487780$

इनमें से लगभग 0.1 प्रतिशत अर्थात् 500 व्यावहारिक होंगे = 500

इस प्रकार 1160+90+20=1270 सामान्य अक्षर और 3400+500=3900 संयुक्ताक्षर ध्वनियों और लगभग 500 भावात्मक (emotional) विशिष्ट ध्वनियों को भी फोनीकोड में कोडित कर सकते हैं। विशिष्ट संप्रतीकों को फ़ोनीकोड में देख सकते हैं। फोनीकोड से यूनीकोड में परिवर्तित कर टेक्स्ट प्रिंट कर सकते हैं। स्पीच टू टैक्स्ट। यूनीकोड से फ़ोनीकोड में परिवर्तित करके टेक्स्ट से स्पीच तैयार कर सकते हैं। फ़ोनीकोड के हर कोड प्वॉइंट के लिए स्पीच वेब फॉर्म संगृहीत रहेगी। इस प्रकार नेचुरल (स्वाभाविक) स्पीच बनाने में आसानी होगी। स्वर विज्ञानी, भाषाविद् और कंप्यूटर स्पीच विशेषज्ञ की टीम फ़ोनीकोड का मानक तैयार कर सकते हैं। भारतीय भाषाओं के लिए यह बहुत उपयोगी और आसान होगा।

स्पीच से स्पीच अनुवाद में फ़ोनीकोड का प्रयोग उपयोगी होगा। फ़ोनीकोड से यूनीकोड में बिना कंवर्ट किए भी कंटेंट स्टोर कर सकते हैं। इसमें मेमोरी भी कम लगेगी। 16-बिट कोड सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त होगा। अक्षर (syllable) कोडन होने से मेमोरी की आवश्यकता अनुमानतः एक-तिहाई हो जाएगी। प्रोसेसिंग स्पीड भी बढ़ जाएगी। श्रुति क्रांति का आरंभ होगा।

भारत ने डिजिटल यूनाइट को केंद्रित कर सूचना क्रांति का लाभ उठाया। भारतीय भाषाओं के तकनीकी विकास की मिशन परियोजना के अंतर्गत भारतीय भाषाओं की समानताओं को ध्यान में रखकर मानक बनाए गए फ़ॉन्ट, शब्द संसाधक, डेटाबेस, इ-मेल, अक्षर बोल पहचान, मशीनी अनुवाद आदि के लिए सॉफ़्टवेयर का विकास किया गया। इन्हें सी.डी. पर भी मुफ्त मुहैया कराया गया। यूनीकोड प्रचलन में है। प्रस्ताव है कि फ़ोनीकोड मानक और संज्ञानिक तंत्रों (cognitive systems) का विकास किया जाए।

5. भारतीय बहुभाषिकता - नीति पक्ष

5.1 मानक और अनुपालन

लिपि ध्वन्यात्मक है। अक्षर स्वतंत्र ध्वनि है। अक्षर स्वर, व्यंजन- स्वरांत अथवा संयुक्त व्यंजन-स्वरांत हो सकता है। स्वर, व्यंजन, विसर्ग संधियाँ ध्वनि के अनुकूल व्यवहृत हैं। व्यंजन के साथ स्वर मेल होने पर स्वर का रूपिम बदल जाता है। व्यंजन-स्वर का यौगिक रूप बनता है। 'क'+'ई' का यौगिक रूप 'की' है, यह एक अक्षर है। 'क', 'ई' स्वतंत्र स्वनिम है, इसमें 2 अक्षर हैं। 'कई' शब्द बना सकते हैं।

म (त् स् य्)= 'म' 'त्स्य' दो अक्षर हैं। 'त्स्य' अक्षर है।

'निष्क्रिय' शब्द में तनि अक्षर हैं 'नि' 'ष्क्रि' 'य' वर्ण विच्छेद करने पर

निष्क्रिय = (न + इ) (ष् +क् + र + इ) (य)

नि ष्क्रि य

इस प्रकार नागरी लिपि रोमन लिपि की भाँति रैखिक नहीं है। इसमें स्वर, व्यंजन समूल अलग-अलग हैं, उच्चारण स्थान और विधि के अनुसार वर्गीकृत हैं। जिस प्रकार रसायन विज्ञान में सारणी को 'मेंडलीफ टेबल' कहते हैं, उसी प्रकार नागरी वर्णमाला सारणी को पाणिनी टेबल कहना उचित होगा।

परमाणु सारणी से रासायनिक यौगिक क्रियाओं को समझना आसान है, उसी प्रकार ध्वनि यौगिकों को पाणिनी टेबल से समझना आसान होगा। वर्गीकरण से अन्य संभावित ध्वनियों को भी जोड़ना आसान है।

वर्तनी में भेद होते रहे हैं, कुछ वर्ण रूपिम दूसरी भाषा से आए, जैसे ल, ळ (मराठी)। अक्षर रूपिम भिन्न लिखे गए जैसे— श्व श्व), (क्व कु), (व त्र), (क्लो क्रो)।

कतिपय लिपि मानक सर्वथा अवैज्ञानिक है तर्कसंगत नहीं है। इनमें संशोधन की नितांत अविलंब आवश्यकता है जैसे अद्वितीय को लिखा जाता है 'अ द् वि ती य', निष्क्रिय को लिखेंगे 'नि ष् क् रि य', विद्वान को 'विद् वान' लिखने से बोलने में भी अशुद्धि होती है। जब मैकेनिकल टाइपराइटर थे, रोमन लिपि की रैखिक पद्धति से ही हल निकालना पड़ा तब अक्षर को विभाजित कर लिखने की प्रथा चली, मजबूरी थी। लेकिन अब कंप्यूटर से जो रूपिम बनाना चाहें, आसानी से बना सकते हैं। वर्तनी भेद से गयी / गई; गये / गए मान्य हों।

भारतीय भाषाओं में अंग्रेज़ी के शब्द भी रच-पच रहे हैं। मिले-जुले शब्दों में लयात्मक शीर्षक समाचार पत्रों में प्रायः दिख जाते हैं। भाषा की उपादेयता उसमें निहित ज्ञान, रोचक व्यावहारिक कथा कहानियों और विज्ञान सम्मत सद्य समाचारों से होती है। हिंदी में ऐसी कुछ सामग्री मिलती हैं लेकिन पाठक संख्या को देखते हुए सघनता और विविधता कम है।

तकनीकी मानक UNICODE प्रचलन में आ गया। लेकिन INSCRIPT की-बोर्ड, INSORT लिप्यंतरण मानक व्यवहार में नहीं आ पाए। सभी सरकारी कार्यालयों और उनके अधीन संस्थानों, निगमों में द्वि-लिपिक की-बोर्ड अनिवार्य हों सभी लिपिक द्विभाषिक हों, INSCRIPT प्रयोग अनिवार्य हों। लिपिक चयन INSCRIPT की-बोर्ड पर टेस्ट और द्विभाषिक सॉफ़्टवेयर में अभ्यास के आधार पर हो। प्रत्येक सरकारी ऑफिस में प्रति 20 व्यक्ति एक द्विलिपिक टाइपिस्ट अनिवार्य हों।

5.2 वैज्ञानिक प्रवृत्ति प्रोत्साहन

आजकल भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन को गंभीरता से नहीं लिया जाता है। व्याकरण, अलंकार, समास आदि भाषा के अनुशासन और सौष्ठव के परिचायक रहे, अब इन्हें पढ़ाने की आवश्यकता नहीं रही। नीतिगत श्लोक, चौपाई, दोहे भी हट गए। शुष्क यथार्थ रह गया, बातचीत रह गई। रचनात्मकता, बौद्धिक चिंतन, समालोचना भुला दी गई।

हिंदी की प्राथमिक स्तर की पुस्तकों में विज्ञान सम्मत पाठ 15-20 प्रतिशत होते हैं जब कि अंग्रेज़ी भाषा की पुस्तकों में 60-70 प्रतिशत। इससे बच्चों में बिना कहे मन में बात बैठ जाती है कि भारतीय भाषाओं में विज्ञान नहीं होता, अंग्रेज़ी में होता है। इसमें तत्काल संशोधन की आवश्यकता है।

वैश्वीकरण ने अंग्रेज़ी प्रधान शिक्षा की अनिवार्यता को जॉब के आधार पर मज़बूत बना दिया है। योजनाकार कक्षा—1 से अंग्रेज़ी की पढ़ाई की सिफ़ारिश करते हैं लेकिन आँकड़े बताते हैं कि दसवीं कक्षा तक 2/3 ड्रॉप होते हैं, 1/3 रह जाते हैं। **युवा शक्ति की बरबादी**। ड्रॉपआउट क्यों होते हैं? पढ़ाई समझ नहीं आती, इसलिए? सभी शिक्षा बोर्ड दुखी हैं कि मैथ्स और साइंस में रिज़ल्ट अच्छा नहीं आता। लेकिन कोई बोर्ड विज्ञान और गणित की पढ़ाई लोकभाषा

में कराने के लिए कटिबद्ध नहीं है। NASSCOM के अनुसार IT ग्रेज्युएट 10 प्रतिशत–20 प्रतिशत ही इंडस्ट्री में काम करने लायक होते हैं। उनका आधारभूत विषय–ज्ञान अच्छा नहीं होता। **पुनः युवाशक्ति की बरबादी**। 90 प्रतिशत युवाशक्ति काम के लायक नहीं रह जाती है। क्यों, क्या कारण है? आओ, इसका SWOT (गुण – दोष, संभव लाभ – हानि) विश्लेषण करें।

प्राथमिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी अथवा लोकभाषा (हिंदी भाषा) के विकल्पों में से एक को चुनकर राष्ट्रीय कार्य योजना को बिज़नेस मॉडल की तरह कार्यान्वित करना है। इन विकल्पों की SWOT एनालिसिस इस प्रकार कर सकते हैं।

माध्यम : अंग्रेज़ी	**बनाम लोकभाषा**
S स्ट्रेंग्थ (सबल पक्ष)–गुण	**S स्ट्रेंग्थ (सबल पक्ष)–गुण**
• ग्लोबलाइज़ेशन की भाषा • आउट सोर्स में प्रिफ़ेरेंस • समाज में अंग्रेज़ी का स्टेटस	• स्थानीय परिवेश में घुल–मिलकर ज्ञानार्जन • लोकसभा में बेसिक कंसेप्ट्स (मूल संकल्पनाओं) की अच्छी समझ • व्यवहारपरक जानकारी होने का आत्मविश्वास • नवाचार प्रवृत्ति का विकास
W वीकनेस (निर्बल पक्ष)–दोष	**W वीकनेस (निर्बल पक्ष)–दोष**
• बेसिक कंसेप्ट्स (मूल संकल्पनाओं) की समझ अच्छी तरह नहीं, रटंत पढ़ाई • ड्रॉप आउट अधिक • लोकसभा में कमज़ोर, परिवेश से संवाद कम • नवाचार का अभाव	• पाश्चात्य दृष्टि से पिछड़ेपन की निशानी
O अपोर्च्यूनिटीज (अवसर)–संभव लाभ	**O अपोर्च्यूनिटीज (अवसर)–संभव लाभ**
• अंग्रेज़ी टर्मिनोलॉजी वाले मैन्यूअल कामों को करने में सरलता • कॉल सेंटर के जॉब में आसानी	• उद्यमितापरक (Entrepreneurial) प्रवृत्ति से अपने उद्योग–धंधे • कार्य/व्यापार के प्रसार में आसानी • राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता • नवाचार प्रवृत्ति से शोध–विकास कार्यों में सफलता
T थ्रैट (चुनौतियाँ)–संभव हानि	**T थ्रैट (चुनौतियाँ)–संभव हानि**
• राष्ट्रवादी/समाजवादी दृष्टिकोण • अच्छे टीचर्स का अभाव • जो पढ़ा उसे व्यवहार में लाने के लिए परिवेश नहीं • अपने समाज और संस्कृति से कटे और पाश्चात्य समाज के भी न बन सके	• बड़ी ताकतों का परोक्ष दबाव • भारत के योजनाकारों के समक्ष पिछड़े रहने का प्रस्ताव
अंगेज़ी पक्ष	**लोकभाषा पक्ष**
S(+3)+W(–4)+O(+2)+T(–4)=–3	S(+4)+W(–1)+O(+4)+T(–2)= +5

SWOT विश्लेषण में अंग्रेज़ी के पक्ष में (-3) और लोकभाषा के पक्ष में (+5) प्वॉइंट मिलते हैं, अर्थात् अंग्रेज़ी की अपेक्षा **लोकभाषा में शिक्षा माध्यम** 8 प्वॉइंट से **बेहतर** है।

राष्ट्रीय स्वाभिमान और नवाचार (इनोवेशन) प्रवृत्ति से संपन्न व्यक्तित्व के विकास के आधारभूत सिद्धांतों के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का माध्यम लोकभाषा हो, अंग्रेज़ी न हो। बाद में विदेशी भाषा और विविध विषयों का अध्ययन आसान होगा। SWOT एनालिस से भी इसकी पुष्टि होती है, जैसा अभी दिखाया गया।

मीडिया, ज्ञान, विज्ञान, प्रौद्योगिकी में हिंदी का व्यवहार क्यों हो? इससे लोगों की भागीदारी, उद्यमिता और आर्थिक प्रगति पर कैसा प्रभाव होगा? इसे भी SWOT एनालिस से समझ सकते हैं। इसका एक और फ़ायदा यह होगा कि संभव लाभों को अधिकतम करने और चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रभावी रणनीति बनाने में आसानी होगी।

संक्षेप में, हिंदी वर्तमान में शिक्षा क्षेत्र में फिसलती जा रही है, राष्ट्र का इनोवेशन इंडेक्स (गुणवत्ता सूचकांक) गिरता जा रहा है, लोगों की भागीदारी कम हो रही है।

हिंदी भाषा की पुस्तकों में विज्ञानपरक पाठ बहुत कम होते हैं। शब्द-व्युत्पत्ति का ज्ञान नहीं कराया जा रहा। अर्थगत संकल्पनाओं का भेद नहीं बताया जाता। हिंदी में रचनात्मक लेखन पर बल नहीं दिया जाता।

उच्च शिक्षा में सामाजिक कार्य, केस स्टडीज़, फ़ील्ड प्रोजेक्ट लोकभाषा में नहीं होते। गूँगे ज्ञानी से समाज का कितना लाभ होगा।

व्यावसायिक प्रोफ़ेशन शिक्षा में भारतीय भाषाओं का कोई स्थान ही नहीं। पढ़-लिखकर ग्रेज्युएट लोकभाषा में रिपोर्ट नहीं लिख सकते। अपने विषय से समाज के लिए समाधान देने के लिए उसे समाज के बीच जाना होगा। अपनी बात उन तक समझानी होगी, उन्हें भी अविष्कारोन्मुखी बनाने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है।

मेरा मानना है कि प्रोफ़ेशन शिक्षा में भी भाषा विज्ञान का संक्षिप्त परिचय और लोक भाषा में नीति-ज्ञान एवं तकनीकी लेखन अनिवार्य बनें। अपनी भाषा में कविता, कहानी आदि लेखन से रचनात्मक प्रवृत्ति प्रबल होगी। इसका प्रभाव प्रोफेशन शिक्षा में नवाचार और नव-नवीन आविष्कार के प्रति रूझान के रूप में दिखाई देगा। वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर बनने पर वह समाज के प्रति अति संवेदनशील होगा, उत्तरदायी होगा।

5.3 ज्ञान की भरपाई अनुसृजन से

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विश्व ज्ञान अधिकांश अंग्रेज़ी में है। लगभग 50 लाख पृष्ठ प्रतिवर्ष अंग्रेज़ी में शोधात्मक विज्ञान लेखन हो रहा है। अंग्रेज़ी में भी भारत का योगदान 1.6% से कम है। अनुमानतः 2 प्रतिशत अर्थात् 1 लाख पृष्ठ प्रतिवर्ष विज्ञान एवं तकनीकी साहित्य ऐसा है जिसमें मौलिकता है, नवीनता है। 21वीं सदी में सूचना प्रौद्योगिकी की सुगमता, सुलभता और व्यापकता के कारण नवीन विज्ञान साहित्य में प्रतिवर्ष 20 प्रतिशत बढ़ोतरी का अनुमान होने से 5 वर्ष में यह 2 लाख पृष्ठ होंगे। समस्या के विकराल स्वरूप को अतिरंजित करना आसान है लेकिन इसका लोक समाज पर दुष्प्रभाव होगा। लोकभाषा में विज्ञान साहित्य का प्रणयन और प्रचार-प्रसार व्यवहार सहज बनाने की दृष्टि से अनुसृजन के द्वारा ज्ञान की भरपाई संभव है।

अंग्रेज़ी और हिंदी में विज्ञान साहित्य के विकराल अंतराल को भरने के लिए विज्ञान साहित्य सृजन की प्रमुख विधाएँ हैं—

शब्द परिचय–

शब्दावली, परिभाषाकोश, शब्दकोश, समांतर कोश, व्यवहार कोश, विषयपरक संक्षिप्त शब्दावलियाँ।

– अभिव्यक्ति में एकरूपता के लिए उपयोगी हैं।

मौलिक लेखन

आदर्श स्थिति है। लेकिन यथार्थ में नगण्य है।

अनुवाद (Translation)

अनुवाद में विज्ञान विशेषज्ञों की भूमिका नहीं अथवा कम रहती है, कॉपीराइट आदि की भी समस्याएँ हैं। जार्गन को सरल अर्थ नहीं दे पाते। अनुवाद सुबोध नहीं बन पाता।

अनुसृजन (Transcreation)

मौलिक लेखन और अनुवाद के बीच सेतु उपाय है अनुसृजन (ट्रांसक्रिएशन)

विशेषज्ञ किसी विज्ञान पुस्तक/शोध लेख को आधार मानकर रचना करता है। अधिकांश विचार और उदाहरण वहाँ से तथा शेष अन्य पुस्तकों/पत्रिकाओं से एवं निजी अनुभव के आधार पर। सभी स्रोत रचनाओं को संदर्भ में सूचीबद्ध करते हैं। इसमें विज्ञानी को सुविधा है, सृजनात्मक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, उपादेयता के प्रति सचेष्टता है। अनुसृजन कार्य विशेषज्ञ, शोध-सहायकों और भाषाविद् की टीम के द्वारा किया जाता है।

अनुवाद की समस्याएँ

अनुवाद कार्य चुनौतीपूर्ण है, सीमा बंधी होती है। अपनी तरफ़ से कुछ न जोड़ना, विशुद्धता बनाए रखना, वाक्य एवं अर्थगत संरचना और मूल लेख की शैली की संरक्षा करना आवश्यक है। सीमाओं में बँधकर सम्प्रेषणीयता, रचनात्मकता एवं परिवेशानुकूलता सीमित रहती है। हिंदी में विज्ञान साहित्य का अनुवाद प्रायः लोकप्रिय नहीं रहा है। क्वांटिटी (परिमाण) में बहुत कम है और क्वालिटी (गुणवत्ता) में भी कम है।

अनुसृजन की संभावनाएँ–

अमेरिका, यूरोप, जापान में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर अनवरत शोध एवं विकास कार्य हो रहे हैं। इसलिए वहाँ का विज्ञान साहित्य नवीन है, शोधपरक है, प्रयुक्त एवं परिष्कृत टेक्नोलॉजी पर आधारित है, जीवंत है। आर्थिक विकास जन सामान्य की भागीदारी के बिना संभव नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि समाज विज्ञान और टेक्नोलॉजी की जानकारी को उत्सीमा (थ्रेसहोल्ड) स्तर तक आत्मसात कर ले। लगभग 20 प्रतिशत मौलिक लेखन, 20 प्रतिशत अनुवाद और 60 प्रतिशत अनुसृजन से समसामयिक विज्ञान साहित्य को लोकभाषा/हिंदी में उपलब्ध कराने की योजना बनाई जाए। भारत सरकार के विभाग DIT इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, DOT संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, DBT बायोटेक्नोलॉजी के क्षेत्र में, DST विज्ञान के विविध क्षेत्रों में, इत्यादि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में योजनाबद्ध तरीके से अनुसृजन के माध्यम से सुबोध विज्ञान साहित्य का सृजन उपयोगी होगा, जनसामान्य आविष्कारोन्मुखी बनेगा, जन भागीदारी से आर्थिक विकास बहुत तेज़ी से होगा।

आधुनिक ज्ञान-परक विकास के परिप्रेक्ष्य में विज्ञान और तकनीकी का विशेष योगदान है। विज्ञानोन्मुखी समाज में शिक्षा और अद्यतन विज्ञान सामग्री लोकभाषा में उपलब्ध हो। आवश्यकता है कि भाषा संबंधी तकनीकी मानकों का नीतिगत अनुपालन हो, 'अनुसृजन' विधा में आधुनिक विज्ञान और तकनीकी की जानकारी लोकभाषा में मिशन परियोजना के अंतर्गत तैयार कराई जाए।

6. भा. र. त. व्य. समंवयन

वैश्वीकरण के दबाव के कारण अर्थतंत्र अर्थात् व्यापार की गति और गुणवत्ता से आर्थिक प्रगति प्रभावित होती है। 'भाषा - राजतंत्र - तकनीकी - व्यापार' के पिरामिड के केंद्र में समाज है। तकनीकी के विकास से व्यापार की प्रकृति बदलती है, व्यापार के बढ़ने से टेक्नोलॉजी के नए विकास कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है। व्यापार और तकनीकी के विकास में समाज उत्प्रेरक भी है और उपभोक्ता भी। समाज से संप्रेषण की भाषा के नए आयाम उद्भूत होते हैं। नए प्रयोग क्षेत्र प्रशस्त होते हैं। प्रयोजनमूलक भाषा के जानकारों की माँग बढ़ती है। राजतंत्र समाज की भागीदारी को बढ़ावा देता है।

ज्ञानपरक समाज का लक्ष्य है—ज्ञान के सोपान चढ़ते चलें (Moving up the knowledge chain) तकनीकी-व्यापार, तकनीकी-राजतंत्र, राजतंत्र-व्यापार संबंध विकास और बेहतर प्रशासन के द्योतक हैं। भाषा-राजतंत्र संबंध समाज में तकनीकी ग्राह्यता, नवाचार और भाषा-व्यापार संबंध बाज़ार सृजन के द्योतक हैं। लोकभाषा में IT व्यापार का हिस्सा गवर्नमेंट में 60 प्रतिशत, छोटे व घरेलू ऑफ़सों में 16 प्रतिशत, सहकारिता संस्थाओं में 8 प्रतिशत, प्रकाशन में 4 प्रतिशत और अन्य क्षेत्रों में 12 प्रतिशत हैं। तदनुसार योजनाएँ बनाई जाएँ। e-/m- व्यापार में CLIR (Cross Lingual Information Retrivel) की टेक्नोलॉजी का विकास आवश्यक है। 'ज्ञान को जाल कराल महा, व्यापि रहि बहुभाषा की बाधा'। e-/m- व्यापार में टेक्नोलॉजी और सोल्यूशंस को तीन लेयर्स में दिखा सकते हैं। भीतरी लेयर में कोर (core) टेक्नोलॉजी में डेटा बेयर हाउसिंग, नेटवर्किंग, ओपन स्टैंडड्र्स आते हैं। बीच की लेयर में इनेबलिंग (enabling) टेक्नोलॉजी में OLAP, XML, OOPL,

SECURITY आते हैं और बाहरी लेयर में सोल्यूशंस में डाटा माइनिंग (DM), रिलेशन मैनेजमेंट (SCM), नॉलेज मैनेजमेंट, परफ़ॉर्मेंस मैनेजमेंट, पर्सनलाइज़ेशन आदि आते हैं। बाहरी लेयर में प्रयोक्ता का सीधा संबंध है। इसलिए लोकभाषा के प्रयोग की अपेक्षा है।

हिंदी भारत की राजभाषा है। हिंदी का साहित्यिक पक्ष प्रबल है लेकिन प्रयोजनमूलक स्वरूप की अर्थोन्मुखी ग्राह्यता को गति और गुणवत्ता के माध्यम से प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रशिक्षण सामयिक आवश्यकता है। प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रशिक्षण स्कूली स्तर पर ऐच्छिक विषय के रूप में दिया जा सकता है। इंजीनियरिंग, मेडिकल और मैनेजमेंट विशेषज्ञता क्षेत्रों में प्रयोजनमूलक हिंदी का कार्यसाधक प्रशिक्षण देने से विशेषज्ञों को समाज के प्रति अधिक संवेदनशील और दायित्वपूर्ण बनाया जा सकता है।

टेक्नोलॉजीपरक बिज़नेस के क्षेत्र में प्रयोजनमूलक हिंदी के जानकार अच्छे इंटरफ़ेस/मध्यस्थ कार्मिक बन सकते हैं। इन्हें इन चार IT विषयों की जानकारी दी जाए।

IT1 : इंफ़ॉरमेशन टेक्नोलॉजी

वर्ड प्रोसेसर, स्प्रैडशीट, डेटा प्रबंधन, प्रजेंटेशन, मल्टीमीडिया व टेक्नोलॉजी, कॉर्पस,

डिक्शनरी, शैली सुधार, मशीनी अनुवाद, बेसिक भाषा प्रौद्योगिकी।

IT2 : इंट्रोडक्शन टू टेक्नोलॉजी

बहुविषय विहंगमन (इंजीनियरिंग, मेडिकल, मैनेजमेंट)

IT3 : इंटेलीजिबल ट्रांसलेशन (सुबोध अनुवाद)

अनुवाद व अनुसृजन के सिद्धांत, अनुवाद सहाय सॉफ़्टवेयर, अनुवाद का मूल्यांकन

IT4 : इंडस्ट्री ट्रेनिंग (उद्योगों में कार्यानुभव)

इंडस्ट्री या संस्थान में तकनीकी लेखन व अनुवाद कार्य

प्रयोजनमूलक हिंदी, तकनीकी हिंदी, वाणिज्यिक हिंदी, प्रशासनिक हिंदी, जनसंचार, मीडिया में हिंदी, वैश्विक हिंदी आदि में शोध की अनेक संभावनाएँ हैं। यह शोध कार्य हिंदी प्रोफेसरों के अतिरिक्त वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में कराए जाने का प्रावधान हो, प्रोत्साहन हो।

भविष्य में हिंदी भारतव्य वैशिष्ट्य के साथ अधिक लोकप्रिय, उपादेय और सृजनात्मक होगी।

सूचना क्रांति और वैश्वीकरण के प्रबल वेग में समाज को केंद्रित कर भाषा-राजतंत्र-तकनीकी-व्यापार मिलकर ही विकास की राह पर बढ़ सकेंगे, ज्ञान के सोपान पर चढ़ते चलेंगे। आवश्यकता है कि सूचना तकनीकी को सहचरी बना प्रयोजनमूलक भाषा के शिक्षण और शोध को नीतिगत प्रोत्साहन दिया जाए।

7. सार संक्षेप में

- सूचना क्रांति से कतिपय भाषाएँ प्रबल बनीं और अन्य विश्वभाषाएँ विलुप्ति के कगार पर पहुँच गईं। भाषा के लोप का तात्पर्य है उस भाषाई समाज के परंपरागत ज्ञान और नवाचार का लोप होना। भाषा के अनुकूल तकनीकी विकास किए जाने पर ही बहुभाषिक परिवेश में दोष रहित संप्रेषण संभव होगा।
- विश्वव्यापी वेब से वैश्विक संवाद की राह खुली, मुफ़्त में कंटेंट लोड करो, विमर्श करो। वेब से सहयोगात्मक चिंतन, विमर्श और प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ है। फ्री/ओपन सोर्स सॉफ़्टवेयर उपलब्ध होने से डिजिटल डिवाइड की विकरालता कम होगी, लोगों को सृजनात्मक प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलेगा।
- सूचना क्रांति में थमने के लिए अपनी भाषा के उपयुक्त तकनीकी विकास किए जाने की आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के लिए TDIL मिशन परियोजना के अंतर्गत बेसिक टेक्नोलॉजी का विकास हुआ। वैश्विक स्तर पर बहुभाषिक सूचना खोज, अनुवाद प्रणालियों पर भी कार्य हो रहा है। यूनीकोड प्रचलन में है। फ़ोनीकोड प्रस्तावित है। संज्ञानिक तकनीकी विकास (Cognitive Systems Technology Development) पर योजना बनाने की आवश्यकता है।

- विकसित देशों की निगाहें 115 करोड़ जनसंख्या के बड़े बाज़ार पर हैं। उनकी दृष्टि में डिजिटल डिवाइड विकराल है, सॉफ़्टवेयर लोडेड कंप्यूटरों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है। लेकिन हम इसे डिजिटल यूनाइट (संयोजन) की दृष्टि से देखकर उपयुक्त टेक्नोलॉजी का विकास, प्रचार-प्रसार कर समृद्धि और सृजन का पथ प्रशस्त करें।
- यूनीकोड में भारतीय बहुभाषिकता की विशिष्टता कायम है। अन्य कोई ऐसा उदाहरण नहीं है। बहुभाषिकता एकता ध्वन्यात्मक लिपि की समानता में निहित है। अक्षर (Syllable) स्पष्ट स्वतंत्र ध्वनि है। रसायन विज्ञान के सादृश्य में वर्ण परमाणु की भाँति है और अक्षर अणु की भाँति यौगिक है। प्रस्तावित फ़ोनीकोड में अक्षर कोडित होगा। लगभग 6000 अक्षर एवं विशिष्ट ध्वनियों को कोडित करने की परियोजना बनाई जाए। इससे मेमोरी कम लगेगी, स्पीच प्रोसेसिंग में तेज़ी से प्रगति होगी। संज्ञानिक सिस्टम (Cognitive System) बनाना आसान होगा।
- लिपि, वर्तनी, कोडन स्कीम, की-बोर्ड ले-आउट, लिप्यंतरण सारणी के मानक बनें और उनका प्रयोग अनुपालन सुनिश्चित किया जाए। जैसे—सभी कार्यालयों में की-बोर्ड द्विलिपि प्रिंट कुंजी का हो। इसके साथ-साथ स्थान के अनुसार 60-90 प्रतिशत लिपिक/टंकण कार द्विभाषिक दक्षता प्राप्त हों।
- आर्थिक प्रगति विज्ञान और तकनीकी पर आधारित है, इसमें जन सामान्य की भागीदारी भी आवश्यक है लेकिन लोकभाषा में ज्ञान गैप बढ़ रहा है। अनुसृजन विधा से लोकभाषा में अद्यतन शोध परक विज्ञान सामग्री को बढ़ाया जाए। इस ज्ञान को जन सुलभ बनाने से समाज में नवाचार और आविष्कारोन्मुख प्रवृत्ति बढ़ेगी।
- भाषा-राजतंत्र-तकनीकी-व्यापार का अन्योन्याश्रित संबंध है। इस संबंध पिरामिड के केंद्र में समाज है। इनका समंवित विकास समाज को उन्नत बनाता है। भारतीय भाषाओं और खासतौर से हिंदी के शिक्षण में प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रमों, कंप्यूटर सहाय भाषा शिक्षण और भा. र. त. व्य. अंतर विषयक शोधकार्य को बढ़ावा देने की नितांत आवश्यकता है।

अंत में··

है लक्ष्य दूर चिड़िया उड़ जाती श्रम खोकर।

संदर्भ

1. ओम विकास 'सूचना क्रांति और हिंदी', 8वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यू यॉर्क, 13-15 जुलाई, 2007
2. ओम विकास 'भारत में भाषा—प्रौद्योगिकी का विकास' IETE Technology Review Vol. 18 No.1 Jan.-Feb 2001
3. ओम विकास 'विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में अनुसृजन—आवश्यकता और उपाय', विज्ञान गरिमा सिंधु CSTT, July-Dec. 2001 No.34-35, PP 151-163 पुनर्मुद्रित भाषा, मई-जून 2002, पृ. 151-163
4. ओम विकास 'भारत में भाषा-प्रौद्योगिकी का विकास', राजभाषा भारती विशेषांक, जनवरी 2000
5. ओम विकास 'भाषा, राजतंत्र, तकनीकी और व्यापार (भा र त व्य)' गवेषणा, 1999 पुनर्मुद्रित अनुप्रयुक्त भाषा विशेषांक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नवंबर-दिसंबर 2001, पृ. 312-320
6. ओम विकास 'हिंदी के विषय में टेक्नोलॉजी का योगदान', प्रयोजन मूलक हिंदी विशेषांक, गवेषण दिसंबर 1996, पृ. 55-60
7. ओम विकास 'मशीनी अनुवाद की समस्याएँ', डॉ. नागेंद्र द्वारा संपादित पुस्तक अनुवाद, 1993
8. ओम विकास 'तकनीकी हिंदी का विकास : शोध की नई दिशाएँ', गवेषणा, केंद्रीय हिंदी संस्थान, 1984 राजभाषा तकनीकी विशेषांक, 1984 तकनीकी विकास कार्यशाला, 1984
9. ओम विकास 'तकनीकी लेखन का माध्यम हिंदी', अनुवाद जन-मार्च 1984, पृ. 60-65
10. ओम विकास 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हिंदी अनुवाद', बहुभाषिक अनुवाद संगोष्ठी, केंद्रीय हिंदी संस्थान, फर. 1988 (पुनः प्रकाशित प्रो. आर.एन. श्रीवास्तव की सं. पुस्तक)' अनुवाद—सिद्धांत और प्रो. भोलानाथ तिवारी की सं. पुस्तक 'वैज्ञानिक सामग्री का अनुवाद'।

dr.omvikas@gmail.com

27 पुर्तगाली भाषा का परिचय

श्री शिव कुमार सिंह

• पीएचडी (जारी)

• हिंदी के व्याख्याता साहित्य विभाग लिस्बन विश्वविद्यालय

• वय्यादोलिद विश्वविद्यालय, स्पेन (Valladolid University, Spain) में यूरोपीय हिंदी सम्मेलन (15-17 मार्च, 2012) में व्याख्यान : 'हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाना : एक परिप्रेक्ष्य' (Teaching Hindi as Foreign Language: Perspective)।

• FLUL, पुर्तगाल में 'भारतीय लेखन प्रणाली' पर प्रस्तुति

• लिस्बन में भारतीय दूतावास, पुर्तगाल एवं लिस्बन विश्वविद्यालय के साहित्य विभाग के सहयोग से विश्व हिंदी दिवस 2011, 2012 और 2013 का आयोजन किया।

• आपने दिल्ली विश्वविद्यालय और पुर्तगाली सांस्कृतिक केंद्र/इंस्टीट्यूट Camões, नई दिल्ली के सहयोग से एक नाटक में भाग लिया जिसका शीर्षक : 'एक अज्ञात द्वीप की कथा' है।

• आप नई दिल्ली, भारत में पुर्तगाली दूतावास के सरकारी वेबसाइट के अनुवादक हैं।

• आप पुर्तगाली और अंग्रेज़ी भाषा को हिंदी भाषा में अनूदित करते हैं।

पुर्तगाली भाषा बगैर किसी बड़े प्रचार के धीरे-धीरे पूरी दुनिया में अपना स्थान बना रही है। आज पुर्तगाली बोलने वालों की संख्या तकरीबन 20 करोड़ के आस-पास है और वर्तमान समय में पुर्तगाली भाषा दुनिया की छठी सबसे ज़्यादा बोली जानेवाली भाषा बन चुकी है। साथ ही यह पुर्तगाल, अंगोला, काबु-वेर्द, गिने-बिसाउ, पूर्वी तिमोर, ब्राज़ील, मकाउ (चीन), मोज़ाम्बिक, साऊँ तूमे और प्रिंसिप आदि देशों की राष्ट्रीय भाषा भी है। भाषाविज्ञान के स्तर पर यूरोप (पुर्तगाल) की पुर्तगाली, दक्षिण अमेरिका (ब्राज़ील) की पुर्तगाली और अफ़्रीका (अंगोला, काबु-वेर्द, गिने-बिसाउ, मोज़ाम्बिक, साऊँ तूमे और प्रिंसिप) आदि की पुर्तगाली में थोड़ा-बहुत अंतर है लेकिन जब भी किसी भाषा का भौगोलिक रूप इतना व्यापक हो जाता है तो एक ही भाषा के अंदर भौगोलिक बदलावों के साथ भाषाई बदलाव भी होते रहते हैं। जैसे भारत में ही बिहार की हिंदी और राजस्थान की हिंदी में बहुत ज़्यादा तो नहीं लेकिन कुछ बदलाव तो स्पष्ट रूप से चिह्नित होते ही हैं।

पुर्तगाली भाषा बोलनेवाले लोग अफ़्रीका, एशिया, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका और यूरोप महादेशों में पाए जाते हैं जैसा कि मानचित्र में इंगित है। आश्चर्य देखिए कि भाषा का मूल जहाँ से शुरू हुआ, पुर्तगाल, वहाँ इसको बोलने वालों की संख्या मात्र 1 करोड़ है और ब्राज़ील जो 1820 तक पुर्तगाल का एक उपनिवेश था वहाँ आज तकरीबन 18 करोड़ लोग पुर्तगाली भाषी हैं। 17वीं से लेकर 18वीं शताब्दी तक तो किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि पुर्तगाली, स्पेनी और अंग्रेज़ी जैसी भाषाएँ एक दिन विश्व भाषाएँ बनने की ओर अग्रसर हो सकती हैं। निस्संदेह इसमें उपनिवेशीकरण की भूमिका बहुत प्रमुख रही है।

1961 से पहले गोवा चूँकि पुर्तगाली उपनिवेश था, अत: 1961 तक वहाँ की आधिकारिक भाषा भी पुर्तगाली थी लेकिन आज भी गोवा, दमन और दीव में थोड़ी बहुत पुर्तगाली बोली जाती है।

पुर्तगाल का परिचय

पुर्तगाली गणराज्य यूरोप के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है और साथ ही स्पेन के साथ आइबेरियन प्रायद्वीप बनाता है। 1128 में राजा दों अफोंसू एन्रिक्श ने पुर्तगाल की एक स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापना की। इसकी राजधानी लिस्बन में स्थित है। दुनिया के सबसे पुराने विश्वविद्यालयों में से एक कोइमब्रा विश्वविद्यालय की स्थापना 1288 में हुई। पुर्तगाल अपनी स्थापना से लेकर 1910 तक राजतंत्र रहा और तदोपरांत पुर्तगाल एक प्रजातंत्र बना। हालाँकि 1928-1974 के बीच पुर्तगाल तानाशाही का शिकार रहा, 25 अप्रैल, 1974 को यहाँ फिर से प्रजातंत्र स्थापित हुआ।

पंद्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में यूरोपीय समुद्री खोज काल के महान लेखकों में से एक लुईश कामोऐश का जन्म भी इसी देश में हुआ और उन्होंने 'उश लुजियदश' नामक महान पौराणिक पुर्तगाली ग्रंथ की रचना की जिसमें मुख्य रूप से 'वास्को द गामा' की भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज के दौरान रास्ते में आई कठिनाइयों और उनसे जूझने की घटनाओं का विवरण है।

15वीं शताब्दी के बाद से आज तक पुर्तगाली साहित्य में भारत

या भारतीय संदर्भ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मौजूद रहे हैं। उदाहरणार्थ महान पुर्तगाली समकालीन लेखक स्व. जोज़े सरामागो सरामागू (1922–2010, अजियागा) जिन्हें 1998 में साहित्य का नोबेल पुरस्कार दिया गया। उन्होंने भी 'ले वुआयाज़ दे लेलेफ़ाँ 2008 (हाथी की यात्रा)' लिखी और इसमें कहानी का एक पात्र भारतीय मूल का है।

पुर्तगाल में भारत/भारतीय संस्कृति

पुर्तगाल में मूलतः भारत से संबंधित गुजराती और पंजाबी समुदाय के बहुत लोग हैं। गुजराती समाज में ज़्यादातर वे लोग हैं जो सालों पहले भारत से मोज़ाम्बिक गए और अन्य अफ़्रीकी देशों में मूलतः व्यापार आदि के लिए बस गए थे। जब 1974 में मोज़ाम्बिक पुर्तगाल की दासता से स्वतंत्र हुआ तो अचानक वहाँ गृहयुद्ध के जैसे हालात पैदा हो गए तो इस कारण बहुतेरे गुजराती मूल के लोगों ने पुर्तगाल का रूख किया और यहीं बस गए। लेकिन आज भी उन्होंने अपनी संस्कृति और अपनी पहचान को बचाकर रखा हुआ है। भारतीय मूल के लोग हिंदी फ़िल्मों के माध्यम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी तथा भारतीय संस्कृति से जुड़े हुए हैं। लिस्बन जो कि पुर्तगाल की राजधानी है, यूरोप के अन्य राजधानियों की तुलना में एक छोटा शहर है लेकिन पूरा शहर विभिन्न संस्कृतियों का समागम नज़र आता है। एक छोटा शहर होने के बावजूद यहाँ 4–5 हिंद मंदिर, 2–3 मसजिदें, 2 गुरुद्वारे हैं और ईसाई बहुल क्षेत्र होने की वजह से गिरजाघरों की बात ही करने की ज़रूरत नहीं।

पुर्तगाल और भारत के 500 सालों का साझा इतिहास है। 1961 तक गोवा विधिवत रूप से पुर्तगाल का ही हिस्सा था इसीलिए तो भारत से गोवा से जुड़ी यादें आज भी पुर्तगालियों की यादों में बसी हैं। बहुत से पुर्तगाली लोग जो भारतीय मूल के हैं अपने बच्चों को गुजराती, कोंकणी, हिंदी सिखाने की कोशिश करते हैं। बहुतेरे पुर्तगाली युवा लोग हिंदी या अन्य भारतीय भाषाएँ सीखना चाहते हैं क्योंकि अभी भी उनके बहुत सारे रिश्तेदार भारत में हैं और साल–दो साल में उनका भारत जाना होता है। बहुत लोग अभी भी शादी वगैरह के लिए भारतीय लड़कियाँ ही चाहते हैं तो उपरोक्त तथ्य खासकर पुर्तगाल में इस बात को दर्शाते हैं कि यहाँ की युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के बारे में अगर बहुत ज़्यादा नहीं तो कुछ जानकारी तो ज़रूर रखती है।

पुर्तगाल में हिंदी और भारतीय अध्ययन का इतिहास

पुर्तगाल में विश्वविद्यालय के स्तर पर भारतीय संस्कृति की शिक्षा–दीक्षा की शुरुआत का आधिकारिक श्रेय आदरणीय प्रो. जोज़े लैड़त दे वास्कोनसेलोस (Jose Leite de Vasconcelos) (उकान्या, 07–07–1858, लिस्बन, 17–5–1941) जो कि लिस्बन विश्वविद्यालय के कला संकाय में प्रोफेसर भी रहे। वे न सिर्फ़ पुर्तगाल में वरन् पूरे यूरोप में पूरब (एशिया) की भाषा और संस्कृति के बारे में शोध करने वाले गिने–चुने विद्वानों में से एक हैं। उनकी मृत्यु के बाद लगभग 8 हज़ार किताबें लिस्बन विश्वविद्यालय के कला संकाय के पुस्तकालय को भेंट कर दी गईं जिनमें हज़ारों किताबें संस्कृत और भारतीय अध्ययन से संबंधित हैं।

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला संकाय में हिंदी

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला संकाय में एशियाई अध्ययन में 2008 से स्नातक और 2012 से स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की शुरुआत हुई है तथा इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी अन्य एशियाई भाषाओं के साथ एक विषय है और हर साल तकरीबन 15–20 नए छात्र हिंदी विषय को चुनते हैं। इस समय कला संकाय में हिंदी के कुल 30 छात्र हैं।

लिस्बन विश्वविद्यालय के कला संकाय के भाषा विभाग में पुर्तगाली भाषा के पठन–पाठन और शोध के अलावा बहुत सारी विदेशी भाषाओं के अध्ययन–अध्यापन की समुचित व्यवस्था है। इस विभाग के अंतर्गत हिंदी के अलावा कई एशियाई भाषाएँ जैसे अरबी, चीनी, जापानी, तुर्की, फ़ारसी आदि पढ़ाई जाती हैं। हिंदी की शिक्षा शैक्षणिक सत्र 2008–09 से लगातार चल रही है। अभी तक भारतीय दूतावास के सहयोग से भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर 6 छात्र केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में हिंदी पढ़ने के लिए जा चुके हैं।

पुर्तगाल में हिंदी के पठन-पाठन की प्रमुख प्रेरणाएँ–

- भारत का विश्व बाज़ार में आर्थिक शक्ति के रूप में उदय,
- भारतीय भाषाओं एवं संस्कृतियों का आदान–प्रदान,
- योग और भारतीय दर्शन के प्रति आकर्षण,
- भारतीय शास्त्रीय कलाएँ (नृत्य, संगीत और गायन) और भारतीय फ़िल्में,
- अनुवाद सेवा और आयात–निर्यात

विदेशी भाषा के रूप में अन्य एशियाई भाषाओं जैसे चीनी, जापानी, कोरियाई आदि की अपेक्षा हिंदी सीखने वालों की संख्या कम होने का प्रमुख कारण व्यावसायिक प्रेरणा की मौजूदगी का नदारद होना है। साथ ही हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को सिर्फ़ संसाधनों की ही नहीं वरन् संस्थागत सहयोग की भी नितांत आवश्यकता और अपेक्षा है। जब भी भारतीय संस्थानों के प्रतिनिधियों को अवसर मिले तो यथासंभव देश के अंदर और भारत के बाहर, विदेशों में सामाजिक एवं राजनयिक मंचों पर हिंदी का प्रयोग अवश्य किया जाए। अगर पूर्णत: संभव न हो तो आंशिक रूप से ही सही इन मंचों पर हिंदी का प्रयोग दर्शाया जाए और इस संदर्भ में यूरोप के देशों से सीख ली जा सकती है जहाँ लगभग सभी देश सामाजिक और राजनयिक मंचों पर सदैव अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं।

हिंदी-पुर्तगाली : एक दृश्य (शब्दावली)

हिंदी 800 साल पुरानी भाषा है जो संस्कृत, पाली और प्राकृत से विकसित होकर अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों को समेटती हुई अपने आधुनिक रूप में पहुँची है जिसमें पुर्तगाली भी शामिल है। हिंदी में पुर्तगाली मूल के कुछ शब्द—

पुर्तगाली से हिंदी में

हिंदी	**पुर्तगाली**	**हिंदी**	**पुर्तगाली**
अनानास	ananás	नीलाम	leilão
अलमारी	armário	पादरी	padre
आया	aia	पावरोटी	pão
कमीज़	camisa	पिस्तौल/राइफ़ल	pistola/rifle
कप्तान	capitão	फीता	fita
कनस्तर	canastro	बाल्टी	balde
कमरा	câmara	बिस्कुट	biscoito
कॉफ़ी	café	बटन	Botão
कारतूश	cartucho	मिस्त्री	mestre
गिरजाघर	igreja	मेज़	mesa
चाभी	chave	यीशू	jesus
तौलिया	toalha	साबुन	sabão

पुर्तगाली भाषा को हिंदी ने उतना प्रभावित नहीं किया है जितना पुर्तगाली ने हिंदी को लेकिन पुर्तगाली भाषा में ही हिंदी/भारतीय मूल के शब्द मौजूद हैं। जैसे—

हिंदी/भारतीय मूल से पुर्तगाली में

पुर्तगाली	**हिंदी**	**पुर्तगाली**	**हिंदी**
ahimsa (não-violência)	अहिंसा	sitar	सितार
karmá (dever)	कर्म	chamuça	समोसा
carril	कढ़ी	bengala	बंगाल
yogá	योग	caxemira	कश्मीरी
pagode	पगोड़ा (स्तूप)	chita	चीता
xalie	शाल		

हिंदी-पुर्तगाली व्याकरण : एक तुलनात्मक अध्ययन

हिंदी और पुर्तगाली दोनों ही भारोपीय परिवार के अंग हैं और हिंदी का जन्म संस्कृत से हुआ है तथा यह इंडो-ईरानियन शाखा के अंतर्गत इंडो-आर्यन भाषा का अंग है। पुर्तगाली का जन्म लैटिन से हुआ है और यह रोमाँस भाषा का अंग है। हिंदी की लिपि देवनागरी है जबकि पुर्तगाली रोमन लिपि में लिखी जाती है हालाँकि दोनों ही भाषाएँ बाएँ से दाएँ लिखी जाती हैं।

स्वर विज्ञान

	हिंदी	पुर्तगाली
मूल इकाई	अक्षर/शब्दांश, जैसे : श = sh[a]	Alphabet/letter, जैसे : s, h = sh = श
अक्षर	52 (39 व्यंजन, संयुक्त अक्षरों के साथ + 13 स्वर)	26 चिह्न (संयुक्त अक्षरों के बिना जिसमें 5 स्वर हैं)
स्वर	स्वतंत्र : 13	स्वतंत्र : 5 संयुक्त स्वर : 13, जैसे : ai, au, ei, eu, éu, oi, ói, ou, ui, ãe, ão, õe
अर्ध स्वर	य, व	j, w
मात्रा	12, ा, ि, ी, ु, ू, ृ, े, ै, ो, ौ, ं, ः	12 जैसे : á ã à â, í, ó, ô, ú, ü, ç
महाप्राण	हाँ (जैसे : क-अल्प्राण, ख-महाप्राण)	नहीं
मूर्धन्य	7, जैसे : ट, ठ, ड/ड़, ढ/ढ़, ण	1, जैसे : R

उच्चारण—

उच्चारण के स्तर पर हिंदी पुर्तगाली या अन्य यूरोपीय भाषाओं से आसान भाषा है क्योंकि हिंदी में प्राय: जो लिखते हैं वही पढ़ते हैं लेकिन पुर्तगाली तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में भिन्न संदर्भों में उच्चारण के अलग-अलग नियम हैं।

जैसे : Jorge जॉर्ज (एक नाम), Gato गातू (बिल्ली)

ऊपर दिए गए उदाहरण में 'G' पहले शब्द में 'ज' और दूसरे में 'ग' ध्वनि इंगित कर रहा है।

हिंदी में कोई भी अक्षर मूक नहीं होता लेकिन पुर्तगाली या अंग्रेज़ी में बहुधा ऐसा होता है। जैसे : Homem साल ओमैं (पुरुष संज्ञा), Ha आ (haver का क्रिया रूप)

ऐसा होने का एक प्रमुख कारण भी है कि देवनागरी लिपि में प्रत्येक अक्षर सिर्फ़ एक ही ध्वनि इंगित करता है जबकि पुर्तगाली, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में एक अक्षर अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग ध्वनि इंगित कर सकता है जैसे ऊपर दिए गए दूसरे उदाहरण में भी दिखाया गया है।

शब्द संरचना

क्रिया

हिंदी में सभी क्रियाओं के अंत में 'ना' अक्षर उपस्थित रहता है लेकिन पुर्तगाली में क्रियाएँ तीन प्रकार की हो सकती हैं। अत: उनका अंत ar, er और ir से होता है। जैसे—

हिंदी	पुर्तगाली
खेलना	jogar जुगार
पीना	beber बबेर
निर्माण करना	construir कोन्सत्रुइर

सहायक-क्रिया

पुर्तगाली, स्पेनी और फ्रांसीसी आदि भाषाओं में दो सहायक क्रियाओं (ser और estar) का प्रयोग होता है। 'ser' का इस्तेमाल स्थायी संदर्भों में होता है और 'estar' का अस्थायी संदर्भों में जबकि हिंदी में सिर्फ़ एक ही सहायक क्रिया 'होना' का प्रयोग होता है। जैसे—

हिंदी	पुर्तगाली			
होना	ser और estar			
मैं जुआऊँ हूँ। – स्थायी संदर्भ	Eu	sou	o	jaão.
	एयू सर्व. उप. मैं	सो स. क्रिया हूँ	उ आर्टिकल –	जुआऊँ व्य. संज्ञा जुआऊँ
मैं बाज़ार में हूँ। – अस्थायी संदर्भ	Eu एयू सर्व. उप. मैं	estou श्तो स. क्रिया हूँ	no नू पूर्वसर्ग में	ercado. मरकादू संज्ञा बाज़ार

संयुक्त क्रिया

हिंदी में संयुक्त क्रिया का प्रयोग न सिर्फ़ लेखन में बल्कि बोलचाल के स्तर पर भी खूब होता है। हालाँकि इस तरह की घटना पुर्तगाली में नहीं पाई जाती है। जैसे—

वह सुबह-सुबह हमारे घर आ बैठा। (आना+बैठना) (सुब्बाराव 2012:23)

प्रेरणार्थक क्रिया

आमतौर पर जब हिंदी में प्रेरणार्थक क्रिया का प्रयोग होता है तो बस मूल क्रिया शब्द में कुछ शाब्दिक बदलाव होते हैं और नई क्रिया की व्युत्पत्ति होती है लेकिन पुर्तगाली, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में या तो एक बिल्कुल नए क्रिया शब्द का प्रयोग किया जाता है या मूल क्रिया से पहले एक और क्रिया जोड़ दी जाती है जो कि सहायक क्रिया की तरह व्यवहार करती है। जैसे—

हिंदी	पुर्तगाली				
पढ़ना—राम हिंदी पढ़ता है।	estudar—	Ram	estuda	hindi.	
		राम	श्तुदा	हिंदी	
		संज्ञा	क्रिया-रूप	संज्ञा	
		राम	पढ़ता है	हिंदी	
पढ़ाना—	ensinar (नया क्रिया शब्द)				
राम कार्ला को हिंदी पढ़ाता है।	Ram	ensina	hindi	à (a+a)	Carla.
	राम	एनसिना	हिंदी	आ	कार्ला
	संज्ञा	क्रिया-रूप	संज्ञा	पूर्वसर्ग+आर्टिकल	संज्ञा
	राम	पढ़ाता है	हिंदी	को –	कार्ला
	fazer + estudar (मूल क्रिया से पहले एक और क्रिया)				
	Ram	faz	a	Carla estudar	hindi
	राम	फ़ाश	अ	कार्ला श्तुदार	हिंदी
	संज्ञा	क्रिया-रूप	आर्टिकल	संज्ञा श्तुदार	संज्ञा
	राम	प्रेरित करता है	–	काला पढ़ना	हिंदी

क्रिया रूप : लिंग प्रभाव

पुर्तगाली में किसी भी क्रिया रूप में पुलिंग या स्त्रीलिंग का अंतर नहीं होता है पर हिंदी में यह अंतर सूचनात्मक रूप में सदैव उपस्थित होता है। हालाँकि आज्ञार्थक रूप में और वर्तमान संभाव्य रूप में लिंग का प्रभाव क्रिया रूपों पर नहीं पड़ता है। जैसे—

सूचनात्मक रूप (Indicative mood)

हिंदी	पुर्तगाली			
राम क्रिकेट खेलता(खेल–ता) है।	O	Ram	joga (jog-a)	criquete.
	उ	राम	जोगा	क्रिकेत
	आर्टिकल	संज्ञा	क्रिया–रूप	संज्ञा
	–	राम	खेलता है	क्रिकेट
रमा क्रिकेट खेलती (खेल–ती) है।	A	Ramá	joga (jog-a)	criquete.
	अ	रमा	जोगा	क्रिकेत
	आर्टिकल	संज्ञा	क्रिया–रूप	संज्ञा
	–	राम	खेलती है	क्रिकेट

आज्ञार्थक रूप (Imperative mood)

हिंदी	पुर्तगाली				
कृपया आप लोग (पुलिंग, बहुवचन)	Por Favor.	vocês	vão	ao	mercado.
बाज़ार चलें।	पूर फ़ावोर,	भोसेश	भाऊँ	आउ	मरकादू
	क्रि.वि.	सर्व. बहू.	चलना–आज्ञा, औ.	पूर्वसर्ग+आर्टि.	संज्ञा
	कृपया	आप लोग	चलें	–	बाजार
रमा जी, कृपया (स्त्रीलिंग, एकवचन)	Ramá.	Por favor.	vá	ao	mercado.
बाज़ार चलें।	रमा,	पूर फ़ावोर,	भा	आउ	मरकादू
	संज्ञा	क्रि.वि.	चलना–आज्ञा, औ.	पूर्वसर्ग+आर्टि	संज्ञा
	रमाजी	कृपया	चलें	–	बाजार

वर्तमान संभाव्य रूप (Subjunctive mood–present)

हिंदी	पुर्तगाली
शायद आज बारिश (स्त्रीलिंग, एकवचन) हो।	Talvez, hoje chova.
शायद खाना (पुलिंग, एकवचन) ठंडा न हो।	Talvez, a comida não esteja fria

संख्या पर लिंग प्रभाव

हिंदी में गण-संख्याओं पर पुलिंग या स्त्रीलिंग संज्ञाओं का कोई प्रभाव नहीं होता लेकिन पुर्तगाली और स्पेनी भाषाओं में कुछ अंकों पर इनके प्रभाव दिखते हैं। जैसे—

हिंदी	**पुर्तगाली**
एक कलम	Um**a** (f, sl) canet**a** (f, sl)
एक लड़का	Um (m, sl) rapaz (m, sl)
दो कारें	D**o**is (m, pl) carros (m, pl)
दो औरतें	D**ua**s (f, pl) mulheres (f, pl)

हालाँकि क्रमसूचक संख्याएँ दोनों भाषाओं में विशेषण के समान व्यवहार करती हैं और इनका रूप पुलिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अनुसार बदलता है। जैसे—

हिंदी	**पुर्तगाली**
पह**ला** साल	primeir**o** an**o**
पह**ली** लड़की	primeir**a** menin**a**
बीस**वीं** सदी	vigésim**o** sécul**o**
बीस**वाँ** घर	vigésim**a** cas**a**

शब्द-क्रम

हिंदी में आमतौर पर सर्वप्रथम [कर्ता-कर्म (अप्रत्यक्ष - प्रत्यक्ष) - क्रिया रूप] संरचना का प्रयोग किया जाता है हालाँकि कई बार कर्ता और कर्म के स्थान बदले भी जा सकते हैं। पुर्तगाली में सामान्यत: [कर्ता-क्रिया रूप-कर्म (प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष)] संरचना का प्रयोग होता है।

	शब्द-क्रम	**उदाहरण**			
हिंदी	कर्ता-कर्म (अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष) - क्रिया रूप	आपने (कर्ता)	राम को (अप्रत्यक्ष कर्म)	किताब (प्रत्यक्ष कर्म)	दी थी। (क्रिया रूप)
पुर्तगाली	कर्ता - क्रिया रूप -कर्म (प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष)	Senhor (कर्ता)	tinha dado (क्रिया रूप)	um livro (प्रत्यक्ष कर्म)	ao Ram (e). (अप्रत्यक्ष कर्म)

पूर्वसर्ग

पुर्तगाली, स्पेनी भाषाओं में पूर्वसर्ग हमेशा संज्ञा या क्रिया से पहले आता है जबकि हिंदी में यह हमेशा संज्ञा या क्रिया के बाद आता है। जैसे—

	हिंदी	पुर्तगाली				
संज्ञा	श्याम लिस्बन में रहता है।	O उ आर्टिकल –	Shvám श्याम संज्ञा श्याम	vive भिभ क्रिया–रूप रहता है	em ऐं पूर्वसर्ग में	Lisboa. लिस्बोआ संज्ञा लिस्बन
क्रिया	खाने के लिए क्या बनाया है ?	O que उ क संज्ञा	fez फ़ेश क्रिया–रूप–भूतकाल, एकवचन		para परा पूर्वसर्ग	comer? कूमेर ? क्रिया–रूप–मूल

यहाँ ऊपर दिए गए दूसरे उदाहरण से स्पष्ट है कि पुर्तगाली में भी हिंदी की तरह बिना कर्ता के वाक्य बनाए जा सकते हैं और ये वाक्य व्याकरण की दृष्टि से सही होते हैं।

कुछ खास संदर्भों में हिंदी या दक्षिण एशियाई भाषाओं के वाक्यों में क्रिया, विशेषण, क्रिया–विशेषण और प्रश्नात्मक शब्दों को दोहराया जा सकता है या कुछ शब्दों की प्रतिध्वनि भी प्रयोग की जा सकती है (अब्बी 1992), लेकिन इस तरह की संरचनाएँ पुर्तगाली में नहीं पाई जातीं।

जैसे—वह कहाँ–कहाँ हिंदी पढ़ता है ? (क्रिया–विशेषण)

रीता बहुत धीरे–धीरे बोलती है। (विशेषण)

चलो–चलो, जल्दी–जल्दी खाना बनाओ। (क्रिआ+क्रिया–विशेषण)

शब्दों की प्रतिध्वनि : चाय–वाय, खाना–वाना (सुब्बाराव 2012:26)

सारांश

इस आलेख के माध्यम से पुर्तगाल और भारत के सांस्कृतिक संबंधों के साथ–साथ न सिर्फ़ पुर्तगाल में हिंदी के पठन–पाठन की स्थिति बल्कि पुर्तगाली और हिंदी भाषाओं को एक तुलनात्मक परिदृश्य में दिखाने की कोशिश की गई है। यह आलेख एक शुरुआत मात्र है और तुलनात्मक भाषा–विज्ञान के क्षेत्र में इससे न सिर्फ़ हिंदी और भारतीय भाषाओं के बीच बल्कि विदेशी भाषाओं और हिंदी के बीच जो बहुत सारी भाषाई या सांस्कृतिक अंतर और संरचनाएँ मौजूद हैं उन्हें समझने और उनका विश्लेषण करने में यह लेख सहायक सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

गुरु, कामताप्रसाद प. 2009 ‘हिंदी व्याकरण’ प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

Agnihotri, Rama Kant. 2007. ‘Hindi an essential grammar’. Routledge, NY

Abbi, Anvita. 1992. ‘Reduplication in South Asian languages’. Allied Publishers, New Delhi

Kachru, Yamuna. 2006. ‘Hindi Syntax’. London Oriental and African Language Library, John Benjamins Publishing Company

Mateus, Mira. 2003. ‘Gramática da Língua Portuguesa’, Caminho, Lisboa.

Subbarao, K.V., 2012. ‘South Asian Languages : A Syntactic Topology’, Cambridge University Press.

कला संकाय, लिस्बन विश्वविद्यालय

shiv4singh@gmail.com

28 हिंदी में विज्ञान की पढ़ाई

● प्रो. जयंत विष्णु नार्लीकर

इस लेख को लिखे 10 से 12 साल बीते होंगे। फिर भी वहाँ जो कुछ कहा गया है वह आज भी लागू होता है। कालानुरूप सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए कुछ और बातों का आज ज़िक्र करना आवश्यक है।

विज्ञान ही नहीं सभी क्षेत्रों में जानकारी का आजकल बोलबाला है। कंप्यूटर का माध्यम अब किंडरगार्टन से पीएचडी तक, पाँच साल के बच्चे से लेकर सत्तर साल के दादाजी तक लोकप्रिय बन चुका है। कंप्यूटर की भाषा, उसी के शब्दों में बाय डिफ़ॉल्ट, यानी स्थायी रूप से अंग्रेज़ी रही है। अत: अंग्रेज़ी जानना आजकल के कंप्यूटर ज़माने में आवश्यक हो चुका है।

फिर भी यह प्रसन्नता की बात है कि कंप्यूटर विशेषज्ञों ने बहुतांश भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर से संवाद बनाने में सफलता प्राप्त की है। हालाँकि हिंदी सहित अन्य लिपियों, भाषाओं का सॉफ्टवेयर अंग्रेज़ी से मुकाबला नहीं कर पाता, तो भी केवल हिंदी जानने वाला उसके सहारे कंप्यूटर द्वारा जानकारी पा सकता है। हिंदी में जानकारी देनेवाले वेबसाइट के पन्नों की संख्या भी दिनों-दिन बढ़ रही है।

जैसा मैंने कहा है कि विज्ञान समझने में मातृभाषा सर्वोत्तम माध्यम है। जब-जब मैं हिंदी भाषिक प्रदेश में भाषण देने जाता हूँ तब जहाँ तक हो सके हिंदी में बोलता हूँ। श्रोता इस प्रयास को पसंद करते हैं क्योंकि मेरी शुरुआत 'देवियों और सज्जनों' का स्वागत तालियों से होता है। इसी न्याय से यह भी सिद्ध होता है कि हिंदी भाषिक कंप्यूटर साहित्य के लिए काफ़ी माँग रहेगी क्योंकि हिंदी भाषिक बड़ी संख्या में हैं और कंप्यूटर जनसामान्य में लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

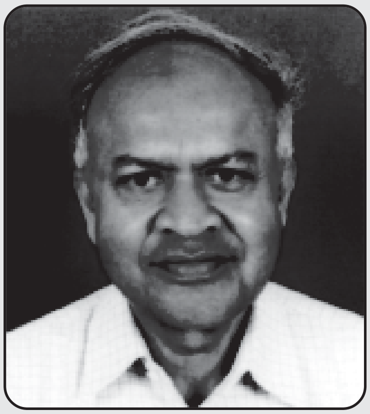

जन्म : 19 जुलाई, 1938 को कोल्हापुर, महाराष्ट्र में

शिक्षा : प्रारंभिक शिक्षा-बनारस हिंदू विश्वविद्यालय बी.एस.सी (1957)

उच्च शिक्षा के लिए कैंब्रिज विश्वविद्यालय गए

गणित में डिग्री : बी.ए. (1960), पीएचडी (1963), एम.ए. (1964) और एस.सी.डी. (1976)

खगोल विज्ञान व खगोल भौतिकी में विशेषज्ञता

26 वर्ष की उम्र में 'पद्मभूषण' सम्मान दिया गया (1965), 2004 में 'पद्मविभूषण' से सम्मानित, 2011 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा महाराष्ट्र भूषण का उच्च नागरिकता सम्मान

यदि इस विचार को आगे बढ़ाएँ तो इसके दो अच्छे परिणाम होंगे। एक तो यह कि मातृभाषा के माध्यम से और कंप्यूटर की लोकप्रियता की वजह से हिंदी जैसी भाषा में विज्ञान की जानकारी फैलाने में सहायता मिलेगी और दूसरा विधायक परिणाम यह हो सकता है कि 'अपनी' भाषा में पढ़ने के कारण जनसामान्य विज्ञान के प्रति आत्मीयता महसूस करेगा। आज जो एक भावना प्रचलित है कि 'विज्ञान एक परदेशी विद्या है, जो हमारी समझ से परे है' उस भावना को हटाने में 'अपनी भाषा' में विज्ञान समझाना सफल होगा।

यहाँ यह भी लिखना आवश्यक है कि जिस 'ब्रह्मांड' मलिका का लेख में ज़िक्र है, वह काफ़ी लोकप्रिय साबित हुई।

विज्ञान-प्रसार के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ। पहला प्रश्न यह है कि विज्ञान की पढ़ाई किस भाषा में होनी चाहिए? मैं अपना अनुभव बताता हूँ। मैंने विज्ञान हिंदी में पढ़ा था। मैं पहली कक्षा से दसवीं कक्षा तक बनारस में जिस स्कूल में विद्यार्थी था, वहाँ हिंदी माध्यम में विज्ञान पढ़ाया गया और मैं हिंदी में पढ़ता था। मुझे उसमें कोई कठिनाई नज़र नहीं आई। व्यक्ति जिस भाषा में विचार करता है उसे उस भाषा में विज्ञान पढ़ाना चाहिए क्योंकि विज्ञान सोचने-समझने की चीज़ है, रटने की नहीं। आपको इतिहास-भूगोल पढ़ाना है तो चाहे जिस भाषा में पढ़ाइए, मुझे कोई एतराज़ नहीं क्योंकि आजकल यहाँ जो शिक्षा प्रणाली है उसके बारे में मैं बहुत निराशावादी हूँ। आप कैसा भी पाठ्यक्रम बनाइए इतिहास और भूगोल रटकर ही पढ़ाया जाता है और रटकर ही उसकी परीक्षा दी जाती है। ऐसा आप किसी भी भाषा में कीजिए या कोई विदेशी भाषा लीजिए, फ्रेंच लीजिए, उसमें कोई एतराज़

नहीं, उसमें बच्चे को कुछ समझ में नहीं आता। आज उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश की उपज आदि को वे पढ़ लेंगे और अगले साल भूल जाएँगे लेकिन विज्ञान के बारे में ऐसा नहीं है।

विज्ञान के अनुसार सृष्टि के जो नियम हैं, उन नियमों को आप जानना चाहते हैं। जिनके कारण सृष्टि का व्यवहार-व्यापार चलता रहता है, उन नियमों को आप अच्छी तरह से कैसे समझ सकते हैं? आप जिस भाषा में मन में विचार करते हैं, उस भाषा में आप विज्ञान अधिक अच्छी तरह से समझ सकते हैं। मेरा तो यही अनुभव रहा। अगर आप किसी भी अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल का पाठ्यक्रम देखें तो उसमें बड़े लंबे-लंबे शब्द रहते हैं, उन शब्दों का क्या मतलब होता है बच्चों को समझ में नहीं आता। वे वैसा-का-वैसा रट लेते हैं, वैसा ही गृहकार्य में उतार लेते हैं और अध्यापक भी हिज्जे ठीक देखकर संतुष्ट हो जाते हैं। उसमें जो विज्ञान भरा है वह बच्चों की समझ में आया है कि नहीं, इसकी चिंता किसी को नहीं होती। इसलिए विज्ञान मातृभाषा में पढ़ाना चाहिए। कम-से-कम जहाँ विज्ञान की शुरुआत होती है (स्कूल के पाठ्यक्रम में), वहाँ तो विज्ञान मातृभाषा में ही पढ़ाया जाना चाहिए। इस देश में हिंदी अधिक लोगों की मातृभाषा है। जहाँ मातृभाषा के रूप में हिंदी का उपयोग करते हैं, वहाँ विज्ञान की पढ़ाई हिंदी में होनी चाहिए। आगे चलकर जब आप विज्ञान में शोध प्रबंध प्रस्तुत करना चाहते हैं, पीएचडी करना चाहते हैं या उच्च अध्ययन करना चाहते हैं तो अन्य देशों में विज्ञान की प्रगति जानने के लिए अंग्रेज़ी की आवश्यकता पड़ेगी। अंग्रेज़ी का ज्ञान आवश्यक है, लेकिन दूसरे कारण से। विज्ञान में जो नई-नई बातें आ रही हैं, अधिकांश हम अंग्रेज़ी में पढ़ते हैं। टेलीविज़न और फिल्मों में जो जानकारी आती है, वह अंग्रेज़ी में होती है, इसलिए अंग्रेज़ी का ज्ञान होना आवश्यक है, लेकिन जहाँ पर समझने का सवाल है, वहाँ मातृभाषा का महत्व अधिक है।

दूसरी समस्या जो सामने आती है वह है पारिभाषिक शब्दों की। जब आप विज्ञान के बारे में समझाना चाहते हैं या उसके बारे में कुछ लिखना चाहते हैं तब कुछ पारिभाषिक शब्दों को आपको लाना होता है। वैज्ञानिक निबंध में आपको ऐसे शब्द मिलते हैं। कहाँ तक हम अंग्रेज़ी शब्दों का इस्तेमाल करें, कहाँ तक हम नए शब्द बनाएँ और किस प्रकार बनाएँ इन शब्दों को? किसी भी भाषा का विकास अनेक तरीकों से होता है। एक तरीका यह है कि शब्द-भंडार बढ़ना चाहिए। अन्य भाषा के शब्द उसमें मिल जाएँ। आप अंग्रेज़ी भाषा देखें, अंग्रेज़ी शब्दकोश खोलकर देखें, उसमें ऐसे अनेक शब्द मिलेंगे, जिनका मूल अन्य भाषाओं में था। लेकिन अंग्रेज़ी भाषा में वे समा गए। उसी प्रकार हिंदी में भी हमें ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए कि हम बिल्कुल शुद्ध हिंदी वाले भारत में बने शब्द ही रखें। विदेशी शब्दों को हिंदी में लाना चाहिए, इसमें हिंदी का निरादर नहीं होगा बल्कि हिंदी में एक नई ताकत आएगी। जैसे रेडियो शब्द है, जो बाहर से आया है पारिभाषिक शब्द है। हो सकता है आप रेडियो का अनुवाद करके कोई हिंदी शब्द बनाएँ लेकिन उसका कोई इस्तेमाल नहीं कर पाएगा। रेलगाड़ी शब्द है, जो हिंदी में समा गया है लेकिन उसका गाड़ी शब्द हिंदी है और रेल शब्द अंग्रेज़ी है। कोई ऐसा नहीं कहता कि रेलगाड़ी बाहरी शब्द है। विज्ञान के बारे में मुझे ऐसा कहना पड़ता है कि वहाँ जो शब्द हैं उनमें अंग्रेज़ी के शब्द भी हों तो कोई हर्ज नहीं है। हम उनका इस्तेमाल करके हिंदी की पारिभाषिक शब्द-संख्या बढ़ा रहे हैं।

जब आपको नए पारिभाषिक शब्द बनाने ही हैं तो संस्कृत भाषा से बनाना उचित है, जैसे अंग्रेज़ी भाषा में लेटिन या ग्रीक

विज्ञान-प्रसार के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ। पहला प्रश्न यह है कि विज्ञान की पढ़ाई किस भाषा में होनी चाहिए? मैं अपना अनुभव बताता हूँ। मैंने विज्ञान हिंदी में पढ़ा था। मैं पहली कक्षा से दसवीं कक्षा तक बनारस में जिस स्कूल में विद्यार्थी था, वहाँ हिंदी माध्यम में विज्ञान पढ़ाया गया और मैं हिंदी में पढ़ता था। मुझे उसमें कोई कठिनाई नज़र नहीं आई। व्यक्ति जिस भाषा में विचार करते हैं उस भाषा में विज्ञान पढ़ाना चाहिए क्योंकि विज्ञान सोचने-समझने की चीज़ है, रटने की नहीं।

शास्त्रीय भाषा से बनाए गए हैं लेकिन संस्कृत भाषा की जो अनेक संताने हैं हिंदी, मराठी, बंगाली आदि इनमें एक ही पारिभाषिक शब्द के लिए वही संस्कृत शब्द नहीं चुना गया है। इसके मैं अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। मराठी और हिंदी का उदाहरण देता हूँ। एटम को मराठी में अणु कहते हैं, हिंदी वाले परमाणु कहते हैं। मॉलिक्यूल को हिंदी में अणु कहते हैं और मराठी में रेणु कहा जाता है। मेरी दृष्टि में ऐसी भिन्नता अनावश्यक है क्योंकि एक ही संस्कृत भाषा से शब्द बना रहे हैं। यदि राष्ट्रीय स्तर पर एक समिति यह निश्चित करे कि हम एटम को क्या कहें तो अच्छा होगा। हो सकता है मराठी भाषी ने जो शब्द चुने हैं वे अच्छे हों या हिंदी भाषी ने जो शब्द चुने हैं वे अच्छे हों या बंगाली भाषी ने जो शब्द चुने हैं वे अच्छे हों लेकिन हमें एक पारिभाषिक शब्दावली बनानी चाहिए, जिससे कि मेरे जैसे लोगों को दुविधा न हो। मुझे कभी मराठी में भाषण देना होता है तो कभी हिंदी में। एटम के लिए कभी गलती से हिंदी में अणु तो कभी मराठी में परमाणु बोल देंगे। ऐसी गलती दूर की जा सकती है और इसे दूर भी किया जाना चाहिए।

जहाँ तक विज्ञान के प्रसार में हिंदी के उपयोग का सवाल है एक तो ऐसे लेख लिख सकते हैं जो सामान्य नागरिक पढ़ सकें। विज्ञान के बारे में उनके मन में एक तरह का डर रहता है कि यह हमारे वश की बात नहीं है। दूर प्रयोगशालाओं में जो लोग बैठे हैं, जो विज्ञान के लिए प्रयोग करते हैं, उन्हीं की समझ की बात है। यह धारणा गलत है। लोगों की भाषा में अगर हम लेख लिखें, विज्ञान के बारे में कुछ बतलाएँ तो उनकी धारणा दूर हो सकती है। उसका एक उदाहरण मुझे ध्यान में आता है कि नीति कथाओं को पंचतंत्र में कैसे लिखा गया है? एक धनिक था। उसके बच्चे सामान्य पाठशाला में कुछ पढ़-लिख नहीं सकते थे। उसने पंडित विष्णु शर्मा को बुलाया और कहा कि इनको ज़रा सिखाओ, बिल्कुल पढ़ते नहीं, उजड्ड लगते हैं तो उन्होंने कहानियाँ सुनाईं। कहानियों के रूप में जो नीति है, जो नीति मूल्य है बच्चों के सामने रखा और उन्हें सिखाया। विज्ञान के बारे में कुछ ऐसा ही किया जा सकता है। जो चीज़ें सामान्य पाठक किसी सादे लेख में नहीं पढ़ना चाहेगा, वह विज्ञान की कथा के रूप में अच्छी तरह से पढ़ सकेगा। एक अच्छी विज्ञान कथा का उदाहरण मैं आपको देता हूँ, जो पहले जूल्स वेर्न ने फ्रेंच में लिखी थी (अराउंड द वर्ल्ड इन 80 डेज़), उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ फिर अनेक भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ। हिंदी में भी उसका अनुवाद हुआ। कहानी में एक आदमी बाज़ी लगाता है कि 80 दिन में पृथ्वी का चक्कर लगाकर आएगा है और पूरब की ओर जाते-जाते जब वह लौटता है तो उसे 81 दिन करीब-करीब लग जाते हैं। वह सोचता है कि वह बाज़ी हार गया लेकिन बात ऐसी होती है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती रहती है इस कारण जैसे-जैसे हम पूरब की ओर जाते हैं—आजकल के हवाई जहाज़ के यात्रियों को इसका अनुभव होता है कि घड़ियाँ आगे करनी पड़ती हैं तो उसने ऐसा ही किया था लेकिन उसे कुछ ध्यान नहीं आया कि केवल 80 दिन ही बीते थे, 81 दिन नहीं बीते थे क्योंकि जब वह पूरा चक्कर लगा कर वापस आया तब घड़ी को आगे बढ़ाते-बढ़ाते हुए आया था। वह असल में बाज़ी जीत गया। यह तो एक तथ्य है, जो विज्ञान-कथा के रूप में लोगों ने पढ़ा और तब तथ्य उन्हें अच्छी तरह से समझ में आया। ऐसी काफ़ी विज्ञान-कथाएँ लिखी जा सकती हैं और कुछ ऐसी विज्ञान-कथाएँ भी लिखी जा सकती हैं, जिनमें समाज-प्रबोधन किया जा सकता है। समाज में जो एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण आना चाहिए, जिसके बारे में आजकल काफ़ी कहा जाता है, बोला जाता है, लिखा जाता है। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण का क्या महत्व है? किस प्रकार उसे आचरण में लाया जा सकता है, यह कथा-माध्यम से हम दिखा सकते हैं।

इसके बाद एक माध्यम पत्रकारिता का है। मुझे यह कहना है कि 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' कितना भी मोटा क्यों न हो लेकिन उसमें विज्ञान नहीं है। 'नवभारत टाइम्स' में भी कुछ विज्ञान न हो तो आश्चर्य की बात नहीं है। इसके बारे में मुझे हर समय बहुत खेद होता है कि हमारे समाचार-पत्रों में, हमारे अखबारों में विज्ञान के बारे में जानकारी बहुत कम दी जाती है और जो कुछ भी जानकारी दी जाती है—आप 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' देखें किसी वैज्ञानिक शोध के बारे में विवरण होगा तो नीचे देखिए किसी विदेशी संस्था का नाम होगा कि यहाँ से यह समाचार लिया गया है। हो सकता है 'न्यू यॉर्क टाइम्स' से लिया गया हो या 'लंदन टाइम्स' से। ऐसा करने की वास्तव में कोई ज़रूरत नहीं है। हमारे

देश में इतने वैज्ञानिक हैं, उनसे पूछकर या कुछ अखबारों के स्टाफ़ पर किसी विज्ञान स्नातक को रखा जाए, उसे यह काम दिया जाए कि विज्ञान के बारे में लिखो। हमारे अखबारों में विज्ञान के बारे में काफ़ी लिखा जा सकता है। मैंने देखा है कि इस बारे में 'महाराष्ट्र टाइम्स' एक मराठी पत्र में विज्ञान के बारे में एक दिन बुधवार को काफ़ी लिखा जाता है। जो 'महाराष्ट्र टाइम्स' ने कर दिखाया, वह 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' ने नहीं किया, 'नवभारत टाइम्स' या 'जनसत्ता' जैसे समाचार-पत्रों में ऐसा करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए कि विज्ञान के बारे में एक पन्ना उसमें रहे, हफ़्ते में किसी एक दिन। इस तरह हम विज्ञान को बहुत लोगों तक पहुँचा सकते हैं। आप जानते हैं कि हिंदी अखबार बहुत पढ़ा जाता है, अंग्रेज़ी अखबार की अपेक्षा। तो क्यों न इसका फ़ायदा उठाया जाए और हम विज्ञान को अधिक लोगों तक क्यों न पहुँचाएँ।

और एक शक्तिशाली माध्यम है, रेडियो और टेलीविज़न। इसके बारे में मैं अपना अनुभव बताता हूँ। दो-तीन साल पहले टी.वी. पर कार्ल सेगन की 'कॉसमॉस' नाम की एक मालिका हर रविवार को दिखाई जाती थी। इस मालिका को पहले तीन-चार मिनटों में मैं हिंदी में प्रस्तुत करता था। इसी उद्‌देश्य से मुझ से कहा गया कि 2-3 मिनटों में प्रत्येक प्रोग्राम की थोड़ी सी जानकारी की झलक दूँ। जब प्रोग्राम मालिका पूरी हुई तो मुझे दर्शकों के पत्र मिले। उन्होंने लिखा था कि जो माध्यम अंग्रेज़ी के कॉसमॉस का था, वह अच्छी तरह से समझ में नहीं आया लेकिन हिंदी में शुरू में हमें जो बतलाया गया, उसके कारण प्रोग्राम हम अच्छी तरह से समझ सके। इसका मतलब है कि देश के अधिकांश दर्शक (बंबई, कलकत्ता जैसे कुछ शहरों को छोड़कर) जिनके पास आजकल टी.वी. प्रोग्राम पहुँच रहे हैं—हिंदी भाषा-भाषी होते हैं या हिंदी समझते हैं। इसलिए हिंदी में टी.वी. के लिए विज्ञान पर अच्छे प्रोग्राम बनने चाहिए। इस दिशा में कॉसमॉस के अनुभव के बाद मेरा एक प्रयत्न रहा है कि हिंदी में वैसी ही एक चित्र मालिका बननी चाहिए और वैसी अब बन रही है। फ़िल्म डिवीज़न द्वारा 15 किस्तों की एक मालिका 'ब्रह्मांड' शीर्षक से बन रही है, अभी कुछ महीने और लगेंगे। मुझे आशा है कि हिंदी माध्यम से इस प्रकार के जो प्रोग्राम टी.वी. में दिखाए जाएँगे, उनसे लोगों को विज्ञान के बारे में अधिक जानकारी मिल पाएगी।

अब सवाल आता है : विज्ञान के प्रसार में कौन-कौन हाथ बँटा सकते हैं? सामान्य रूप से लोग कहते हैं कि यह काम वैज्ञानिकों का है। वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारा काम अपनी प्रयोगशाला में जाकर शोध करना है या अपने छात्रों को पढ़ाना है। अगर हम लोग ऐसा काम करने लगे तो हमारा अनुसंधान का काम आगे नहीं बढ़ पाएगा। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। वैज्ञानिक को खुद अपने अनुसंधान द्वारा, अन्वेषण द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करने का मौका मिलता है। उसके अलावा लोगों को विज्ञान पढ़ाने से भी ज्ञान वृद्धि का मौका मिलता है। जब हम किसी व्यक्ति को कोई बात समझाना चाहते हैं तो वह प्रश्न पूछता है। उन प्रश्नों के उत्तर देते समय हम उस विषय को अधिक अच्छी तरह से समझ सकते हैं। कोई कितना भी बड़ा पंडित क्यों न हो, वह यदि और लोगों को अपना ज्ञान समझाना चाहता है तो उसके ज्ञान में अपनी वृद्धि होती है। इसलिए वैज्ञानिकों को ऐसा करना चाहिए कि अपने समय का कुछ अंश विज्ञान-प्रसार के लिए दें।

विज्ञान के प्रसार में साहित्यकारों को भी आगे आना चाहिए। उनकी लेखनी में वैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक ताकत होती है। मैं विज्ञान का लेख लिख सकूँगा लेकिन मेरी हिंदी इतनी अच्छी नहीं होगी जितनी किसी जानेमाने लेखक की होगी। जिसकी लेखनी में इतना दम है उसे चाहिए कि विज्ञान के बारे में कुछ समझाए। आप कहेंगे कि साहित्य वाले लोग कहते हैं कि विज्ञान तो हम समझ नहीं सकते, बहुत कठिन बात है, हम लोगों को क्या बतलाएँगे? लेकिन ऐसी कुछ बात नहीं है। अगर प्रयास करें तो कुछ विज्ञान के विषय कम-से-कम विज्ञान कथा के माध्यम से लोगों के सामने ला सकेंगे। इस बारे में वे किसी वैज्ञानिक से सहायता ले सकते हैं। वे किसी वैज्ञानिक से चर्चा करें कि मेरे मन में ऐसी कल्पना आई है तो वैज्ञानिक बता सकते हैं कि बात सही है या नहीं, उसमें क्या सुधार करना चाहिए। इस प्रकार से हम एक नए प्रकार के साहित्य को निर्मित कर सकते हैं। ऐसे नए साहित्य द्वारा हिंदी का भी विकास होगा। विज्ञान साहित्य को 20वीं शताब्दी का नया साहित्य मानना चाहिए, जो अंग्रेज़ी और अन्य विदेशी भाषाओं में काफ़ी

विकसित हो चुका है। हमें ऐसा साहित्य अपनी भाषाओं में लाना चाहिए, इसके लिए मैं मान्य साहित्यकारों से यह कहूँगा कि आप लोग विज्ञान कथाएँ लिखिए, लिखने का प्रयास कीजिए। आप लोग अच्छी विज्ञान कथाएँ लिख पाएँगे। उनसे मैं यह भी कहूँगा कि अन्य साहित्यिक रूपों से विज्ञान कथाओं को कुछ भी कम मत समझिए। यह मत समझिए कि जो विज्ञान के बारे में लिखा है वह असली साहित्य नहीं है। वह भी साहित्य का महत्वपूर्ण अंश हो सकता है।

आज हम लोग 21वीं सदी की बातें कर रहे हैं तो 21वीं सदी विज्ञान युग से ही पहचानी जाएगी। 20वीं सदी को भी हम विज्ञान युग कहने लगे हैं। किसी भी भाषा की समृद्धि इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वह किस प्रकार अपने तत्कालीन सामाजिक परिवर्तनों एवं तकनीकी का चित्रण कर सके। और अगर हम विज्ञान–युग में प्रवेश कर रहे हैं तो इसकी कुछ झलक तो हमें अपनी भाषा में दिखलानी ही चाहिए, इसलिए हिंदी को इस क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

साभार : आधारभूत ब्रह्मांड
http://www.basicuniverse.org/2014/09/hindi.html

29 भारतवंशियों की सांस्कृतिक भाषा– हिंदी भाषा परिवार है

● *प्रो. पुष्पिता अवस्थी*

भारत में विश्व की संस्कृति का घर है और विश्व में भारतवंशियों का घर है। भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी भाषा उनकी अपनी सांस्कृतिक भाषा है। उनके घर, मंदिर, मसजिद यदि भारतीय संस्कृति से सुसज्जित हैं तो उनके मन, प्राण भारतीय शक्ति से समृद्ध हैं। हिंदी ही वह हथेली है जो भारत के धर्म, दर्शन और संस्कृति को विश्व के भारतवंशियों की अँजुली में सौंप सकती है।

भारतीय संस्कृति महासागर है। विश्व की तमाम संस्कृतियाँ आकर इसमें समाहित हो गई हैं। आज जिसे आर्य संस्कृति, हिंदू संस्कृति आदि नामों से पहचाना जाता है वस्तुत: वह भारतीय संस्कृति है। आर्य शब्द कभी भी जातिवाचक नहीं रहा है। वह पूर्णतया सांस्कृतिक अर्थ-संपन्न है। जैसा कि—

कृण्वंतो विश्वमार्य्यम (ऋ 9/63/5) आर्या व्रता विसृजंतो आदि क्षमि (ऋ 10/65/11) आदि

ऋग्वेद के वचनों से स्पष्ट है कि आर्यों का आदिम निवास-स्थान भारत रहा है। जिन आर्यों को व जिनकी संस्कृति के महत्व को आज दुनिया स्वीकार कर रही है वे आर्य और वह आर्य-संस्कृति भारतवर्ष में ही पैदा हुए, फले-फूले तथा यहीं से अन्य देशों में उन्होंने अपना सांस्कृतिक सौरभ फैलाया। काबुल तथा मिस्त्र आदि देशों के प्राचीन लेखों में पाए गए इंद्र, वरुण, अग्नि, नासत्य आदि देवताओं व अर्ततम, दुसन्त, सुवरदन्त आदि राजाओं के आर्यत्व को भी विद्वानों ने भारत की सहायता से ही समझा व पहचाना जिसका उल्लेख पुराणों और स्मृतियों में आता है। जिसकी अजय धारा सिंधु घाटी की सभ्यता, प्राग्वैदिक और वैदिक संस्कृति से झरती हुई नवोंमेष काल तक बहती रही है। अनेकानेक धर्मों, सभ्यताओं और संस्कृतियों को अपने में समाहित किए हुए इस भारतीय संस्कृति को सामासिक संस्कृति ही कहना उचित होगा जो आज भी भारतवंशियों की पीढ़ियों के द्वारा संपूर्ण विश्व में लहलहा रही है। हिंदू धर्म का एक नाम निगमागम धर्म भी है। इसका अभिप्राय है कि हिंदू धर्म का आधार केवल निगम नहीं आगम भी

जन्म : 14 जनवरी, 1960 कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत। (2001 से स्थायी रूप से विदेश प्रवास)

प्रकाशित साहित्य

• **कविताएँ** : शब्द बनकर रहती हैं ऋतुएँ 1997, अक्षत 2002, ईश्वराशीष 2005, हृदय की हथेली 2007, रस गगन गुफ़ा में अझर झरै 2007, अंतर्ध्वनि 2009, देववृक्ष 2009, शैल प्रतिमाओं से (हिंदी, अंग्रेज़ी व डच) 2010, तुम हो मुझमें, 2013।

• **आलोचना** : आधुनिक हिंदी काव्यालोचना के सौ वर्ष, 2006

• **कहानी** : गोखरू 2002, जन्म, 2011

• **साक्षात्कार** : सांस्कृतिक आलोक से संवाद, 2006

• **विनिबंध** : सूरीनाम, 2003, सूरीनाम, 2009

• **संपादन** : कविता सूरीनाम, 2003, कथा सूरीनाम, 2003, दोस्ती की चाह 2004, दि नागरी स्क्रिप्ट फार बिगनर्स (सह-संपादन), 2003

• **अनूदित कविताएँ** : IN WOORDENBESTAAT ZE 2008, Devvriksh (Poems in Hindi and English) 2009, Hetbeeld in de rots (Poems translated in Dutch), The Statue in the rock (Poems translated in English).

• **विविध** : कैरेबियाई देशों में हिंदी शिक्षण 2004, सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य 2012

• **सम्मान** : अंतरराष्ट्रीय अज्ञेय साहित्य सम्मान (2002), कैरेबियाई राष्ट्रीय हिंदी सेवा पुरस्कार (2004), लक्ष्मीमल्ल सिंघवी अंतरराष्ट्रीय कविता पुरस्कार (2004), राष्ट्रीय हिंदी सेवा पुरस्कार (2005), सूरीनाम हिंदी सेवा सम्मान (2005), राष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार (2007), शमशेर सम्मान (2008), किरण वूमेन अचीवमेंट अवार्ड।

• 2001-2005–भारतीय दूतावास एवं भारतीय सांस्कृतिक केंद्र पारामारिबो, सूरीनाम में प्रथम सचिव एवं हिंदी प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत

• सूरीनाम साहित्य मित्र एवं सूरीनाम विद्यानिवास साहित्य संस्था का गठन किया।

• हिंदी युनिवर्स फाउंडेशन की स्थापना की।

है अर्थात वह निगम–आगम धर्मों का समन्वित रूप है। आर्यों के आने से पूर्व यहाँ द्रविड़, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, नाग, किरात, किन्नर आदि आर्येतर जातियाँ थीं। इन जातियों से आर्यों में बंधु संबंध बने। आज की भारतीय संस्कृति इन्हीं सबका समन्वित रूप है। समन्वय की प्रक्रिया हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। आर्यों के बाद यूनानी, पठान, शक, हूण, मुगल, चीनी आदि आए। उनमें से जो यहाँ रह गए, वे यहाँ के हो गए और यहाँ की संस्कृति के विकास और विस्तार में उनका भी योगदान है।

किसी भी राष्ट्र की भाषा के दो स्वरूप होते हैं, एक राष्ट्रभाषा और दूसरी वहाँ के जनपदों में प्रचलित लोकभाषाएँ। राष्ट्रभाषा समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। विश्व स्तर पर हिंदी भाषा यह भूमिका बखूबी निभा रही है। लोकभाषाएँ हिंदी को विश्व भाषा बनाने और भारतीय–संस्कृति की जड़ों को फैलाने एवं सुदृढ़ करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। ये राष्ट्रीय नागरिकों के इतिहास की ही नहीं वरन् मानवीय जीवन की निर्माता होती हैं। उनके सहारे ही हम लोक–संस्कृति और लोक–जीवन का दर्शन कर सकते हैं जिस तरह भिन्न–भिन्न संस्कृति जनपदों को लेकर प्रतिनिधि भाषा बनती है। लोक भाषाएँ सहायक नदी की तरह होती हैं। लोक जीवन से आत्मसात होने के कारण वे अपने कूल–किनारों पर बसनेवाली जनता की सभ्यता–संस्कृति की जीवनदायी वाहिका होती हैं।

भारतीय संस्कृति पर विहंगम दृष्टि डालें तो चारों विशिष्टताएँ प्रमुख हैं। प्रथम भारतीय संस्कृति सदैव प्रगतिशील रही है। दूसरे वह असांप्रदायिक है और तीसरे भारत के समस्त इतिहास के प्रति महत्व की भावना है तथा अखिलत्व की चेतना है जो आज भारतवंशियों के द्वारा संपूर्ण विश्व में प्रसारित है, विस्तारित है। भारतीय संस्कृति के इन्हीं गुणों से हिंदी भाषा और उसके परिवार के आंतरिक चेतना और चरित्र संस्कारित हैं। जिसे विश्व के भारतवंशियों ने उनके पुरखों ने किसानी और मज़दूरी करते हुए भी साधु-संतों की तरह पूरे विश्व में खटकर भारतीय संस्कृति और चेतना का प्रसार किया।

भारत में बंधुआ मज़दूर और किसानों की स्थिति अत्यंत दारुण थी। महाश्वेता देवी अपनी पुस्तक 'बंधुआ मज़दूर' में लिखती हैं कि ''अठारहवीं शताब्दी से भारत देश के निर्धन कृषि साधकों ने दोनों हाथों के बीच मसले जाने और निचुड़ने की अनुभूति की तो वे व्याकुल और बेचैन हो उठे थे। अपने देश के मालिकों और विदेशी सत्ताधारियों के दो पाटन के बीच में उन्होंने अपनी ही रक्तधार को अपने ही सामने मिट्टी में मिलते हुए देखा। आखिर अकाल से सूखी अपनी मातृभूमि को कहाँ तक कोई मज़हर माँ का लाल अपनी आँखों से देख सकता है और किस सीमा तक अपने रक्त से सींच सकेगा। अगर वह सींचने को तत्पर भी हो जाए तो भूखे पेट से भला रक्त भी कब तक बनेगा।''

(भारत में बंधुआ मज़दूर, महाश्वेता देवी, निर्मल घोष, पृष्ठ–231)

लाचार...बेबस...निधर्न...मज़दूर अपनी सूखी कुम्हलायी देह की ठठरी सहित, आँखों में आँसू...खाली अंजलि में आशा लिए हुए अपनी मातृभूमि छोड़ने को तैयार हो गए थे। गोरे सत्ताधारी वे चाहें अंग्रेज़ हों...डच हों या फ्रांस के निवासी, वे उन्हें देवदूत से लगे। हिंदुस्तानी मज़दूर उनके बहलावे और बहकावे में आ गए थे। वे अपनी माँ, बहु, पत्नी सहित गठरी दबाए हुए धरती छोड़ने को तत्पर हो गए थे। मातृभूमि को छोड़ने का दुख, सत्ताधारियों की यातना से कम था। मुंशी प्रेमचंद के 'गोदान', 'गबन' जैसे उपन्यासों और 'कफ़न' तथा 'पूस की रात' जैसी कहानियों से पूर्णत: स्पष्ट है। दाल, भात, रोटी और सतुआ की कौन कहे जब पीने को पानी और खेती के लिए धरती के ही लाले पड़ने लगे थे। तब हिंदुस्तान के सपूत समुद्र–पार के देशों में गुलामी जैसी मज़दूरी करने को विवश हुए थे।

संस्कृति एक ऐसी जटिल संकल्पना है जिसमें वे सभी योग्यताएँ आती हैं जो मानव समाज के सदस्य के नाते मनुष्य ने ज्ञान, विज्ञान, कला, रस्म–रिवाज़ आदि के क्षेत्र में उपार्जित की हैं। संस्कृति का मर्म पारंपरिक विचारों और उनसे संबद्ध मूल्यों में निहित है जिसे मानव, भाषा के माध्यम से अर्जित और संवर्धित करता है।

हिंदुस्तान की कृषक और आस्थाशील जनता अपनी मातृभूमि

भारत की धरती पर अपनी जर्जर झोपड़ी छोड़कर अपनी मज़दूरी की ताकत के भरोसे दूसरे देशों की ओर निकल पड़ी। हिंदुस्तान छोड़ दिया लेकिन हिंदुस्तानी भारतीय संस्कृति अपने मन-आँचल में अक्षत की तरह गठिया ले गए थे। सत्ताखोरों ने इन हिंदुस्तानी मज़दूरों का मातृभूति से रिश्ता तोड़ दिया था लेकिन ये किसान, मज़दूर अपनी मातृभूमि के मातृत्व भाव को संस्कृति के रूप में अपने साथ ले आए। इनमें वाचिक संस्कार और उसके संस्कार के माध्यम से लोक-चित्त के संस्कार प्रबल रहे। इनमें प्रबुद्ध और पामर का भाव तिरोहित हो गया क्योंकि भारतीय संस्कृति के निर्माण में हर पेशे के, हर स्थिति के निहंग लोगों का अवदान रहा है। कबीर जुलाहे थे, दादू घुनिया थे, रैदास जूते गाँठते थे, छीपा दरज़ी थे, धरम दास पंसारी थे। सबसे उल्लेखनीय विशिष्टता हिंदी का खुलापन है। इसके सीमांत खुले हुए हैं।

विश्व में फैले हुए भारतवंशियों की हिंदुस्तानी संस्कृति ही उसकी माँ थी और माँ है। एक ओर वे अपनी देह से खेती करते रहे, अपनी देह पेरते रहे लेकिन अपनी संस्कृति की उपासना में एक भाव से जुटे रहे। वे अपने डच, अंग्रेज़, फ्रेंच मालिकों के हुकुम के आगे एड़ियाँ रगड़ते रहे। दिन-रात खटते रहे। फिर भी अपनी संस्कृति को पूजने के लिए समय निकालते रहे। त्योहारों के लिए जुटते रहे। दोहा, चौपाई और भजन से अपनी साधना करते रहे। दिन में सूर्य को अपने पसीने का अर्घ्य चढ़ाते रहे और रात में बगैर कराहे चंद्रमा को अपने दुख सुनाते रहे। मज़दूर ने शिव जी से तपने की साधना का सबक लिया और विष्णु जी के चार अवतार से संस्कृति की उपासना और रावण के वध के संघर्ष का पाठ लिया। श्री कृष्ण जी के अवतार से अनपढ़ रहते हुए भी गीता के ज्ञान की शिक्षा ली। धर्म के बोझिल शब्दों का प्रयोग किए बिना धर्म की आत्मा का पोषण किया। वेद, उपनिषद की चर्चा की। मंदिर बनवाए, हवन-यज्ञ की नींव रखकर आर्य समाज का झंडा फहराया।

पृथ्वी के जिन देशों, हिस्सों और कोनों में इन्हें मज़दूरी के लिए रोपा गया, वे भारतीय संस्कृति की तरह फले-फूले और फसल की तरह खड़े हुए। जिन देशों में गए वहाँ अपनी आस्थाओं के मंदिर बनवाए। अपने विश्वास के कारण खड़े किए। नदी हो या सरोवर, सागर हो या महासागर, उनका नाम गंगा रखा या गंगा सागर। गंगा माँ की पवित्र धार मानकर ही डुबकी लगाई। सूर्य को साक्षी मानकर अंजुलि के जल को गंगाजल मानकर संकल्प साधते रहे। जिस धरती को अपनी मातृभूमि बनाया, उसे माँ मानकर अपनी सेवाएँ अर्पित की। गयाना, त्रिनिदाद, मॉरीशस, फ़ीजी जैसे देशों में हिंदुस्तानी सत्ताओं ने अपनी सत्ता कायम की। सूरीनाम सहित कई देशों में हिंदुस्तानियों की सरकार-सत्ता में महत्वपूर्ण पकड़ रही है।

भारतवंशी बहुल देशों और द्वीपों की प्रकृति का चरित्र अनोखे रूप से एक समान है। मॉरीशस हो या फ्रेंच, गयाना; ब्रिटिश गयाना हो या सूरीनाम, मॉरीशस हो या त्रिनिदाद टोबैगो या फिर दक्षिण अफ्रीका के क्षेत्र हों या फ़ीजी द्वीप समूह की धरती हो, इन सबके एक जैसे फल, फूल, फसल और प्रकृति हैं। वैसे ही हिंदुस्तानी मज़दूर किसानों का चरित्र भी एक जैसा ही है। सूर्योपासना, गंगा-पूजा, शिवरात्रि, नवरात्रि, त्रिदेव की भारतीय कल्पना, देवी-देवताओं की पूजा, हवन-यज्ञ, तीज-त्योहार, रस्मों-रिवाज़, खानपान और जीवन शैली में एक जैसी समानता है। विवाह के अवसर पर मर्तबान, भुनाई सहित दो-तीन दिवस तक रस्मों-रिवाज सहित शादी-ब्याह सफ़ल होता है। लोककथाओं, लोकगीतों, लोककलाओं, लोकनाट्य और खानपान की प्राणवान शक्ति को भी आज वे वैसे ही धारण किए हुए हैं। लोककथाएँ अपने समय और समाज की सच्चाइयों की कोख से जन्म लेती हैं। एक तरह से वे अपने समाज की सखी हैं। लोककथाओं और लोकगीतों ने संपूर्ण विश्व में भारतवंशियों की स्मृतियों की छाती में अपना घर बनाए रखकर भारतीय संस्कृति संचित कर रखी है। लोक का महत्व शास्त्र से कम नहीं है। एक स्थान पर शास्त्र का महत्व है तो दूसरे स्थान पर लोक का। दोनों संपूरक हैं। लोक के सामने सहज रूप में जो चरम सत्ता प्रदर्शित होती है, वही लोक-संस्कृति है। भारतवंशी किसान मज़दूरों ने अपने श्रम, लगन और साहस की साधना से जो अद्‌भुत शक्ति उपार्जित की है वह पूरे विश्व में भारतवंशियों की हो गई है जिसके साथ भारतीय संस्कृति भी उनकी पहचान बनकर खड़ी है। विश्व के चाहे यह जिस भी कोने में हो उनकी सांस्कृतिक अस्मिता एक है क्योंकि उनके साधक स्रोत एक हैं। उनका जीवन-जगत एक है।

समुद्रतटीय तीसरी दुनिया के अविकसित राष्ट्रों की धरती पर जिस तरह से भारतवंशियों की चार पीढ़ियाँ अपनी अंजुलि में भारतीय संस्कृति का प्रकाश लिए हुए खड़ी हैं, उसी तरह अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, पूर्तगाल, स्पेन जैसे विकसित राष्ट्रों और पाकिस्तान, बांग्लादेश,

थाईलैंड, इंडोनेशिया, चीन और जापान तथा रूस आदि देशों में भी भारतवंशियों की पीढ़ियाँ भारतीय संस्कृति को अपना जीवन बनाए हुए जी रही हैं। यूरोप सहित विश्व के अन्य देशों में भी भारतवंशियों की पीढ़ियाँ हैं। एक दूसरे रूप में भी भारतवशियों की जड़ें दूसरे देशों में जम रही हैं। जिस तरह से मॉरीशस, दक्षिण अफ़्रीका के भारतवंशी अब फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैंड में भी व्यापार और रिश्तों तथा नौकरियों के कारण पहुँच रहे हैं, त्रिनिदाद, ब्रिटिश गयाना के भारतवंशियों की नई पीढ़ी इंग्लैंड में अपना बसेरा बना रही हैं। सूरीनाम के भारतवंशियों की नई पीढ़ी हॉलैंड (नीदरलैंड) में अपना घर-द्वार बना रही है। इस तरह से पूरे विश्व में भारतवंशियों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। विभिन्न देशों में सत्ता-समीकरण के बावजूद संपूर्ण विश्व में जी रहे भारतवंशियों के जीवन का आधार भारतीय संस्कृति है। कुछ की जीविका का आधार भी भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति की विशिष्टताओं का शिक्षण-प्रशिक्षण है।

भाषा जन-मानस की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम है तो बोलियाँ जन-मन की संपर्क और संबंधों की शक्ति का माध्यम है। जन समाज की सांस्कृतिक एकता से ही विशिष्ट और वैशिष्ट्यपूर्ण समाज बनता है। भाषा और बोली भारतीय संस्कृति की दो भुजाएँ हैं। इन दोनों भुजाओं से ही समाज में सांस्कृतिक सेवाएँ हो सकेंगी और भारतवंशी समाज की अपनी पहचान बन सकेगी। भारत से बाहर दक्षिण अफ़्रीका, फ़ीजी, दक्षिण अमेरिका, कैरेबियाई देश, मॉरीशस और यूरोप, अमेरिका के कुछ भारतवंशी बहुल क्षेत्रों के बीच में भोजपुरी, मैथिली, मगही भाषा ही संपर्क भाषा, सांस्कृतिक भाषा, जीवन की संजीवनी भाषा और संबंधों की भाषा के रूप में विकसित हुई हैं। इससे भारत के आसपास के पड़ोसी राष्ट्र नेपाल, बर्मा, थाईलैंड, पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्री लंका देश भी अछूते नहीं हैं। हिंदी भाषा की सांस्कृतिक एकता से ही भारतवंशी बहुल देशों का साहित्य प्रकाशित और प्रखर हो सकेगा जिससे भारतवंशी की सांस्कृतिक एकता को प्रखर करने में सहायता होगी।

भारतीय संस्कृति पर विहंगम दृष्टि डालें तो चार विशिष्टताएँ प्रमुख हैं। प्रथम, भारतीय संस्कृति सदैव प्रगतिशील रही है। दूसरे, वह असांप्रदायिक है और तीसरे, भारत के समस्त इतिहास के प्रति महत्व की भावना है तथा अखिलत्व की चेतना है जो आज भारतवंशियों के द्वारा संपूर्ण विश्व में प्रसारित हैं। विस्तारित हैं। भारतीय संस्कृति के इन्हीं गुणों से हिंदी भाषा और उसके परिवार के आंतरिक चेतना और चरित्र संस्कारित है जिसे विश्व के भारतवंशियों ने, उनके पुरखों ने किसानी और मज़दूरी करते हुए भी साधु-संतों की तरह पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति और चेतना का प्रसार किया।

विदेशों में हिंदी भाषा और हिंदी भाषा परिवार की जो भगीरथी प्रवाहित हुई है उसके एक नहीं अनेक भगीरथ रहे; मुख्य रूप से वे प्रवासी भारतवंशी ही रहे हैं जो गत शताब्दियों में रोज़ी-रोटी की खोज में उपनिवेशकर्ताओं के द्वारा विश्व के विभिन्न देशों में बसाए गए। सामान्य जन-जीवन में व्रत-त्योहार, रीति-रिवाज़, शादी ब्याह की रस्मों का सिलसिला वैसे ही चलता रहा जैसे अनेक संकटों के बावजूद गंगा की अजस्त्र धारा प्रवाहित है। भारतीय संस्कारों से रचे-बसे भारतीय मज़दूर-किसान जब ब्रिटिश, फ्रेंच और डच सत्ताधारियों के द्वारा मॉरीशस, फ़ीजी, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद एवं टोबैगो और करीबियाई देशों में ले जाए गए तो उन्होंने विदेश में भी अपने को जिलाए रखने के संस्कार बचाए रखे। आज भी विश्व के भारतवंशियों को जीवन जीने की संजीवनी शक्ति अपनी संस्कृति, हिंदी भाषा और हिंदी भाषा परिवार, संस्कृत तथा सार्वभौम धर्म से ही प्राप्त होती है।

जिस तरह से किसी भी वृक्ष की शाखाएँ अपने तने, वृक्ष और जड़ों की पहचान नहीं खोती है बल्कि वे उसी से बनती, फलती और फूलती हैं, संपूर्ण विश्व में फैले हुए भारतवंशियों की जीवन-शैली और संस्कृति-प्रेम में इसे देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति के संजीवनी तत्व नई पीढ़ी से पुरानी पीढ़ी को संबद्ध किए रहते हैं। दरअसल, भारतवंशियों की प्रत्येक देश में उनकी अपनी भाषाई पहचान है, उनकी अपनी निजी बोली और भाषा है जो हिंदी भाषा है जो हिंदी भाषा परिवार का एक हिस्सा है और जिसमें उनके पुरखों की आत्मा की गूंज है। भारतवंशी बहुल देशों की अपनी अलग सांस्कृतिक अस्मिता है जो भारत से बिल्कुल अलग है।

विश्व भ्रमण के बाद हर देश में रह रहे आप्रवासी भारतवंशी की भारतीयता मूलक ताकतों को देखने के बाद यह मानना पड़ता है कि भारतीय धर्म ही वह मूल शक्ति है जिसके सहारे व्यक्ति अपनी मातृभूमि और संस्कृति से नाभिताल संबंद्ध अनुभव करता रहता है। पं. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी कहा करते थे, ''वर्तमान युग में धर्म को नया रूप ग्रहण करना है। देश और काल के अनुसार धर्म के बाह्य

रूपों में अंतर दिखाई देता है, गंभीरता पूर्वक विचार करने पर मालूम होगा कि धर्म के बाह्य रूपों में देश और काल के अनुसार परस्पर विरोध दिखाई देने पर भी धर्म के मूलभूत सिद्धांत परस्पर विरुद्ध नहीं हैं।'' महाभारत में कहा गया है कि जो धर्म किसी अन्य धर्म के विरुद्ध जान पड़ता है, वह धर्म ही नहीं है। जो धर्म अविरोधी होता है, वस्तुत: वही धर्म है—

धर्म: यो बाधते धर्मं न स धर्म: कुधर्म तत्
अविरोधी तु यो धर्म: स धर्मो मुनिं सत्तम।।

सरहदें, सीमाओं में विभाजित कर सकती है लेकिन व्यक्ति के मन पर खींची गई अमूर्त मानव धर्मी रेखाओं के भीतर संपूर्ण भूखंड समाया हुआ है। धर्म के कारण ही विश्व के आप्रवासी भारतवंशियों की मातृभाषा आज भी हिंदी और उसका भाषा परिवार है। धर्म ने भाषा को, भाषा ने संस्कृति को, संस्कृति ने साहित्य को, साहित्य ने संवेदना को और संवेदना ने मनुष्य को प्रापण से बचाए रखा है कि अनेकों भेदोपभेद के बावजूद मनुष्य होने के नाते हम सब एक हैं और मनुष्यता के प्रचार-प्रसार निश्चित कर्म-क्षेत्र में डटे हुए हैं। कुछ के संगीत, लोकगीत, कला और नाटक की अलग अस्मिता है जो भारतवंशियों की सांस्कृतिक अस्मिता है जिससे वे विदेश में रहकर भी विदेशी नहीं हो पाते हैं, वे भारतीय हैं। इसीलिए विश्व के भारतवंशियों की अपनी एक विशिष्ट और आकर्षक सांस्कृतिक पहचान है।

नीदरलैंड
pushpita.awasthi@BKKvastgoed.ml

30 हिंदी पत्रकारिता का हिंदी से क्या रिश्ता है?

• श्री प्रमोद जोशी

हिंदी के नाम पर हम दो दिन खासतौर से मनाते हैं। पहला हिंदी पत्रकारिता दिवस, जो 30 मई, 1826 को प्रकाशित हिंदी के पहले साप्ताहिक अखबार 'उदंत मार्तंड' की याद में मनाया जाता है और दूसरा हिंदी दिवस जो संविधान में हिंदी को संघ की राजभाषा बनाए जाने से जुड़े प्रस्ताव की तारीख 14 सितंबर, 1949 की याद में मनाया जाता है। हिंदी और पत्रकारिता का खास रिश्ता बनता है। उन्हें अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। संयोग से पत्रकारिता और हिंदी दोनों इन दिनों बड़े बदलावों से गुज़र रहे हैं और दोनों की 'गिरावट' को लेकर एक बड़े तबके को शिकायत है। हाल के वर्षों में रोमन हिंदी का चलन बढ़ा है। उसके लोकप्रिय होने की वजह को भी हमें समझना होगा।

समय के साथ संसार बदलता है। भाषाएँ और उनकी पत्रकारिता भी। हिंदी को भी बदलना है। पर क्या उसमें आ रहे बदलाव स्वाभाविक हैं? बदलाव से आशय है, उसमें प्रवेश कर रहे अंग्रेज़ी के शब्द। मसलन प्रधानमंत्री को प्राइम मिनिस्टर, छात्र को स्टूडेंट और गाड़ी को व्हीकल लिखने से क्या भाषा ज़्यादा सरल और सहज बनती है? दुनिया भर में अखबार अपनी भाषा को आसान और आम-फ़हम बनाने की कोशिश करते हैं क्योंकि उनका पाठक-वर्ग काफ़ी बड़ा होता है। हिंदी के जिस रूप को हम देख रहे हैं वह डेढ़ सौ से दो सौ साल पुराना है। उदंत मार्तंड की हिंदी और आज की हिंदी में काफ़ी बदलाव आ चुका है। हिंदी के इस स्वरूप की बुनियाद फोर्ट विलियम कॉलेज की पाठ्यपुस्तकों से पड़ी।

उन दिनों बंगाल में ईश्वर चंद्र विद्यासागर की सरल विद्यासागरी का प्रचलन था। उन्नीसवीं सदी में लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुख लाल, इंशा अल्ला खान और शिव प्रसाद सितारे हिंद एवं बीसवीं सदी में प्रेमचंद, महावीर प्रसाद द्विवेदी से लेकर गोपाल राम गहमरी और मैथिलीशरण गुप्त तक भाषा को बदलने का काम ही चला। आज़ादी के कुछ पहले से हिंदी अखबारों का प्रकाशन और वितरण बड़े स्तर पर होने लगा था। भाषा के सबसे बड़े कारखाने अखबार ही साबित हुए क्योंकि वे जीवन के हर विषय से जुड़ते हैं। साठोत्तरी पीढ़ी ने हिंदी में 'दिनमान' की मार्फ़त खबरों का संसार देखा। सन् 1984 में 'जनसत्ता' भाषा के नए संस्कारों के साथ आया। संयोग से इसके एक दशक के भीतर टेलीविजन ने खबरों की नई भाषा गढ़नी शुरू की।

जब सबसे पहले ज़ी टी.वी. ने अंग्रेज़ी शब्दों को मिलाकर हिंदी पेश की तो बहुत से लोगों को वह बेहद नागवार गुज़री। पर ज़ी टी.वी. ने भारत और पाकिस्तान में भी हिंदी खबरों का माहौल तैयार किया। हिंदी के अखबारों ने, खासतौर से 'नवभारत टाइम्स' ने अंग्रेज़ी मिली-जुली हिंदी का न सिर्फ़ धड़ल्ले से इस्तेमाल शुरू किया है बल्कि उसे प्रगतिशील साबित भी किया है। अखबार के मास्टहैड के नीचे लाल रंग से मोटे अक्षरों में एन.बी.टी. लिखा जाता है। मेरा खयाल है कि 'नवभारत टाइम्स' ने ऐसा विज्ञापन-दाताओं को लुभाने

जन्म : 23 जून 1952

चार युगांतरकारी दशकों की हिंदी पत्रकारिता का चश्मदीद गवाह।

सन् 1973 में लखनऊ विवि से राजनीति शास्त्र में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद 'दैनिक स्वतंत्र भारत' दैनिक हिंदी पत्र में शामिल।

सन् 1983 में जब राजेंद्र माथुर के नेतृत्व में नवभारत टाइम्स का प्रकाशन लखनऊ से शुरू हुआ तब उनकी टीम में शामिल।

सन् 1998 में कुछ समय सहारा टेलीविजन के लॉन्च के पहले की टीम में रहने के बाद 1999 में दिल्ली के 'दैनिक हिंदुस्तान' में काम शुरू किया।

सन् 2002 में श्रीमती मृणाल पांडे के 'दैनिक हिंदुस्तान' में प्रधान संपादक बनने के बाद भारी बदलाव आया। दिल्ली संस्करण में उनके वरिष्ठ स्थानीय संपादक के रूप में अखबार के दो बड़े रूप परिवर्तनों का भागीदार रहा और जनवरी 2010 में सेवामुक्त हुए।

अब अखबारों और वेबसाइटों में नियमित लेखन।

- कादंबिनी में ज्ञानकोश नाम से स्तंभ।
- <u>ब्लॉगः</u>
  - ➤ जिज्ञासा http://pramathesh.blogspot.com
  - ज्ञानकोश http://gyaankosh.blogspot.com

के लिए किया है। विज्ञापनदाताओं का हिंदी जीवन-संस्कृति और समाज से रिश्ता नहीं है। वे फैशन के लिए एक खास तबके को लुभाते हैं। यह तबका हमारे बीच है, यह भी सच है। पर यह हिंदी की मुख्यधारा नहीं है। बिज़नेस के दबाव में यह धारा फ़ैसले करती है।

‘न.भा.टा’ जिसे अब अपने आप को ‘एन.बी.टी.’ कहने में गर्व की अनुभूति होती है पिछले साल जब लखनऊ गया तो उसकी यह हिंग्लिश कटार खुट्टल साबित हुई। अखबार ने अपनी भाषा को काफ़ी हद तक बदला। फिर भी ‘दिनमान’, ‘ज़ी टी.वी., ‘जनसत्ता’ और अब ‘न.भा.टा.’ ने भाषा से जुड़े रोचक सवालों को उठाया। भाषा का लालित्य, उसका अर्थपूर्ण होना और साथ ही उसकी व्यापक स्वीकृति तमाम प्रश्नों पर एक से ज़्यादा किस्म की राय है। अंग्रेज़ी अपने लचीलेपन के कारण दुनिया में अपनी जगह बना सकी। हिंदी का पैन-इंडियन स्वरूप वही नहीं हो सकता जो इलाहाबाद या वाराणसी में है। फिर भी मानक भाषा और काम-चलाऊ भाषा एक नहीं हो सकती। खबरों और गंभीर विमर्श की भाषा में भी अंतर हो सकता है।

समय के साथ भाषा में बदलाव कितना होना चाहिए, कैसे होना चाहिए, यह भी महत्वपूर्ण सवाल है और यह भी क्या कोई भाषा शुद्ध हो सकती है? दाल में नमक या नमक में दाल? नए शब्द आएँ, अंग्रेज़ी के शब्द आएँ पर तब, जब उनसे सरल शब्द हिंदी में न हों। यहाँ तो संज्ञाएँ और क्रियाएँ भी बदली जा रही हैं। मज़ेदार बात यह है कि न तो इस हिंदी को चलाने वाले ‘नवभारत टाइम्स’ ने और न किसी दूसरे अखबार ने कोई बहस चलाई। कोई सर्वे भी नहीं किया।

हिंदी का विकास नए शब्दों के जुड़ते जाने से ही हुआ है। उसके इस्तेमाल का भौगोलिक दायरा बढ़ता जा रहा है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पुराने शब्द निरर्थक हो गए या उनका इस्तेमाल नहीं होना चाहिए। कुछ लोग हिंदी को आसान बनाने के नाम पर जबरदस्ती अंग्रेज़ी शब्दों की जो ठूँसम-ठाँस कर रहे हैं, वह ठीक नहीं। पर लॉगिन, पासवर्ड, कोलेस्ट्रॉल, माउस, डायलॉग या ट्रेनिंग जैसे शब्द आसानी से हिंदी में आ गए हैं। उन्हें शब्दकोशों में जगह दी जानी चाहिए। यों भी भाषा शब्दकोशों से नहीं शब्दकोश भाषा से बनते हैं।

ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के दूसरे संस्करण नए मुद्रण में सैकड़ों नए शब्द जोड़े जाते हैं। इस साल मार्च में जोड़े गए नए शब्दों में लिस्टिकल (इंटरनेट पर लिस्ट के रूप में लिखे गए लेख), योलो (यू ओनली लिव वंस) बीट बॉक्सर, बुकहॉलिक, बुकवूमन जैसे शब्द जोड़े गए हैं। दो साल पहले जोड़े गए नए शब्दों में ट्वीटप, चिलैक्स, नेटबुक और वुवुज़ेला जैसे शब्द थे। कंप्यूटर का इस्तेमाल बढ़ने और खासतौर से सोशल नेटवर्क साइट्स के विस्तार के साथ अनेक नए शब्द बन रहे हैं। इन नए शब्दों में डि-फ्रेंड, पेवॉल, वर्फ़िंग या ईयरवर्म जैसे शब्द हैं, जिनका इस्तेमाल बढ़ता जाएगा। मसलन डि-फ्रेंड। अपनी फ्रेंड लिस्ट से किसी को हटाना। वर्फ़िंग, यानी काम (वर्क) के दौरान (नेट) सर्फ़िंग। संगीत सुनते-सुनते कोई धुन गहरे से दिमाग में बैठ गई तो वह ईयरवर्म है। ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी की ऑनलाइन सेवा हर तीन महीने में यों भी तकरीबन एक से दो हज़ार नए शब्द जोड़ती है।

हमारे लिए इस खबर के दो मायने हैं। एक तो हम ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के बारे में जानें और दूसरे यह कि हिंदी के विस्तार के दौर में इस बात का संकेत क्या है? किसी नई प्रवृत्ति के उभरने पर न तो घबराना चाहिए और न यह मान लेना चाहिए कि यह अंतिम सत्य है। दिल और दिमाग के दरवाज़े खोलकर ही सारी चीज़ों को देखें। नई बातें बड़े काल-खंड में ही सही या गलत साबित होंगी। ''हिंदी में नए शब्दों को जोड़ने की ज़रूरत है'' कहने मात्र से यह बात लागू नहीं होती। नए शब्द जुड़ने के कारण होते हैं। नए शब्द घर का दरवाज़ा खटखटाने वाले नए मेहमान हैं।

हिंदी का विकास नए शब्दों के जुड़ते जाने से ही हुआ है। उसके इस्तेमाल का भौगोलिक दायरा बढ़ता जा रहा है। इसका

अर्थ यह नहीं है कि पुराने शब्द निरर्थक हो गए या उनका इस्तेमाल नहीं होना चाहिए। कुछ लोग हिंदी को आसान बनाने के नाम पर ज़बरदस्ती अंग्रेज़ी शब्दों की जो ठूँसम-ठाँस कर रहे हैं, वह ठीक नहीं। पर लॉगिन, पासवर्ड, कोलेस्ट्रॉल, माउस, डायलॉग या ट्रेनिंग जैसे शब्द आसानी से हिंदी में आ गए हैं। उन्हें शब्दकोशों में जगह दी जानी चाहिए। यों भी भाषा शब्दकोशों से नहीं शब्दकोश भाषा से बनते हैं।

हिंदी को आसान बनाने की जो ज़िम्मेदारी लेते हैं, उन्हें भी समझना चाहिए कि हिंदी आसान होने के कारण ही प्रचलित है। पर आम बोलचाल की भाषा और गूढ़ विषयों की भाषा को एक नहीं किया जा सकता। बोलचाल की भाषा भी व्यक्ति-व्यक्ति की अलग-अलग होती है। सड़क के भैये और एक अध्यापक की भाषा एक जैसी नहीं होती। चैनल और अखबार की भाषा भी एक जैसी नहीं हो सकती। दो चैनलों की भाषा का अंतर भी उनके बाज़ार का अंतर बता सकता है। आज नहीं तो दस साल बाद यह फ़र्क आएगा।

अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, हरियाणवी और कौरवी में तमाम ऐसे शब्द हैं, जो मानक हिंदी के विकास की धारा में पीछे रह गए हैं। नए शब्द सिर्फ़ अंग्रेज़ी से ही नहीं आते। भारतीय भाषाओं से और बोलियों से भी आएँगे। यह आदान-प्रदान भी चलेगा। कुमाऊँनी में गंध के लिए जितने प्रकार के शब्द हैं, उनकी सूची बनाई जाए तो बड़ी लंबी और उपयोगी बनेगी।

ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी अपने आप में एक विशाल काम है। इस डिक्शनरी के दो संस्करण निकल चुके हैं। पहला 1928 में निकला था और दूसरा 1989 में। तीसरे संस्करण पर काम चल रहा है और सब ठीक रहा तो वह सन् 2037 तक पूरा हो जाएगा। 1989 के इसके संस्करण में इसके 20 खंड थे। इसी संस्करण के छोटे-छोटे संस्करण आप अलग नाम से देखते हैं। इस डिक्शनरी को दुबारा टाइप करना पड़े तो एक व्यक्ति को 120 साल लगेंगे। प्रूफ़ पढ़ने में 60 साल।

इस शब्दकोश को इस तरह तैयार किया गया था कि इसमें अंग्रेज़ी भाषा के इतिहास में जितने शब्द इस्तेमाल में आए उन्हें इसमें शामिल कर लिया जाए। फिर भी इसमें सन् 1150 तक प्रयोग से बाहर हो चुके शब्द शामिल नहीं हैं। यह एक विशाल आयोजन है, जिसमें शास्त्रीय शब्दों के साथ-साथ बोलचाल के और अपशब्द (स्लैंग) भी शामिल हैं। ऑक्सफ़र्ड इंग्लिश डिक्शनरी को अपडेट करने के काम में 300 विद्वान लगे हैं और यह प्रोजेक्ट 5.5 करोड़ डॉलर का है, यानी ढाई सौ करोड़ रुपए से ज़्यादा का। इसके साथ ऑक्सफ़र्ड इंग्लिश कोर्पस है, जिसमें करीब बीस लाख शब्दों का भंडार है। इस पर करीब 3.5 करोड़ पाउंड, यानी करीब 300 करोड़ का खर्च है। धनराशि बताने का आशय सिर्फ़ इस बात को रेखांकित करता है कि कोई समाज अपने वैचारिक कर्म के प्रति कितना सचेत है।

गाज़ियाबाद-201010, भारत
pjoshi23@gmail.com

साभार : समाचार मीडिया.कॉम
http://samachar4media.com/senior-journalist-pramod-joshi-wrote-an-article-on-hindi.html

31 विदेश में आनन-फानन में हिंदी सीखें

नीलू गुप्ता

भाषा अभिव्यक्ति का एक साधन है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। किसी भी देश को एकसूत्र में बाँधने में भाषा का सर्वोच्च स्थान है, यह नितांत सत्य है। भाषा संप्रेषण की अहम भूमिका निभाती है। भाषा के अर्थ का अनर्थ न हो जाए, अत: भाषा को सुचारु रूप से सीखना अत्यंत आवश्यक है, ऐसा हमारा मानना है। प्रत्येक जीवधारी चाहे वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी अपनी ही भाषा बोलता और समझता है। हम भारतीय हैं; हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा और विश्व में सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है। हिंदी के लालित्य और सौंदर्य को बनाए रखते हुए उसको सरल और सुगम रीति से पाठकों तक पहुँचाने के लिए कटिबद्व होना अत्यंत आवश्यक है।

अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया प्रांत की शिक्षा-प्रणाली में हिंदी को भी अब विदेशी भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई है। कक्षा में सभी प्रकार के विद्यार्थी होते हैं—हिंदी से कुछ परिचित कुछ बिल्कुल अपरिचित। कहना न होगा विद्यार्थियों के विविध रूप होने से कुछ कठिनाइयाँ तो अवश्य होती हैं किंतु हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली कुछ इस प्रकार बनानी चाहिए कि वह रोचक और ज्ञानवर्द्धक होते हुए सुगम भी हो।

जन्म : दिल्ली (भारत)

शिक्षा : विद्यालंकार (गुरुकुल कॉगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार), एम.ए. हिंदी (दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)।

व्यवसाय : हिंदी अध्यापिका डी. एंज़ा कॉलेज, क्यूपर्टिनो, कैलिफ़ोर्निया (अमेरिका)

योगदान : समाज-सेवा, हिंदी अध्यापन, कविता व कहानी लेखन। विदेश में हिंदी के अध्यापन के लिए हिंदी को सरल, सुगम, सहज बनाना। सांस्कृतिक कार्यक्रम व अपनी भारतीय संस्कृति की धरोहर को नई पीढ़ी को सौंपने के लिए 'उपमा' (उत्तर प्रदेश मंडल ऑफ़ अमेरिका) व 'विश्व हिंदी ज्योति' की संस्थापिका। आम जनता के मनोरंजन के लिए प्रतिवर्ष कवि सम्मेलन का आयोजन इत्यादि की व्यवस्था।

प्रकाशन— काव्य-संग्रह फूलों की डाली, सरल हिंदी भाषा (पहला भाग), सरल हिंदी भाषा (दूसरा भाग), सरल हिंदी भाषा (व्याकरण), सरल हिंदी शिक्षा, अहा हिंदी पुस्तिका

इस समय मैं कैलिफ़ोर्निया के क्यूपर्टिनो शहर में स्थित डी. एंज़ा कॉलेज में हिंदी को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ा रही हूँ। अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते समय मुझे उनकी कुछ कठिनाइयों का अहसास होता रहता है और उनका कुछ समाधान मैं निकालती रहती हूँ क्योंकि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। इन विशेष बातों से मैं अन्य शिक्षक- वर्ग और विद्यार्थियों को भी लाभान्वित करना चाहती हूँ। ऐसी अनेक बातें हैं जिनको ध्यान में रखते हुए हम हिंदी भाषा को सरल और सहज बना सकते हैं। क्रमश: इनकी चर्चा हम इस लेख के अंतर्गत करेंगे।

भाग-1

विदेश में हिंदी प्रशिक्षण: स्वर व व्यंजन

विदेश में रहकर शिक्षण-कार्य में संलग्न सभी शिक्षक व शिक्षिकाएँ इस बात से अवश्य सहमत होंगे कि स्वदेश में रहकर हिंदी भाषा सीखने-सिखाने और विदेश में रहकर हिंदी सीखने-सिखाने में अंतर अवश्य है। कारण भी स्पष्ट है कि स्वदेश में हमारा अपनी भाषा के साथ निरंतर संपर्क बने रहना और विदेश में बहुत ही कम समय के लिए संपर्क में रहना।

इस समस्या का समाधान खोजने के लिए सर्वप्रथम हमें देखना होगा कि कौन-कौन सी समस्याएँ होती हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है।

हिंदी अक्षरमाला में स्वर तेरह होते हैं जिनको आसानी से सीखा जा सकता है क्योंकि ये संख्या में कम हैं और उच्चारण में भी सुगम हैं। किंतु जब व्यंजन की बारी आती है जो तैंतीस होते हैं तो असुविधा बहुत बढ़ जाती है। एक तो संख्या अधिक और फिर उच्चारण की असुविधा। क ख ग घ च छ ज झ इत्यादि सभी के अंतर को समझना और ठीक से उच्चारण करना उनके लिए बहुत ही कठिन होता है।

स्वर और व्यंजन सीखने के पश्चात मात्राओं को सीखने पर

ही विद्यार्थी हिंदी में शब्द बनाने, लिखने और पढ़ने योग्य हो सकते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए, मैंने स्वर और व्यंजन को एक कविता या गीत के रूप में पंक्तिबद्ध करने का प्रयास किया है। कक्षा में बार-बार इसको गाने से सभी स्वर और व्यंजन कंठस्थ हो जाते हैं। उच्चारण सीखने में भी अत्यंत सहायता मिलती है। कक्षा में गाने के साथ-साथ इस कविता को लिखने का अभ्यास भी करना चाहिए। बार-बार लिखने से विद्यार्थियों को स्वर और व्यंजन भली-भाँति लिखना और पहचानना आ जाता है।

इस कविता के अंतर्गत स्वर-व्यंजनों के साथ-साथ संपूर्ण मात्राओं का भी प्रयोग किया गया है जिससे व्यंजनों के साथ-साथ मात्राओं का भी पूर्ण ज्ञान हो जाता है। आनन-फानन में ही विद्यार्थीगण मात्राओं पर निपुणता प्राप्त कर, भिन्न-भिन्न मात्राओं के शब्दों को खोजने में अत्यंत आनंद का अनुभव करने लगते हैं।

अमेरिका में अपनी हिंदी कक्षा में हिंदी का प्रशिक्षण देते हुए स्वर और व्यंजन सिखाने में मुझे इस कविता से बहुत ही अधिक सहायता और सफलता प्राप्त हुई है। अन्य छात्र-छात्राएँ भी इससे लाभान्वित हो सकेंगे, इस आशा के साथ मैं इस कविता को प्रस्तुत कर रही हूँ।

इस कविता में ड और ड़ तथा ढ और ढ़ के उच्चारण में अंतर समझाने के लिए कुछ शब्द लिए गए हैं, जैसे घुमड़-घुमड़, बढ़-चढ़कर और ड्योढ़ी। प्रारंभ में गीत सिखाते समय आप चाहें तो अपनी सुविधानुसार इनको निकाल भी सकते हैं।

आओ हम याद करें हिंदी में स्वर होते हैं तेरह—
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अ:

अ: स्वर का प्रयोग केवल विसर्ग के रूप में होता है; जैसे-प्राय: अत: इत्यादि।

आओ खोजें हम, कहाँ छिपे हैं इसमें स्वर बारह—

इस ओर ऐसे ऊँचे पर्वत
उस ओर एक ऐसी नीची खाई
ऋषि की कुटिया में अनार,
आम और अंगूर की शोभा छाई॥

आओ याद करें हिंदी में व्यंजन होते हैं तैंतीस—
क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न
प फ ब भ म, य र ल व श ष स ह

हिंदी में मात्राएँ होती हैं बारह क्योंकि अ की मात्रा नहीं होती है।

आओ खोजें, इसमें कहाँ छिपे हैं तैंतीस व्यंजन और बारह मात्राएँ—

ढोल बाजे ढमढम ढमढम ढमढम
डमरू बाजे डमडम डमडम डमडम
घंटा बाजे ठनठन ठनठन ठनठन
बिजली चमके चमचम चमचम चमचम
घुमड़-घुमड़ कर बादल बरसे झमझम झमझम
घुँघरू बाजे छमछम छमछम छमछम
धरती पर फूल खिले हरदम हरदम हरदम
भौंरे करते उन पर गुनगुन गुनगुन गुनगुन
गङ्गा बहती होकर चञ्चल सुनसुन सुनसुन सुनसुन
शाम हुई और फिर हवा चले पुरवैया
बढ़-चढ़ कर ड्योढ़ी पर नाचें कृष्ण कन्हैया
ता था थैया ता था थैया ता था थैया।
खेल-खेल में हमने सीखी हिंदी, सीखे स्वर और व्यंजन
आओ मिलकर जय बोलें हिंद की, जय बोलें हिंदी की सब जन।

भाग 2

मैंने हिंदी वर्णमाला को लिखने की एक अत्यंत सुगम प्रणाली बनाई है। अमेरिका में रहने वाले बच्चे अंग्रेज़ी में पढ़ना-लिखना अच्छी तरह से जानते हैं, अत: जब उन्हें यह बताया जाता है कि यदि आपको अंग्रेज़ी का ट लिखना आता है तो आपको आधी हिंदी लिखनी आ गई और ट व छ के माध्यम से आप लगभग संपूर्ण हिंदी वर्णमाला लिख सकते हैं तो उनका उत्साह देखने वाला होता है। आनन-फानन में ही विद्यार्थी हिंदी लिखना सीख लेते हैं। जैसे स्वर और व्यंजन लिखने का आसान तरीका—

स्वर अ—इंगलिश की T और गिनती के 3 को आप जोड़ दीजिए तो हिंदी का पहला अक्षर अ बनता है।

अथवा

इंगलिश T लिखकर C को उलटा दो बार लिखिए और इन दोनों को आप जोड़ दीजिए तो हिंदी का पहला अक्षर 'अ' बनता है।

आ—इसी प्रकार से दूसरा अक्षर 'आ' बनाने के लिए एक T और लगा दीजिए आपका आ बन गया।

इ—इ बनाने के लिए छोटी-सी T बनाएँ फिर S बनाकर 2 की तरह कर दें T+S+2=इ बन गया।

ई—ई बनाने के लिए ई के ऊपर C को लूप की तरह लगा दें तो ई बनता है।

उ—उ लिखने के लिए 3 लिखें और ऊपर लाईन लगाएँ, उ बनता है। दो बार उलटा C लिखने से भी उ बन जाता है।

ऊ—ऊ लिखने के लिए बीच में C को लूप की तरह लगा दें तो ऊ बनता है।

ए—ए बनाने के लिए और ऐ बनाने के लिए गिनती वाले 2 का सहारा ले सकते हैं अथवा T बनाकर नीचे से 2 की तरह मोड़ दीजिए।

ओ, औ, अं, अः ऊपर बताए 'अ' के समान ही बनेंगे।

व्यंजन—क बनाने के लिए T बनाएँ, इंगलिश का C पूरा बनाएँ और एक आधा C बनाएँ तथा इसको लूप की तरह लगा दें c+T+c=क।

ख भी क की तरह से आधा क बना कर 2 की तरह से बनाएँ 2+व=ख

ग—ग में आधा और पूरा दो T बनाएँ।

घ—घ बनाने के लिए दो C बनाएँ और फिर इंगलिश का T बनाएँ।

ङ —ङ बनाने के लिए इंगलिश का छोटा-सा T और C बनाकर बिंदु (DOT) लगा दें।

इस प्रकार से विद्यार्थी हिंदी की संपूर्ण वर्णमाला आसानी से लिखना सीख सकते हैं।

हिंदी में मात्रा संबंधी सुझाव

हिंदी में तेरह स्वर होते हैं।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः

अ के अतिरिक्त सभी स्वर व्यंजन के बाद आने पर मात्रा में बदल जाते हैं। इसका सरल उपाय है कि आप अ वाले सभी स्वरों में से अ हटा दीजिए, शेष भाग उस स्वर की मात्रा हो जाती है। जैसे आ ा, ओ-ो, औ ौ, अं- ं, अः-ः।

इ, ई की मात्रा के लिए कैंडी स्टिक (मीठी गोली की छड़ी) लीजिए और छोटी इ होने पर व्यंजन के पहले (ि+ क = कि) और बड़ी ई होने पर व्यंजन के बाद में (ी + क = की) लगा दीजिए।

उ, ऊ की मात्रा के लिए छोटा उ आधा काट दीजिए, उ की मात्रा (ु) बड़ा ऊ पूरा काट दीजिए केवल उसकी पूँछ रह जाती है जो ऊ की मात्रा (ू) बन जाती है।

ए, ऐ की मात्रा—ए ने अपने पड़ोसी से ए की मात्रा (े) ले ली और बदले में ऐ को दो मात्राएँ मिल गईं (ै)।

इस प्रकार आप बहुत ही शीघ्र मात्राएँ सिखा पाएँगे। अब एक समस्या रह जाती है कि प्रायः विद्यार्थी भूल जाते हैं कि छोटी इ और बड़ी ई, छोटे उ और बड़े ऊ की मात्रा में से कौन-सी व्यंजन से पहले और कौन-सी व्यंजन के बाद में लगाएँ।

आसान उत्तर है कि छोटे बच्चे आगे बैठते हैं और बड़े बच्चे बाद में। इसी तरह छोटी मात्रा व्यंजन से पहले और बड़ी मात्रा व्यंजन के बाद में लगाइए।

भाग 3

सर्वनाम के साथ **क्रिया** का प्रयोग

तीनों कालों व तीनों पुरुषों में **सर्वनाम** मैं हम, तू, तुम आप, वह, वे पुल्लिंग व स्त्रीलिंग में एक समान हैं। **सर्वनाम** दोनों लिंगों में एक समान होते हुए भी **क्रिया** के रूप स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों में ही बदल जाते हैं। न केवल इतना ही बल्कि **क्रिया** के रूप पुल्लिंग एकवचन में उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष व अन्य पुरुष में बदलते हैं और वर्तमान काल, भूत काल और भविष्य काल में भी बदलते हैं। जैसे—

मैं जाता हूँ। मैं जाती हूँ।

तू जाता है। तू जाती है।

वह जाता है। वह जाती है।

मैं जाता था। मैं जाती थी।

तू जाता था। तू जाती थी।

वह जाता था। वह जाती थी।

मैं जाऊँगा। मैं जाऊँगी।

तू जाएगा। तू जाएगी।

वह जाएगा। वह जाएगी।

किंतु इसके विपरीत तीनों ही कालों के बहुवचन में, तीनों ही पुरुषों में सर्वनाम के साथ क्रिया का रूप एक ही रहता है जैसे—

हम/आप/वे जाते हैं।

हम/आप/वे जाते थे।

हम/आप/वे जाएँगे।

हिंदी सिखाते और पढ़ाते समय विद्यार्थियों को क्रिया का स्वरूप बार-बार बदलने से अत्यंत कठिनाई होती है। पुल्लिंग के पश्चात् स्त्रीलिंग में फिर बदलाव आने से कठिनाई और भी अधिक हो जाती है।

मैंने हिंदी वर्णमाला को लिखने की एक अत्यंत सुगम प्रणाली बनाई है। अमेरिका में रहने वाले बच्चे अंग्रेज़ी में पढ़ना-लिखना अच्छी तरह से जानते हैं, अतः जब उन्हें यह बताया जाता है कि यदि आपको अंग्रेज़ी का ट लिखना आता है तो आपको आधी हिंदी लिखनी आ गई और ट व छ के माध्यम से आप लगभग संपूर्ण हिंदी वर्णमाला लिख सकते हैं तो उनका उत्साह देखने वाला होता है।

हिंदी के इस नियम को ध्यान में रखते हुए कि पुल्लिंग बहुवचन को स्त्रीलिंग बहुवचन में भी प्रयोग किया जा सकता है जबकि स्त्रीलिंग बहुवचन को पुल्लिंग बहुवचन में प्रयोग नहीं किया जा सकता। 'जैसे हम जाते हैं' पुल्लिंग होते हुए भी स्त्रीलिंग में 'हम जाते हैं' कह सकते हैं, परंतु 'हम जाती हैं' स्त्रीलिंग को पुल्लिंग के लिए 'हम जाती हैं' नहीं कह सकते।

मैंने विद्यार्थियों को केवल पुल्लिंग बहुवचन के माध्यम से पढ़ाकर देखा अर्थात स्त्रीलिंग के एकवचन व बहुवचन के स्थान पर पुल्लिंग बहुवचन का प्रयोग किया और पुल्लिंग एकवचन के स्थान पर भी पुल्लिंग बहुवचन का ही प्रयोग किया। परिणामस्वरूप उन्हें तीनों कालों में सर्वनाम और क्रिया के रूप सीखना बहुत ही सरल और रोचक लगा क्योंकि अब तीनों कालों में उन्हें केवल पुल्लिंग बहुवचन को ही सीखना और प्रयोग करना था।

अत: मेरा सुझाव है कि यदि हम स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों में सर्वनाम व क्रिया के लिए केवल पुल्लिंग बहुवचन को ही प्रयोग में लाएँ तो संभवत: हिंदी को सरल सुगम और रोचक बनाने में सफल हो जाएँगे। जैसे वर्तमान काल में केवल 'हम जाते हैं', 'आप जाते हैं', 'वे जाते हैं'; भूत काल में 'हम जाते थे', 'आप जाते थे', 'वे जाते थे'; भविष्य काल में 'हम जाएँगे', 'आप जाएँगे', 'वे जाएँगे'।

बहुवचन वैसे भी आदर का सूचक है और हिंदी भाषा में एक व्यक्ति को भी आदर देने के लिए हम एकवचन सर्वनाम व क्रिया का प्रयोग न कर बहुवचन सर्वनाम व क्रिया का ही प्रयोग करते हैं।

आज के युग में अपनी भारतीय सभ्यता-संस्कृति की वाहिका हिंदी भाषा आदरसूचक सर्वनाम व क्रिया का प्रयोग कर एक नया कीर्तिमान स्थापित कर सकेगी। वैसे भी भारत के बहुत से हिंदी भाषी प्रांतों में एकवचन के स्थान पर लोग बहुवचन का ही प्रयोग करते हैं, जैसे अपने लिए 'मैं' न कहकर 'हम' और 'तू' न कहकर 'आप' कहते हैं।

इस प्रकार से हमारी हिंदी भाषा हमें आदरभाव सिखाने के साथ-साथ एकीकरण की ओर भी अग्रसर करेगी तथा सरल-सुगम व रोचक भी बन सकेगी।

यह विषय विचारणीय अवश्य है कि स्त्रीलिंग व पुल्लिंग के तीनों कालों और तीनों पुरुषों में केवल पुल्लिंग बहुवचन सर्वनाम व पुल्लिंग बहुवचन क्रिया का ही प्रयोग करें।

हिंदी भाषा में इसको मान्यता मिल पाए या नहीं परंतु हम प्रारंभ में अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार सुगम उपाय से हिंदी सिखा सकेंगे ऐसी आशा अवश्य है।

कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका
nilugupta@yahoo.com

32 शब्द संकोचन का शिकार बनती हिंदी

श्री उमेश चतुर्वेदी

हाल ही में राजधानी दिल्ली से सटे एक कॉलेज में एक मित्र को जाने का मौका मिला। जिस बिल्डिंग के ऊपरी माले पर स्थित दफ़्तर में उन्हें जाना था, उसकी सीढ़ियों पर भारी संख्या में छात्र बैठे हुए थे। छात्रों ने सीढ़ी को ऐसा घेर रखा था कि वहाँ से चाह कर भी निकलना आसान नहीं था। लिहाज़ा एक जगह उन्होंने छात्रों से अनुरोध किया ''अपना पैर बटोरकर बैठो दोस्त', लेकिन कोई प्रतिक्रिया छात्रों की ओर से नहीं मिली बल्कि उलटे उनकी प्रश्नवाचक निगाहें मित्र को घूरती रहीं। दस सेकेंड में ही माजरा समझ में आ गया। तब उन्हें छात्रों से अनुरोध करना पड़ा कि ''अपने पैर समेट लो''। राजधानी के नज़दीक स्थित कॉलेज के उन छात्रों को 'बटोरना' भले ही समझ में नहीं आया लेकिन शुक्र है उन्हें 'समेटना' पता था।

शहरी इलाकों में आए दिन हमें ऐसे वाक्यों से दो-चार होना पड़ता है। हाल ही में मशहूर गीतकार प्रसून जोशी ने अपने साथ घटी एक घटना का भी ज़िक्र किया है। एक फ़िल्म के गीत की रिकॉर्डिंग के वक्त उन्हें भी कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। उस गीत में उन्होंने एक जगह 'सट-सटकर' बैठने का ज़िक्र किया है। जोशी को हैरानी तब हुई जब हिंदी फ़िल्मी दुनिया के संगीतकार, गायक और वहाँ मौजूद ज़्यादातर साजिंदों को 'सट-सटकर' बैठने का अर्थ ही समझ में नहीं आ रहा था। हारकर उन्हें 'सटना' की जगह 'पास-पास' बैठने का प्रयोग करना पड़ा। लेकिन प्रसून जोशी को 'अफ़सोस' है कि 'सट-सटकर' बैठने जैसे शब्दों के प्रयोग से जो तपिश और ध्वनि निकलती है, वह 'पास-पास' में कहाँ निकलती है। अब तक यह आरोप लगता रहा है कि शाब्दिक ज्ञान की दुनिया नई पीढ़ी में सिमट रही है। लेकिन यह प्रक्रिया तो सत्तर के दशक में ही शुरू हो गई थी जब कथित तौर पर मांटेसरी और कॉन्वेंट स्कूलों की खेप गाँवों तक पहुँचनी शुरू हुई थी। यह प्रक्रिया तो इन दिनों अपने चरम पर है। लेकिन सत्तर-अस्सी के दशक में शुरू हुए अधकचरे कॉन्वेंट की परंपरा ने जड़ जमा ली है और वहाँ से पढ़कर निकली पीढ़ी अब जवान हो गई है। वही पीढ़ी है जिसे सट-सटकर बैठने का अर्थ अब समझ नहीं आता है। इस पीढ़ी के सामने आपने खालिस हिंदी का प्रयोग किया तो आपको यह भी सुनने के लिए तैयार रहना होगा—क्या डिफ़िकल्ट हिंदी बोलते हैं आप। इस पूरी प्रक्रिया में भागीदार अपना मीडिया भी है। मीडिया के छात्रों और नवागंतुकों को एक ही चीज़ बताई-समझाई जाती है कि सरल-सहज भाषा में अपनी बात रखो। सहजता और सरलता की यह परंपरा इतनी गहरी हो गई है कि सामान्य हिंदी के शब्दों के बजाय अंग्रेज़ी के शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग जारी है। दिल्ली में इन दिनों कॉमनवेल्थ गेम की बड़ी चर्चा है। दो-चार साल पहले तक हिंदी अखबार इसे राष्ट्रमंडल या राष्ट्रकुल खेल कहते नहीं अघाते थे। लेकिन अब वे भी इन शब्दों को भूल गए हैं। हमसे पहले की पीढ़ी ने भाषा का संस्कार और उसका पाठ अखबारों के ज़रिए ही सीखा है। लेकिन तब मीडिया संस्कारित करने की भूमिका भी निभाती थी।

लाइव इंडिया टी.वी. न्यूज़ चैनल में वरिष्ठ पद पर कार्यरत।

ज़ी न्यूज़, इंडिया न्यूज़, सकाल ग्रुप ऑफ़ न्यूज़ पेपर्स, दैनिक भास्कर और अमर उजाला में कार्य कर चुके हैं।

मानव रचना इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी में पत्रकारिता के प्राध्यापक रहे।

अब भी भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, केंद्रीय हिंदी संस्थान, नई दिल्ली, रामजस कॉलेज दिल्ली, रामलाल आनंद कॉलेज दिल्ली में पत्रकारिता के विज़िटिंग फ़ेलो।

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए पत्रकारिता का पाठ्यक्रम लेखन।

माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय के लिए '**दिनमान**' पत्रिका पर मोनोग्राफ़ का लेखन।

मोनोग्राफ़ सामयिक प्रकाशन से प्रकाशित, मीडिया पर आधारित **बाज़ारवाद के दौर में मीडिया** पुस्तक प्रकाशित और मीडिया हलके में चर्चित।

देश की सभी प्रमुख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में अब तक पाँच हज़ार से ज़्यादा लेख और संपादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित।

लेकिन आज ऐसी हालत नहीं रही है। उसका तर्क है कि उसके पाठक जो पढ़ना चाहते हैं वह उन्हें वही पढ़ाना चाहता है। मीडिया को अब हिंग्लिश भाषा अच्छी नज़र आने लगी है और यह सब हो रहा है नई पीढ़ी के नाम पर। तर्क तो यह भी दिया जाता है कि नई पीढ़ी को यही सब पसंद है। लेकिन यह तर्क देते वक्त हम यह भूल जाते हैं कि नई पीढ़ी तो सड़क पर ही जीवन की वर्जनाओं को तोड़ना चाहती है। क्या इसकी छूट दी जा सकती है ? नई पीढ़ी को छेड़खानी और बदतमीज़ी में ही मज़ा आता है। क्या इसके लिए छूट दी जा सकती है ? दरअसल मनुष्य स्वभाव से ही आदिम और जानवर होता है। उसे सलीका और शिष्टाचार का पाठ संस्कारों और शिक्षा के ज़रिए पढ़ाया जाता है। भाषा का संस्कार भी उसी प्रक्रिया की एक कड़ी है। लेकिन दुर्भाग्य से हमने उस परंपरा को तोड़ दिया है। 1853 में जब मैकाले की मिंट योजना के बाद देसी और प्राच्य शिक्षा को ख़त्म करके सिर्फ़ अंग्रज़ी शिक्षा देने की ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार ने तैयारी की तो उसका ज़ोरदार विरोध हुआ था। तब सवाल उठा था कि अपनी भाषाएँ ख़त्म हो जाएँगी और भाषा ख़त्म होगी तो संस्कृति पर भी खतरा आएगा। मैकाले की योजना तब सफ़ल तो नहीं हुई लेकिन आज़ादी के बाद यह योजना सफ़ल होती नज़र आ रही है। जो काम विदेशी नहीं कर पाए, आज़ादी के बाद आई अपने लोगों की सरकार की नीतियों ने वह कर दिखाया है।

दैनिक जीवन में शब्द संकोचन को हर वक्त महसूस किया जा सकता है। दैनंदिन व्यवहार में आनेवाले शब्द भी अब हम भूलते जा रहे हैं। अगर दिमाग पर ज़ोर डालकर उन शब्दों की तलाश करें तो आपको पता चलेगा कि शब्दों के ज्ञान की दुनिया में कितनी कमी आ चुकी है। हिंदी पखवाड़ा जारी है। हिंदी को कथित तौर पर विकसित करने का पाखंड जारी है। बेहतर तो होता कि हिंदी को अपने लपेटे में ले रही इस प्रवृत्ति पर भी विचार किया जाता। यहीं पर याद आता है भारतीय पत्रकारिता के अतीत में भाषा से किए गए सकारात्मक प्रयोग। सच्चिदानंद हीरालाल वात्स्यायन अज्ञेय के संपादन में निकली टाइम्स ऑफ़ इंडिया समूह की पत्रिका 'दिनमान' ने अपनी तरफ़ से भाषा को लेकर बहुत ही उम्दा और देशज प्रयोग किए थे। इस प्रयोग पर आज की पत्रकारिता की निगाह पड़नी जरूरी है।

'दिनमान' और नई भाषा

मेरा मानना है कि पत्रकारिता और साहित्य दोनों अलग-अलग विधाएँ हैं। भाषा को छोड़ दें तो विषयवस्तु या विचार के स्तर पर किसी साहित्यकार संपादक ने हिंदी पत्रकारिता को कोई ज़्यादा मज़बूत किया है—मैं ऐसा नहीं मानता। सारी दुनिया में पत्रकारिता की भाषा को साहित्य ने अपनाया है। हमारे यहाँ उलटी गंगा बहाने की कोशिश होती रही। प्रिंट मीडिया के लिए भाषा और शैली की ज़रूरत है पर इसका अर्थ यह नहीं कि किसी विद्वान पंडित साहित्यकार को संपादक बना दिया जाए।

हिंदी के शीर्षस्थ पत्रकार सुरेंद्र प्रताप सिंह ने 1997 में अपनी मौत से पहले एक साक्षात्कार में यह बात कही थी। बाद के दौर में सुरेंद्र प्रताप सिंह अकेले पत्रकार नहीं थे जिन्होंने साहित्य और पत्रकारिता के आपसी रिश्ते को लेकर ऐसे सवाल उठाए हों। लेकिन यह भी सच है कि 'दिनमान' ने भाषा के स्तर पर जो ऊँचाई हासिल की उसमें उसके तीनों प्रारंभिक संपादकों का ज़्यादा योगदान था। इसकी वजह भी यही थी कि चाहे अज्ञेय हों या फिर रघुवीर सहाय या कन्हैयालाल नंदन, तीनों मूलतः साहित्यकार रहे हैं। यही वजह है कि 'दिनमान' में भाषा की रवानी बनी रही लेकिन यह भी सच है कि इन लोगों ने भाषा की शुचिता को बरकरार रखा। 'दिनमान' के पृष्ठ इसके गवाह हैं।

हिंदी में इन दिनों आम आदमी को समझाने वाली भाषा के नाम पर हिंदी के साथ सफ़ल छेड़छाड़ करने का चलन बढ़ गया है। उदारीकरण ने इस प्रक्रिया को अब इतना बढ़ा दिया है कि इस पर अब सवाल भी उठने बंद हो गए हैं। अगर किसी ने भूले-भटके सवाल उठाने का साहस कर दिखाया तो उसे प्रहसन का पात्र बना दिया जाता है।

लेकिन 'दिनमान' की कहानी दूसरी रही। उसने हिंदी के साथ नए प्रयोग किए। 'दिनमान' ही क्यों, उस दौर तक खासकर पत्रकारों में अपनी भाषा के साथ प्यार-दुलार और उसे आगे बढ़ाने की एक लालसा थी। एक वजह यह भी हो सकती है कि 'दिनमान' के पत्रकारों ने हिंदी को आगे बढ़ाने में भूमिका निभाई। लेकिन

सही मायने में कहें तो 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'माधुरी' और 'चाँद' जैसी पत्रिकाओं की परंपरा को 'दिनमान' ने आगे बढ़ाया। शायद यह इसलिए संभव हो पाया कि 'दिनमान' के शुरू के तीनों संपादक मशहूर साहित्यकार रहे और उनकी टीम में भी साहित्यिक जगत की हस्तियों का बोलबाला रहा। पहले संपादक अज्ञेय, बाद में आए रघुवीर सहाय और कन्हैयालाल नंदन का साहित्यकार रूप पत्रकार से कहीं ज़्यादा बड़ा था। हालाँकि 'रविवार' शुरू करने वाले सुरेंद्र प्रताप सिंह ने पत्रकारिता में नए विषयों के समावेश में कमी के लिए हिंदी के लेखक पत्रकारों की परंपरा पर जगह-जगह सवाल उठाए हैं। लेकिन यह भी सच है कि अगर 'दिनमान' में इन तीनों संपादकों के अलावा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, श्रीकांत वर्मा, प्रयाग शुक्ल, विनोद भारद्वाज जैसे लोगों का होना कम-से-कम हिंदी भाषा को बचाए रखने और उसे आगे बढ़ाने की गारंटी था। सच तो यही है कि इन्हीं लोगों के ज़रिए 'दिनमान' ने पत्रकारिता की नई भाषा गढ़ी थी।

हिंदी में इन दिनों आम आदमी को समझाने वाली भाषा के नाम पर हिंदी के साथ सफ़ल छेड़छाड़ करने का चलन बढ़ गया है। उदारीकरण ने इस प्रक्रिया को अब इतना बढ़ा दिया है कि इस पर अब सवाल भी उठने बंद हो गए हैं। अगर किसी ने भूले-भटके सवाल उठाने का साहस कर दिखाया तो उसे प्रहसन का पात्र बना दिया जाता है।

'दिनमान' ने कई नए शब्दों को भी गढ़ा। यह बात और है कि इनमें से कई शब्द बाद के दौर में नहीं चल पाए। और तो और खुद 'दिनमान' में भी इनका चलन बंद हो गया। 'दिनमान' में शुरुआती दिनों में 'वियतनाम' को 'वीएतनाम' लिखा जाता था। इसी तरह 'तमिल' की जगह 'तमिश' का प्रयोग होता था। ज़ाहिर है आज का 'तमिलनाडु' 'दिनमान' के लिए तब 'तमिष्नाडु' था। आज का 'हरियाणा', उस दौर में 'हरयाणा' था। आज जिसे हम 'स्वतंत्र प्रजातांत्रिक गणतंत्र' कहेंग तब 'दिनमान' के लिए 'स्वाधीगण प्रजातंत्री' था। 1971 में बांग्लादेश के उदय के बाद 'दिनमान' ने मुजीबुर्रहमान के बयानों के आधार पर लिखा था कि बांग्लादेश स्वाधीगण प्रजातंत्री देश होगा। आज हिंद महासागर का द्वीप 'डिएगो गार्सिया', 'दिनमान' के पृष्ठों पर 'ज्यागो गार्सिया' के तौर पर दर्ज होता था। इसी तरह रूस के 'यूराल' पर्वत को 'उराल' लिखा जाता था। भारतीय मूल के लेखक 'वी.एस. नायपॉल' को 'दिनमान' 'वी.एस. नैपाल' लिखता था। इसी तरह 'दिनमान' में 'हाँगकाँग' को 'हाँड-काँड', 'इंडोनेशिया' को 'इंदोनेशिया', 'थाईलैंड' को 'थाईदेश', 'त्रिनिदाद' को 'त्रिनीदाद', 'कनाडा' को 'कैनाडा', 'अर्जेंटीना' को 'अर्हेंतीना', 'कंबोडिया' को 'कंबुजिया' और बाद में 'कंबोदिया', 'स्पेन' को 'स्पान', 'मलेशिया' को 'मलयेसिया' और कई जगह 'मलाया' भी लिखा जाता था। आज जो 'तंजानिया' है, उसे 'दिनमान' के पृष्ठों पर 'तांजानिया' के रूप में देखा जा सकता है। 'पोलैंड' उन दिनों 'पोलस्का' के रूप में 'दिनमान' के पन्नों पर छाया रहता था। कुछ इसी अंदाज़ में 'इथियोपिया' तब 'इथोपिया' लिखा जाता था। 'स्पेन' की 'कम्युनिस्ट पार्टी' को 'स्पानी कम्युनिस्ट पार्टी', जर्मन विद्वान 'मैक्समूलर' को 'मक्समूलर', 'स्वीडन' की पार्टी को 'स्वीडी' पार्टी, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता 'च्यांग काई शेक' को 'च्यांड-काई शेक' लिखा जाता था।

अज्ञेय के इन भाषाई प्रयोगों से साफ़ है कि उन्होंने संज्ञा पदों का भी हिंदीकरण करने की कोशिश की थी। अज्ञेय दरअसल हिंदी की टाइम मैगज़ीन निकाल रहे थे इसलिए उनके सामने कहीं-न-कहीं हिंदी पत्रकारिता के सामने एक प्रतिमान रहा होगा और इसे सफ़ल करने की कोशिशों के तहत उन्होंने इन विदेशी मूल के शब्दों का भी हिंदीकरण करने की कोशिश की। उन्होंने सोचा होगा कि ये शब्द हिंदी में चल जाएँगे। यह परंपरा उनके उत्तराधिकारी रघुवीर सहाय तक चलती रहती है लेकिन 1977 के बाद 'दिनमान' को लगता है कि हिंदी-भाषी लोग इन्हें नहीं अपना पाएँगे और इन शब्दों का 'दिनमान' में प्रयोग रोक दिया गया। आज के दौर में अज्ञेय और रघुवीर सहाय के ये प्रयोग अटपटे ज़रूर लग सकते हैं लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे ही प्रयोगों से हिंदी आगे बढ़ी है। अज्ञेय अंग्रेज़ी के भी जानकार थे। रघुवीर सहाय ने

तो अंग्रेज़ी में डिग्री ही ली थी। दोनों ने बरसों तक अपनी इसी योग्यता के दम पर 'आकाशवाणी' में काम भी किया लेकिन दोनों में अपनी हिंदी को आगे बढ़ाने की ज़ोरदार लालसा थी। अंग्रेज़ी के प्रभुत्व वाले संस्थान में अपनी इस लालसा को पूरा करने के लिए दोनों ही संपादकों ने अथक प्रयास किए। अगर ऐसा नहीं होता तो 'दिनमान' 18 मार्च, 1975 के अंक में यह ऐलान नहीं होता कि 'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान'।

2006 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल टी.वी. राजेश्वर के एक कथन ने ज़ोरदार बहस छेड़ दी थी। उन्होंने कहा था कि अंग्रेज़ी दुनिया को देखने की खिड़की है और उसकी पढ़ाई पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। 'दिनमान' में सत्तर के दशक में भी ऐसी रिपोर्टें भी छपती रही हैं। इसके लिए 'दिनमान' के 1 फरवरी, 1970 के अंक को देखना कहीं ज़्यादा समीचीन होगा जब उसके पृष्ठों पर अंग्रेज़ी के समर्थन में तब के दिल्ली के उपराज्यपाल आदिनाथ झा के आह्वान की रिपोर्ट छपी थी। आदिनाथ झा ने अंग्रेज़ी को बढ़ावा देने की यह अपील मशहूर दार्शनिक बंट्रेंड रसेल स्मृति व्याख्यान में की थी। इस व्याख्यान में उन्होंने भारतीय अंग्रेज़ी को बढ़ावा देने की बात कही थी। 'दिनमान' और उसके यशस्वी संपादक चाहते तो इसे रोक सकते थे लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

सच तो यह है कि 'दिनमान' ने नए भाषिक शब्दों को गढ़ा और उन्हें प्रचलित करने की कोशिशें भी खूब कीं। लेकिन यदि वे शब्द चल नहीं पाए तो उनसे किनारा करने में 'दिनमान' ने देर भी नहीं लगाई। उपरोक्त दिए गए शब्दों में से कई आज नहीं चलते। लेकिन हिंदी की अपनी रवानी को बनाए और बचाए रखते हुए 'दिनमान' की टीम ने वह कर दिखाया जिसकी सही मायने में हिंदी भाषा और पत्रकारिता को ज़रूरत थी। पूरी दुनिया में अपनी भाषाओं के लिए आज के दौर में भी एक खास तरह का आग्रह देखा जा रहा है। लेकिन कम-से-कम आज की हिंदी पत्रकारिता के लिए ऐसी सोच बिना वजह का विषय बन गई है। हिंदी की जगह आम बोलचाल की भाषा के नाम पर अंग्रेज़ी शब्दों का न सिर्फ़ अनगढ़ प्रयोग बढ़ा है बल्कि हिंदीकरण के नाम पर अंग्रेज़ी शब्दों को हिंदी के व्याकरण को दरकिनार करते हुए अपनाया जा रहा है। मसलन नर्सेस आंदोलन पर हैं या स्कूल बंद कर दिए गए हैं। लेकिन 'दिनमान' के ये प्रयोग इनसे अलग थे और हिंदी की आत्मा के अनुकूल थे। ऐसे में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि 'दिनमान' के ये प्रयोग हिंदी की रवानी को ध्यान में रखते हुए किए गए थे। भाषाई स्तर पर 'दिनमान' की इस भूमिका को गांधी के जीवन पर 'पहला गिरमिटिया' जैसे मशहूर उपन्यास के लेखक और आई.आई.टी. कानपुर के पूर्व रजिस्ट्रार गिरिराज किशोर ने भी समझा है। उनका कहना है कि 'दिनमान' ने उस समय जो राजनीतिक शब्दावली हिंदी को दी थी, राजनीतिक चरित्र के साथ उसमें रचनात्मक संस्कार भी था। व्यावसायिकता का ध्यान भी रखा गया था। अज्ञेय जी का मानना था कि हिंदी को जब तक हम बहुआयामी स्तर पर समृद्ध नहीं करेंगे, उसे एक संपूर्ण भाषा बनाने में कठिनाई होगी। आज इनका प्रयोग किया जाए तो प्रयोग करने वाले को दकियानूसी कहा जाएगा। सुरेंद्र प्रताप सिंह ने अपने आखिरी इंटरव्यू में एक तरह से इसी विचार को ही प्रतिपादित किया है। लेकिन 'दिनमान' के भाषिक प्रयोगों पर ध्यान देने से यह बात साफ़ हो जाती है कि उसका मकसद हिंदी को गढ़ना, उसे आगे बढ़ाना और उसे नई शैली के साथ प्रचलित कराना भी था।

दरअसल 'दिनमान' को अंग्रेज़ी की मशहूर पत्रिका 'टाइम' का हिंदी संस्करण बनाना था। अज्ञेय ने नवंबर 1964 में जब 'दिनमान' को बतौर हिंदी की 'टाइम' मैगज़ीन निकालने की चुनौती स्वीकार की, तब उनके सामने 'दिनमान' को गढ़ने की दृष्टि तो थी; उनके दिमाग में हिंदी की 'टाइम' मैगज़ीन भी थी। लेकिन वे सुविधाएँ नहीं थीं जो टाइम्स समूह के दूसरे अंग्रेज़ी पत्रों और पत्रिकाओं को दी गई थी। अज्ञेय जानते थे कि सीमित संसाधनों में 'दिनमान' बतौर 'टाइम' मैगज़ीन कैसे निकाली जा सकती है। उन्हें पता था कि भाषाई स्तर पर 'दिनमान' को कुछ खास कर दिखाना होगा। यह उनकी दृष्टि ही थी कि वे फणीश्वरनाथ रेणु से बिहार की परिस्थितियों पर रिपोर्ताज लिखवा सके। चाहे 1967 का सूखा हो या फिर बाद के दौर की भयानक बाढ़, रेणुजी ने 'दिनमान' के लिए अप्रतिम रिपोर्ताज लिखे, जिन्हें बाद में 'ऋणजल-धनजल' नाम से संकलित किया गया है। रेणु का यह लेखन उस दौर की पत्रकारिता ही थी। लेकिन यह पत्रकारिता आज हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है जिसे साहित्य जगत भी पूरे आदर के साथ देखता

है। कहना न होगा कि तब की यह पत्रकारिता आज के दौर में पत्रकारिता की बजाय साहित्यिक लेखन की तरह याद और समादृत की जाती है।

''निर्वाक् दुख, शब्दातीत शोक''—'दिनमान' के 14 जनवरी, 1966 के अंक के कवर पर यह शीर्षक प्रकाशित हुआ है। तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री की मौत पर 'दिनमान' में ही ऐसा शीर्षक देखा जा सकता था, आज के दौर में किसी अखबार या पत्रिका में ऐसे शीर्षक की कल्पना ही बेमानी है। यहाँ पर मनोहर श्याम जोशी के शब्दों को उधार लेते हुए एक बार फिर कहना पड़ेगा कि ऐसा नहीं कि अज्ञेय 'दिनमान' में खिलंदड़ भाषा का प्रयोग नहीं करते थे। ऐसा होता था लेकिन वह सब जोशी जी के नाम पर होता जिसे 'दिनमान' के पृष्ठों पर बखूबी देखा जा सकता है। इसके लिए 10 जनवरी, 1971 के अंक में प्रकाशित एक शीर्षक को देखा जा सकता है ''संगीत सम्मेलनों से कटता कानसेन।'' कितना ज़बर्दस्त शीर्षक है। इसके तहत संगीत सम्मेलनों से गायब होते रसिक श्रोताओं पर टिप्पणी की गई है। लेकिन एक तथ्य साफ़ है कि 'दिनमान' के पृष्ठों पर अगर गंभीर और मौन समझे जाने वाले अज्ञेय ने खिलंदड़ी भाषा का इस्तेमाल किया तो इसका खास मतलब है। मतलब यह कि वे खुद पत्रकारिता में भाषा की रवानी को स्वीकार करते थे।

द्वारा जयप्रकाश, दूसरा तल, निकट शिवमंदिर
एफ-23 ए, कटवारिया सराय,
नई दिल्ली -110016
uchaturvedi@gmail.com

33 भाषा प्रकार्यों के अधुनातन संदर्भ और हिंदी

• *डॉ. कविता वाचक्नवी*

• सामाजिक भाषा विज्ञान (Socio-Linguistics), हिंदी भाषा एवं हिंदी साहित्य का अध्ययन किया है।
• फ्रीलांस लेखिका (Freelance Writer)
• अनेक सम्मेलनों में भाग लिया है, हाल ही 2012 में आपने यूरोपीय संगोष्ठी, वय्यादोलिद, स्पेन (15-17 मार्च) में आयोजित संगोष्ठी में सक्रिय रूप से भाग लिया है।
• आपको भारतीय संस्कृति और समाज एवं पत्रकारिता में रुचि है।
सम्मान—हिंदुस्तानी अकादेमी, भारत द्वारा स्वर्ण पदक।
• अक्षरम आईटी सम्मान, नई दिल्ली।
• कर्पूर वसंत सम्मान।

प्रकाशन—समाज भाषा विज्ञान : रंग शब्दावली : निराला काव्य : 2009, कविता की जातियता : 2009, हिंदुस्तानी अकादेमी, मैं चल तो दूँ (कविता संग्रह) : 2005, सुमन प्रकाशन, महर्षि दयानंद और उनकी योग-निष्ठा : 1984।

स्त्री शक्तीकरण के विविध आयाम : 2004, गीता प्रकाशन।

पृथ्वी पर इस समय बोली जानेवाली भाषाओं की संख्या लगभग 7 हज़ार है। इनमें से आधी भाषाओं का इस शती के अंत तक समाप्त हो जाना लगभग तय होने की सीमा तक संभावित है। भाषाओं के नष्ट होने की इस प्रक्रिया को साधारणत: वैश्वीकरण-भूमंडलीकरण के साथ जोड़कर देखा जाता है। साथ जोड़कर इस हद तक देखा जाता है कि विनष्टि की इस प्रक्रिया का लगभग सारा आरोप उस पर ही है।

सभ्यता, समाज और संस्कृति पर वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों की चर्चा बड़े ज़ोर-शोर से और मुख्य संहारक के रूप में होती है। यद्यपि वैश्वीकरण का सकारात्मक पक्ष यह भी है कि वह खुले बाज़ार और स्पर्धा में अपनी गुणवत्ता, नियोजन, मुक्त-स्रोत संसाधनों के खुले प्रयोग, शक्ति, सामर्थ्य व बचाए रखने की तत्परता से जुटे होने के अवसर देता है। भाषा के संदर्भ में कहें तो आज इस बाज़ार द्वारा विकसित संसाधनों द्वारा किसी पिछड़े से पिछड़े स्थान पर 5 से 50 लोगों तक में बोली जाने वाली भाषा तक को सहेजा जा सकता है और डिजिटल टेक्नोलॉजी के द्वारा वह भाषा विश्व ध्वनि बन सकती है एवं वैश्विक समुदाय तक पहुँच सकती है।

अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ साइंस (AAAS) के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर अभी गत दिनों भाषाओं के अंतिम प्रयोक्ता तक पहुँचने के अभियान में जुटे हैरीसन बताते हैं कि उन्होंने ऐसे 8 भाषा-समुदायों के अंतिम प्रयोक्ताओं तक पहुँचकर उन भाषाओं के डिजिटल ऑडियो शब्दकोशों का निर्माण किया है। इन उच्चरित शब्दकोशों में इन 8 भाषाओं के 32 हज़ार से अधिक लुप्तप्राय शब्दों को उनके अंतिम इने-गिने प्रयोक्ताओं की अपनी आवाज़ में सुरक्षित किया गया है और कुछ तो ऐसे हैं कि उस भाषा समुदाय के एकमात्र प्रयोक्ता हैं जिन्होंने अपनी आवाज़ में इस शब्दकोश के निर्माण में साथ दिया है।

भाषाओं और इन माध्यमों से किसी सभ्यता/ संस्कृति को सुरक्षित कर लेने की इस प्रक्रिया द्वारा आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक मरणासन्न भाषा/बोली बच ही जाएगी किंतु इतना अवश्य है कि यह प्रक्रिया किसी भाषा-समुदाय के पास सुरक्षित ज्ञान को नष्ट होने देने की स्थिति को चुनौती अवश्य देगी और कुछ सीमा तक टाल भी देगी। अभियान में जुटे वैज्ञानिकों ने टालने अथवा रोकने की प्रक्रिया के लिए अपनाए गए तरीकों व संसाधनों का खुलासा करते हुए बताया कि वे भाषा-समुदायों को इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का प्रयोग व सोशल नेटवर्किंग साईट्स पर परस्पर संवाद करने की युक्तियाँ अपनाने के लिए अधिकाधिक प्रेरित करते हैं। पारस्परिक संवादों की दृष्टि से प्रयोग की गई भाषा स्वत: ही कोषों के निर्माण का कारक बन जाती है।

भाषा-विलुप्ति के सही-सही आँकड़े बताने वाली उस सूची को भारतीय भाषाओं के संदर्भ में ज़रा ध्यान से देखा जाना समय की माँग के अनुरूप होगा।

(देखने के लिए यहाँ जाएँ—http://www.unesco.org/culture/languages-atlas/en/atlasmap.html)

यूनेस्को द्वारा जारी विलुप्त हो रही भाषाओं की इस सूची में भारत की भाषाओं और बोलियों का स्थान सबसे ऊपर है क्योंकि भारत की 198 भाषा/बोलियाँ इस सूची में हैं।

रही हिंदी के प्रयोक्ताओं की बात तो भारत में हिंदी को प्रथम भाषा के रूप में प्रयोग करने वाले लोग कुल आबादी का 43 प्रतिशत है और द्वितीय भाषा के रूप में प्रयोग करने वाले 27 प्रतिशत। इसमें उर्दू बोलने वालों का 5 प्रतिशत और भी जोड़ा जा सकता है। (वैसे ऐसे प्रतिशत के आँकड़े भारत में सही-सही निकालना बहुत कठिन है, बहुभाषिकता के चलते और सही-सही आकलन की कोई सटीक प्रक्रिया न होने के कारण भी)।

विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के आकलन से हिंदी का दूसरा ही चित्र उभरता है। 1999 के आकलन के अनुसार बोली जाने वाली भाषा के रूप में हिंदी का विश्व में दूसरा स्थान था।

जबकि 2011 के आँकड़ों के अनुसार मंदारिन व अंग्रेज़ी (तथा कई आँकड़ों में स्पैनिश भी) के पश्चात् हिंदी तीसरे अथवा चौथे स्थान पर है।

जो भी हो, सभी जानते हैं कि अपने संख्याबल के कारण हिंदी का बाज़ार विश्व के बड़े बाज़ारों में एक है। यही वे कारण हैं कि राष्ट्रपति ओबामा के शपथ ग्रहण के पश्चात् दिए गए अभिभाषण को अमेरिकी दूतावास हिंदी में अनूदित करता है और जनसंपर्क विभाग के लेटरपैड पर भी उस अनूदित वक्तव्य को प्रकाशित किया जाता है।

व्यावसायिकता में मची होड़ व संख्याबल की माँग के कारण हिंदी का ऐसा परिदृश्य दिखता है कि देशी-विदेशी कंपनियाँ उपभोक्ताओं को लुभाने के लिए मानो उनकी भाषा के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में लगी हैं। जो कम-से-कम यह तो सिद्ध करता ही है कि वैश्विक धरातल पर व्यावसायिक हिंदी का आधार ठोस व गतिमूलक है। हिंदी का यह नवीन व्यावसायिक रूप उस परंपरागत हिंदी से इन अर्थों में थोड़ा भिन्न है कि अपने प्रकार्यों व नवीनतम संदर्भों के अनुरूप हिंदी ने स्वयं को सक्षम प्रमाणित करने के साथ-साथ थोड़ा बदला भी है। उसका संरचनात्मक ढाँचा वैविध्यपूर्ण और लचीला तो है किंतु अभी नवीनतम व्यावसायिक अवधारणाओं के अनुरूप उसे अपने को बाज़ार में बचाए व टिकाए रखने के क्रम में बड़ी यात्रा तय करनी है।

बाज़ार में टिके रहने की अनिवार्यताओं के साथ जोड़कर व्यावहारिक धरातल पर अन्य भाषा समुदायों की स्थितियों के साथ रखकर तुलनात्मक वस्तुस्थिति से भी अवगत होना अनिवार्य है। (http://www.internetworldstats.com/stats7.htm).

स्पष्ट दिखाई देता है कि विश्व की शीर्ष 5 भाषाओं में स्थान बना चुकी भाषा वर्तमान संदर्भों में संसाधनों के उपयोग व उन पर अपनी उपस्थिति की दृष्टि से तुलनात्मक स्तर पर विश्व की दूसरी भाषाओं से कितनी पीछे है। आधुनिक संसाधनों के प्रयोक्ताओं की दृष्टि से शीर्ष 10 भाषाओं में उसका स्थान कहीं नहीं है जबकि पुर्तगीज़ जैसी भाषा के प्रयोक्ताओं ने स्वयं को चौथे स्थान पर स्थापित कर लिया है। इस 'स्थापित करने' को आप इस लेख के प्रारंभ के साथ जोड़ कर देखेंगे तो स्थिति बड़ी भयावह दिखाई देती है और वैश्विक धरातल पर हिंदी भाषा के समृद्ध व सुदृढ़ होने के तर्क/प्रमाण यकायक धराशाई हो जाते हैं।

वस्तुतः प्रयोक्ता धारित क्रम का यह अंतर बोली जानेवाली भाषा व प्रकार्यात्मक भाषा की चुनौती के साथ-साथ लिखित व उच्चरित भाषा की स्थिति को अधुनातन संदर्भों में व्याख्यायित करता है। इन अधुनातन संदर्भों में भविष्य में उसका स्थान तय करने वाले आँकड़ों के आकलन के साथ भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इसका रूप व स्थान इस चित्र से स्पष्ट समझना संभावित होगा।

विश्व के ग्राम बनते जाने के इस कालखंड में ठीक यहीं से वैश्विक धरातल पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की अधुनातन प्रविधियों (मेथडोलॉजी) और उनकी अपरिहार्यता का पक्ष जुड़ता है। अन्य भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन करने के लिए आनेवाले विद्यार्थी का लक्ष्य व प्रयोजन जितने अर्थों में बदलता जाएगा, उतने अर्थों में भाषा-शिक्षण की नवीनतम तकनीकों व संसाधनों की माँग भी बदलती चली जाती है। कुछ समय पूर्व तक अन्य भाषा के रूप में इसका अध्ययन करने आनेवाले विद्यार्थी के संभावित कार्यक्षेत्र अध्यापन, अनुवादक आदि बनने तक के लक्ष्यों तक सीमित थे। किंतु आज इस आधुनिक परिदृश्य व आवश्यकताओं के समय एक ही भौगोलिक व संवैधानिक क्षेत्र में विविध भाषा समुदायों की उपस्थिति व उन से जुड़े अनेकानेक घटनाक्रमों के चलते विविध देशों में अन्य भाषा समुदायों से जुड़ी भाषाई आवश्यकताओं व संबंधित अध्ययन क्षेत्रों का विस्तार हुआ है और वस्तु के रूप में भाषा के अध्ययन की माँग का भी। अन्य भाषा के अध्येता के लिए बिना सामाजिक दबाव के भाषा-अध्ययन का सूत्र इन अर्थों में वहाँ

प्रासंगिक नहीं रहता कि वर्तमान वैश्वीकरण में संकुचित हुए विश्वग्राम की व्यावसायिक, संवैधानिक, सामाजिक व संरक्षण संबंधी अपरिहार्यताएँ उक्त तथ्य पर भारी पड़ती हैं। ये ही उसके भाषा शिक्षण की विधि व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की अपरिहार्यता का भी निर्धारण करती हैं।

जहाँ सामाजिक वैश्विक स्थितियाँ अन्य भाषा के रूप में हिंदी के अध्ययन के पक्ष के रूप में विकसित हुई हैं, वहीं इसका एक पक्ष यह भी है कि बाज़ार के हित के लिए भाषाओं की संख्या जितनी कम हो, उतना बेहतर रहता है। और भाषाओं का कम होना ही नहीं अपितु एक ही भाषा में शब्दों के कम-से-कम विकल्प और पर्यायवाची उसके हित में होते हैं। इसी का परिणाम है कि बाज़ार की शक्तियों के प्रभाव में भाषा के अनेकानेक शब्द विलुप्त होते चले जा रहे हैं आधुनिक समाज का शब्द-भंडार कम होता चला जा रहा है। दूसरी ओर नए संसाधनों व कार्यक्षेत्रों से जुड़े नए शब्द शब्दावली में आ रहे हैं। कह सकते हैं कि व्यावसायिकता भाषा के सामाजिक व सांस्कृतिक पक्ष को संकुचित कर रही है। भाषाओं की विलुप्ति का संकट इसी का परिणाम है। ऐसे में सब से कारगर (या भले कुछ ही कारगर) युक्ति के रूप में इन आधुनिक संसाधनों को बाज़ार व संसाधनों से जुड़ी शब्दावली से इतर अन्य क्षेत्रों की भाषा व प्रयुक्तियों को बचाने के काम में प्रयोग करना ही संभवत: इस क्षरण प्रक्रिया की तोड़ है। भले ही यह कोई विश्वसनीय वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं माना जाता होगा किंतु डिजिटल संसाधनों, संचार माध्यमों, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व इन सब के द्वारा भाषा व लिपियों के अधिकाधिक पक्षों का बहुतायत संयोजन व प्रयोग एक बड़ी आशा जगाता है; अन्यथा बढ़ते बाज़ार व 'मल्टीनेशनल्स के बावजूद वे क्या कारण हो सकते हैं कि विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन की सुविधा को समाप्त अथवा कम किया जा रहा है और बढ़ते बाज़ार व संसाधनों के बावजूद छात्र कम हो रहे हैं जबकि विज्ञापन की भाषा का सिद्धांत ही है कि वह मूलत: बाज़ार की स्थानीयता व उपभोक्ताओं की संस्कृति व प्राथमिकताओं को वरीयता देती है! उत्पादन व प्रबंधन की प्रणाली में स्थानीय शब्दावली का प्रयोग विभिन्न औद्योगिक प्रयुक्तियों को समृद्ध करने की सामर्थ्य भी रखता है।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि हिंदी का परिदृश्य इन दो ध्रुवों के बीच बसे बाज़ार की निर्भरता व अपेक्षाओं की अनुकूलता के साथ ही विकसित करना होगा। इस अनुकूलन के लिए कंप्यूटर तकनीकों को साधने व उस पर समृद्ध होकर अपना ग्लोबल रूप विकसित करने की स्थितियों की माँग दर्शाता है। भाषा-प्रौद्योगिकी का यह अस्त्र सामाजिक व सांस्कृतिक भाषा-रूपों को बचाए रखने की युक्ति हो सकती है। रोज़गार की अपार संभावनाओं वाले इस क्षेत्र में हिंदी के लिए अभी लंबा मार्ग तय करना शेष है। यह भी सच है कि हिंदी ने कंप्यूटर अनुप्रयोगों की समस्त बाधाओं को मूलत: पार कर लिया है। समस्त तकनीकी प्रकल्प कैसे व कब संभव हुए, उनके उल्लेख को एक ओर करते हुए यदि आज का आकलन करें तो कंप्यूटर पर हिंदी के अनुप्रयोग से जुड़ी लगभग समस्त बाधाएँ निरस्त हो चुकी हैं। कंप्यूटर निर्माण से जुड़ी विदेशी कंपनियों तक ने अब इस संसाधन को हिंदी व भारतीय भाषाओं में कार्य करने में सहज, बोधगम्य व बिना किसी अतिरिक्त मूल्य के तैयार किया है। ऐसे-ऐसे उच्च तकनीक वाले समुन्नत सॉफ़्टवेयर (यूनिकोड, मशीनी अनुवाद, ओपन टू टाइप फ़ॉन्ट्स, ग्राफिक यूज़र इंटरफ़ेस, ओ.सी.आर., प्रिडिक्टीव टेक्स्ट इनपुट, ऑफिस सूट, टेक्स्ट टू स्पीच, सर्च इंजन, ट्रांसलेटड सर्च, लिप्यंतरण, स्पेल चेकर, ब्राउज़र व ऑपरेटिंग सिस्टम में भाषा-चयन की सुविधा, सोशल नेट्वर्किंग तक में भाषा चयन की सुविधा आदि) निशुल्क संभव हो गए हैं। बस कहीं भी, कभी भी हाथ में स्मार्टफ़ोन, लैपटॉप या कंप्यूटर आए और एक बच्चा भी तत्परता से झट हिंदी में काम कर सकता है किंतु खेद का विषय है कि समस्त संसाधनों से युक्त, हिंदी-भाषा समाज के प्रयोक्ता ही अभी अपने नेट के क्रियाकलापों में हिंदी के प्रयोग से अचकचाते हैं। संसाधन की दृष्टि से भाषाई कंप्यूटिंग को संभव व प्रचारित करने की मुख्य दो चुनौतियाँ थीं— पहली यह कि तकनीक सरल, सुबोध, सुग्राह्य और सुलभ हो (जितने अधिक प्रयोक्ता होते उतना ही यह अधिक संभव होता) तथा दूसरी यह कि अधिकाधिक लोग (अपितु समूचा भाषा समाज) उस तकनीक का प्रयोग सुनिश्चित करें। किसी भी प्रौद्योगिकी के बने रहने की अनिवार्यता उसके विस्तार में निहित रहती है।

हिंदी-भाषा समाज के लिए कंप्यूटर के संसार में शब्दकोश,

समांतर कोश, अनुवाद की सुविधा, पारिभाषिक शब्दावलियाँ, लिप्यंतरण की सुविधा, यूनिकोड (इनस्क्रिप्ट/फ़ोनेटिक/रेमिंगटन, ऑनलाइन/ऑफ़लाइन), यूनिकोड से पूर्व के लगभग प्रत्येक फ़ॉण्ट के लिए (और उर्दू-देवनागरी-उर्दू अथवा बर्मी-देवनागरी-बर्मी इत्यादि जैसे भी) फ़ॉण्ट परिवर्तक (कन्वर्टर), ब्लॉग संकलक (एग्रेगेटर), दृष्टिबाधितों के लिए देवनागरी में तकनीकी सुविधाएँ (यूनिकोड से ब्रेल>यूनिकोड रूपांतरण), हिंदी के लगभग सभी समाचार-पत्र, हिंदी की लगभग सभी बड़ी पत्र-पत्रिकाएँ, चर्चा समूह/डिस्कशन-फोरम, हिंदी में विकीपीडिया, साहित्य का अद्‌भुत संग्रह (महात्मा गांधी अ.हि.वि.वि. द्वारा अकूत साहित्य तथा कविताकोश द्वारा अमीर खुसरो से अद्यतन लगभग 60 हज़ार कविताओं का संचयन, व्यक्तिगत प्रयासों व नेट पत्रिकाओं का इनसे अतिरिक्त), ट्रांसलेटड सर्च व ट्रांसलिट्रेटेड सर्च सुविधा, वाचांतर, वर्तनी शुद्धीकरण यंत्र, ऑनलाइन पुस्तकालय, लगभग 30 हज़ार स्वतंत्र निशुल्क ब्लॉग (जिनमें विज्ञान, साहित्य, गणित, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, साहित्य, भौतिकी, इतिहास, खगोलशास्त्र से लेकर बच्चों के विषय, पाककला व कामशास्त्र तक पर धड़ल्ले से खूब लिखा जा रहा है), मुहावराकोश तथा अत्यंत दुर्लभ पुस्तकों की पूरी-की-पूरी स्कैन प्रतियाँ, नए प्रकाशनों की जानकारी, देश-विदेश में इंटरनेट के माध्यम से हिंदी पुस्तकों की खरीद की व्यवस्था, हिंदी में विज्ञापन जैसी अनेक सुविधाएँ सरलता से उपलब्ध हैं— और आश्चर्य की बात यह भी है कि लगभग ये सभी निशुल्क हैं। मात्र 'स्पीच टू टेक्स्ट' की सुविधा सशुल्क होने के अतिरिक्त सहज उपलब्ध है। प्रयोक्ता, क्षेत्र और परिवेश के अनुसार भाषा प्रयोग में भिन्नता के नए रोचक तथ्य संकलित करने हों तो किसी सोशल नेटवर्किंग साईट (यथा फेसबुक आदि) पर हो रहे भाषा प्रयोगों पर दृष्टि दौड़ाई जा सकती है : द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, कोड मिश्रण, कोड परिवर्तन, पिजिन, क्रियोल, भाषाद्वैत जैसी प्रक्रियाओं के उदाहरण दिख सकते हैं। और तो और बड़े-बड़े संस्थागत प्रयासों को धत्ता बताते हुए इन मुक्त संसाधनों के प्रयोग द्वारा कुछ लोगों ने अन्यभाषा-शिक्षण के क्षेत्र में अपने एकल बल पर ऐसे कीर्तिमान व उपलब्धियाँ अर्जित कर ली हैं कि उन पर चर्चा करने व उदाहरण देने के लिए अलग से एक आलेख की आवश्यकता होगी।

किंतु व्यवसाय व बाज़ार की शक्तियों को टक्कर देने की दृष्टि से इतना-भर पर्याप्त नहीं है। यह यात्रा, कुल यात्रा के एक पक्ष का छठा-आठवाँ भाग है। तकनीकी दृष्टि से हिंदी को कंप्यूटर की चुनौती व प्रयोक्ता-सापेक्ष होने की यात्रा में बहुत आगे जाना अभी शेष है। तभी बाज़ारवाद से उपजी संहारक शक्ति को परास्त करने का अस्त्र बाज़ार से ही आएगा। उसके पश्चात् आवश्यकता होगी उस अस्त्र को प्रयोग करने के कौशल, साहस व भावना की। वस्तु भाषा के रूप में ही सही, क्या आप-हम हिंदी को इस अभियान में विजेता बनाने का उपक्रम नहीं करेंगे ?

लंदन, यू.के.
kavita.vachaknavee@gmail.com

34 पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन

अनीता गांगुली

पहली अप्रैल को मन में अजीब भय लिए मैं (लेखिका उन दिनों फ़िनलैंड के हेलीसिंकी विश्वविद्यालय के भारत विद्या विभाग में अतिथि प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत थी।) अकेली पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन (4 अप्रैल से 8 अप्रैल, 1996) के लिए फ़िनएयर से रवाना हुई। मेरा उद्देश्य पहले न्यू यॉर्क में होनेवाले विश्व हिंदी समिति के कार्यक्रमों में शामिल होना था। चूँकि तिथि परिवर्तन की सूचना मुझे काफ़ी देर से मिली थी। (पहले यह सम्मेलन 28 मार्च से 1 अप्रैल, 1996 तक था) मेरे ही जैसे हज़ारों लोग त्रिनिदाद की ओर जा रहे थे, ऐसी हालत में सीधे टिकट नहीं मिले। मुझे मयामी होते हुए जाना पड़ा। 3 अप्रैल को जब मैं न्यू यॉर्क के लागाडिर्या एयरपोर्ट पर पहुँची तो काफ़ी भारतीय दिखाई दिए जो हिंदी में बातें कर रहे थे। उसी पंक्ति में मैं भी खड़ी हो गई। वे सभी त्रिनिदाद के लिए सामान बुक कर रहे थे। राहत की साँस ली, सोचा मैं अकेली नहीं हूँ। कम-से-कम यहाँ से इन लोगों का साथ तो होगा।

जहाज़ दोपहर 2.20 बजे मयामी पहुँचा। वहाँ से 4.40 बजे पोर्ट ऑफ़ स्पेन के लिए अमेरिकन एयरलाइंस लेनी थी। इसका मतलब था कि लगभग 3 घंटे पुन: वहाँ रुका जाए। दुकानें देखते-देखते अंदर बाहर होते हुए तथा फ़ोटो लेते हुए समय का पता ही नहीं चला। मुझे वहाँ करीब 40 बंधुजन मिले जो भारत से हिंदी के महायज्ञ में शामिल होने जा रहे थे। मैं जाने-पहचाने चेहरे को तलाशने लगी तो एन.सी.आर.टी. के डॉ. बाछोतिया जी मिले जो मेरे पूर्व परिचित थे। बाद में सबसे परिचय हुआ। हिंदी की बातचीत, हिंदी का माहौल, हिंदी का हाहाकार काफ़ी समय के बाद सुनने को मिला। हिंदी प्रेमियों से भरा जहाज़ ठीक समय पर रवाना हुआ। पुन: बादलों को पार कर हम बादलों के ऊपर पहुँचे। स्थानीय समय रात्रि 9.13 को पोर्ट ऑफ़ स्पेन की ज़मीन पर जैसे ही हमारा जहाज़ उतरा, लोगों ने करतल ध्वनि से देश का स्वागत किया। उतरने से पहले का दृश्य स्वर्गिक था। मैंने उतरते हुए जहाज़ से रात्रि का सौंदर्य पहली बार अनुभव किया। जगमगाता पोर्ट ऑफ़ स्पेन, त्रिनिदाद और टोबैको की राजधानी चमक रही थी। चमकती

जन्म : कोलकाता (1954)

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत, हिंदी) भाषा विज्ञान में डिप्लोमा, पी.एच.डी. हिंदी एवं बँगला क्रियाएँ (आगरा विश्वविद्यालय)

व्यवसाय : दस वर्षों तक हिंदी-शिक्षण सामग्री का निर्माण। कई प्रांतों के पाठ्य पुस्तकों के निर्माण के साथ उराँव क्षेत्र में जाकर आदिवासी कुडुख बोली पर कार्य किया तथा पहली, दूसरी एवं तीसरी कक्षा के लिए कुडुख में पाठ्यपुस्तकों को बनाने में सहायता प्रदान की। मेघालय, मणिपुर एवं नागालैंड में क्षेत्र सर्वेक्षण का भी कार्य किया। 20 वर्षों से हिंदीतर भाषी राज्यों (तमिल, तेलुगु, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, गोवा, पांडिचेरी एवं अंडमान निकोबार) के हिंदी अध्यापकों के अध्यापन में कार्यरत। इसी अध्यापन के तहत भारत सरकार द्वारा फ़िनलैंड भेजा गया। जहाँ तीन वर्ष तक (1994-97) हेलसिंकी विश्वविद्यालय के छात्रों को बँगला, हिंदी एवं कुडुख भाषाओं का अध्यापन किया तथा भारतीय संस्कृति से परिचय करवाया। हिंदी से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए स्वीडन, नोर्वे, डेनमार्क, रूस, पोलैंड एवं इटली का दौरा किया। 1996 में फ़िनलैंड विश्वविद्यालय की ओर से त्रिनिदाद में हुए पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लिया।

लेख : हिंदी एवं भाषाविज्ञान से संबंधित प्रकाशित एवं अप्रकाशित लगभग 100 लेख।

प्रकाशित पुस्तकें :

- हिंदी एवं बंगला की सहायक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन
- हिंदी फिनिश शब्दकोश
- सरल हिंदी व्याकरण (सह लेखक)
- फ़िनलैंड जैसा मैंने देखा
- बरसात की एक शाम
- कहावतों की संस्कृति (तुलनात्मक अध्ययन)

बिजली तारों जैसी लग रही थी। कुछ देर के लिए भ्रम हुआ कि आकाश नीचे और हम ऊपर हैं।

सम्मेलन के उद्‌घाटन समारोह में सबसे पहले पादरी, पंडित एवं मौलवी ने क्रमशः बाइबल, वेद और कुरान की पंक्तियों से श्रोताओं का स्वागत किया। उस समारोह में मंच पर वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय, त्रिनिदाद के विदेश मंत्री, हिंदी निधि के श्री चनका सीताराम, यू.के. के भारतीय उच्चायुक्त, भारत की ओर से शिष्टमंडल के नेता, अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल माननीय माता प्रसाद जी उपस्थित थे। त्रिनिदाद के प्रधानमंत्री ने उद्‌घाटन भाषण देते हुए सभी प्रतिनिधियों एवं प्रतिभागियों का स्वागत किया। भोजन के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ।

पाँच अप्रैल से सम्मेलन का दौर चला। साहित्य और भाषा के सत्र समानांतर ही चले। सत्रों के आरंभ होने से पहले सुबह ही पुस्तक प्रदर्शनी का उद्‌घाटन हुआ। उस प्रदर्शनी में विदेशी भाषाओं में अनूदित गोदान की एक-एक प्रतियाँ भी रखी गई थी। साथ ही कंप्यूटर सोफ़्टवेयर प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी।

उसी रात्रि को हिल्टन होटल में 18 हिंदी विद्वानों को सम्मानित किया गया, जिनमें से पाँच विद्वान भारत के थे—डॉ. नगेंद्र, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. लोकेश चंद्र, डॉ. रामचंद्र देव। यह होटल एक पहाड़ी के ऊपर स्थित था और रात्रि का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। यह कार्यक्रम रात्रि के 12 बजे तक चलता रहा।

छः अप्रैल को सभी सत्रों के बाद शाम सात बजे से कवि सम्मेलन का आयोजन था, जिसकी छोटी-सी झाँकी यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ। कविता-पाठ करने वालों में थे— श्रीमती कमला सिंधवी, डॉ. कमलेश सिंह, डॉ. रमासिंह, वेनेज़ुएला के भारतीय राजूदत श्री वीरेंद्र पाल सिंह, दिल्ली की डॉ. कमल कुमार, लखनऊ की श्रीमती मधुरिमा सिंह तथा श्रीमती सुधा आदि। सूरीनाम के डॉ. अदीन ने सूरीनामी कविता पढ़ी तथा कुछ बूझौली छेड़ी। लंदन के रुपर्ट स्नैल की ब्रजभाषा में पढ़ी निम्नलिखित पंक्तियाँ दोहराने योग्य थीं—'रोमन कबहुँ न पाए है नागरी छवि अभिराम'। दिल्ली विश्वविद्यालय की डॉ. विनीता अग्रवाल की कविता मर्मस्पर्शी थी एवं प्रो. आदेश की निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय रहीं—

मैं जानता हूँ तुम मुझे सुख नहीं दे सकते दुख दो
मैं जानता हूँ तुम प्यार नहीं दे सकते घृणा दो
जो भी दो संपूर्ण दो...।

बाछोतिया जी की 'सागौन और बाँस' की कविता बड़ी सहज भाव लिए रही। फ़ीजी के विनोद शर्मा की कविताएँ वेदनापूर्ण थीं—

जहाँ बहरों की बस्ती हो।
वहाँ फरियाद क्या होगी।

कुल मिलाकर 30-40 कवियों ने कविताएँ पढ़ीं। कविता पाठ के दौरान मनोरंजनार्थ सूरीनाम की नौटंकी प्रस्तुत की गई तथा उसको सरस बनाने के लिए त्रिनि-डबल्स (एक प्रकार का अल्पाहार) दिया गया। इस प्रकार हम मन का भोजन और पेट का भोजन दोनों ग्रहण करते रहे।

अगले दिन शाम को प्रोफ़ेसर आदेश जी ने अपने आश्रम में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया था। आदर्श जी त्रिनिदाद में हिंदी के पर्याय के रूप में जाने जाते हैं। कार्यक्रम के पश्चात वहीं पर भारतीय भोजन की व्यवस्था थी—राजमा, दाल, चावल तथा दालपूरी (रोटी के अंदर दाल भरकर बनाया गया था।)

अब मैं यहाँ भाषा संबंधी आलेखों का वर्णन करना चाहूँगी। प्रथम दिन के प्रथम सत्र के प्रथम वक्ता थे डॉ. विद्यानिवास मिश्र। उन्होंने कहा था, ''हिंदी के बाहर के लोग समझते हैं कि हिंदी क्या है?'' उनके पश्चात श्री फारुक हसन जो दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि थे ने कहा, ''अगला विश्व हिंदी सम्मेलन गांधी जी की याद में दक्षिण अफ्रीका में होना चाहिए।'' फिर मॉरीशस के प्रतिनिधि मंडल के अध्यक्ष श्री धर्मनाथ ज्ञाननाथ ने अपने विचार प्रकट किए। उनके भाषण पर टिप्पणी करते हुए सूरीनाम के एक प्रतिनिधि ने कहा, ''गयाना और त्रिनिदाद को सूरीनाम से शिक्षा लेनी चाहिए। सूरीनाम में तो हम हिंदी को जीवित रखते हैं, उसको व्यवहार में लाते हैं।''

डॉ. ग्लेंडा माइकल सिंह ने सिंगापुर में हिंदी भाषा के अनुरक्षण

पर समाज भाषा वैज्ञानिक आलेख प्रस्तुत किए तथा मारिया नादिर ने गयाना में हिंदी के विकास पर अपने विचार व्यक्त किए। सूरीनाम के प्रोफ़ेसर ज्ञान अदीन ने अपने आलेख 'सूरीनाम में हिंदी और संस्कृत' में सरनामी हिंदी को हिंदी की नई बोली कहा। क्योंकि जब कोई भाषा मर सकती है तो कोई भाषा जन्म भी ले सकती है।

बेल्जियम की डॉ. कमलेश सिंह ने 'विदेश में हिंदी अध्ययन-अध्यापन' तथा मैंने स्वयं 'फ़िनलैंड में हिंदी' पर आलेख प्रस्तुत किए। डॉ. दाउजी गुप्ता ने 'विश्व-जोड़ लिपि के रूप में हिंदी' की बात कही। डॉ. एम. के. गौतम ने 'हिंदी भारत और भारतवंशियों के बीच एक पुल है' और डॉ. अशोक श्रीवास्तव ने 'आप्रवासी भारतीय संस्कृति और भाषा अनुरक्षण' पर अपनी बात कही। डॉ. सत्येंद्र नाथ राय ने 'चिकित्सा विज्ञान को हिंदी में लिखना चाहिए' इस बात पर बल देते हुए कहा—

''अगर तुम न होते ये कुछ भी न होता।
ये बैठक न जमती ये उत्सव न होते।''

डॉ. हीरालाल बाछोतिया ने 'हिंदी की प्रकार्यात्मक भूमिका' एवं डॉ. राकेश वत्स ने 'संपर्क भाषा और संस्कृति' पर अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. सरिता बुधू का 'हिंदी चौराहे' पर तथा प्रो. लक्ष्मी नारायण दुबे का लेख 'त्रिनिदाद एवं टोबैको का हिंदी के लिए योगदान' काफ़ी अच्छे रहे।

सम्मेलन में भाषा, साहित्य एवं तकनीकी विषयों पर अनेकों लेख प्रस्तुत किए गए।

चूँकि इस सम्मेलन में बहुत से साहित्यकार लेखक और विद्वान उपस्थित थे जैसे डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, डॉ. गंगाप्रसाद विमल, हिमांशु जोशी, केदारनाथ सिंह, डॉ. गिरिराज किशोर, डॉ. कमल कुमार, डॉ. रमासिंह, डॉ. रामदयाल सक्सेना, अभिमन्यु अनत, डॉ. प्रदीप चौधरी, श्री गोविंद मिश्र, विनोद मिश्र एवं सूषम बेदी आदि पाठक अपने मनपसंद लेखक से मिल सके। इसलिए अंतिम दिन प्रात: लेखक-पाठक मिलन कार्यक्रम था, जिसका संचालन डॉ. विनीता जी कर रही थीं। इस कार्यक्रम में विशेषकर समय की कमी रही। कुल मिलाकर कहना पड़ा कि बहुत नहीं तो थोड़े से ही संतुष्ट होना पड़ा।

सबसे पहले पादरी, पंडित एवं मौलवी ने क्रमश: बाइबल, वेद और कुरान की पंक्तियों से श्रोताओं का स्वागत किया। उस समारोह में मंच पर वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय, त्रिनिदाद के विदेश मंत्री, हिंदी निधि के श्री चनका सीताराम, यू.के. के भारतीय उच्चायुक्त, भारत की ओर से शिष्टमंडल के नेता, अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल माननीय माता प्रसादजी उपस्थित थे। त्रिनिदाद के प्रधानमंत्री ने उद्घाटन भाषण देते हुए सभी प्रतिनिधियों एवं प्रतिभागियों का स्वागत किया। भोजन के बाद सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ।

अंतिम दिन समापन समारोह में प्रो. केन रामचंद्र ने सत्रों के बारे में विस्तृत टिप्पणी दी। चनका सीताराम जी ने सभी पहलुओं पर विशेषकर आर्थिक पहलुओं पर प्रकाश डाला। माननीय मंत्री श्री माता प्रसाद जी जो कि पूरे सम्मेलन में उपस्थित थे, ने इस सम्मेलन की प्रशंसा की और अपने भाषण की प्रथम पंक्ति में कहा ''आज पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन का समापन है, बल्कि यूँ कहिए इस महाकुंभ के महास्नान का दिन है।'' त्रिनिदाद राज्यसभा के अध्यक्ष श्री गणेश रामदयाल जी ने समापन भाषण तथा सबको सुरक्षित यात्रा एवं मधुर स्मृति का आशीर्वाद दिया।

भारत सरकार की भी इस सम्मेलन में सहभागिता रही। त्रिनिदाद के नागरिकों के लिए रामलीला तथा नौटंकी मंडली भी भारत सरकार द्वारा भेजी गई थी। भारत से बहुत अधिक संख्या में प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। यह बात अलग है कि दिल्ली स्थित लोग ही अधिक रहे। दिल्ली वालों को इसकी सुविधा भी प्राप्त होती है। सूरीनाम, गयाना और मॉरीशस से भी अधिक संख्या में प्रतिनिधि आए थे। निर्धारित सूचनाओं के अभाव में हर क्षण यही लगता था कि अब क्या होगा ? इन सबके बावजूद भी पारिवारिक माहौल रहा

चूँकि सम्मेलन में श्रोताओं का ध्यान रखते हुए अधिक वक्ता अंग्रेज़ी में ही बोले। अपने अंतिम दिन के भाषण में डॉ. सिंधवी जी ने कहा था ''मैंने ऐसा हिंदी सम्मेलन नहीं देखा, जहाँ अंग्रेज़ी का इतना अधिक प्रयोग हुआ हो, परंतु जो भी हो यह हिंदी के लिए हुआ है।'' आगे त्रिनिदाद की प्रशंसा में उन्होंने कहा ''सुंदर त्रिनिदाद सिंधु में दीये की तरह रख दिया।''

एक बात जो उन्होंने कही वह यह है ''इन पाँच दिनों में डायस्पोरा शब्द का इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि अगर इस शब्द को शब्दकोश में ले लें तो बड़ी उपलब्धि होगी।''

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अंतिम दिन सर्वसम्मति से कई प्रस्ताव पारित हुए। वास्तव में ये सभी नए नहीं थे। पुराने प्रस्तावों को भी दोहराया गया। जैसे—

1. विश्वव्यापी भारतवंशी समाज हिंदी को अपनी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करेगा।
2. विश्व हिंदी सम्मेलन का स्थायी सचिवालय तथा समिति का मॉरीशस में गठन करने एवं उसके त्वरित कार्यान्वयन के लिए एक अंतर सरकारी समिति का गठन किया जाए।
3. जहाँ भारतीय मूल/अप्रवासी भारतीय बसते हैं, वहाँ हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की जाए।
4. हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने के लिए माँग की जाए।
5. महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय स्थापित करने के निर्णय का स्वागत किया जाए।

इस प्रकार शाम को कार्निवाल के सुंदर सांस्कृतिक समारोह के साथ पाँच दिन का यह सम्मेलन समाप्त हुआ। देश-विदेश के हिंदी प्रेमी कैरिबियन सागर में स्नान कर वापस लौटे।

हैदराबाद, भारत
anitagangulyv954@gmail.com

विश्व हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में अतिथि विद्वान का वक्तव्य

35 जापान में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन : इतिहास, उपलब्धियाँ व स्मृतियाँ

● *प्रो. ताकेशी फुजिई*

जन्म : 16 मई, 1955 सप्पोरो होक्काइदो, जापान

शिक्षा : बी.ए., हिंदी विभाग, तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ (मार्च 1981), एम.ए., हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय (मार्च 1985), आसामी में सर्टिफिकेट, आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय (मार्च 1985), एम.ए., तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ (मार्च 1986)

कार्य–तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़, हिंदी विभाग में सहायक शिक्षक, वरिष्ठ शोध सहायक, प्राध्यापक, एसोशिएट प्रोफेसर, प्रोफेसर, दक्षिण, निदेशक (सेंटर फॉर डॉक्यूमेंटेशन 3 एरिया-ट्रंस्कल्चरल स्टडीज़) पदों को सँभाला (1986-2002)। तोक्यो विश्वविद्यालय में प्राध्यापक (1991), तोक्यो विमन क्रिशचन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक (1997-2012), चीबा विश्वविद्यालय में प्राध्यापक (1994-2003), स्कूल ऑफ़ ओरिएंटल ऐंड अफ्रीकन स्टडीज़, लंदन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग में रिसर्च फेलो (मार्च 1990-दिसंबर 1990), ब्रिटिश पुस्तकालय, लंदन तथा दिल्ली विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग में विदेशी शोध फेलो (फरवरी 1997-मार्च, 1997)

प्रकाशन : जापानी तथा अंग्रेज़ी में 5 पुस्तकें प्रकाशित। जापानी में हिंदी भाषा तथा साहित्य पर लगभग 15 अकादमिक पेपर।

सम्मान : 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन, न्यू यॉर्क में विश्व हिंदी सम्मान (2007)

(10 जनवरी, 2014 को विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित विश्व हिंदी दिवस समारोह में प्रस्तुत आलेख)

सन् 1868 में नई मेइजि सरकार की स्थापना हुई और जापान के इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हुआ जिसे 'मेइजि काल' के नाम से जाना जाता है। इस नई व्यवस्था के तहत यह महसूस किया गया कि जापान दुनिया से कट गया है और विश्व से संपर्क स्थापित करने की ज़रूरत है। इसके लिए नई सरकार ने अनेक लोगों को पश्चिमी देशों में पढ़ने-लिखने भेजा तथा वहाँ हो रहे नए-नए औद्योगिक परिवर्तनों की जानकारी जापान तक लाने की भरसक कोशिशें की हैं। ऐसे कामों के लिए विदेशी भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को देखते हुए सन् 1873 में हमारी यूनिवर्सिटी की नींव टोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय के रूप में डाली गई।

परिणामस्वरूप जापान में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया और तेज़ गति से आगे बढ़ने लगी। उस ज़माने में अक्सर यह नारा लगाया जाता था कि 'पश्चिमी देशों की ओर देखो, उन देशों से शिक्षा ग्रहण करो और अपने को विकसित करके मज़बूत बनाकर उन देशों से और आगे बढ़ते जाओ।' मेइजि सरकार के लिए यह नारा सिर्फ़ नारा नहीं था बल्कि एक नए जापान के निर्माण का प्रस्थान बिंदु था। सरकार ने राजनैतिक स्थिरता और सुदृढ़ आर्थिक आधार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समन्वित प्रयास शुरू कर दिए।

उन दिनों अमेरिका और इंग्लैंड कपड़े के निर्माण और निर्यात के बड़े केंद्र थे। जापान ने भी कढ़ाई-बुनाई उद्योग की ओर ध्यान देना शुरू किया। चूँकि जापान में अच्छे कपास का उत्पादन नहीं होता था। फलत: कपास प्राप्त करने के लिए बाज़ारों की खोज शुरू हुई। अमेरिका अपनी आंतरिक अशांति से जूझ रहा था और दुनिया में उन्नत किस्म के कपास के लिए मशहूर मिस्र देश जापान से बहुत दूर पड़ता था। फलत: जापान का ध्यान भारत में उत्पादित कपास की ओर गया। कपास ही नहीं और अन्य प्रकार के कच्चे माल जैसे पटसन लौह-अयस्क आदि के लिए भी भारत जापान के लिए महत्वपूर्ण होने लगा। इसको देखते हुए, सन् 1894 में जापान और ब्रिटिश भारत के बीच राजनयिक संबंध भी स्थापित किया गया एवं इसके फलस्वरूप भारत से व्यापारिक संबंध बढ़ाने के लिए भारतीय भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता भी महसूस की गई।

फलतः सन् 1908 में टोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय में हिंदुस्तानी भाषा तथा तमिल भाषा की पढ़ाई शुरू की गई। तब दोनों भाषाएँ सर्टिफ़िकेट और डिप्लोमा के स्तर तक पढ़ाई जाती थीं। आपको यह जानकर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई होगी कि जापान में हिंदी-उर्दू शिक्षण की परंपरा को आरंभ हुए 106 साल पूरे हो गए हैं।

उसके बाद सन् 1911 में हिंदुस्तानी भाषा को स्वतंत्र विभाग का दरजा दिया गया और इसके अंतर्गत डिग्री कॉर्स की पढ़ाई शुरू हो गई। कई कारणों से तमिल विभाग आगे नहीं चल सका। तब से आज तक द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भी हिंदुस्तानी की पढ़ाई में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आया बल्कि उसमें लोगों की रुचि और अधिक बढ़ गई। यह रुचि इसलिए बढ़ गई कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रति जापानी लोगों के मन में सहयोग और सराहना का भाव था। तभी तो जापान में समय-समय पर भारत के स्वतंत्रता सेनानी आते रहे थे। इनमें मुहम्मद बर्कतुल्लाह, श्री रासबिहारी बोसु, लाला लाजपत राय, नेता जी सुभाषचंद्र बोसु आदि के नाम बड़े प्रसिद्ध और सर्वविदित हैं। नवंबर सन् 1944 में हमारी यूनिवर्सिटी में नेता जी का आगमन हुआ था तथा उन्होंने अपना एक ऐतिहासिक भाषण हमारे छात्रों के सामने दिया था। हमारे विश्वविद्यालय के छात्र एवं अध्यापकों ने भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले उन सेनानियों के साथ भाषाओं से जुड़ी समस्याओं को दूर करने में बड़ी सहायता की। इस सहायता का सबसे बड़ा पक्ष था सेनानियों के साथ रहकर एक दुभाषिए का कार्य करना। नेता जी की आज़ाद हिंद फ़ौज के सेनानियों के बीच हमारे विश्वविद्यालय के छात्र दुभाषिए के रूप में काम करके अपना सहयोग दे रहे थे। महायुद्ध समाप्त होने के बाद सन् 1949 में तोक्यो विदेशी भाषा विद्यालय का नाम बदलकर टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ हो गया।

जापान में हिंदी की इस विकास यात्रा के पीछे एक और इतिहास भी छिपा हुआ है। सन् 1951 में संयुक्त राष्ट्रों और जापान के बीच शांति संधि स्थापित की गई। इस संधि के साथ जापान फिर अंतरराष्ट्रीय समाज में वापस आया। लेकिन आज़ाद भारत के पंडित नेहरू जी की सरकार इस संधि में शामिल नहीं हुई क्योंकि यह संधि नेहरू जी के गुटनिरपेक्ष आंदोलन के दर्शन से मेल नहीं खाती थी। इसी वजह से नेहरू जी ने अगले साल सन् 1952 में स्वतंत्र रूप से जापान के साथ शांति-मैत्री संधि स्थापित की थी। इस के अंतर्गत सांस्कृतिक आदान-प्रादान समझौता और छात्रवृत्ति की परियोजना भी शामिल थी। इस के तहत 50 और 60 के दशकों में कई एक जापानी छात्र अपनी पोस्ट-ग्रेजुएट की पढ़ाई और अध्ययन के लिए भारत भेजे गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत संबंधी अध्ययन की प्रथम पीढ़ी के विद्वान और प्रोफ़ेसर इन छात्रों में से तैयार किए गए और मैं उन लोगों का ही छात्र रहा हूँ।

साथ-ही-साथ विजेता देश होने के नाते युद्ध के दौरान भारत को जितनी क्षतियाँ पहुँचीं उनके लिए जापान से मुआवज़ा माँगने का कानूनी हक था। लेकिन नेहरू जी ने इस हक का इस्तेमाल नहीं किया था बल्कि उसे छोड़ भी दिया था। इसी कारण जापानी लोगों के मन में भारत के प्रति रुचि और सराहना का भाव इतना बढ़ गया कि उस ज़माने में समाचार-पत्रों में भारत का नाम पढ़े बिना एक दिन भी नहीं गुज़रता था।

सन् 1961 में हिंदुस्तानी विभाग उर्दू और हिंदी के दो स्वतंत्र विभागों में विकसित हो गया तथा सन् 1966 में एम.ए. और सन् 1992 में पीएचडी स्तर का अध्यापन भी शुरू हो गया। फिर सन् 2012 से बढ़ते भारत-जापान संबंध को देखते हुए नए सिरे से बंगला विभाग भी स्थापित किया गया। आजकल इन तीन विभागों में संस्कृत, पालि, मराठी, नेपाली, पंजाबी, सिंधी, मलयालम और तमिल भाषाएँ सर्टिफिकेट कॉर्स के रूप में पढ़ाई जाती हैं। हर साल 45 से अधिक छात्र-छात्राएँ बी.ए. में दाखिला लेते हैं।

और इसी बीच प्रेमचंद जी की कहानियों से शुरू होकर अज्ञेय, राहुल सांकृत्यायन, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी आदि की 100 से अधिक रचनाओं का जापानी में अनुवाद किया गया है। जापान में प्रकाशित शोधलेख और पुस्तकों के बारे में बताने के लिए बहुत लंबी सूची तैयार करनी पड़ेगी।

इसी तरह जापान में हिंदी और भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन का इतिहास सिर्फ़ काफ़ी पुराना ही नहीं बल्कि गहरे स्तर पर भारत-जापान संबंध से जुड़ा हुआ है। और इस संदर्भ में हमारी यूनिवर्सिटी पूरे जापान में विशिष्ट और अद्वितीय है।

इस तथ्य से यह भी कहा जा सकता है कि ब्रिटेन और फ्रांस के बाद जापान शायद ऐसा तीसरा देश है जिसके पास भारतीय भाषाओं की पढ़ाई का बहुत पुराना इतिहास है।

जापान में पधारे भारतीय अध्यापक

हिंदी-उर्दू भाषा सिखाने के लिए ऐसे अध्यापकों की ज़रूरत है जिनकी मातृभाषा हिंदी-उर्दू ही है और जिनके पास भाषा पढ़ाने के जोश के साथ-साथ शिक्षण पद्धति की पूर्ण जानकारियाँ भी हैं। हमारे विश्वविद्यालय की विशेषता यह है कि हिंदुस्तानी विभाग की स्थापना के साथ ऐसे भारतीय अध्यापकों को नियुक्त करने की पूरी व्यवस्था की गई है। और आज तक 30 से अधिक अध्यापक हिंदी-उर्दू के प्रचार-प्रसार के लिए हमारे यहाँ पधारे हैं (द्वितीय विश्व युद्ध के समापन तक हमारे विश्वविद्यालय में पधारे अध्यापकों की सूची इस लेख के अंत में दी गई है)।

हिंदी-उर्दू भाषा सिखाने के लिए ऐसे अध्यापकों की ज़रूरत है जिनकी मातृभाषा हिंदी-उर्दू ही है और जिनके पास भाषा पढ़ाने के जोश के साथ-साथ शिक्षण पद्धति की पूर्ण जानकारियाँ भी हैं। हमारे विश्वविद्यालय की विशेषता यह है कि हिंदुस्तानी विभाग की स्थापना के साथ ऐसे भारतीय अध्यापकों को नियुक्त करने की पूरी व्यवस्था की गई है और आज तक 30 से अधिक अध्यापक हिंदी-उर्दू के प्रचार-प्रसार के लिए हमारे यहाँ पधारे हैं।

लेकिन आरंभ में हिंदी-उर्दू भाषी अध्यापकों को नियुक्त करते समय एक बड़ी समस्या का सामना करना पड़ा था। क्योंकि उस ज़माने में भारत में विश्वविद्यालय के स्तर पर आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा के लिए कोई जगह नहीं थी और मान्यता भी नहीं दी जाती थी। विश्वविद्यालय में पढ़ाने के लिए योग्य अध्यापक का बिल्कुल अभाव था। बाध्य होकर उस समय विश्वविद्यालय की प्रबंधक-समिति ने ब्रिटिश भारत सरकार से किसी योग्य अध्यापक की सिफ़ारिश कराने के लिए सहायता माँगी। लेकिन यह प्रस्ताव ब्रिटिश भारत सरकार में भी एक सिर-दर्द का विषय बन गया था। क्योंकि उस समय जापान में कई प्रवासी क्रांतिकारी बन गए थे। भारत और उत्तर अमेरिका के बीच जापान से होकर गदर पार्टी के सदस्यों का आना-जाना भी शुरू हो गया था। टोक्यो, प्रवासी क्रांतिकारी आंदोलन के एक केंद्र के रूप में उभर आया था। ब्रिटिश भारत सरकार को जापान में भेजे गए अध्यापकों को क्रांतिकारियों के प्रभाव से बचाना ही था। खुफ़िया विभाग भारतीय अध्यापकों की निगरानी करने लगा और आखिर में एक अंग्रेज़ अफसर ने यहाँ तक कह दिया कि हिंदुस्तानी जाननेवाले पुलिस अफसर को अध्यापक के रूप में जापान में भेजा जाए।

इस सिलसिले में ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश राजदूतावास की ओर से तरह-तरह के दबाव जापान सरकार और हमारे विश्वविद्यालय के ऊपर पड़ने लगे। इसी कारण द्वितीय अतिथि प्रोफ़ेसर और सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी मुहम्मद बर्कतुल्लाह को जापान छोड़ना ही पड़ा।

इसी तरह हमारी यूनिवर्सिटी भारत-जापान के संबंध का सिर्फ़ साक्षी ही नहीं बल्कि सहचर भी रही है।

जापान में आयोजित हिंदी सम्मेलन

अब जापान में आयोजित हिंदी सम्मेलन के बारे में आप लोगों को बताना है, आठ वर्ष पूर्व सन् 2006 में हमारे विश्वविद्यालय ने दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में हिंदी-शिक्षण के विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का सफल आयोजन किया था। उस आयोजन के समय ही हम लोगों ने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि सन् 2008 में हम अपने विश्वविद्यालय में हिंदुस्तानी के रूप में हिंदी-उर्दू शिक्षण शताब्दी वर्ष के अवसर पर एक भव्य शताब्दी-समारोह का आयोजन करेंगे। यह सम्मेलन दिसंबर 2008 में पूरी सफलता के साथ संपन्न हो गया। इसी क्रम में सन् 2006 के सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि पाँच वर्षों के अंतराल से अगला क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन होना चाहिए। अतः हमारे लिए यह अत्यंत गौरव और हर्ष का विषय है कि हमने अपने उस निश्चय को पूरा करते हुए द्वितीय (क्षेत्रीय) अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन सन् 2012 के जनवरी में किया था। यह भारत-जापान के राजनयिक संबंध की 60वीं जयंती का साल था।

ऐसे ही हमने 8 साल में तीन सफ़ल अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों का आयोजन किया। इन सम्मेलनों में चीन, दक्षिण कोरिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से अनेक विद्वान हमारे यहाँ पधारे और

इसके फलस्वरूप हमारे बीच हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के लिए एक नया सौहार्दपूर्ण आपसी संबंध स्थापित किया गया है। इसका एक और उदाहरण भी है। दो हफ़्ते पहले दक्षिण कोरिया से यह समाचार आया कि इस मार्च में वहाँ द्वितीय क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन आयोजित किया जाएगा।

यह सम्मेलन मार्च 13 से 15 तक हंगुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ द्वारा, दक्षिण कोरिया में आयोजित किया गया। इसी तरह बेशक यह कहा जा सकता है कि अब उत्तर-पूर्व एशिया हिंदी भाषा के शिक्षण-केंद्र के रूप में उभर आया है। इसका मुख्य विषय था 21वीं शताब्दी में हिंदी-शिक्षण : एशियाई-पैसिफ़िक संदर्भ।

अंत में, मानव संस्कृति का मूलाधार तत्व है भाषा। मनुष्य के अस्तित्व से भाषा को अलग नहीं किया जा सकता। मनुष्य मानव संस्कृति के इस अभिन्न तत्व को अपने साथ लेकर चलते-फ़िरते और आगे बढ़ जाते हैं। भाषा भी ऐसे मनुष्य के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलकर उग जाती है। इसका अच्छा-खासा नमूना अब मेरे सामने दिखाई दे रहा है। आप जैसे प्रवासी भारतीय और भारतीय मूल के लोग। कहा जाता है कि आजकल दुनिया भर में तीन करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग बस गए हैं। इसका मतलब यह होगा कि भारतीय भाषाएँ भी दुनिया भर में फैल गई हैं। विश्व हिंदी की अवधारणा इसी वजह से सार्थक हो जाती है।

इस सार्थकता को और मज़बूत बनाने के लिए, मेरा भाषण समाप्त करने से पहले हिंदी भाषा के भविष्य को देखते हुए, मैं आप लोगों के सामने एक प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। यह प्रस्ताव है नए सिरे से मानक हिंदी के बृहत् शब्दकोश बनाने का। सन् 1965 में प्रयाग के हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित 5 खंडों वाले मानक हिंदी कोश और काशी के नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 11 खंडों में प्रकाशित हिंदी शब्द सागर के बाद हमारे हिंदी जगत में नए बृहत शब्दकोश का संपादन कार्य अब तक नहीं हुआ है। कई प्रयत्न तो अवश्य ही किए गए होंगे लेकिन उनके फल हमारे सामने अब तक दिखाई नहीं देते। भाषा बदलती ही रहती है। ऐसी स्थिति में नए शब्दकोश का यह अभाव हिंदी प्रेमियों को खलता होगा। अगर हिंदी को सच्चे अर्थ में विश्व हिंदी बनानी है तो मैं यह कहना चाहूँगा कि आप लोग अंग्रेज़ी के ओ.ई.डी. के सरीखे बृहत् हिंदी कोश बनाने के लिए अगुआई करें। जापान की ओर से हम भी इस काम में ज़रूर हाथ बटाएँगे। अंत में इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

हिंदी बने सेतु ह्रदयों की, सारी वसुधा एक ह्रदय हो।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व जापान में पधारे हिंदी-उर्दू भाषी भारतीय अध्यापकों की सूची—

Indian instructors/professors in Hindustani at TUFS before the WWII

1. May 1908 : N.L. Datt (Dutt) a resident in Yokohama
2. 3 July, 1909 - 31 March, 1914 : Muhammad Barkatullah (Bhopali)
3. 1 June, 1914 - 31, March 1916 : Devarilal Singh
4. 13 June, 1916 - 14 June 1921: Hariharnath Thalul Atal (killed himself at his Tokyo residence)
5. 17 January 1922 - 17 March : H.D. Chatra
6. 26 May, 1922 - 31 March, 1924 : Henry Drummond
7. 10 April, 1924 - 10 July : Keshoram Sabarwal (temporary instructor, 1st term)
8. 21 May, 1924 - 31 October, 1925 : Bishambar Datt (Dutt)
9. 1 May, 1926 - 31 March, 1929 : Attar Sain
10. 10 April, 1930 - 10 July : Keshoram Sabarwal (temporary instructor, 2nd term)
11. 17 December, 1930 - 31 March, 1932 : Muhammad Badr-ul-Islam Fadli.
12. 10 April, 1932 - 10 July : Keshoram Sabarwal (temporary instructor, 3rd term)
13. 21 October, 1932 - 2 July, 1939 (1st term); after the end of WWII—31 March, 1949 (2nd term)—Muhammad Nurul Hasan Barlas.

Source: the Alumni Association of the Department of Urdu and Hindi, ed., ***Memoirs*** (Tokyo: the Alumni Association of the Department of Urdu and Hindi, 2003) [in Japanese].

टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़,
3-11-1, असाही-चो, फुचु-शी,
टोक्यो 183-8534, जापान
fujii_takeshi@hotmail.co.jp

2014 में हिंदी जगत की चयनित खबरें

36 विश्व हिंदी समाचार में प्रकाशित वर्ष 2014 की चयनित खबरें

विश्व हिंदी सचिवालय के त्रैमासिक सूचना पत्र 'विश्व हिंदी समाचार' में वर्ष 2014 में प्रकाशित विशेष सूचनाओं की एक झलक विश्व हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है।

विश्व हिंदी समाचार, अंक : 25—मार्च, 2014 से उद्धृत विशेष समाचार

विश्व हिंदी दिवस–विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी सचिवालय ने 10 जनवरी, 2014 को इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, फ़ेनिक्स में शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग के संयुक्त तत्वावधान में विश्व हिंदी दिवस का भव्य आयोजन किया। मुख्य अतिथि के रूप में मॉरीशस गणराज्य के राष्ट्रपति महामहिम श्री राजकेश्वर प्रयाग उपस्थित थे। इस उपलक्ष्य में सचिवालय ने टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़, जापान से प्रो. ताकेशि फ़ुजिइ को आमंत्रित किया। प्रो. फ़ुजिइ का बीज वक्तव्य 'जापान में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन इतिहास, उपलब्धियाँ व स्मृतियाँ' पर आधारित रहा। विश्व हिंदी दिवस 2014 के उपलक्ष्य में सचिवालय द्वारा आयोजित 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी कविता प्रतियोगिता' के परिणामों की घोषणा की गई। साथ ही सचिवालय ने अपने वार्षिक प्रकाशन 'विश्व हिंदी पत्रिका' के पाँचवें अंक के मुद्रित व वेब प्रारूपों का लोकार्पण भी किया। हिंदी दिवस 2013 के उपलक्ष्य में भारतीय उच्चायोग द्वारा आयोजित निबंध व काव्य-पाठ प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कृत भी किया गया। अवसर पर श्री शेखर सेन द्वारा स्वामी विवेकानंद के जीवन पर एकल नाटक का मंचन किया गया।

विश्व हिंदी दिवस–विश्व भर में

हिंदी के विशेष व ऐतिहासिक दिवस, सन् 1975 में 10 जनवरी को नागपुर में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन की स्मृति में तथा विश्व भर में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु विश्व के कोने-कोने में विश्व हिंदी दिवस एक उत्सव के रूप में मनाया जाने लगा है। यह दिवस साल-दर-साल अधिक से अधिक देशों में प्रचलित होता जा रहा है। वर्ष 2014 का विश्व हिंदी दिवस भी विशेष रहा। भारत, चीन, बहरीन, नेपाल, कनाडा, जर्मनी, श्रीलंका, दोहा, मास्को, बेलारूस, मेक्सिको, टोक्यो आदि अन्य देशों में विश्व हिंदी दिवस भव्य रूप में मनाया गया।

विश्व हिंदी सचिवालय के आधिकारिक कार्यारंभ की छठी वर्षगाँठ

11 फरवरी, 2014 को विश्व हिंदी सचिवालय ने शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालाय तथा भारतीय उच्चायोग के सौजन्य से महात्मा गांधी संस्थान के सुब्रमण्यम भारती सभागार में अपने कार्यारंभ दिवस की छठी वर्षगाँठ मनाई। इस अवसर पर शिक्षा व मानव संसाधन मंत्री, माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी ने मुख्य अतिथि के रूप में समारोह की गरिमा बढ़ाई। अतिथि वक्ता के रूप में प्रख्यात हिंदी लेखक, पटकथाकार, निर्देशक, प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार के विजेता श्री उदय प्रकाश को आमंत्रित किया गया, जिन्होंने 'वर्तमान हिंदी साहित्य—प्रवृत्तियाँ व दिशाएँ' पर वक्तव्य दिया।

सिओल में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन

दक्षिण कोरिया के हान्कुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरेन स्टडीज़ ने विदेश मंत्रालय, भारत सरकार और भारतीय दूतावास, सिओल के सहयोग से 13 से 15 मार्च तक तीन दिवसीय अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्देश्य ऑस्ट्रेलिया, चीन, जापान, भारत और कोरिया समेत समस्त एशिया प्रशांत क्षेत्र में हिंदी भाषा के शिक्षण और अध्यापन को बढ़ावा देना था। इस सम्मेलन में जापान, चीन, ऑस्ट्रेलिया, भारत और कोरिया से विशिष्ट प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन का मुख्य विषय था '21वीं

शताब्दी में हिंदी शिक्षण—एशियाई पैसिफ़िक संदर्भ'। पाँच अकादमिक सत्रों में कुल अठारह आलेख पढ़े गए।

विश्व हिंदी समाचार, अंक : 26—जून, 2014 से उद्धृत विशेष समाचार

हिंदी शिक्षण तथा सूचना संचार प्रौद्योगिकी संगोष्ठी-कार्यशाला

7 से 10 अप्रैल, 2014 तक विश्व हिंदी सचिवालय ने शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग, मॉरीशस के संयुक्त तत्वावधान में तथा महात्मा गांधी संस्थान व मॉरीशस इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन के सौजन्य से प्राथमिक पाठशाला के हिंदी शिक्षकों के लिए 'हिंदी शिक्षण तथा सूचना-संचार प्रौद्योगिकी संगोष्ठी-कार्यशाला' का आयोजन किया। संगोष्ठी-कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य शिक्षकों को हिंदी और आई.सी.टी. के नवीनतम उपकरणों और उनके उपयोग की विधियों से अवगत कराना रहा, जिससे हिंदी शिक्षण के उन्नयन का मार्ग और प्रशस्त हो सके। इस कार्यशाला के दौरान लगभग 500 शिक्षकों को युनिकोड, फ़ोंट, हिंदी टंकन, इंस्क्रिप्ट, न्यू मीडिया, सोशल नेटवर्किंग साइट के उपयोग का प्रशिक्षण दिया गया। संगोष्ठी-कार्यशाला का संचालन भारत के तकनीकविद् व आई.सी.टी. विशेषज्ञ श्री बालेंदु शर्मा दाधीच तथा विश्व हिंदी सचिवालय, महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस इंस्टीटयूट ऑफ़ एजुकेशन व शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय के विशेषज्ञों द्वारा किया गया।

अंतरराष्ट्रीय (क्षेत्रीय) हिंदी सम्मेलन, न्यूयॉर्क

26 और 27 अप्रैल, 2014 को न्यूयॉर्क में कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स और साइंस भवन के सिल्वर हॉल में अमेरिका, कनाडा, कैरेबियाई देश त्रिनिदाद और टोबैगो, मॉरीशस और भारत से पधारे सैकड़ों हिंदी सेवी अध्यापक, भाषाविद्, लेखक और कवि 'अमेरिकी महाद्वीप में हिंदी शिक्षा और प्रचार के अवसरों और चुनौतियों' पर चर्चा करने के लिए आयोजित अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलन, न्यूयॉर्क में शामिल हुए। अमेरिका में भारत के राजदूत डॉ. सुब्रमण्यम जयशंकर ने वीडियो संदेश के माध्यम से सम्मेलन का उद्घाटन किया। न्यू यॉर्क में भारत के प्रधान कौंसुल ज्ञानेश्वर मुले ने अपने संबोधन में हिंदी को भारत की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बताते हुए हिंदी प्रचार को अभियान का स्वरूप देने पर ज़ोर दिया। यह सम्मेलन भारतीय समाज के उन सभी तबकों को एक साथ लाने का प्रयास था जो किसी प्रकार से हिंदी से जुड़े हैं। सम्मेलन में डॉ. सुरेंद्र गंभीर, श्री गंगाधरसिंह सुखलाल, डॉ. रूपर्ट स्नेल, डॉ. जॉय पैटन, डॉ. विजय गंभीर, डॉ. फिलिप लुटजेन्डोफ, डॉ. हरमन वैन ओल्फेन, डॉ. लक्ष्मी प्रसाद यार्लगड्डा, वर्तिका नंदा, डॉ. शैलजा सक्सेना, पं. रामप्रसाद पारसराम आदि विद्वानों ने पत्र प्रस्तुत किए।

तेल-अवीव में हिंदी दिवस

1 जून, 2014 को तेल अवीव विश्वविद्यालय में हिंदी दिवस समारोह भव्य रूप से मनाया गया। समारोह का कार्यक्रम विधिपूर्वक हिंदी सीख रहे विद्यार्थियों के तमाशों पर आधारित रहा। इसके अलावा हिंदी की कवयित्री बल्ली सिंगा ने अपनी कविताएँ सुनाईं और वाद्यकारों ने शास्त्रीय संगीत प्रस्तुत किया। तेल अवीव, इज़रायल में हिंदी को बढ़ावा देने की दिशा में भारतीय व्यापारियों ने कदम बढ़ाया है। उन्होंने हिंदी दिवस समारोह के अवसर पर ही हिंदी सीख रहे छात्रों के लिए 33 हज़ार डॉलर (करीब 20 लाख रुपए) के अनुदान की घोषणा की। इस अनुदान से विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा सीख रहे छात्रों को आगामी पाँच सालों के दौरान सहायता मिलेगी। वे भारत जाकर हिंदी भाषा को बेहतर तरीके से सीख सकेंगे। इसके लिए छात्रों का चयन लोकप्रिय टेलीविज़न शो 'कौन बनेगा करोड़पति' की तर्ज़ पर 'कौन भारत जाएगा' के माध्यम से किया जाएगा। यह अनुदान भारतीय हीरा विनियम व्यापारियों द्वारा दिया जाएगा।

विश्व हिंदी समाचार, अंक : 27—सितंबर, 2014 से उद्धृत विशेष समाचार

हिंदी दिवस 2014

14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा ने एक मत से यह निर्णय लिया कि हिंदी ही भारत की राजभाषा होगी। इसी महत्वपूर्ण निर्णय

के महत्व को प्रतिपादित करने तथा हिंदी को हर क्षेत्र में प्रसारित करने के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अनुरोध पर सन् 1953 से संपूर्ण भारत में 14 सितंबर को प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। धीरे-धीरे यह प्रथा विश्व के कोने-कोने में पहुँची और आज पूरा विश्व 'हिंदी दिवस' मनाता है। भारत के साथ-साथ मॉरीशस में हिंदी स्पीकिंग यूनियन, हिंदी प्रचारिणी सभा, महात्मा गांधी संस्थान तथा महात्मा गांधी माध्यमिक पाठशालाओं ने हिंदी दिवस का भव्य आयोजन किया। विदेश में इंडिया ऑस्ट्रेलिया एसोसिएशन, ऑस्ट्रेलिया; बोगोता, कोलंबिया; उत्तर भारतीय संघ, दोहा, कतार; शिकागो; जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ़्रीका; जाफ़ना, श्रीलंका; कैंडी, श्रीलंका; कुवैत; पैरिस, फ्रांस; टोरंटो, कनाडा में भी हिंदी दिवस मनाया गया।

देवनागरी में पंजीकृत होने लगे डोमेन नाम

27 अगस्त, 2014 को भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी और संचार मंत्री, माननीय रवि शंकर प्रसाद ने एक औपचारिक समारोह में डॉट भारत डोमेन नामों का आवंटन शुरू किए जाने की घोषणा की। भारत के नैशनल इंटरनेट एक्सचेंज ऑफ इंडिया (निक्सी) ने इन डोमेन नामों की शुरूआत की है। सभी भाषाओं, जिसमें देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है, उनमें अब इंटरनेट पर इस्तेमाल होने वाले वेब पते अर्थात यु.आर.एल. इस्तेमाल किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, विश्वहिंदी.भारत। यह एक डोमेन नेम है जो देवनागरी लिपि में है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस नाम से रजिस्टर्ड कराई गई वेबसाइट को खोलने के लिए ब्राउज़र में अंग्रेज़ी (लैटिन कैरेक्टरों) की बजाय देवनागरी में पता लिखने की छूट होगी। आगे चलकर वह बँगला, उर्दू, पंजाबी, तेलुगु, तमिल और गुजराती जैसी भाषाओं में भी डॉट भारत डोमन नामों का आवंटन शुरू करेगा।

अभिमन्यु अनत को साहित्य अकादमी मानद महत्तर सदस्यता का सर्वोच्च सम्मान

26 अगस्त, 2014 को मॉरीशस के प्रख्यात कथा-साहित्य सम्राट श्री अभिमन्यु अनत को भारतीय साहित्य में योगदान के लिए साहित्य अकादेमी द्वारा मानद महत्तर सदस्यता अर्पण की गई। सायं 5.00 बजे साहित्य अकादेमी के सभाकक्ष, नई दिल्ली में यह सम्मान समारोह आयोजित किया गया। अकादेमी के सचिव डॉ. के. श्रीनिवास राव ने इस अवसर पर उपस्थित अतिथियों का स्वागत किया। अकादेमी के अध्यक्ष श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के हाथों श्री अभिमन्यु अनत को महत्तर सदस्यता अर्पण की गई। सम्मान समारोह में स्वयं श्री अभिमन्यु अनत तथा उनकी पत्नी सरिता व श्री गंगाधरसिंह सुखलाल उपस्थित थे।

हिंदी सेवी सम्मान वर्ष 2010 एवं 2011

बुधवार, 27 अगस्त, 2014 को राष्ट्रपति भवन के दरबार हॉल में केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के हिंदी-सेवी सम्मान (वर्ष 2010 एवं 2011) कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम में राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा संस्थान की हिंदी सेवी सम्मान योजना के अंतर्गत 28 विद्वानों को हिंदी सेवी सम्मान प्रदान किए। इस अवसर पर मानव संसाधन विकास मंत्री एवं केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल की अध्यक्ष श्रीमती स्मृति जुबिन इरानी, मंडल के उपाध्यक्ष प्रो. यार्लगड्डा लक्ष्मीप्रसाद, हिंदी जगत के वरिष्ठ विद्वानों और मीडियाकर्मियों के साथ-साथ मानव संसाधन विकास मंत्रालय एवं विदेश मंत्रालय के अधिकारियों, विभिन्न दूतावासों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक प्रो. मोहन, आठों क्षेत्रीय केंद्रों के क्षेत्रीय निदेशकों, विभागाध्यक्षों, कुलसचिव डॉ. चंद्रकांत त्रिपाठी और शैक्षिक एवं प्रशासनिक सदस्यों ने शिरकत की।

संपादक मंडल, विश्व हिंदी सचिवालय

विश्व हिंदी सचिवालय

WORLD HINDI SECRETARIAT

स्विफ्ट लेन, फॉरेस्ट साइड 74427, मॉरीशस

Swift Lane, Forest Side 74427, Mauritius

फोन/Ph: 00-230-6761196 • फैक्स/Fax: 00-230-6761224

इ-मेल/e-mail: info@vishwahindi.com

वेबसाइट/website: www.vishwahindi.com

मुद्रक : **विद्या विहार,** नई दिल्ली-110002 (भारत) • vidyaviharnd@gmail.com